रामसनेही सम्प्रदाय



डॉ० राधिकाप्रसाद त्रिपाठी

रामसनेही सम्प्रदाय

डॉ० राधिकाप्रसाद त्रिपाठी

आनन्द प्रकाशन, फैजाबाद

प्रकाशक
आनन्द प्रकाशन
दीवानी मिसिल
फैजाबाद

●

प्रथम संस्करण
१९७३

●

●

मुद्रक
फाइन प्रिंट
१०६ शहरारावाग
इलाहाबाद-६

मूल्य २८ ००

भारतीय मनीषा के प्रतीक
प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं साहित्य के
अनुसंधित्सुओं के प्रेरणा-पुरुष
पूज्य गुरुवर
डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह
को

चित चोखा श्रोखा नहो ,
पोखा ज्ञान भगत्त ।
मन सोखा दोखा तज्या ,
वे रामसनेही सत्त ।

—रामचरण

हरिया निर्गुण मूल है ,
सगुण जु शाखा पान ।
भक्ति बीज फल मुक्ति है ,
श्रोर धर्म सब श्रान ।

—हरिरामदास

सकल ग्रंथ का अर्थ है ,
सकल बात की वात ।
दरिया सुमिरन राम का ,
कर लीजे दिन रात ।

—दरिया साहब

निवेदन

प्रस्तुत प्रबन्ध सन् १९६९ में गोरखपुर विश्वविद्यालय की पी एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ था। परिस्थितिवशात् इसका प्रकाशन पूरे १२ वर्षों के बाद सम्भव हुआ। इस बीच कितना पानी बह गया इस पर विचार करने से कोई लाभ नहीं है। इस दीर्घ अन्तराल में सन्त साहित्य का अध्ययन अनुशीलन करते हुए मैंने प्रबंध को यत्किंचित् संशोधित-परिवर्द्धित भी किया है।

सन् १९५९ में जब मैंने रामसनेही सम्प्रदाय के साहित्य पर शोध कार्य प्रारम्भ किया तब मेरे सम्मुख पूज्य गुरुवर डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह के निजी संग्रहालय से प्राप्त 'नाम समुद्र' नामक हस्तलिखित ग्रंथ ही था। उसके आधार पर आलोचनात्मक सामग्री की छानबीन करने पर ज्ञात हुआ कि संत साहित्य पर लिखी अधिकांश विवेचनात्मक कृतियों में अनुसंधेय विषय के सम्बंध में जो विचार व्यक्त किये गये हैं वे परिचयात्मक विवरण मात्र हैं। रामसनेही संतों की साधना-पद्धति तथा दार्शनिक विचारधारा पर उनसे कोई महत्त्वपूर्ण प्रकाश नहीं पड़ता। ऐसी स्थिति में यदि आचार्य प० परशुराम चतुर्वेदी तथा प्रसिद्ध धर्मोपदेशक रामसनेही महात्मा श्री रामसुखदास जी की सहायता न मिली होती तो इस प्रयत्न का परिणाम मैं किस रूप में प्रस्तुत कर पाता नहीं कह सकता। महात्मा रामसुखदास जी के सुझाव पर नवम्बर सन् १९५९ में मैं बीकानेर गया। वहाँ जाने पर सिंहथल के पीठाचार्य श्री भगवद्दास शास्त्री और खेड़ापा पीठाधीश्वर स्वर्गीय श्री हरिदास शास्त्री का स्नेह-भाजन बनने का सुयोग मिला। इन दोनों महानुभावों की उदारता एवं वत्सलता का सबल पाकर मैंने उत्साह के साथ सामग्री संकलित की। लौटते समय दरिया साहब की साधना-भूमि रेण गया। वहाँ के पीठाचार्य श्री क्षमाराम जी से मिला किन्तु सामग्री प्राप्त करने में यथेष्ट सफलता नहीं मिल सकी। दरिया साहब के देहावसान के पश्चात् बहुत समय तक रेण का रामद्वारा सूना पड़ गया था जिससे वहाँ का अधिकांश वाणी साहित्य नष्ट हो गया। इसके अनन्तर मार्च सन् ६० और फरवरी सन् ६१ में एक-एक महीने की दो शोध यात्राएँ और की गई। इस प्रकार शाहपुरा, सिंहथल खेड़ापा एवं रेण—तीनों शाखाओं की बिखरी हुई सामग्री संकलित हुई। शाहपुरा शाखा के पीठाचार्य श्री रामकिशोर जी महाराज के सौजन्य से दुर्लभ हस्तलेखों को देखने तथा साम्प्रदायिक साधना के गूढ़ रहस्यों को जानने का सुअवसर मिला। इन महानुभावों के प्रति लेखक अपना विनम्र आभार व्यक्त करता है।

इस प्रबन्ध के लिए उपयोगी सामग्री एकत्र करने में अन्य बहुत से विद्वानों, साधकों एवं संस्थाओं ने यथेष्ट सहयोग प्रदान करके मुझे अनुगृहीत किया है। उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना मैं अपना परम कर्त्तव्य समझता हूँ। ये हैं—

२ गोरखपुर विश्वविद्यालय, पुस्तकालय, गोरखपुर।
३ श्री दयालु पुस्तकालय, खेडापा धाम (जोधपुर)।
४ परमहंस श्री अमयराम जी का वाणी संग्रह, सूरसागर, जोधपुर।
५ श्री कोमतराम जी, देवादास का रामद्वारा, जोधपुर।
६ श्री रामधाम शाहपुरा का वाणी पुस्तकालय, शाहपुरा (मेवाड)।
७ श्री क्षमाराम जी पीठाचार्य, रेण (नागौर)।
८ बाई का रामद्वारा, नागौर का हस्तलेख-संग्रह।
९ श्री मनोरथराम शास्त्री, कूचापातीराम दिल्ली।
१० मोहकरदास का रामद्वारा, पहाड़पुर का वाणी-संग्रह, दिल्ली।
११ श्री आन दराम का निजी संग्रहालय, गुलाब सागर, जोधपुर।
१२ श्री रामलगन जी, आनंदराम का रामद्वारा, आमेट (मेवाड)।
१३ आर्यभाषा पुस्तकालय, नागरी प्रचारिणी सभा काशी।
१४ हिन्दू विश्वविद्यालय पुस्तकालय, काशी।
१५ केन्द्रीय सचिवालय पुस्तकालय, दिल्ली।
१६ श्री विश्वनाथ पुस्तकालय, काशी।

अपनी ज्ञान-गंगा की विमल धारा से मुझ अनगढ़ शिला खंड को काट-छाँटकर व प्रदान करने वाले पूज्य गुरुवर डा० भगवतीप्रसाद सिंह (रीडर, हिन्दी-ग, गोरखपुर विश्वविद्यालय) के प्रति औपचारिकता के शब्द निवेदित करने में सहज असमर्थता का अनुभव हो रहा है। वस्तुतः प्रबंध निर्देशक के रूप में डॉ० ने मुझे चिन्तन की भूमि दी है, कल्पना का आकाश दिया है और सबके ऊपर सौहार्द की घनी छाया दी है जो सुखपूर्वक एक जीवन जीने के लिए पर्याप्त है। आचार्य श्री का मैं पुनः पुनः वन्दन करता हूँ।

गोरखपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के आचार्य और अध्यक्ष श्रद्धेय डॉ० नाथ तिवारी के प्रति मैं श्रद्धावनत हूँ जिनके आशीर्वादस्वरूप मेरा कंटकाकीर्ण सदैव निरापद होता रहा है। हिन्दी विभाग के रीडर डा० रामचन्द्र तिवारी तथा देवर्षि सनाढ्य ने बड़ी आत्मीयता से मेरा उत्साह-वर्द्धन करते हुए अपने मर्शों से मुझे लाभान्वित किया है। एतदर्थ मैं इन गुरुजनों का जीवनपर्यन्त ऋणी। इस प्रबंध के प्रणयन में अन्यान्य बहुत से मित्रों और विद्वानों का भी प्रत्यक्ष रोक्ष रूप से योगदान रहा है। उनके प्रति मैं अपना हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

विषम पारिवारिक परिस्थिति में भी अपने महाविद्यालय के प्राचार्य माननीय रमाशंकर तिवारी अग्रज डॉ० राजनारायण मिश्र, प्रिय भाई श्री रामशङ्कर त्रिपाठी प्रियवर श्री रामचन्द्रराव होशिंग, श्री जनार्दन उपाध्याय, सुश्री सरोज राना

अग्रवाल और श्री कृष्णकौल त्रिपाठी की सत्प्रेरणा एव सहयोग से एक मास के भीतर इस ग्रथ के प्रकाशन की योजना बनी और पदे-पदे बहुविध व्यवधान आने पर भी कार्यान्वित हो गयी। मैं इन सब के प्रति यथायोग्य प्रणामाशीर्वाद ज्ञापित करता हूँ।

शीघ्रता के कारण ग्रथ में यत्र-तत्र मुद्रण सम्बन्धी अशुद्धियाँ रह गयी हैं। आशा है सुधी पाठक उन्हे सुधार कर पढ लेंगे।

दीपावली
वि० स० २०१०
छायातप
दीवानी मिसिल
फैजाबाद

राधिकाप्रसाद त्रिपाठी

पहला अध्याय

विषय-प्रवेश

रामसनेही सम्प्रदाय निर्गुण पंथ की एक अन्य प्रसिद्ध किन्तु अत्यन्त समृद्ध शाखा है। हिन्दी के निर्गुण पंथ का अनुशीलन करते हुए विद्वानों ने समय-समय पर इसके साहित्य और साधकों को प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया किन्तु अध्ययन की प्रगति अत्यन्त मन्द रही। इसके दो कारण थे—पहला और सबसे प्रधान था हिन्दी के सीमान्त प्रदेशों एवं अहिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तों में इसका उद्भव विकास तथा दूसरा था दुर्गम ग्रामीण क्षेत्रों में इसके अधिकांश पीठों और साधना स्थलों का स्थित होना। इन कठिनाइयों को पार कर साम्प्रदायिक केन्द्रों से सामग्री ढूंढ निकालना साधारण काम नहीं था। अतः इच्छा रखते हुए भी अनुसन्धित्सु साम्प्रदायिक साहित्य एवम् साधना के सम्यक् विवेचन का साहस न कर सके। राजस्थानी साहित्य के अन्वेषकों ने भी इस ओर यथेष्ट ध्यान नहीं दिया। ऐसी स्थिति में जब यदा-कदा किसी का ध्यान यदि इस ओर गया भी तो अपर्याप्त सामग्री के अभाव में उनका अनुशीलन सामान्य परिचय से आगे न बढ़ सका।

आलोच्य सम्प्रदाय का प्रायः सम्पूर्ण साहित्य अभी तक हस्तलिखित रूप में राजस्थान, मध्य प्रदेश और गुजरात के विभिन्न भागों में स्थापित साम्प्रदायिक पीठों में बिखरा हुआ है। इस सम्प्रदाय के महात्मा वाणी को गुरु का अवतार मानते हैं और उसकी पूजा करते हैं।[1] अतः अपनी पूजनीय वस्तु को सर्वसामान्य के लिए सुलभ करने में उन्हें इस बात का डर रहता है कि कहीं वह किसी ऐसे व्यक्ति के हाथ में न पड़ जाय जो उसका उचित सम्मान न कर सके। यही कारण है कि वे वाणी प्रकाशन के सर्वथा विरोधी हैं। प्रसिद्ध है कि पहले पहल जब सम्प्रदाय के कुछ उत्साही एवम् साहित्य प्रेमी महात्माओं ने "रामचरण जी की अणभैवाणी" और "श्री रामस्नेह धर्मप्रकाश" का प्रकाशित कराने की योजना बनाई तो पुराने पंथी महन्तों ने इसका घोर विरोध किया था। ऐसी स्थिति में वाणी-प्रकाशन की एक क्षीण परम्परा तो चली किन्तु प्रकाशित ग्रंथ सामान्य रूप से बाजारों में उपलब्ध नहीं हो सके। उन ग्रंथों का मूल्य प्रायः "प्रेमपाठ" होता था और सम्प्रदाय वाले उन्हें केवल ऐसे व्यक्तियों को भेंट करते थे जिनकी सुपात्रता पर उन्हें पूरा विश्वास हो जाता था। इसी का परिणाम है कि सम्प्रदाय का प्रायः सम्पूर्ण साहित्य साम्प्रदायिक केन्द्रों पर कपड़े की सात सात, आठ आठ तहों में बँधा हुआ आज तक पड़ा रह गया।

साम्प्रदायिक साहित्य के प्रकाश में न आने का अन्य कारण था प्रतिकूल साहित्यिक वातावरण में इसका निर्माण। जिस काल में इसकी रचना आरम्भ हुई, साहित्य और समाज दोनों में भक्ति के स्थान पर शृङ्गारी प्रवृत्ति पूर्णतया प्रतिष्ठित हो चुकी थी। ऐसी स्थिति में भौतिक जीवन के समतल पर फैल कर प्रवाहित होने वाली रसमय काव्य-धारा के सामने आध्यात्मिक तत्वों से पूर्ण इस निर्गुण स्रोत की ओर लोगों का ध्यान न जाना आश्चर्यजनक नहीं कहा जा सकता।

इस सम्बन्ध में इतना अवश्य कहना है कि जहाँ उपर्युक्त कतिपय कारणों से यह विशाल साहित्य-राशि अब तक प्रकाश में न आ सकी, वहीं संतों के संकुचित दृष्टिकोण और उनकी अन्तर्मुखी वृत्ति के कारण ही यह अब तक सुरक्षित भी रह सकी, अन्यथा बहुत सी प्राचीन साहित्यिक निधियों की भाँति इसका भी अधिकांश नष्ट हो गया होता। इस सामग्री को राष्ट्रभाषा की इस जागरण बेला तक सम्हाल कर रखने के लिए हिन्दी-जगत् सम्प्रदाय के महात्माओं का चिर ऋणी रहेगा।

इस विषय पर कार्य करते हुये इन पंक्तियों के लेखक ने सम्प्रदाय की मूलभूमि राजस्थान की तीन यात्रायें की हैं और उसके प्रतिष्ठित पीठाचार्यों तथा साधकों से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करके यथाशक्ति अद्यावधि अज्ञात संतों तथा उनकी कृतियों के सम्बन्ध में प्रामाणिक तथ्य संग्रहीत करने का प्रयास किया है। जहाँ कहीं दार्शनिक पद्धति तथा साधना-प्रणाली के विषय में शंका हुई, आलोच्य सम्प्रदाय की तीनों शाखाओं के अधिकारी विद्वानों से विचार विमर्श करने के अनन्तर ही तद्विषयक मत स्थिर किये गये हैं। इसके बावजूद लेखक का विश्वास है कि साम्प्रदायिक साहित्य एवम् साधना के अनेक तत्वों पर अभी यथेष्ट प्रकाश नहीं डाला जा सका है। सम्प्रति जो सामग्री उपलब्ध हो सकी उसी की विवेचना से संतोष करना पड़ा है। यह उल्लेखनीय है कि प्रस्तुत विषय पर स्वतन्त्र रूप से अब तक कोई ग्रन्थ अथवा शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत नहीं किया गया है। हिन्दी-भक्ति काव्य के निर्गुणधारा विषयक ग्रन्थों, लेखों तथा साम्प्रदायिक पीठों से प्रकाशित परिचयात्मक पुस्तकों में इसके प्रवर्तकों, अनुयायियों उनकी कृतियों और सिद्धान्तों पर यत्र-तत्र जो सामग्री उपलब्ध है वह महत्वपूर्ण होते हुए भी साम्प्रदायिक साधना का यथार्थ बोध कराने में अक्षम है। नीचे इस प्रकार की यथोपलब्ध समस्त सामग्री का एक आलोचनात्मक परिचय दिया जाता है। इससे प्रस्तुत अध्ययन की उपादेयता एवम् मौलिकता स्वतः स्पष्ट हो जायगी।

१ जर्नल आफ् दी रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ् बंगाल

रामसनेही सम्प्रदाय के विषय में प्रथम बार लेखनी उठाने का श्रेय कैप्टन जी० ई० वेस्काट को है। वेस्काट महोदय ने 'सम एकाउन्ट आफ ए सेक्ट आफ हिन्दू सिज्माटिक्स इन वेस्टर्न इंडिया कालिंग देमसेल्व्स रामसनेही आर फ्रेन्ड्स आफ गाड' शीर्षक के अन्तर्गत लगभग बीस पृष्ठों का लेख लिखकर रायल एशियाटिक

सोसाइटी, बगाल क फरवरी १८३५ के मुख पत्र मे प्रकाशित करवाया था। इस लेख मे शाहपुरा शाखा के पाँच सन्त कवियो—रामचरण[1], रामजन[2], दूल्हाराम[3], चतुरदास[4] और नारायणदास[5] का सक्षिप्त परिचय दिया गया है। इसके साथ ही उन्होंने सम्प्रदाय की उपासना-प्रणाली, धार्मिक स्थिति, आचार-विचार, रहन सहन, वेष भूषा तथा पवादि का भी विस्तृत विवेचन किया है। वस्काट महोदय शाहपुरा पीठ के पाँचवें पीठाधिप नारायणदास के समकालीन थे। उन्होंने सामग्री का सकलन शाहपुरा जाकर किया था। अत इस लेख म सग्रहीत सूचनायें प्रामाणिक और हर प्रकार से विश्वसनीय है। आज भी शाहपुरा शाखा के सम्बन्ध म इस लेख स अधिक सामग्री किसी दूसरे इतिहास ग्रन्थ में नहीं मिलती।

विद्वान् लेखक न विक्रम सम्वत् को ईस्वी सन् म परिवर्तित करते समय थोडी सी असावधानी हो गई है। रामचरण का जन्म सम्वत् १७७६ मे हुआ था। वेस्काट महोदय भी इसको मानत हैं। विक्रम सम्वत् को ईस्वी सन् म परिवर्तित करते समय विक्रम सम्वत् म से ५७ वष कम कर दिया जाता है। इसी नियम के अनुसार लेखक ने १७७६ मे से ५७ घटा कर रामचरण का जन्मकाल १७१९ ई० माना है। लगता है ऐसा करते समय विद्वान् लेखक का ध्यान इस बात की ओर नही गया कि रामचरण वि० सम्वत् १७७६ क माघ महीने की १४वी तिथि को पैदा हुये थे और ईस्वी सन् प्राय मार्गशीष, अथवा पौष के मध्य मे ही बदल जाता है। कहने का तात्पय यह कि उक्त काल निश्चित रूप स नये वष का जनवरी या फरवरी महीना रहा होगा। अत उनका आविर्भाव माघ शुक्ल १४ स० १७७६ तदनुसार सन् १७२० माना जाना चाहिए न कि सन् १७१९।

२ इस्त्वार दला लितरात्यूर एन्दुई ऐ ऐन्दुस्तानी[6]

इस पुस्तक के लेखक फ्रेंच विद्वान गार्सा द तासी है। इसका प्रकाशन सन् १८३९ म हुआ था। इसम रामसनेही सम्प्रदाय की शाहपुरा शाखा के सन्त साहित्यकारो—रामचरण[7], रामजन, दूल्हाराम[8], चतुरदास[9], (छत्रदास) आदि का सक्षिप्त परिचय दिया गया है। तासी साहब को यह सूचना एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता क मुख पत्र के फरवरी १८३५ के अक मे प्रकाशित कैप्टन वेस्काट के लेख मे

1 Journal of the Royal Asiatic Society of Bengal, p 65
2 Ibid p 66 3 Ibid p 66 4 Ibid, p 66 5 Ibid, p 66
६ इस ग्रथ का अनुवाद डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ने 'हिन्दुई साहित्य का इतिहास' नाम से किया है जो सन् १९५३ मे प्रकाशित हुआ है।
७ इस्त्वार द ला लितरात्यूर ऐंदुई ऐ ऐंदुस्तानी, पृ० २३५-३६।
८ वही, पृ० २३७। ९ वही, पृ० ११७। १० वही, पृ० ७५।

मिली थी।' जैसा कि हम पीछे कह आये हैं कि वेस्काट महोदय शाहपुरा आचाय पीठ के महन्त नारायण दास के समकालीन थे और उन्होंने अपने निबन्ध मे जितनी सामग्री दी है, उसका सकलन प्रामाणिक सूत्रो से किया था। अत इस पुस्तक मे दी गई सूचनाएँ विश्वसनीय मानी जा सकती है। यह ग्रन्थ इसलिए और भी महत्वपूण है कि कालान्तर में फरवरी १८३५ का जनल अप्राप्य हो गया अत परवर्ती इतिहासकारो का यही मुख्य आधार ग्रन्थ हो गया। वेस्काट महोदय के लेख का जैसा उपयोग इस ग्रन्थ मे किया गया है वैसा अन्य किसी भी इतिहास ग्रन्थ में नहीं।

३ सत्यार्थ प्रकाश

स्वामी दयान द सरस्वती विरचित इस ग्रन्थ का प्रथम सस्करण सस्कृत मे निकला था। बाद म पाठको की आवश्यकता को दृष्टि मे रखते हुए स्वामी जी ने हिन्दी मे रूपान्तर करके सम्वत् १९३९ म इसे पुन प्रकाशित करवाया। इसम उन्होंने बहुत से प्रचलित धार्मिक मतो की कटु आलोचना की है। रामसनेही सम्प्रदाय के म तो की जाति, शिक्षा आदि पर उन्होने जो विचार व्यक्त किय हैं व विशष महत्वपूण नही हैं। इस सम्बन्ध म उनके दो आक्षेप विचारणीय हैं—पहला है नामसाधना विषयक और दूसरा आचार विषयक।

रामसनेही सम्प्रदाय की नामसाधना की आलोचना करते हुए स्वामी जी ने कहा है कि "जैस सक्कर-सक्कर कहन से मुख मीठा नही होता वैस सत्य भाषणादि कम किय बिना राम-राम कहने स कुछ भी नही होगा। और यदि राम राम कहना इनका राम नहीं सुनता तो जन्म भर कहने स भी नही सुनेगा और जो सुनता है तो दूसरी बार भी राम राम कहना व्यर्थ है।"[1] कहना न होगा नाम साधना का प्रचार केवल निर्गुण उपासक सन्तो मे ही नही, सगुणोपासक भक्तो मे भी है। देश म उपयुक्त दोनों कोटि के भक्तो और समथको की कमी नही रही है। उनम से अनक अच्छे विद्वान् भी हुए हैं। उन्होने समय समय पर इस आक्षेप का तथ्यपूण युक्तियो से प्रतिवाद किया है। अत हमे यहाँ इस उलझन मे पड़न की आवश्यकता नही है, किन्तु हम इतना अवश्य कहेगे कि नाम साधना का खडन करते हुए स्वामी जी ने जो उदाहरण प्रस्तुत किया है वह बहुत ही स्थूल और एकागी है। सच्चिदानन्द भगवान् के नाम स्मरण की तुलना 'गुड' शब्द के उच्चारण से करना किसी भी दृष्टि स औचित्य की सीमा में नहीं आता।

स्वामी जी का दूसरा आक्षेप रामसनेहियो क आचार पर है। व कहत हैं कि "इन लोगों ने अपना पेट भरने और दूसरो का जन्म नष्ट करने के लिए एक पाखड खड़ा किया है सो यह बड़ा आश्चय हम सुनते हैं और देखत हैं कि नाम तो धरा

१ सत्यार्थप्रकाश, पृ० २३६।

रामस्नेही और काम करते हैं राडमनेही का। जहाँ देखो वहाँ राड हा राड सन्तों को घेर रही है।"[1] स्वामी जी का यह आक्षेप बड़ा ही गम्भीर है और एक ऐसी सामाजिक समस्या की ओर संकेत करता है जिसका समाधान युगों से नहीं प्राप्त हो सका है। सिन्दूर के साथ ही जीवन के समस्त सुखों से वंचित होकर भगवान् की शरण लेने वाली विधवाओं तथा उन्हें धर्मोपदेश देने वाले महात्माओं को समाज सदैव से शंका की दृष्टि से देखता रहा है। इस समस्या के समाधान के लिए स्वामी जी ने विधवाश्रमों की स्थापना का समर्थन किया था किन्तु उनकी यह योजना भी व्यावहारिक स्तर पर उतरने के पश्चात् कलंक की कालिमा से बच न सकी। ऐसी स्थिति में सम्पूर्ण रामसनेही सम्प्रदाय पर इस प्रकार का व्यापक आरोप न्यायसंगत नहीं प्रतीत होता।

सत्यार्थप्रकाश में स्वामी जी ने केवल उन्हीं धर्मों की आलोचना की है जो तत्कालीन समाज को प्रभावित कर रहे थे और जिनसे उनका वैचारिक मतभेद था। अतः रामसनेही सम्प्रदाय के विषय में जो कुछ उन्होंने लिखा है, उससे यह सिद्ध होता है कि इस सम्प्रदाय का उस समय राजस्थान में काफी प्रचार था अन्यथा स्वामी जी को इस प्रकार आलोचना न करनी पड़ती।

४ माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान

सर जार्ज ग्रियर्सन का यह ग्रंथ सन् १८८८ (सं० १९४६) में रायल एशियाटिक सोसाइटी से प्रकाशित हुआ था। इस पुस्तक में केवल रामसनेही सन्त बुल्हेराम[2] का उल्लेख हुआ है। ग्रियर्सन साहब ने साम्प्रदायिक साहित्य स्वयं न देखकर गार्सां द तासी के इतिहास से सामग्री संकलित कर ली थी। किन्तु विद्वान् लेखक ने उसका भी अवलोकन ध्यानपूर्वक नहीं किया अन्यथा कुछ और सन्त तथा उनकी कृतियाँ इस महत्त्वपूर्ण ग्रंथ में स्थान पा जातीं।

५ हिन्दू कास्ट्स एण्ड सेक्ट्स

श्री योगेन्द्रनाथ भट्टाचार्य का यह कृति कलकत्ता विश्वविद्यालय से सन् १८९६ में प्रकाशित हुई थी। प्रसंगवश इस ग्रंथ में भी रामसनेही सम्प्रदाय का उल्लेख हुआ है। भट्टाचार्य जी ने रामसनेहियों की साधना और धर्म पर मुसलमानों का प्रभाव बताया है। उनकी धारणा है कि इस सम्प्रदाय के सन्त मुसलमानों की भाँति अपने मठों में निराकार ब्रह्म की पाँच बार उपासना करते हैं।[3] किस आधार पर उन्होंने ऐसा कहा

१ वही, पृ० २३६।

२ माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान, अनु० डा० किशोरीलाल गुप्त पृ० १६।

3 Hindu castes and sects, p 447

समझ म नही आता। प्रस्तुत लेखक ने आलोच्य सम्प्रदाय का अध्ययन बहुत निकट से किया है और रामसनेही महात्माओ के साहचर्य मे कई मास व्यतीत किये हैं। उसका यह निश्चित मत है कि न तो रामसनेही महात्मा दिन में पाँच बार निराकार ईश्वर की उपासना करते हैं और न उनके आचार विचार मे ही मुस्लिम प्रभाव की रंचमात्र गध आती है।

६ खोजरिपोर्ट

नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित खोज रिपोर्टों में रामसनेही सम्प्रदाय के नवलराम[1], पूरणदास (दयालुदास के शिष्य)[2], रामचरण[3], रामजन[4], उमा[5], जगन्नाथ[6], सूरतराम (शाहपुरा शाखा)[7] की अनेक रचनाओं का विवरण समय समय पर प्रकाशित हो चुका है। इतनी सामग्री की सूचना प्राप्त होने के बावजूद इतिहास ग्रथो मे इस सम्प्रदाय को दो चार पक्तियो से अधिक स्थान नही प्राप्त हो सका। यदि प्राप्त सामग्री के आधार पर विद्वानों ने सचेष्ट होकर इस दिशा में प्रयास किया होता तो कदाचित् अबतक रामसनेही सम्प्रदाय की यह विशाल साहित्य राशि और उसके निर्माता प्रकाश मे आ गये होते, किन्तु दुर्भाग्य से ऐसा न हो सका और ये विवरण खोज रिपोर्टों में ही दबे पडे रह गये।

लेखकों के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध मे खोज रिपोर्ट प्राय मौन ही है। लगता है कि कृतियो का विवरण लेते समय इस शाखा के सन्तो के जीवन-वृत्त की महत्ता को उपेक्षित कर दिया गया। यदि विवरण के साथ जीवन वृत्त भी दिये गये होते तो ये अनुसधित्सुओं के लिए बहुत बडे आकर्षण के कारण बनते। यह सतोष का विषय है कि खोजरिपोर्ट के सक्षिप्त विवरणो में त्रुटियो का प्राय अभाव है। रामसनेही सम्प्रदाय की पूरी सामग्री में केवल एक स्थान पर त्रुटिपूर्ण मत की स्थापना हुई है। चौदहवी खोज रिपोर्ट (१९२९-३१) मे रामचरण विरचित 'अनुभवविलास' ग्रथ की पुष्पिका मे एक दोहा उद्धृत किया गया है जो इस प्रकार है —

अठारह से पट वर्ष मास फागुन वदि साते।
सत पधारे धाम सनीचरवार विख्याते[8]॥

---

1 Anual Report of 1910 p 56 2 Ibid, p 57

३ ग्यारहवाँ त्रैवार्षिक विवरण, सख्या १४८। बारहवा त्रैवार्षिक विवरण, सख्या ६१ ए० बी० सी०। चौदहवा त्रैवार्षिक विवरण, सख्या २८१ ८२। पन्द्रहवा त्रैवार्षिक विवरण, सख्या १७५। ४ सत्रहवा त्रैवार्षिक विवरण, सख्या ११८। ५ वही, सख्या १५७। ६ सोलहवा त्रैवार्षिक विवरण, सख्या ४३। ७ वही, सख्या ६७। ८ चौदहवां त्रैवार्षिक विवरण, सख्या २८१।

इस छंद के आधार पर रामचरण का जन्म काल वि० सं० १८०६ निर्धारित किया गया है जो सर्वथा निराधार है। वस्तुतः स्वामी जी का जन्म वि० सं० १७७६ में हुआ था जो कि समस्त ऐतिहासिक एवं सम्प्रदायिक सूत्रों से प्रमाणित है। उपयुक्त छन्द पर यदि थोड़ी भी गम्भीरता के साथ विचार किया गया होता तो यह भ्रम न उत्पन्न हुआ होता। 'धामपधारना' जन्म लेने के लिए नहीं वरन् परमधाम पधारने के अर्थ में प्रयुक्त होता है और 'सन्त' का तात्पर्य यहाँ रामचरण के दादागुरु तथा कृपाराम के गुरु संतदास से है। तात्पर्य यह कि उपयुक्त छंद में संतदास के परमधाम पधारने का वर्णन है न कि रामचरण के आविर्भाव काल का।

७ सम्प्रदाय

उर्दू भाषा में लिखित इस ग्रंथ के लेखक क्रिश्चियन विद्वान् प्रो० बी० बी० राय हैं। इसका प्रकाशन सन् १६०६ में मिशन प्रेस लुधियाना से हुआ था। राय साहब ने इस ग्रंथ में रामसनेही सम्प्रदाय के सम्बन्ध में १०-११ पृष्ठों में पर्याप्त सामग्री संकलित की है।[1] यह ग्रंथ यद्यपि वैज्ञानिक ढंग से नहीं लिखा गया है फिर भी इसमें रामसनेहियों के आचार विचार, रहन सहन, खान-पान आदि के सम्बन्ध में विस्तृत सूचना प्राप्त होती है।

८ ऐन आउटलाइन आफ रिलिजस लिटरेचर आफ इण्डिया

भारत के धार्मिक साहित्य के अधिकारी विद्वान् जे० एन० फर्कुहर की यह कृति आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस से सन् १६२० में प्रकाशित हुई थी। इसमें भी प्रसंगवशात् रामसनेही सम्प्रदाय का नाम आया है। फर्कुहर महोदय ने भी इस सम्प्रदाय का विवेचन मुस्लिम प्रभाव के अन्तर्गत किया है।[2] उन्होंने जो सूचनाएँ दी हैं वे उपर्युक्त पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्रस्तुत ग्रंथों से ली गई हैं। इसलिए अनुसंधेय विषय पर इससे कोई नया प्रकाश नहीं पड़ता।

९ दी मिस्टिक्स, एसेटिक्स एण्ड सेण्ट्स आफ् इण्डिया

इस ग्रंथ के लेखक जे० सी० ओमन हैं। इसमें भी रामसनेहियों की केवल शाहपुरा शाखा पर प्रकाश डाला गया है। ओमन महोदय ने संक्षेप में रामसनेहियों के आचार विचारादि का जो परिचय दिया है वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है किन्तु साम्प्रदायिक उपासना प्रणाली के मुसलमानों से प्रभावित होने की उन्होंने जो चर्चा की है[3] वह युक्तिसंगत नहीं है।

---

१ सम्प्रदाय, पृ० ९३ १०३।

२ An Outline of Religious literature of India pp 245-46

3 The Mystics Ascetics and Saints of India, p 133

१०. कबीर एण्ड हिज फालोअर्स

अंग्रेज विद्वान् एम० के० की द्वारा लिखित यह ग्रंथ प्रथम बार सन् १९३१ ई० में प्रकाशित हुआ था। इसमें प्रसंगवशात् रामसनेही सम्प्रदाय का भी नाम आ गया है। लेखक ने रामसनेहियों की शाहपुरा शाखा के बारे में बहुत ही सामान्य ढंग से लिखा है। शेष दो शाखाओं के विषय में वह मौन है।

की महोदय ने रामचरण का जन्म सन् १७१८ में माना है[1] जो सर्वथा निराधार है। रामचरण वस्तुतः सन् १७२० में उत्पन्न हुये थे। इन पंक्तियों के लेखक को सम्प्रदाय की मूलभूमि राजस्थान के विभिन्न भागों की शोध यात्रा करते हुए रामचरण जी की जन्मतिथि के सम्बन्ध में कहीं भी मतभेद नहीं दिखाई दिया। इस प्रकार आलोच्य सम्प्रदाय के अध्ययन में इस ग्रंथ से कोई विशेष सहायता नहीं मिलती।

११ मिडिवल मिस्टीसिज्म आफ् इंडिया

यह ग्रंथ भारत के प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य क्षितिमोहन सेन के 'मुखर्जी लेक्चर्स' का परिवर्धित रूप है। इसमें रामसनेही सम्प्रदाय की केवल शाहपुरा शाखा के विषय में कुछ पंक्तियाँ लिखी गई हैं।[2] ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि लेखक की रामचरण के जीवन-वृत्त विषयक जानकारी सुनी सुनाई बातों पर आधारित थी। सेन महोदय की सम्मति में रामचरण ने अपने मत का प्रचार सन् १७४२ (सं० १७९९) से आरम्भ कर दिया था। इस कथन की अयथार्थता इसी से सिद्ध हो जाती है कि रामचरण का दीक्षा काल भाद्र शुक्ल ७ गुरुवार सं० १८०८ है।[3] दीक्षा के पूर्व ही सम्प्रदाय प्रवर्तन और मत प्रचार की बात मान्य नहीं हो सकती। आचार्य सेन ने दरिया साहब[4] का परिचय तो दिया है किन्तु वे रामसनेही सम्प्रदाय के थे, शायद इसकी सूचना उन्हें नहीं थी। सम्प्रदाय के दो अन्य मुख्य पीठों—सिंहथल और खेड़ापा का उन्होंने कोई उल्लेख नहीं किया है।

१२ निर्गुण स्कूल आफ् हिन्दी पोइट्री

सन्त साहित्य का प्रथम वैज्ञानिक एवं खोजपूर्ण विवेचन प्रस्तुत करने वाला यह अनुपम ग्रंथ सन् १९३६ में प्रकाशित हुआ। इसके लेखक सन्त-साहित्य के मूर्धन्य

---

1 *Kabir and his followers*, p 165

2 *Medieval Mysticism of India*, p 158

3 समत अठारा सौ अरु आठा, ले वैराग गये तन काठा।
भादव मास दास पद पायो, रामचरण जी नाम कहायो॥
ब्रह्मसमाधिलीन योग, छद ३३-३४

४ *Medieval Mysticism of India*, p 136

विद्वान् डॉ० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल थे। इसका हिन्दी अनुवाद प० परशुराम चतुर्वेदी ने किया है। ग्रंथ के परिशिष्ट भाग मे रामचरण[1] और रामसनेहियों की शाहपुरा शाखा का बहुत ही सामान्य परिचय दिया गया है। इस सम्बन्ध मे लेखक की सूचना के प्रधान स्रोत की महोदय का 'कबीर एण्ड हिज फालोअर्स' नामक ग्रंथ था जो कि स्वयं इस सम्प्रदाय के सम्बन्ध मे इतनी अल्प सामग्री देता है कि उसमे साम्प्रदायिक साधना, दर्शन आदि पर कोई विशेष प्रकाश नही पडता।

१३ राजपूताने का इतिहास (प्रथम भाग)

राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता स्व० जगदीश सिंह गहलोत के इस ग्रंथ का प्रथम सस्करण सन् १९३७ में हिन्दी साहित्य मन्दिर जोधपुर से निकला था। लेखक ने शाहपुरा राज्य का परिचय देते हुए प्रसगवशात् रामसनेही सम्प्रदाय की भी चर्चा की है। गहलोत जी ने भी रामचरण की जन्मतिथि माघ शुक्ल १४, स० १७७५ (२३ जनवरी सन् १७१९) माना है।[2] लगता है कि जिस आधार पर अंग्रेज विद्वान् की महोदय, डा० ताराचन्द और डा० रामकुमार वर्मा ने इनका जन्म १७१८ में माना है उसी की गणना करके इन्होंने इनकी जन्म तिथि २३ जनवरी सन् १७१९ निश्चित की है। असावधानी से लेखक ने रामचरणदास लिख दिया है जब कि उनका पूरा नाम केवल रामचरण ही था। प्रस्तुत ग्रंथ मे विद्वान् लेखक ने एक स्थान पर खेडापा शाखा के रामसनेहियों का भी नाम लिया है।[3] रण के विषय मे वह मौन है।

१४ हिन्दुत्व

भारतीय धर्म साधना का परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत करने वाले इस महान् ग्रंथ के लेखक श्री रामदास गौड हैं। इसका प्रथम सस्करण सन् १९३८ मे निकला था। इसमे रामसनेही सम्प्रदाय की चर्चा करते हुए रामचरण और दूलहेराम का नामोल्लेख किया गया है।[4] पूर्ववर्ती ग्रंथों की पिटी-पिटाई बातों का सग्रह मात्र होने के कारण इस ग्रंथ से भी रामसनेही सम्प्रदाय पर कोई नया प्रकाश नहीं पडता।

१५ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास

यह डॉ० वर्मा द्वारा पी एच० डी० उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध है जिसका प्रथम सस्करण सन् १९३८ मे निकला था। हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध

१ हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ० ५४१
२ राजपूताने का इतिहास, भाग १, पृ० ५५४
३ राजपूताने का इतिहास, भाग १, पृ० ५६४
४ हिन्दुत्व, पृ० ७३६।

इतिहास मे पहली बार आलोच्य सम्प्रदाय का परिचय इसी ग्रंथ मे दिया गया है। विद्वान् लेखक ने रामसनेही सम्प्रदाय की शाहपुरा शाखा और उसके प्रवर्तक महात्मा रामचरण के विषय मे जो चर्चा की है वह संक्षिप्त होते हुए भी महत्त्वपूर्ण है। डा० वर्मा के अनुसार रामसनेही मत मुसलमानी मत से बहुत कुछ मिलता जुलता है और इसमे नमाज की तरह पाँच बार निराकार ईश्वर की आराधना होती है।[1] योगेन्द्रनाथ भट्टाचार्य और जे सी० ओमन की भी यही धारणा है।

१६ इफ्लुयेंस आफ् इस्लाम आन इंडियन कल्चर

इस ग्रंथ की रचना डा० ताराचन्द ने आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से डी० फिल० उपाधि के लिए शोध प्रबन्ध रूप में की थी। सन १९५० मे इसका प्रकाशन इंडियन प्रेस, इलाहाबाद से हुआ। ग्रंथ के अनुशीलन से विदित होता है कि लेखक ने उन तत्वों की ओर तो संकेत किया ही है जिन पर सचमुच इस्लाम का प्रभाव है साथ ही कहीं-कहीं पर हठात् भी मुस्लिम प्रभाव का आरोप किया गया है। रामसनेही सम्प्रदाय के धार्मिक कृत्यों पर मुसलमानों का प्रभाव दिखाना कुछ इसी प्रकार का प्रयत्न है।[2] अपनी इस धारणा के समर्थन मे लेखक ने योगेन्द्रनाथ भट्टाचार्य की 'हिंदू कास्ट्स एण्ड सेक्टस' नामक पुस्तक का साक्ष्य दिया है। इस ग्रंथ में भी रामचरण जी की जन्मतिथि सन् १७१८ ही मानी गई है[3] जिसकी विवेचना पीछे की जा चुकी है।

१७ कल्याण-सन्त अंक, भक्तचरिताङ्क

कल्याण के सन्त अंक का प्रकाशन वि० सं० १९९४ में हुआ था। इसमें रामचरण[4], हरिरामदास[5] रामदास[6], दयालुदास[7], दरिया साहब[8] का जीवनवृत्त दिया गया है। धार्मिक प्रकाशन होने के कारण इसमे प्रेमी भक्तों को अधिकाधिक प्रभावित करने एवं सामान्य जनता की आध्यात्मिक वृत्तियों को जागृत करने के उद्देश्य से महात्माओं के चमत्कारिक कृत्यों तथा उनकी सिद्धियों का ही विशेष वर्णन किया गया है। सन्तों के साहित्य तथा साधना का विवेचन इसका उद्देश्य ही नहीं है। अत इसमे दी गई सामग्री का उपयोग केवल सन्तों का जीवनवृत्त प्रस्तुत करने मे किया जा सकता है। इस ग्रंथ के द्वारा प्रस्तुत अधिकांश सामग्री, कतिपय सामान्य त्रुटियों के होते हुए भी प्रामाणिक एवं विश्वसनीय है।

---

१ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ४११

२ Influence of Islam on Indian Culture, P 205

३ Ibid, P 205। ४ कल्याण सन्त अंक, पृ० ७४८-४९। ५ वही, पृ० ६२६। ६ वही, पृ० ६२७। ७ वही, पृ० ६२७। ८ वही, पृ० ६३१।

इस ग्रन्थ के अनुसार हरिरामदास का दीक्षा काल सं० १७०० है। हरिरामदास का निधन सं० १८३८ में हुआ था जो स्तम्भ-लेख द्वारा भी समर्थित है। दीक्षा के समय इनकी अवस्था बीस वर्ष से कम नहीं रही होगी क्योंकि दीक्षा के पूर्व ही वे सकलशास्त्र निष्णात हो चुके थे। इस प्रकार उनकी आयु डेढ़ सौ वर्ष से भी अधिक ठहरती है जो कि सम्भव होते हुए भी आज के युग में विश्वसनीय नहीं प्रतीत होती। इस बात को यदि थोड़ी देर के लिए मान भी लिया जाय तो भी सगति नहीं बैठती क्योंकि इनके गुरु जैमलदास ने स्वयं सं० १७६० में दीक्षा ली थी[1]। गुरु के दीक्षित होने के पूर्व ही शिष्य के दीक्षित होने की बात समझ में नहीं आती।

इसी प्रकार की एक अन्य भ्रान्ति दरिया साहब की जाति विषयक है। इसके अनुसार दरिया साहब का जन्म मुसलमान समाज की एक निम्न जाति में हुआ था। इनके पूर्वज निम्न जाति के हिन्दू थे जिन्होंने इस्लाम स्वीकार कर लिया। प्रस्तुत लेखक की दृष्टि में यह मत सर्वथा भ्रान्त है। हमारे भोजपुरी प्रदेश में एक लोकोक्ति है—"तुर्की भइल त धुनिया ना"। तात्पर्य यह कि परम्परागत धर्म का त्याग कर अत्यन्त निम्न वर्ग का हिन्दू भी इस्लाम धर्म ग्रहण करते समय धुनियाँ बनना नहीं स्वीकार कर सकता। अतः इस प्रकार का निराधार और मनगढ़न्त बातों को छोड़कर हमें दरिया साहब को धुनियाँ और परम्परा से मुसलमान ही मानना चाहिए।

१८ राजस्थानी भाषा और साहित्य

राजस्थान का पिंगल साहित्य

रामसनेही सम्प्रदाय के सम्बन्ध में विस्तृत एवं महत्त्वपूर्ण सूचना राजस्थानी साहित्य के मर्मज्ञ पं० मोतीलाल मेनारिया ने प्रस्तुत की है। मेनारिया जी ने अपने उपर्युक्त दोनों ग्रन्थों में उक्त सम्प्रदाय का परिचय देते हुए अनेक सन्तों—रामचरण[2], हरिरामदास[3], रामदास[4], दरिया साहब[5], रामजन[6], दयालुदास[7], कान्हड़दास[8], चतुरदास[9], दूल्हेराम[10], सेवकराम[11], जगन्नाथ[12], पूरणदास[13], नारायणदास[14], मंगलदास[15], और उनकी कृतियों का संक्षिप्त उल्लेख किया है। लेखक ने इस सूचना का आधार प्रधान रूप से 'रामचरणजी की अणभै वाणी' और 'श्रीरामस्नेहधर्मप्रकाश' को बनाया है। ये दोनों ग्रन्थ सम्प्रदाय की ओर से प्रकाशित हैं, इसलिए सामग्री

---

१ श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश, पृ० ३९१। २ राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ० २०३। ३ वही पृ० २०५। ४ वही, पृ० २०६। ५ वही, पृ० २०७। ६ वही, पृ० २०४। ७ वही, पृ० २०७। ८ वही, पृ० १७७। ९ वही, पृ० २१६। १० वही, पृ० २१८। ११ वही, पृ० २०४। १२ वही, पृ० २१६। १३ वही, पृ० १६। १४ राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ० २१७। १५ वही, पृ० २१७।

इसी प्रकार मेनारिया जी ने एक भूल और की है और वह है 'प्रह्लाद चरित' के लेखक जन गोपाल को रामचरण का शिष्य मानने की। रामसनेही सम्प्रदाय में जन गोपाल रचित 'प्रह्लाद चरित' का महत्वपूर्ण स्थान है, इसे हम मानते हैं। रामचरण के शिष्यों में जनगोपाल नामक एक महात्मा थे इसे भी हम स्वीकार करते हैं। फिर भी यह स्मरणीय है कि 'प्रह्लाद चरित' का पाठ दादू पंथ में भी बड़ी श्रद्धा के साथ किया जाता है। दादूदयाल के २४ शिष्यों में जनगोपाल नाम के एक महात्मा थे यह भी सर्वविदित है। अतः यह प्रश्न विवादग्रस्त हो जाता है कि ये जनगोपाल कौन थे—दादूदयाल के शिष्य अथवा रामचरण के? प्रस्तुत लेखक ने इस सन्देह का निवारण करने के लिए शाहपुरा आचार्य रामकिशोर जी से परामर्श किया था। उन्होंने यह स्वीकार किया कि 'प्रह्लाद चरित' के रचयिता जनगोपाल दादूदयाल के शिष्य थे। सम्प्रदाय के अन्य जानकार महात्माओं ने भी इसी तथ्य का समर्थन किया।

१६ उत्तरी भारत की सन्त परम्परा
सन्तकाव्य

इन दोनों ग्रंथों के लेखक संत साहित्य के प्रख्यात विद्वान् पं० परशुराम चतुर्वेदी हैं। इनका प्रकाशन क्रमशः सम्वत् २००८ और सम्वत् २००६ में हुआ था। यद्यपि इन ग्रन्थों में चतुर्वेदी जी अपने पूर्ववर्ती इतिहास ग्रंथों से अधिक सामग्री नहीं दे सके हैं फिर भी अध्ययन की दृष्टि से इनका विशेष महत्त्व है क्योंकि प्राप्त सामग्री का मुख्य व्यवस्थित ढंग से उपयोग करके साम्प्रदायिक सिद्धान्तों का विवेचन सर्वप्रथम इन्हीं ग्रन्थों में हुआ है।

उपर्युक्त दोनों ग्रन्थों में केवल रामचरण[१] और दरिया साहब[२] का ही जीवनवृत्त प्राप्त होता है। दोनों महात्माओं के जीवनवृत्त के सम्बन्ध में इन ग्रंथों में हर प्रकार से प्रामाणिक सामग्री मिलती है। दरिया साहब के जन्म काल के सम्बन्ध में पहले चतुर्वेदी जी को भ्रम था। उन्होंने उनकी जन्मतिथि सम्वत् १७३२ मान ली थी[३] किन्तु बाद में इन्होंने अपने मत में संशोधन करके उनका जन्म तिथि सम्वत् १७३३ निर्धारित की[४]।

'उत्तरी भारत की सन्त परम्परा' के प्रथम संस्करण तक चतुर्वेदी जी को रामसनेही सम्प्रदाय की तीनों शाखाओं के विषय में कोई सूचना नहीं प्राप्त थी। तब तक उन्हें केवल शाहपुरा शाखा के विषय में ज्ञात था। रैण की शाखा को इस ग्रंथ में 'दरिया पंथ' के नाम से अभिहित किया गया है। 'सन्त काव्य' के प्रकाशन तक आते-आते लेखक

---

१ उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० ६१४ १५

२ वही, पृ० ५७८

३ हिन्दुस्तानी (१६३१) अंक १, भाग ४, पृ० ४८८

४ सन्तकाव्य, पृ० ४०४

को रामसनेहियों की तीनों शाखाओं की सूचना मिल चुकी थी। सम्भवतः स्थानाभाव के कारण इस ग्रंथ में लेखक को उनके नामोल्लेख मात्र से संतोष कर लेना पड़ा। चतुर्वेदी जी ने 'संत काव्य' में दरिया साहब की परम्परा को रामसनेही सम्प्रदाय के अंतर्गत मानने में शंका व्यक्त की है जो कि बहुत ही स्वाभाविक है क्योंकि दरिया साहब के शिष्य नानकदास ने भी दरियासाहब के अनुयायियों को 'दरिया पंथी' कहा है।[1] लेकिन आज दरिया साहब के अनुयायी अपने को रामसनेही मानते हैं तथा राजस्थान में इसी नाम से प्रसिद्ध भी हैं। अतः ग्रंथोक्त प्रमाणों को अलग रखकर साम्प्रदायिक मान्यता के आधार पर दरियापंथियों को रामसनेही मानने में कोई बाधा नहीं दिखाई देती।

२० आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका

आधुनिक हिन्दी साहित्य

उपर्युक्त दोनों ग्रंथ प्रयाग विश्वविद्यालय से डी० फिल०, और डी० लिट्० उपाधियों के लिए डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय द्वारा प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध हैं जिनका प्रकाशन क्रमशः १९४८ ई० और १९५२ ई० में हुआ। इन ग्रंथों में लेखक ने यथावसर रामसनेही सम्प्रदाय के विषय में भी अपने विचार प्रकट किये हैं। सूचनाओं के अभाव में विद्वान् लेखक ने हरिरामदास, रामदास और दयालुदास को रामचरण का शिष्य मान लिया है।[2] लगता है कि उन्हें यह नहीं ज्ञात था कि रामसनेही नाम से राजस्थान में तीन सम्प्रदाय चल रहे हैं जिनकी अपनी-अपनी पृथक् गद्दियाँ और भिन्न परम्परायें हैं। शायद उन्होंने यह समझा कि रामसनेही सम्प्रदाय की स्थापना रामचरण ने की थी और खेड़ापा, रेण आदि में उनकी शिष्य शाखा का विस्तार हुआ, अन्यथा वे हरिरामदास, रामदास और दयालुदास को रामचरण का शिष्य मानने की गलती न करते।

२१ राजस्थान में हस्तलिखित ग्रंथों की खोज (भाग ३ और ४)

इनका प्रकाशन साहित्य संस्थान उदयपुर से क्रमशः सन् १९५२ और १९५४ में हुआ था। अब तक के प्रकाशित ग्रंथों में अनुसंधेय विषय पर सबसे अधिक सामग्री इन्हीं ग्रंथों में संकलित है। किन्तु इन खोज विवरणों की सबसे बड़ी त्रुटि यह है कि साहित्यकारों के सम्बन्ध में ये सर्वथा मौन है। ऐसी स्थिति में इनसे यह भी पता नहीं

१ दरिया पंथी गाइया रामनाम सिर तास।
गुरुमुख साच सम्हालिया यूं कहै नानकदास॥
श्री रामसनेही सतवाणी, पृ० १४४

२ आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० २१९

चल पाता कि कौन सी रचना अनुसंधेय विषय से सम्बद्ध है और कौन सी नहीं। यदि साहित्यकारों का संक्षिप्त परिचय भी इनमें दे दिया गया होता तो यह प्रयास हर प्रकार से श्लाघनीय माना जाता और राजस्थानी साहित्य के अन्वेषकों के लिए बड़ा ही उपादेय सिद्ध होता।

२२ राजस्थान की जातियाँ

बजरंग लाल लोहिया कृत इस ग्रंथ का प्रकाशन सन् १९५४ में हुआ था। प्रसंगवशात् इस ग्रंथ में भी रामसनेही सम्प्रदाय के बारे में संक्षिप्त प्रकाश डाला गया है। लेखक ने रामसनेहियों की शाहपुरा और रैडावा की शाखाओं के बारे में ही लिखा है। रेण के विषय में वह पूर्णतः चुप है।

लोहिया जी ने रामदास को माझी जाति का बताया है।[१] रामदास को माझी जाति का बताने वाले आप पहले व्यक्ति हैं। इस कथन की पुष्टि न तो अन्तः एवम् बहिस्साक्ष्यों से होती है और न किंवदंतियों के आधार पर ही की जा सकती है। प्रस्तुत लेखक का यह दृढ़ मत है कि रामदास माझी कुल में नहीं उत्पन्न हुए थे।

लोहिया जी ने मालदास नामक एक और महन्त का भी उल्लेख किया है।[२] कहना न होगा कि रामसनेही सम्प्रदाय की सिंहथल रैडावा शाखा क्या, किसी भी शाखा में मालदास नाम का कोई महन्त अब तक नहीं हुआ है।

२३ श्री रामस्नेही सम्प्रदाय

इस ग्रंथ का प्रकाशन सन् १९५६ में वैद्य केवलराम नामक रामसनेही साधु द्वारा हुआ था। यह एक सम्पादित ग्रंथ है जिसमें रामसनेहियों की शाहपुरा शाखा के १८ वाणीकार सन्तों की रचनाएँ संकलित हैं। प्रारम्भ में लगभग डेढ़ सौ पृष्ठों की सुन्दर भूमिका के कारण इस ग्रंथ की महत्ता अत्यधिक बढ़ गई है। शाहपुरा शाखा के साहित्य के अनुशीलन में यह अत्यन्त उपादेय ग्रंथ है। प्रस्तुत अध्ययन में यत्र तत्र मूल सामग्री के अभाव में इस प्रधान सन्दर्भ ग्रंथ के रूप में अपनाया गया है।

रामसनेही सम्प्रदाय सम्बन्धी उपर्युक्त आलोचनात्मक सामग्री की विवेचना से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि निर्गुण मत की यह शाखा अभी तक विद्वानों की दृष्टि से प्रायः ओझल ही रही है। साम्प्रदायिक इतिहास और साहित्य को प्रकाश में लाने का कोई सुनिश्चित प्रयास नहीं किया गया। परवर्ती अनुसंधित्सुओं की दृष्टि बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल से आगे न जा सकी और थोड़े हेर-फेर के साथ वेस्काट महोदय की मान्यताओं की ही पुनरावृत्ति होती रही। इधर पं० मोती

१ राजस्थान की जातियाँ पृ० ९४।
२ वही, पृ० ९४

लाल मेनारिया ने अपनी कृतियों में एतद्विषयक कुछ अधिक तथ्य प्रस्तुत किये किन्तु उनका प्रयत्न भी कतिपय सन्तों के नामोल्लेख तक ही सीमित रह गया। तात्पर्य यह कि इस विषय को लेकर अब तक कोई ऐसा सुयोजित कार्य भारतीय अथवा विदेशी विद्वानों ने नहीं किया जो प्रस्तुत लेखक का पूर्णरूपेण पथनिर्देश कर सके अथवा उसके द्वारा आदर्श रूप में गृहीत हो सके। इस दिशा में साम्प्रदायिक सन्तों की जीवनी, साहित्य तथा साधना के तिमिराच्छन्न पक्षों की विवेचना में उसे अधिकतर अपने ही सीमित साधनों पर निर्भर रहना पड़ा है। प्रबन्ध की निम्नांकित रूपरेखा से यह स्वतः स्पष्ट हो जायगा कि उसका कितना अंश अपना कहा जा सकता है और कितना पूर्ववर्ती विद्वानों का प्रसाद।

पहला अध्याय विषय प्रवेश का है। इसमें आलोच्य सम्प्रदाय के हस्तलिखित एवं मुद्रित साहित्य की स्थिति और तत्सम्बन्धी प्राप्त आलोचनात्मक सामग्री की विवेचना करते हुए प्रबन्ध की मौलिकता पर विचार किया गया है।

दूसरे अध्याय में रामसनेही सम्प्रदाय के उद्भव और विकास की सम्यक् विवेचना की गई है। पृष्ठभूमि के रूप में परम्परागत वैष्णव धर्म में सन्तमतानुकूल तत्त्वों का अनुसंधान करते हुए सन्त मत के अभ्युदय की सामाजिक पृष्ठभूमि का परिचय दिया गया है। फिर परिस्थितियों के प्रभाव से सगुण भक्ति में निर्गुण तत्त्वों के समावेश तथा अठारहवीं शताब्दी की सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक परिस्थितियों की प्रतिक्रिया स्वरूप सगुण राम-भक्ति में इस निर्गुण धारा के फूट निकलने की चर्चा की गई है। इसी अध्याय में रामसनेही सम्प्रदाय की स्थापना और विकास, रामसनेहियों के वेश भूषा, माला, तिलक, पर्वोत्सव, आचार्यों की निर्वाचन प्रणाली, साम्प्रदायिक परम्परा आदि का विस्तृत परिचय दिया गया है। प्रबन्ध का यह भाग ऐतिहासिक ग्रन्थों तथा सगुण मार्गी भक्ति साहित्य के गम्भीर अध्ययन पर आधारित होने के कारण अठारहवीं शताब्दी के भक्ति-आन्दोलन की आन्तरिक एवं बाह्य स्थितियों की नवीन और मौलिक व्याख्या प्रस्तुत करता है।

साहित्य और साहित्यकार शीर्षक तीसरा अध्याय दो खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड में रामसनेही साहित्य के स्वरूप और उसके प्रतिपाद्य विषय पर विचार किया गया है। दूसरे खण्ड में रामसनेही साहित्यकारों के जीवनवृत्त तथा उनकी रचनाओं का परिचय है। साम्प्रदायिक साहित्य का अधिकांश अभी अप्रकाशित है, अतः कवियों के जीवन परिचय के साथ ही काव्य शैली के उदाहरण के रूप में उनकी रचनाओं के कुछ नमूने भी दे दिये गये हैं। जीवनवृत्त प्रस्तुत करते समय लेखक का ध्यान अन्त तक इस बात पर रहा है कि सन्तों के आत्मोल्लेखों तथा 'परची', 'भक्तमाल' एवं समाधि के शिलालेखादि अन्य साधनों द्वारा पुष्ट तथ्य ही प्रस्तुत किये जायें। ऐसे महात्माओं के जीवन-वृत्त निर्माण में विवश होकर किंवदन्तियों का

सहारा लेना पड़ा है जिन्होंने अपना सारा जीवन गगन वितान के तले आकाश वृत्ति से रहते हुए बिताया था और जो अपने अनुभव की अक्षय निधि बिना किसी को सौंपे ही अकस्मात् चल बसे थे। किन्तु वहाँ भी अपनी दृष्टि चमत्कारों के घने अन्धकार से तथ्यों को ढूँढ़ निकालने की ओर रही है।

चौथे अध्याय में रामसनेही सन्तों के दार्शनिक विचारों का निरूपण किया गया है। पहले सन्त साहित्य के दार्शनिक अध्ययन की समस्या पर विचार किया गया है और फिर आलोच्य युग के सन्तों की ब्रह्म, जीव, मुक्ति, माया, काल और जगत् सम्बन्धी मान्यताओं की विस्तृत व्याख्या की गई है। इसके साथ ही उन्हें प्रभावित करने वाली पूर्ववर्ती भारतीय तथा इस्लामी विचार धाराओं की ओर भी संकेत कर दिये गये हैं।

पाँचवें अध्याय के भी दो भाग हैं। प्रथम भाग में रामसनेही सम्प्रदाय की साधना पर विचार किया गया है। इस सम्प्रदाय में प्राप्त ज्ञान, कर्म, भक्ति, योग और सूफी प्रेम साधना के सूत्रों पर व्यापक दृष्टि से प्रकाश डाला गया है। योग साधना के अन्तर्गत हठयोग, मन्त्रयोग, लययोग, राजयोग और सन्तों के 'सुरति शब्द-योग' का भी सम्यक् रूप में परिचय दिया गया है। दूसरे खण्ड में रामसनेहियों के धर्म का अनुशीलन करते हुए उनके विश्वास, आचार और उपासना प्रणाली का परिचय दिया गया है।

छठें अध्याय का प्रतिपाद्य विषय है साहित्यिक मूल्यांकन। इसमें रामसनेही सन्तों की वाणी के भावात्मक एवं कलात्मक महत्त्व पर विचार करते हुए रस, अलंकार, भाषा, लोकोक्ति, मुहावरे, छन्द, संगीत, उलटवासी, दृष्टिकूट, प्रतीक-योजना प्रकृति वर्णन, समाज वर्णन आदि प्रमुख तत्वों की विवेचना की गई है।

सातवाँ अथवा अन्तिम अध्याय उपसंहार का है। इसमें रामसनेही सम्प्रदाय के संगठन, परम्परा, साहित्य आदि का सिंहावलोकन करते हुए सम्प्रदाय की सामाजिक एवं साहित्यिक उपलब्धि तथा उसकी वर्तमान स्थिति पर दृष्टिपात किया गया है।

अध्ययन को सजीवता एवं रोचकता प्रदान करने के लिए लेखक ने यथाशक्ति उसे साम्प्रदायिक पीठों में ऐतिहासिक अवशेषों के रूप में उपलब्ध उपकरणों से सुसज्जित करने का प्रयास किया है। सन्तों, उनकी समाधियों तथा हस्तलेखों के चित्र इसी उद्देश्य से प्रस्तुत किये गये हैं। इस ग्रन्थ में जितने चित्र दिये गये हैं उन सबका संकलन प्रमुख साम्प्रदायिक केन्द्रों से हुआ है। अतः उनकी प्रामाणिकता असंदिग्ध कही जा सकती है। सम्प्रदाय के प्रसार क्षेत्र का मानचित्र लेखक ने जानकार महात्माओं के परामर्श से अपनी देख रेख में बनवाया है। इससे सम्प्रदाय की व्यापकता तथा रामसनेहियों के प्रमुख केन्द्रों की भौगोलिक स्थिति का सही परिचय प्राप्त करने में सुगमता होगी।

प्रस्तुत लेखक ने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए राजस्थान की तीन तीन शोध यात्राएँ की। नगरों से दूर स्थित गावों में जा जाकर वहाँ के संतों और रामद्वारों से सामग्री संकलित की। इस अध्ययन को अधिकाधिक पुष्ट और सर्वाङ्गपूर्ण बनाने के लिये अपनी सीमित आर्थिक, शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों के उपयोग में किसी प्रकार की कसर नहीं छोडी गई फिर भी प्रस्तुत लेखक यह दावा नहीं करता कि उसने आलोच्य सम्प्रदाय का जो अध्ययन प्रस्तुत किया है वह सर्वथा पूर्ण है। ग्रन्थ के कलेवर तथा अपनी सीमाओं को देखते हुए बहुत से साहित्यकारों का परिचय और उनकी कृतियों का विवेचन जानकारी रखते हुए भी छोड देना पडा। अवसर मिलने पर राजस्थान की इस लोकविश्रुत विचारधारा पर अधिक व्यापक प्रकाश डालने का हम प्रयत्न करेंगे।

दूसरा अध्याय

रामसनेही सम्प्रदाय का उद्‌भव और विकास

परम्परागत वैष्णव धर्म में सतमतानुकूल तत्त्व

संत मत का उदय महात्मा कबीर से माना जाता है।[1] कबीर के गुरु रामानन्द थे। रामानन्द का आविर्भाव वैष्णवाचार्य रामानुज की परम्परा में हुआ था। रामसनेही सम्प्रदाय के आदि गुरु जयमलदास और संतदास भी रामानन्द की परम्परा में आते हैं। तात्पर्य यह कि संतमत वैष्णव धर्म की ही एक शाखा है जो देश काल जन्य परिस्थितियों के प्रभाव से एक पृथक धारा के रूप में प्रवाहित होने लगी। यही कारण है कि कुछ उल्लेखनीय अन्तर के बावजूद दोनों परम्पराओं में बहुत ही वैचारिक समानता है। बहुत से लोगों को साकार के उपासक वैष्णवों और निराकार के ध्याता संतों के मत में अन्तर्विरोध दिखाई पड़ता है किन्तु उनकी यह धारणा सर्वथा भ्रान्त है। वस्तुतः संतमत के बीज वैष्णव धर्म में किसी न किसी रूप में बहुत पहले से वर्तमान थे जो परिस्थितियों के प्रसाद से अंकुरित और पल्लवित हुए। जब-जब अन्य साधनाओं के छींटे भी इस पर पड़ते रहे जिनके कारण यह अपने मूल से किंचित भिन्न रूप में हमारे सामने आया। इस उपपत्ति की पुष्टि के लिए वैष्णव धर्म में प्राप्त संतमतानुकूल सामान्य तत्वों पर विचार कर लेना आवश्यक है।

नामोपासना

निर्गुण संतों की साधना का मूल नामोपासना है। कबीर के अनुसार भव-सतरण के लिए 'राम-नाम' एक नौका है। जो इसका आश्रय लेता है वह न तो भव जल से भीगता है और न पाप-पंक से पंकिल होता है।[2] वस्तुतः कबीर ने राम नाम को ब्रह्म तत्सार समझ कर मस्तक पर धारण कर रखा है।[3] वैष्णव धर्म में भी नाम

---

१ (क) हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय (डा० बड़थ्वाल), पृ० ३१
(ख) हिन्दी साहित्य का इतिहास (आचार्य शुक्ल), पृ० ७०

२ कबीर ग्रंथावली, पृ० ७९, १०

३ वही, पृ० ५, ३

साधना पर बल दिया जाता है। 'अध्यात्मरामायण' में भगवान् शंकर के मुख से कहलवाया गया है कि नाम का उच्चारण करता हुआ कृतार्थ होकर, मैं हमेशा पार्वती के सहित काशी में निवास करता हूँ और यहाँ पर मरने वालों का मुक्ति के हेतु उनके कानों में राममन्त्र का उपदेश देता हूँ।[1] 'महाभारत' के अनुसार भगवान के नाम में पापनाशिनी शक्ति का जितना बल है उतना शरीर से किये गये पापों का नहीं।[2] वैष्णव मत पर आगम साहित्य का भी प्रभूत प्रभाव है। वैष्णव सम्प्रदायाचार्य यामुनमुनि आगम को पंचम वेद मानते थे।[3] रामानुज[4] और वेदांतदेशिक[5] ने भी अपने सिद्धान्तों के प्रतिपादन में पांचरात्र संहिताओं की सहायता ली थी। कहना न होगा कि वैष्णव धर्म को प्रभावित करने वाले इस तांत्रिक साहित्य में भी नाम का महत्व बताया गया है। 'रुद्रयामल तन्त्र' में राम नाम को वेद, यज्ञ, जप, सब कुछ कहा गया है।[6] इसके अनुसार भक्तिपूर्वक राम-नाम का उच्चारण करने से ब्राह्मण, राक्षस, धार्मिक और पापी सबके बंधन छूट जाते हैं।[7] 'नारद पांचरात्र' में कहा गया है कि रकार के उच्चारण से शरीर के पाप बाहर निकल जाते हैं और इसलिए कि कहीं वे फिर न प्रवेश कर जायें इस पर मकार रूपी कपाट लग जाता है।[8] इस प्रकार हम देखते हैं कि वैष्णव धर्म में नामोपासना का बहुत पहले से प्रचलन रहा है।

---

१ अहं भवन्नाम गृणन् कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवान्या ।
मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मंत्रं तव राम नाम ।।
—अध्यात्म रामायण, युद्ध काण्ड, श्लोक ६२

२ नाम्नोऽस्ति यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः ।
तावत् कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी नरः ।।
—महाभारत—शांतिपर्व

३ इण्ट्रोडक्शन टु दी पांचरात्र (श्रेडर), पृ १६

४ वही, पृ० १७

५ वही, पृ० १८

६ राम नाम परोवेदो, राम नाम सदा शुचि ।
राम नाम परो मंत्रो राम नाम नाम परोजप ।।
—रुद्रयामल तन्त्र से

७ द्विजो वा राक्षसो वाऽपि पापी वा धार्मिकस्तथा ।
राम रामेति योभक्त्या स मुक्तो भवबन्धनात् ।।
—वही

८ रेफोच्चारण मात्रेण वहिर्नियाति पातकम् ।
पुनः प्रवेश सदेहात् मकारश्च कपाटवत् ।।
—नारद पाँचरात्र से

रामसनेही सम्प्रदाय का उद्भव और विकास

परम्परागत वैष्णव धर्म में संतमतानुकूल तत्त्व

संत मत का उदय महात्मा कबीर से माना जाता है।[1] कबीर के गुरु रामानन्द थे। रामानन्द का आविर्भाव वैष्णवाचार्य रामानुज की परम्परा में हुआ था। रामसनेही सम्प्रदाय के आदि गुरु जयमलदास और संतदास भी रामानन्द की परम्परा में आते हैं। तात्पर्य यह कि संतमत वैष्णव धर्म की ही एक शाखा है जो देश काल जन्य परिस्थितियों के प्रभाव से एक पृथक् धारा के रूप में प्रवाहित होने लगी। यही कारण है कि कुछ उल्लेखनीय अन्तर के बावजूद दोनों परम्पराओं में बहुत ही वैचारिक समानता है। बहुत से लोगों को साकार के उपासक वैष्णवों और निराकार के ध्याता संतों के मत में अन्तर्विरोध दिखाई पड़ता है किन्तु उनकी यह धारणा सर्वथा भ्रान्त है। वस्तुतः संतमत के बीज वैष्णव धर्म में किसी न किसी रूप में बहुत पहले से वर्तमान थे जो परिस्थितियों के प्रसाद से अंकुरित और पल्लवित हुए। जब वे अन्य साधनाओं के छींटे भी इस पर पड़ते रहे जिनके कारण यह अपने मूल से किंचित भिन्न रूप में हमारे सामने आया। इस उपपत्ति की पुष्टि के लिए वैष्णव धर्म में प्राप्त संतमतानुकूल सामान्य तत्त्वों पर विचार कर लेना आवश्यक है।

नामोपासना

निर्गुण संतों की साधना का मूल नामोपासना है। कबीर के अनुसार भव संतरण के लिए 'राम-नाम' एक नौका है। जो इसका आश्रय लेता है वह न तो भव जल से भीगता है और न पाप पंक से पंकिल होता है।[2] वस्तुतः कबीर ने राम नाम को ब्रह्म तत्सार समझ कर मस्तक पर धारण कर रखा है।[3] वैष्णव धर्म में भी नाम

१ (क) हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय (डा० बड़थ्वाल), पृ० ३१
(ख) हिन्दी साहित्य का इतिहास (आचार्य शुक्ल), पृ० ७०

२ कबीर ग्रंथावली, पृ० ७९, १०

३ वही, पृ० ५, ३

साधना पर बल दिया जाता है। 'अध्यात्मरामायण' में भगवान् शंकर के मुख से, कहलवाया गया है कि नाम का उच्चारण करता हुआ कृतार्थ होकर, मैं हमेशा पार्वती के सहित काशी में निवास करता हूँ और यहां पर मरने वालों की मुक्ति के हेतु उनके कानों में राममन्त्र का उपदेश देता हूँ।[1] 'महाभारत' के अनुसार भगवान के नाम में पापनाशिनी शक्ति का जितना बल है उतना शरीर से किये गये पापों का नहीं।[2] वैष्णव मत पर आगम साहित्य का भी पर्याप्त प्रभाव है। वैष्णव सम्प्रदायाचार्य यामुनमुनि आगम को पंचम वेद मानते थे।[3] रामानुज[4] और वेदांतदेशिक[5] ने भी अपने सिद्धान्तों के प्रतिपादन में पांचरात्र संहिताओं की सहायता ली थी। कहना न होगा कि वैष्णव धर्म को प्रभावित करने वाले इस तान्त्रिक साहित्य में भी नाम का महत्व बताया गया है। 'रुद्रयामल तन्त्र' में राम नाम को वेद, यज्ञ, जप, सब कुछ कहा गया है।[6] इसके अनुसार भक्तिपूर्वक राम-नाम का उच्चारण करने से ब्राह्मण, राक्षस, धार्मिक और पापी सबके बंधन छूट जाते हैं।[7] 'नारद पांचरात्र' में कहा गया है कि रकार के उच्चारण से शरीर के पाप बाहर निकल जाते हैं और इसलिए कि कहीं वे फिर न प्रवेश कर जायँ इस पर मकार रूपी कपाट लग जाता है।[8] इस प्रकार हम देखते हैं कि वैष्णव धर्म में नामोपासना का बहुत पहले से प्रचलन रहा है।

---

१ अहं भव नाम गृणन् कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवान्या।
मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मन्त्रं तव राम नाम॥
—अध्यात्म रामायण, युद्ध काण्ड, श्लोक ६२

२ नाप्नोति यावती शक्ति पाप निर्हरणे हरे।
तावत् कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी नरः॥
—महाभारत—शांतिपर्व

३ इण्ट्रोडक्शन टु दी पांचरात्र (श्रेडर), पृ १६

४ वही, पृ० १७

५ वही, पृ० १८

६ राम नाम परो वेदो, राम नाम सदा श्रुतिः।
राम नाम परो यज्ञो राम नाम नाम परो जपः॥
—रुद्रयामल तन्त्र से

७ द्विजो वा राक्षसो वाऽपि पापी वा धार्मिकस्तथा।
राम रामेति यो वक्तया सा मुक्तो भवबन्धनात्॥
—वही

८ रेफोच्चारण मात्रेण वहिर्निर्याति पातकम्।
पुनः प्रवेश संदेहात् मकारश्च कपाटवत्॥
—नारद पाँचरात्र से

भक्तितत्त्व

वैसे तो भक्ति-तत्त्व का अनुसंधान विभिन्न धर्म सम्प्रदायों के साहित्य में किया गया है किन्तु उसका क्रमिक विकास एवं संवर्द्धन मुख्य रूप से वैष्णव धर्म की छत्र छाया में हुआ। वस्तुतः भक्ति वैष्णव धर्म की आधार शिला है, उसका सर्वस्व है। भक्ति के स्वरूप का विश्लेषण करने वाले प्रमुख ग्रंथ-शाण्डिल्य भक्ति सूत्र, 'नारद भक्ति सूत्र', 'श्रीमद्भागवत', 'महाभारत', 'नारद पांच रात्र', 'भक्ति रसामृत सिंधु', 'भक्ति रसायन' आदि सभी वैष्णवों के आप्त ग्रंथ हैं। संतमत प्रवर्तक कबीर ने 'भगति नारदी मगन सरीरा'[1] और 'भगति नारदी हृदय न आई काछि कूछि तन दीना'[2] कहकर इस क्षेत्र में महर्षि नारद का ऋण स्वीकार किया है। अन्यत्र उन्होंने शुकदेव के प्रति अपनी श्रद्धा निवेदित करते हुए प्रकारान्तर से 'श्रीमद्भागवत' की भक्ति-पद्धति को स्वीकृति प्रदान की है।[3] कबीर की 'भाव भगति'[4] 'या प्रेम भगति'[5] जिसमें वे 'हरि सूं गंठजोरा' करते हैं, वस्तुतः निम्बार्क सम्प्रदाय में विहित माधुर्य भाव या कांता भाव, नारदीय भक्ति में स्वीकृत 'कान्तासक्ति' चैतन्य महाप्रभु की 'रागात्मिका भक्ति' रामानन्द की 'पराभक्ति' और वैष्णव धर्म में सामान्य रूप से मान्य 'प्रेमलक्षणा भक्ति' से अभिन्न है।

संत कवि जब 'राम रसायन'[6] या 'हरि रस'[7] का पान करने की बात कहते हैं तब वे जाने अनजाने भक्ति को रस रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। रूप गोस्वामी ने भक्ति रस के दो भेद बताये हैं—(१) मुख्य भक्ति रस (२) गौण भक्ति रस। पुनः उन्होंने मुख्य भक्ति रस के ५ भेद किये हैं—शांत, प्रीति (दास्य), प्रेय (सख्य), वत्सल और मधुर। कहने की आवश्यकता नहीं कि संतों की वाणी में उपयुक्त पाँचों मुख्य भक्ति रसों का विशद बखान प्राप्त होता है। वैष्णव भक्ति के अन्तर्गत स्वीकृत 'नवधा भक्ति' और भक्ति की एकादश आसक्तियां भी संत काव्य में किसी न किसी रूप में देखी जा सकती हैं।

आराध्य का स्वरूप

संतों का आराध्य निर्गुण राम है जिसके लिये हरि, गोपाल, नरहरि, सारंगपाणि जैसे वैष्णव नामाभिधानों का प्रयोग किया गया है। उसके स्वरूप का विश्लेषण करते हुए कबीर ने कहा है कि वह अविगत है। चार वेद, स्मृति, पुराण एवं व्याकरण उसके मर्म को जानने में असमर्थ रहे हैं[8] फिर भी तीन लोक का भार उसके

---

१ कबीर ग्रन्थावली पृ० ३२४ पद १०४। २ वही, पृ० १८३, पद २७८ ३ वही, पृ० ५१, साखी ११। ४ वही, पृ० २४५। ५ वही पृ० ८९, ५। ६ वही, पृ० १६, साखी २। ७ वही, पृ० १६, साखी ४। ८ क० ग्र०, पृ० १०४, पद ४६।

ऊपर है।[1] वह सब मे रमण करता है[2] और सब का 'जियावन हारा भी है।[3] इस प्रकार हम देखते है कि कबीर के राम, प्रकारा तर स सतो के आराध्य, निगु ण और सगुण एक साथ है। यदि उन्होंने 'दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना, राम नाम को मरम है आना[4], जैसी बात कही तो केवल इसलिये कि वे समसामयिक परिस्थितियों को दृष्टि मे रखते हुए मूर्ति पूजा एव अवतार निष्ठा को अनावश्यक मानते थे। वस्तुत सतो ने, कबीर के शब्दो मे 'गुण मे निगु ण निगु ण में गुण, बाट छाडि क्यो बहिए'[5] कह कर निर्गुण और सगुण के झगडे का बडा ही सु दर समाधान प्रस्तुत किया था।

स्मरण रखना चाहिये कि वैष्णव धर्म के सभी ग्र थो मे भगवान के निर्गुण-सगुण दोनो रूपो का वणन समान रूप स मिलता है। 'श्रीमद् भागवत' में कृष्ण सगुण और निगु ण दोनो रूपो मे ग्रहण किये गय हैं क्योकि वे अरूपी होकर भी रूपवान् हैं ब्रह्म होकर भी भक्तो का उद्धार करने के निमित्त भिन्न भिन्न रूप धारण करते हैं।[7] 'पद्मपुराण' मे भगवान् श्रीकृष्ण ने शकर जी से कहा है—"हे शकर जी! मेरे जिस अलौकिक रूप को आज आपने देखा है वह विशुद्ध प्रेम की घनमूर्ति और सच्चिदान द स्वरूप है। उपनिषत्समुदाय मेरे इसी रूप को निराकार, निर्गुण, सर्व यापी, निष्क्रिय और परात्पर ब्रह्म कहते हैं। मुझमे प्रकृतिज य गुणो की सत्ता को असिद्ध मानकर वे मुझको निगु ण कहते हैं और अन त होने से मुझको ईश्वर बताते हैं।[8]

योगतत्त्व

'योग मार्ग के खेत मे भक्ति के बीज पडने से उत्पन्न म त्रा की निर्गुण भक्ति'[9] की ही भाँति वैष्णव साधना भी योगमूलक है। विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय के आचार्यों, के मतानुसार यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधियुक्त अष्टागयोग भक्तियोग का एक अग है।[1] 'महाभारत म शातिपर्व के ३१६वें अध्याय में योग का विस्तृत वणन किया गया है। अनुशासन पव के १४वें अध्याय में अणिमा, महिमा आदि योग की सिद्धिया का चर्चा है। गीता म भी योग का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। 'गीता म योग की व्यापकता का परिचय हम उस

---

१ वही, पृ० १२४, पद ११४। २ वही, पृ० १०५, पद ५२। ३ वही, पृ० १०२, पद ४३। ४ वही, पृ०। ५ वही पृ०। ६ श्रीमद्भागवत, ३/२४/३१। ७ वही, ३/९/११। ८ पद्म पुराण, पृ० ८२/६६ ६७। ९ म यकालीन धर्म साधना डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ६९। १० कल्याण उपासना अक, वष ४२ संख्या १ पृ० २८०।

समय मिलता है जब हम ज्ञान[1] और भक्ति[2] को भी योग की संज्ञा से सुशोभित पाते हैं। यही नहीं, कितने विद्वान् तो गीता को योगशास्त्र भी कहते हैं जिसके प्रमाण मे व इसके प्रत्येक अध्याय के अन्त मे आये हुये 'योगशास्त्रे' शब्द का उल्लेख करते हैं।[3] रामानन्द का प्रसिद्ध 'ध्यान लीला', 'ध्यान तिलक', 'योग चिंतामणि' आदि रचनाएँ भी योग प्रधान हैं। रामानन्द की शिष्य परम्परा मे कृष्णदास पयहारी और कील्हदास की साधना भी योगाश्रित थी।

वर्णव्यवस्था का विरोध

जहाँ तक जाति पाँति के विरोध का प्रश्न है वैष्णव धर्म निर्गुण सन्तों की भाँति वर्णव्यवस्था के विकृत रूप का विरोधी रहा है। 'महाभारत' मे स्वभावानुसार शुभ कर्म करने वाले शूद्रो को द्विजो से श्रेष्ठ बताया गया है।[4] 'भागवत' मे अभक्त ब्राह्मण की अपेक्षा भक्त चाण्डाल को उत्तम कहा गया है।[5] 'भविष्य पुराण' मे चारों वर्णों को एक ही पिता की सतान मान कर जातियो का स्पष्ट प्रत्याख्यान किया गया है।[6]

---

१ मा च यो ऽव्यभिचारेण भक्ति योगेन सेवते।

—गीता १४।२६

२ ज्ञानयोगेन साङ्ख्याना कर्म योगेन योगिनाम्।

—वही ३।३

३ इति श्री महाभारत शत सहस्रया संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्री कृष्णार्जुन सम्वादे योगोनाम् अध्याय।

४ स्वभाव कर्म च शुभ यत्र शूद्रोऽपि तिष्ठति।
विशिष्ट सद्विजातेर्वै विज्ञेय इति मे मति॥
न योनिर्नापि सस्कारो न श्रुत न च सन्तति।
कारणानि द्विजत्वस्य वृत्त मेव तुकारणम्॥

—महाभारत, अनुशासन पर्व, १४३।४९, ५०

५ विप्राद्विष गुण युतादर विन्दनाभ-
पदारविन्द विमुखाच्छ्वपच वरिष्ठम्।
मन्ये तदर्पित मनो वचने हितार्थ-
प्राण पुनाति सकुल न तु भूरिमान॥

—श्री मद्भागवत ७।९।१०

६ चत्वार एकस्य पितु सुताश्च तेषा सुताना खलु जातिरेका।
एव प्रजाना हि पितैक एव पित्रैक भावान्न च जातिभेद॥

—भविष्य पुराण

यही नहीं, वैष्णव सन्त व्यावहारिक जीवन में भी जाति पाँति का भेद-भाव नहीं रखते थे। आलवारों में सर्व प्रसिद्ध नम्मालवार (शठकोपाचार्य) शूद्रवंशी थे।[1] तिरुमंगै आलवार भी जाति के हीन और प्रारम्भिक अवस्था में दस्यु वृत्ति से जीवन-यापन करते थे।[2] श्री रामानुजाचार्य ने जातिवाद के बन्धनों को ढीला कर शूद्रों को अपने सम्प्रदाय में प्रवेश करने की स्वतन्त्रता दी थी।[3] 'जाति-पाँति पूछै नहिं कोइ, हरि को भजै सो हरि का होई' का सिद्धान्त प्रवर्तित करने वाले रामानन्द के सम्बन्ध में कहना ही क्या ? उनके लोकविश्रुत शिष्य कबीर, रैदास, धना और सेना नीच जाति में ही उत्पन्न हुये थे। इनकी साखियाँ और पद ही सन्त मत में वेद वाक्य बन गये।

बाह्याडंबर की निंदा

बाह्याडंबर की आलोचना निर्गुण भक्तों की प्रमुख विशेषता मानी जाती है। यह प्रवृत्ति वैष्णव भक्ति साधना के लिए कोई नई बात नहीं थी। 'गरुड़ पुराण' में वेद, यज्ञ, आडंबर आदि में लिप्त कर्मकाण्डियों की कटु आलोचना की गई है।[4] व्रत उपवास आदि के द्वारा काया को कष्ट देने वाले को मूढ़ कहा गया है[5] और बाह्याचारों की तो इतनी कटु निंदा की गई है कि उसके समक्ष कबीर की आलोचना भी फीकी पड़ जाती है —

> जटाभाराजिनयुक्ता दाम्भिका वेषधारिणः ।
> भ्रमन्ति ज्ञानिवल्लोके भ्रामयन्ति जनानपि ॥
> संसारजसुखासक्तं ब्रह्मज्ञोऽस्मीति वादिनम् ।
> कर्मब्रह्मोभयभ्रष्टं तं त्यजेदन्त्यजं यथा ॥
> तृणपर्णोदकाहारा सततं वनवासिनः ।
> जम्बुकाश्च मृगाद्याश्च तापसास्ते भवन्ति किम् ॥

---

१ हिम्स आफ दी आलवार्स।
—जे० एस० एम० हूपर, पृ० १२

२ वही, पृ० १६।

३ Influence of Islam on Indian Culture, P 102

४ नाम मात्रेण संतुष्टाः कर्मकाण्डरता नराः ।
मंत्रोच्चारण होमाद्यैः भ्रामिता क्रतुविस्तरैः ॥
—गरुडपुराण उत्तर खंड, द्वितीय धर्म खंड, ४९।६०

५ देह दण्डन मात्रेण का मुक्तिरविवेकिनाम् ।
वाल्मीक ताडनादेव मृतः किन्नुमहोरगः ॥
—वही, ४९।६२।

आजन्म मरणान्तं च गङ्गादितटिनी स्थिताः ।
मण्डूकमत्स्य प्रमुखा योगिनस्ते भवन्ति किम् ।।
पारावताः शिलाहारा कदाचिदपि चातकाः ।
न पिबन्ति महीतोयं व्रतिनस्ते भवन्ति किम् ।।[1]

पुस्तक ज्ञान की असारता

वैष्णव सम्प्रदाय में संत मत की भांति पुस्तक ज्ञान को असार माना गया है। 'गरुण पुराण' में कहा गया है कि परमार्थ तत्त्व को बिना जाने केवल वेदशास्त्रादि पढ़कर ज्ञान की बात करने वालों का कथन काकभाषित से अधिक सारगर्भित नहीं है। जिस प्रकार पुष्प के भार को वहन करने वाला शिर उसकी गंध को नहीं जान पाता और नासिका को उसकी अनुभूति हो जाती है उसी प्रकार केवल वेदशास्त्रादि का अध्ययन करने वाले को भाव का बोध नहीं होता। उसका सम्यक बोध अनुभवी व्यक्ति को ही होता है। यही नहीं बल्कि यहाँ तक कहा गया है कि जिस प्रकार बकरे को बगल में दबाकर दुर्मति उसको कुएँ में खोज करता है उसी प्रकार हृदय में ही स्थित परमार्थ तत्त्व को न जानकर मूढ़ शास्त्रों में ढूँढते फिरते हैं।[2]

सहज

संत मत को सामान्यतया सभी विद्वानों ने 'सहज' तत्व के लिए सहजयानी बौद्ध सिद्धों और नाथ पंथी योगियों का ऋणी माना है। यह सच है कि सहज साधना की सर्वाधिक चर्चा सिद्धों और नाथ योगियों की रचनाओं में हुई है किन्तु यह कहना सर्वांश में सत्य नहीं प्रतीत होता कि संतों का 'सहज' सीधे सिद्धों और योगियों से ही गृहीत है क्योंकि 'सहज' तत्व का प्रादुर्भाव वस्तुतः युग जीवन की महती आवश्यकता के फलस्वरूप हुआ था। जब विभिन्न मत पंथों में आचार विचारगत जटिलता के कारण साधना गौण और वाह्याचार प्रमुख स्थान ग्रहण करता जा रहा था-तब-जन — मानस को सहज की आवश्यकता का अनुभव हुआ था। यही कारण है कि जीवन के

१ गरुणपुराण—उत्तर खंड, द्वितीय धर्म खंड, ४९।६३-६९।
२ वेदागम पुराणज्ञः परमार्थम् न वेत्ति यः ।
विडम्बकस्य तस्यैव तत्सर्वम् काक भाषितम् ।।
शिरो वहतिपुष्पाणि गंध जानातिनासिका ।
पठंति वद शास्त्राणि दुर्लभोभाव बोधकः ।।
गोरः कक्षा गत छागे कूपे पश्यति दुर्मतिः ।
तत्त्वमात्मस्थमनात्वा मूढ़ः शास्त्रेषु मुह्यति ।।
—गरुण पुराण, उत्तर खंड, द्वितीय धर्म खंड, ४९/७३, ७९, ८०

विविध क्षेत्रों में इसका इतना व्यापक प्रचार हुआ कि सहज साधना, सहज योग, सहज समाधि, सहज ज्ञान, सहज धुनि, सहज सुख, सहज शून्य, सहज पद, सहजावस्था सहज भाव, सहजशील जैसे अनेक शब्द प्रचलित हो गये। कहना न होगा, सन्तमत के उदय से बहुत पहले वैष्णव धर्म में भी 'सहज' का समावेश हो गया था। इसका सबसे बड़ा प्रमाण इसी नाम से प्रचलित वैष्णव सहजिया सम्प्रदाय है जहाँ बौद्ध सहजिया लोगों के 'प्रज्ञा' और 'उपाय' के युगनद्ध की भाँति 'राधा' और 'कृष्ण' के नित्य प्रेम की कल्पना की गयी है। विद्वानों ने निंबार्क सम्प्रदाय के अनुयायी जयदेव के 'गीत गोविन्द' में वर्णित राधा और कृष्ण की रहस्यमयी केलियों में भी सहजयानियों के 'प्रज्ञा' और 'उपाय' की अद्वय दशा को देखा है।[1] वारकरी सम्प्रदाय के 'अभगों' में भी सहज तत्व को रेखांकित किया जा सकता है। नामदेव की रचनाओं में प्राप्त सन्तमतानुकूल तत्वों के आधार पर कतिपय विद्वान् उन्हें सन्तमत का प्रवर्तक मानने के पक्षधर हैं।[2] ज्ञातव्य है कि कबीर आदि सन्त कवियों ने जयदेव और नामदेव के प्रति विशेष श्रद्धा निवेदित की है।[3] वैष्णवों का सान्निध्य रहना से भी 'सहज' तत्व ध्वनित होता है जिसका प्रभाव सन्तों पर विशेष रूप से दिखाई पड़ता है।

मध्यम मार्ग

सच्चा सन्त मध्य-मार्ग का पथिक होता है। वह जीवन के अतिवादों—पक्षापक्षी—से ऊपर उठकर सर्वथा वैषम्य में रत रहता है। सन्तों में मध्यम मार्ग के प्रति गहरी आस्था दिखाई पड़ती है। 'मधि' को अंग उनकी अनुभववाणी का महत्वपूर्ण भाग है। इसके लिए भी विद्वानों ने सन्तों को बौद्धों और नाथ पंथियों का ऋणी माना है। प्रस्तुत लेखक की धारणा है कि मध्यम मार्ग किसी न किसी रूप में वैष्णव धर्मान्तर्गत स्वीकृत रहा है। वैष्णवों की भक्ति वस्तुतः मध्य मार्गी है जिसके विषय में यह कहा जाता है कि विषयासक्ति शून्य त्यागी पुरुषों के लिये ज्ञान योग का, सकाम मनुष्यों के लिए कर्म योग का उपदेश दिया गया है और जो पुरुष न तो अधिक वैराग्यवान हैं और न अधिक विषयासक्त हैं उनके लिए भक्तियोग का विधान किया गया है—

निर्विण्णानां ज्ञानयोगो न्यासिनामिह कर्मसु
तेष्वनिर्विण्णचित्तानां कर्मयोगस्तु कामिनाम्
न निर्विण्णो नातिसक्तो भक्तियोगोऽस्य सिद्धिदः[4]

---

१ उत्तरी भारत की सन्त परम्परा—प० परशुराम चतुर्वेदी पृ० ९७

२ द्रष्टव्य—हिन्दी को मराठी सन्तों की देन—डा० विनय मोहन शर्मा, पृ० १२६—१२७

३ गुरु परसादी जयदेव नामा, भगति कै प्रेम इन्हीं है जाना।
—क० ग्र०, पृ० ३२८ पद २०८

४ श्रीमद्भागवत, एकादश स्कंध

'गीता' के तत्ववाद का विवेचन करते हुए आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने भी सांकेतिक रूप से यह स्वीकार किया है कि गीता की रचना के समय दो प्रकार की साधनाएँ प्रधान रूप से प्रचलित थीं जिनमें एक ज्ञानयोग और दूसरा कर्मयोग था। इनमे से प्रथम का रूप मुख्यतः आत्मोपासना का था और दूसरे का कर्मोपासना का। ये दोनो साधनाएं क्रमशः निवृत्ति मार्ग और प्रवृत्तिमार्ग कहलाती थी। श्रीकृष्ण ने इन दोनो को मर्यादित कर भक्तियोग के रूप मे मध्य-मार्ग को प्रशस्त किया।[१] वैष्णव भक्त तुलसीदास जब 'घर बन बीच ही' 'प्रेमपुर' छाने की बात कहते हैं तब व भी मध्यम मार्ग का वरण कहते हैं।[२] यही नहीं लोक जीवन मे 'न अति यौवन, न अति धूप। न अति वर्षा न अति धूप' की उक्ति प्रचलित है जिससे मध्यम मार्ग की पुष्टि होती है।

अन्तमु खी साधना

सन्त साधना पूर्णतः अन्तमु खी है। वैष्णवो की साधना अपने मूल रूप में वहिर्मुखी है, किन्तु परवर्ती वैष्णव मत के स्वरूप विश्लेषण से यह विदित होता है कि मध्ययुगीन सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियो के प्रभाव से यह धीरे धीरे अन्तर्मु खी हो चली थी। रामानन्द की मानसी सेवा जिसमे शब्द के शालिग्राम, तन के तुलसी, आत्मा के चन्दन, नाम के जनेऊ, ध्यान की धोती, शुचिता के अचला, काया के कुंभ, प्रेम के पानी, दया आचार विवेक के चौका तथा इच्छा के पुहुप की चर्चा की गयी है, अन्तमु खी साधना की स्पष्ट परिचायिका है।[३] रामानन्द का अलख पुरुष त्रिकुटी के मन्दिर मे विराजमान रहता है जिस पर हर समय पलको की चिक पडा

---

१ देखिये उत्तरी भारत की सत परम्परा, पृ० २२

२ तुलसी ग्रथावली, (२००४) (दोहावली, छ० २५६) पृ० १०५

३ शालिग्राम शब्द कर सेऊ तन तुलसी कर लीजे।
आतम चन्दन घसि घसि चरचू इस विधि सेवा कीजे॥
नाम जनेऊ ध्यान धोवटी सूचिया अचला कीजे।
काया कुभ प्रेम का पानी हरि दरिया भरि लीजे॥
दया आचार विवेक सुचौका उर अस्नान करीजे।
इच्छा पुहप चढाऊँ पूजा मानस सेवा कीजे।
—रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ, पृ० २७

रहती है।[1] इस मन्दिर में अनहद का घण्टा बजा करता है।[2] साधक हृदय की पुस्तक के आधार पर अनुभव की कथा कहता रहता है[3] और अपने आराध्य को चित का चवर[4] डुलाया करता है। उनके मत से बाहर की सभी चीजें भ्रम स्वरूप है। ये तथ्य उनकी अन्तर्मुखी प्रवृत्ति के द्योतक है।

इस प्रकार हम देखते है कि वैष्णव धर्म और सन्त मत के सामान्य तत्त्व प्रायः एक ही है। दोनों में उल्लेखनीय अन्तर यह है कि प्रथम अवतारवाद की उपासना का विधान करता है और दूसरा उसका खुलकर विरोध। एक कर्म-मार्ग का पथिक है दूसरा कर्म को बंधन स्वरूप बताकर उससे दूर रहने की शिक्षा देता है। एक वर्णाश्रम धर्म को 'जन्मना' मानता है किन्तु दूसरा 'कर्मणा' का हिमायती है। इन परस्पर विरोधी तत्त्वों के विकास सूत्रों के अध्ययन से विदित होता है कि मूल स्रोत की एकता होते हुए भी निर्गुण एवं सगुण भक्ति को एक दूसरे का प्रतिस्पर्धी बनाने में सदियों की सामाजिक व्यवस्था एवं तत्कालीन धार्मिक परिस्थिति ही उत्तरदायी थी।

सन्तमत की सामाजिक पृष्ठभूमि

आचार्य शुक्ल की धारणा है कि मध्ययुगीन धार्मिक आन्दोलन का सूत्रपात मुसलमानों के आक्रमण और हिन्दू जाति की पराजयजन्य उदासी से हुआ था।[5] यह बात असत्य न होते हुए भी सर्वांश में सत्य नहीं है क्योंकि मुसलमानों के आक्रमण एवम् उनके राज्य सत्ता अधिकृत करने के बहुत पूर्व ही इस आन्दोलन की पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी थी। मुसलमानों का आना तो एक कारण मात्र बना। इसीलिए डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि अगर इस्लाम नहीं भी आया होता तो भी इस साहित्य का बारह आना वैसा ही होता जैसा आज है।[6] वस्तुतः मुसलमानों के आक्रमण का प्रभाव हिन्दू राजाओं महाराजाओं, सामन्तों और पंडितों के जीवन पर ही अधिक

१ त्रिकुटी मंदिर बैठा साधो यहाँ जाय दर्शन काजे।
  चश्मा माहि बिन टलकाऊँ धीरज बैठा रीजे॥
  —वही, पृ० २८

२ अनहद घण्टा झालर बाजे।
  —वही, पृ० २८

३ हिरदा पुस्तक कीजे, अनुभव कथा कहूँ भाई।
  —वही, पृ० ७२

४ चित की चवरी कीजे।
  —वही, पृ० २८

५ द्रष्टव्य हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६०

६ हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० २

पड़ा था। ऐसी स्थिति में सम्पूर्ण हिन्दू समाज के हृदय से गौरव, गर्व और उत्साह उठने का कोई प्रश्न नहीं था। सामान्य जनता तो हृदय पर पाषाण रखकर युगों से शोषण की चक्की में पिस रही थी। उसके हृदय में कहाँ उत्साह था, कहाँ गर्व था और कहाँ थी गौरव की भावना कि जो मुसलमानों के आतंक में उठती?

मुस्लिम आक्रमण के पूर्व भारत वर्ष में अपार सम्पत्ति थी। विदेशी इस सोने की चिड़िया कहते थे। शिल्प और व्यापार अत्यन्त समृद्ध था। कहा जाता है कि अकेला रोम अपने यहाँ से हर साल ढाई लाख तोला सोना या साढ़े पाँच लाख सस्तस (पौने दो करोड़ रुपये), कपड़े और दूसरी चीजों को खरीदने के लिये भारत भेजा करता था।[१] किन्तु इस रुपये को वैभव और विलासिता की वस्तुओं के लिए पानी की भाँति बहाया जाता था। प्रजा की मिहनत की कमाई से उपार्जित ये महार्घ वस्तुयें चार-पाँच दिनों में ही खतम हो जाने वाली थीं। इनके अतिरिक्त भी सामन्तों के भारी खर्चे थे—नये नये राजमहल, क्रीड़ा उपवन, सिंहासन राजपलंग, मोर छल, चमर और लाखों के हीरा, मोती, बहुमूल्य रत्नाभूषण, राजमहलों की सजावट, चित्र-कला, क्रीडामृग, सोने के पींजड़े में बन्द शुक सारिका, लोहे के पींजड़े में बन्द कसरा।'[२]

कृषक और मजदूर शोषण की ज्वाला में जल रहे थे। उनका न तो कोई सम्मान था और न ही कोई उनके दुःख-सुख का साथी। 'स्वयम्भू और पुष्पदन्त के खेत अगोरने वालियों के गाने गन्ने और द्राक्षालताओं को देखकर आप यह न समझने की गलती करें कि वह उन्हीं अगोरनेवालियों के उपभोग के लिए थी।'[३] उन्हें तो रूखे-सूखे भोजन और कभी कभी पानी पर ही सन्तोष कर लेना पड़ता था।

तत्कालीन समाज में वर्ण व्यवस्था का इतना भीषण रूप प्रचलित था कि शूद्रों के साथ पशुवत व्यवहार किया जाता था। उन्हें रणक्षेत्र में जाकर देश के लिए मरने का भी अधिकार नहीं था। ब्राह्मणों की व्यवस्था इतनी क्रूर हो गयी थी कि कहीं-कहीं शूद्रों को नगरों की सड़कों पर चलना भी वर्जित था। सड़कों पर चलते समय थूकने के लिए उन्हें अपने साथ पुरवा रखना पड़ता था। मन्दिर में उन्हें नहीं जाने दिया जाता था। निम्न जात्योत्पन्न होने के कारण ही नामदेव को मन्दिर से बाहर निकाल दिया गया था।[४]

१ हिन्दी काव्य धारा (राहुल सांकृत्यायन), भूमिका, पृ० १३-१४
२ हिन्दी काव्य धारा—भूमिका, पृ० १५
३ वही, पृ० १८
४ हसत खेलत तेरे दुहुरे आया, भक्ति करत नामा पकरिउठाया।
हीनड़ी जाति मोरी जादम राइया छीपे को जनमि काहे को पाइया॥
—हिन्दी को मराठी सतों की देन (२००४) पृ० १०२स उद्धृत

मुसलमानों के कारण उत्पन्न सांस्कृतिक संकट

ऐसे ही समय में, देश में मुसलमानों का आगमन हुआ। एक हाथ में तलवार और दूसरे में कुरान लेकर ये यवन शीघ्र ही देश में फैल गये। उनकी नीति से आतंकित होकर हिन्दू समाज ने आत्मरक्षा के लिए धार्मिक नियमों को कसना आरम्भ किया। परिणामस्वरूप जाति-प्रथा का और भी भीषण रूप हमारे सामने आया और सम्पूर्ण समाज छूत के भय और वर्णसंकरता की आशंका से ग्रस्त हो गया। दूसरी ओर यवन समाज प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक जाति को अपने अन्दर समान आदर देने की प्रतिज्ञा कर चुका था। इस्लाम में भेद-भाव नहीं था। वह राजा से रंक और ब्राह्मण से चाण्डाल तक सबको धर्मोपासना का समान अधिकार देने को राजी था। समाज का दलित व्यक्ति अब असहाय न था। इच्छा करते ही वह एक सुसंगठित समाज का सहारा पा सकता था।[1] इन्हीं के परिणामस्वरूप वेद-बाह्य कहे जाने वाले अनेक धार्मिक सम्प्रदायों और बहुत से उपेक्षित शूद्रों ने इस्लाम की शरण ली। पूर्वी बंगाल के वेद-बाह्य सम्प्रदायों के ध्वंसावशेष कई धार्मिक सम्प्रदाय ऐसे थे जिन्होंने मुसलमानों को अपना त्राणकर्ता समझा था। वे सामूहिक रूप से मुसलमान हो गये। पंजाब में भी नाथों, निरंजनियों और पाशुपतों की अनेक शाखायें मुसलमान हो गयीं।[2] इस प्रकार देश के सम्मुख एक अभूतपूर्व सांस्कृतिक समस्या आकर खड़ी हो गयी और सब आश्चर्यचकित होकर देखते रह गये।

रामानन्द का आविर्भाव और भक्ति-आन्दोलन में नव चेतना

इस विषम परिस्थिति से देश की संस्कृति को उबारने के लिए आवश्यक था कि धर्म को संकीर्णता से ऊपर उठाया जाय। जाति-भेद को समाप्त कर ऊँच-नीच सबको समान सामाजिक, धार्मिक अधिकार प्रदान किये जायँ और विविध धार्मिक सम्प्रदायों के समन्वय के आधार पर एक व्यापक मानव धर्म की प्रतिष्ठा की जाय। समय की इसी माँग ने स्वामी रामानन्द जैसे धार्मिक नेता को जन्म दिया। रामानन्द ने साम्प्रदायिक बाह्याचार और संकीर्ण मनोवृत्ति का परित्याग करके एक नये सम्प्रदाय की स्थापना की तथा हिन्दू मुसलमान, ऊँच-नीच सबको समान स्थान दिया। उन्होंने आचारमूलक उपासना के आधार पर सहज भाव से भगवद्भजन करने पर बल दिया। उनके शिष्यों में उच्चकुलोद्भव अनन्तानन्द और पीपा-ब्राह्मण क्षत्रियों के साथ ही कबीर, रैदास, धन्ना और सेना जैसे नीच कही जाने वाली जातियों में उत्पन्न साधक भी थे।

---

१ मध्यकालीन धर्मसाधना, पृ० ९९
२ वही, पृ० १८

निर्गुण और सगुण भक्ति की दो धारायें

रामानन्द की इस धार्मिक नीति का यदि सहज ढंग से विकास हुआ होता तो आज भक्ति आन्दोलन का एक दूसरा ही रूप हमारे सम्मुख होता जो इस निर्गुण-सगुण धारा से बहुत ही भिन्न होता। किन्तु दुर्भाग्य से ऐसा न हो सका। प्रतिक्रियावाद ने भक्ति आन्दोलन की दिशा ही बदल दी। कबीर आदि समाज के निचले स्तर से आये हुये सन्तो को, ज्यों ही अपनी भावनाओं को व्यक्त करने की स्वतन्त्रता मिली, उनका सोया हुआ ज्वालामुखी जाग उठा, उनका विद्रोह मूलक भावनायें, जो साम तो और धर्माचार्यों के भय से भीतर ही भीतर दबी हुई थी, बड़े वेग के साथ 'तू कत बामन हम कत सूद' की चुनौती देते हुये निर्गुण धारा के रूप में फूट निकली। उन्होंने पूजा अर्चा, मन्दिर-मूर्ति, तीर्थ व्रत माला तिलक सब पर कुठाराघात किया। उनकी बातें सत्य और स्वाभाविक तो थी किन्तु इन उद्गारों के मूल में प्रतिक्रिया का बहुत बड़ा योग था। अन्त रामानन्द के निम्नकुलोत्पन्न शिष्यों की आक्षेपमूलक और कटु वाणी का तीव्र सोद्विरोध जिसके फलस्वरूप समाज के उच्च स्तर से आये हुये महात्माओं को उनकी एक-एक बात का समुचित उत्तर देना पड़ा और एक पृथक संगठन स्थापित करना पड़ा। यही से भक्ति की दो धारायें बह चली। प्रथम ने समाज में प्रचलित समस्त धार्मिक आचार विचार व्रत उपवास और कथ-नाच की मर्यादा को तुकरा दिया तथा दूसरे ने सब कुछ अपना लिया। ब्रह्म के निर्गुण-निराकार और सगुण साकार स्वरूपों में भी प्रथम ने निर्गुण-निराकार को और द्वितीय ने सगुण साकार को अपनाया। इससे पूर्व ब्रह्म के साकार और निराकार रूप को लेकर इस प्रकार का मतभेद कभी नही हुआ था।

सगुणोपासक भक्तो का निर्गुण साधना की ओर झुकाव

ब्रह्म के सगुण-साकार और निर्गुण निराकार स्वरूप के आधार पर भक्ति की दो धारायें तो प्रवहमान हो गयी और उनमें परस्पर घोर विरोध भी रहा किन्तु युग की माग को समझ कर सगुणोपासक भक्त निर्गुणिया सन्तो का विरोध करते हुये भी उनकी साधना के आवश्यक एवं उपयोगी तत्वों को समय-समय पर ग्रहण करते रहे। कभी-कभी समाज पर प्रभाव स्थापित करने के मोह से भी कुछ तत्वों का समावेश हुआ। आगामी पृष्ठों मे सगुण साकारोपासना पर सन्तमत के प्रभाव की संक्षिप्त विवेचना की जायगी।

अनन्तानन्द

अनन्तानन्द रामानन्द के द्वादश शिष्यों में से थे। इनकी कोई रचना नही प्राप्त होती। अभी तक जो कुछ इनके सम्बन्ध में ज्ञात हो सका है उसका श्रेय भक्त माल साहित्य को है। दयालुनाम कृत भक्तमाल में इनके सम्बन्ध में एक छप्पय प्राप्त

है जिससे प्रकट होता है कि ये नाममार्गी साधक थे और इन्होंने नामोपासना के जल से कर्म मल को धोकर शब्द-ब्रह्म को प्राप्त किया था[१]। स्मरण रखना चाहिए कि नामाश्रित नामोपासना और शब्द-ब्रह्म की साधना संतमत का सर्वस्व है।

श्री कृष्णदास पयहारी

कृष्णदास पयहारी अनन्तानन्द के सर्वश्रेष्ठ शिष्य और रामानन्द के प्रशिष्य थे। गलता में गद्दी स्थापित करके पयहारी जी ने उत्तरी भारत में राम-भक्ति का गढ़ स्थापित कर दिया। योगियों और रामानन्दी महात्माओं के समाज पर प्रभुत्व स्थापित करने की होड़ में, हठयोगियों को परास्त करके, पयहारी जी ने गद्दी स्थापित करके जनता के हृदय में योग साधना और सिद्धि के प्रति जमी हुई आस्था पर विजय प्राप्त की और अपनी साधना में योग तत्व का समावेश कर लोक-मानस में निर्गुणाश्रित सगुण भक्ति की प्रतिष्ठा की।[२] अभी हाल ही में प्राप्त इनका 'राजयोग' नामक कृति से यह प्रमाणित हो गया है कि वे सांख्ययोग प्रणाली के प्रचारक थे। 'राजयोग' की पुष्पिका में स्पष्ट शब्दों में लिखा गया है—

कृष्णदास कुल कील मत, सांख्य ध्यान सियराम।
श्री गुरु कामद राम निधि, राम बीज रट नाम॥

यही नहीं वरन् इस ग्रन्थ में अग्रदास को उपदिष्ट साधना प्रणाली से भी इसी बात का समर्थन होता है—

प्राणहि अपान दृढ़ गांथि डोरि, कु डलनि आव सम युक्ति जोरि।
तब चलत पवन जहँ ब्रह्म रंध्र, तहँ छोड़ि जाहि सब त्रिगुण बन्ध॥
उलटे सुष्मा पिंगला नारि, सुषमना शुद्ध लीजे विचारि।
पहुँचे सु जावै अनहद गेह राखे सु एक हरि सों सनेह॥[३]

---

१ रामानन्द परसाद गुर अनन्तानन्द आनन्द घन
धारा ध्यान अषड अषम सिष उर हरियाली
ने पै भगत अगार भोम पर ब्रह्म समाली
राम नाम जल विमल जाल गुर करम जुहाया
अनुभव उगे अंकूर सबद ब्रह्म सरवर पाया
जियाध पदम बिगसत सदा भाव सुगन्ध सरमाय मन
रामानन्द परसाद गुर अनन्तानन्द आनन्द घन॥
—भक्तमाल (दयालुराम), छन्द २२३

२ द्रष्टव्य भारतीय साहित्य, वर्ष ५, अंक २ ३, पृ० ३५-४३ पर मुद्रित डा० भगवतीप्रसाद सिंह का 'श्री कृष्णदास पयहारी' शीर्षक लेख।

३ राजयोग—श्री कृष्णदास पयहारी, छन्द ५-८।

कहने की आवश्यकता नहीं कि योगाश्रित साधना का यह स्वरूप निर्गुणिया ा तो के बहुत अनुकूल है।

कील्हदास

पयहारी जी और उनके शिष्यों प्रशिष्यो के सम्बन्ध म प्रचलित अनेक कथाओ स उनकी योग-साधना म असाधारण आस्था एव गति का पता चलता है। रामोपासना के अन्तगत यह प्रवृत्ति निरन्तर बढती गई। आगे चलकर उसने एक पृथक् साधना-प्रणाली का रूप धारण कर लिया और तपसी शाखा के नाम स अभिहित का जाने लगा। इसके प्रवतक थे पयहारी श्रीकृष्णदास और साम्प्रदायिक सगठनकर्ता थे उनके उत्तराधिकारी गलता गद्दी के द्वितीय आचार्य कील्हदास।[1] कील्हदास की कोई कृति अभी तक नहीं प्राप्त हुई है। अत इनके सिद्धान्तो का निरूपण करते समय हमे उनके अनुयायियो और नाभादास आदि द्वारा प्रस्तुत तथ्यों पर ही निभर रहना पड़ता है। कील्हदास जी योग साधना मे बहुत ही प्रवीण थे। कहते हैं कि एक बार इनकी योग सिद्धि की परीक्षा लेने के लिय तत्कालीन देशाधिपति ने मथुरा-प्रवास के समय इनके सिर पर लोहे की कील ठुकवा दी थी फिर भी इनकी समाधि नहीं टूटी।[२]

अग्रदास

अग्रदास जी श्रीकृष्णदास पयहारी के शिष्य थे। यद्यपि व सगुण साकार क उपासक थे, फिर भी इनकी साधना पर परम्परागत योग साधना का पर्याप्त प्रभाव लक्षित होता है। उनकी 'ध्यानमञ्जरी' नामक रचना स 'राजयोग' म प्रतिपादित सिद्धान्तों का सीधा सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। अपने ध्यान योग को गुरु-अनुग्रह कहकर उन्होंने प्रकारान्तर इसी बात की पुष्टि की है—

श्री गुरु सत अनुग्रह ते अब गोपुरवासी।
रसिक जनन हित करन रहसि यह ताहि प्रकासी॥

---

१ भारतीय साहित्य—वष ५, अक २-३, पृ० ३९ (डा० भगवती प्रसाद सिंह का 'श्रीकृष्णदास पयहारी' शीर्षक लेख।)

१ (अ) कील कील सिर दई नृपति तऊहूँ नहिं जागे।
प्रबल समाधी रसिक रामसिय छवि अनुरागे॥
—रसिक प्रकाश भक्तमाल, पृ० १४

(ब) एक सम सहज सुभाय मधुपुरी आये यमुना सतीर हाइ बैठे सुचि तीर मे।
श्यामल स्वरूप रघुनन्दन को हिय आयो अचल समाधि लागी सन्तन की भीर मे॥
देश दुनी पति पात्साह सुनि कौतुक ज्यों, पवन को आयो नहि जाने पर पीर म।
कील शिर दई कछू वेदना न भई रही अचल समाधि जैसी लगी रघुबीर मे॥
—वही, पृ० १५

ध्यान मजरी नाम सुनत मन मोद बढावै।
श्री रघुवर को ध्यान मुदित मन अग्र सो गावै ॥[१]

सतदास

सन्तदास का प्रादुर्भाव अग्रदास की पाँचवी पीढी मे हुआ था। ये रामचरण के दादा गुरु और दरिया साहब के प्रदादा गुरु थे। इनके वाणी साहित्य के अनुसीलन से विदित होता है कि इनकी साधना का स्वरूप ठीक वही है जो अन्य निर्गुणिया भक्तों की साधना का। इनकी कृतियों में अभिव्यक्त मूर्ति-पूजा[२], वाह्याचार[३], अगम देश,[४] अवतारवाद और अलख पुरुष[५] सम्बन्धी विचारों के आधार पर हम जोरदार शब्दों में कह सकते हैं कि महात्मा सन्तदास विशुद्ध रूप से निर्गुणोपासक सन्त थे।

१ ध्यान मजरी (अग्रदास), छन्द ७९-८०

२ बोहोता देख्या सतदास, आंधा लोक अजाण।
सेवा करत नहि साधु की पूजत है पाषाण ॥
—अणभै वाणी (सन्तदास), पृ० ४४

३ (अ) कठी तिलक बणाइ कर भजे न राम अलेख।
ताकू कहिए सन्तदास निपट कपट का भेख ॥— वही, पृ० ४५
(ब) पहर्या जामा पागडी डाढ़ी मूँछ मुडाय।
जाणक दावू सतदास आये गगा न्हाय ॥ —वही, पृ० ४६

४ अगम देश जहाँ अस्थाना जहाँ नहीं धरती असमाना।
जहँ नहि चन्द जहाँ नहि सूरा जहँ इक पुरुष रहत है पूरा॥ —वही, पृ० ९१

५ अवतारा के मिलण की कहिए झूठी आस।
सुपने सपत पाय कर बिसन किया विलास ॥ —वही, पृ० ५४

६ सन्तो सतगुरु भेद बताया, ताते राम निकट ही पाया।
तप तीरथ कबहूँ नहि कीन्हा, पढ्या न वेद पुराना ॥
जतसत दोऊ अजब कहत हैं सो सुपने नहि जाणा।
मूनी रह्या न दूधाधारी मकर मास नहि न्हाया ॥
सूर सती सू एक राम बिन सो कबहूँ नहि ध्याया ॥
कासी गया न करवत लीन्हा न गल्या हिमाला माहीं।
जन्त्र-मन्त्र अरु नाटक चेटक सो भी सीख्या नाहीं ॥
सजम किया न रैण नहि जाग्या करी न सेवा-पूजा ॥
ना बुध गाया न श्रृग बजाया मरम न जाण्या दूजा ॥
राम नाम का अखड ध्यान धर अतर प्रेम जगाया।
सन्तदास चढ़ि सुन्न सिखर पर इस विधि अलख लखाया ॥ —वही, पृ० ६१

प्रेमदास

दरिया साहब के गुरु प्रेमदास की जो कुछ साखियाँ और आरती के पद प्राप्त हैं उनसे उनकी निर्गुणोपासना पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। आरती के एक पद में उन्होंने सुरत-शब्द के मिलन और सर्वव्यापी निरंजन राम को घट के भीतर देखने की चर्चा की है—

ऐसी आरती कर मन मेरा, जनम मरन के मिटै फेरा।
सुरत शब्द मिल हृदय आया, रोम रोम सब ही चेताया।
राम निरंजन चहुँ दिस देखा, अंतर माही साहब पेखा।
अगम आरती वार न पारा, जन प्रेम दास भज सिरजनहारा।।[1]

इनकी वाणी में खेचरी, भूचरी आदि हठयोग की पंच मुद्राओं,[2] अनहदनाद[3], अष्ट कमलदल चक्र[4] और त्रिकुटी[5] का विस्तृत वर्णन किया गया है जिससे उनकी योगाश्रित निर्गुण साधना और भी पुष्ट हो जाती है। निर्गुणिया संतों की आलोचनात्मक प्रवृत्ति का भी दर्शन इनकी साखियों में होता है।

जोगी जंगम सेवड़ा शेख संन्यासी स्वाँग।
समझे क्योंकर प्रेम जी कुएँ पड़ गई भाँग।।

जयमलदास

जयमलदास कोल्हसर (बीकानेर) निवासी रामानन्दी वैष्णव महंत चरणराम के शिष्य और हरिरामदास के गुरु थे। कहते हैं ये पहले सगुणोपासक थे और बाद में पथिक रूप ब्रह्म राम के आदेश से निर्गुणोपासना की ओर प्रवृत्त हुये। अनहद का तार बजाकर जिस राम का स्मरण करने का उपदेश इन्होंने अपनी वाणी में दिया है, वह निर्गुण संतों के निरंजन राम से सर्वथा अभिन्न है—

---

१ रामस्नेही संतवाणी, पृ०१६४

२ खेचर भूचर चाचर उनमन अगोचर ध्यान सुनावन्दा।
पांचू मुद्रा आतम नाती पर बिन हुस उड़ावन्दा।।
—वही, पृ० ३४

३ परापरी अनहद के आगे रणकार ठहरावन्दा।
—वही पृ० ३४

४ अष्ट कमल दल चक्र फिरदा त्रिवलण जोग कमावान्दा।
वही, पृ० ३३

५ त्रिकुटी छाजे अनहद बाजे कर बिन ताल बजावन्दा।
—वही, पृ० ३४

६ वही, पृ० ३७

राम भजन मे मन लावै सन्तो अनहद तार बजावै ।।टेर।।
आतम माही आप विचारे शब्द सुणै अविनासी ।।
साचा नाम ध्यान धरि हिरदै गगन मडल मठ छावै ।
निर्मल नूर नैन रह लागा बिन रसना गुण गावै ।।
अगम निगम गति जाय न जानी परखण हार न कोई ।
जैमलदास अतर जिन खोज्या देखै अचरज सोई ।।[1]

आसन लगाकर, निरत धारणा करके और सुरति को शून्य मे लीन करके इन्होंने सुहानी मुरली की ध्वनि सुनने की चर्चा की है। कहना न होगा कि यह ध्वनि निर्गुण सन्तों के परम परिचित अनहद नाद की ही व्यंजक है—

दसवें द्वार मझार मुरली बाजै सोहणी ।
सोहणी रे सुन माहि मुनिवर मोहणी ।।टेर।।
जघन पर कर धारि कै बे सम आसण चित लाय ।
निरत धरै निज नासिका बे सुन में सुरत समाय ।।
सन्त सुणै सरधा पणै बे छिनहो बिसरै नाहिं ।
सुर नर मुनि जन रीझिया बे लागि मगन धुन माहिं ।।[2]

परापरा के अन्तर्गत आने वाले इन भक्तो के अतिरिक्त अन्य सगुणोपासक भक्तो पर भी निर्गुण साधना का व्यापक प्रभाव पड़ा।

सूरदास

सूरदास वल्लभ सम्प्रदाय मे दीक्षित प्रसिद्ध सगुणोपासक वैष्णव थे किन्तु उनके साहित्य के अनुशीलन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उनपर सन्त मत का बड़ा प्रभाव था। उन्होने कबीर की भांति योग, यज्ञ व्रत तीर्थ, स्नान, भस्म, जटा जूट पुराणो के अध्ययन तथा प्राणायाम आदि बाह्याचारमूलक क्रियाओ को निरर्थक बताते हुये ज्ञान की सार्थकता एव कथनी और करनी की एकता पर बल दिया है।

जौ लौ मन कामना न छूटै ।
तौ कहा योग यज्ञ व्रत कीन्हें, बिनु कन तुसको कूटै ।।
कहा सनान किये तीरथ के अंग भस्म जट जूटै ।
कहा पुराणन पढि जु अठारह, ऊर्ध्व धूम के घूटै ।।
करनी और कहै कछु और मन दसहूँ दिसि लूटै ।
सूरदास तबही तम नासै ज्ञान अगिनि झर फूटै ।।[3]

---

१ श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश, पृ० ४७-४८
२ वही, पृ० ४६-४८
३ सूरसागर, (ना० प्र० सभा), पहला खंड, पृ० १२०

यही नहीं उन्होंने निर्गुण संतो को भाँति सहज समाधि का भी वर्णन किया है—

(१) चकई री चलि चरन सरोवर जहाँ न प्रेम वियोग ।
जहा भ्रम निसा होति नहिं कबहूँ सो सायर सुख जोग ।।
जहाँ सनक से मीन हंस शिव मुनि जन नख रवि प्रभा प्रकाश ।
प्रफुलित कमल निमिष नहिं शशि डर गुंजत निगम सुवास ।।
जिहि सर सुभग मुक्ति मुक्ताफल सुकृत अमृत रस पीजै ।
सो सर छाडि कुबुद्धि विहंगम इहा कहा रहि कीजे ।।
लक्ष्मी सहित होत नित क्रीडा शोभित सूरजदास ।
अब न सुहात विषय रस छीलर वा समुद्र का आस ।। [१]

(२) चलि सखि तिहि सरोवर जाहि ।
जिहि सरोवर कमल कमला रवि बिना विकसाहिं ।।
हंस उज्जवल पंख निर्मल अंग मलि मलि न्हाहिं ।
मुक्ति मुक्ता अम्बु के फल तिहिं चुनि-चुनि खाहिं ।। [२]

इन पंक्तियों की तुलना यदि कबीर के निम्नलिखित पदों से का जाय तो दोनों साधकों का विचार एवं शैलीगत साम्य स्पष्ट हो जायगा ।

(१) कबीर मन मधुकर भया रह्या निरंतर वास ।
कँवलजु फूल्या जलह बिन, को देखै निज दास [3] ।।

(२) मन के मोहन बीठुला यहु मन लागो तोहिं रे ।
चरन कवल मन मानिया और न भावै मोहिं रे ।।
त्रिवेणी मनहिं न्हवाइये सुरति मिलै जो हाथि रे ।
तहाँ न फिरि मघ जोइये सनकादिक मिलि हैं साथि रे ।।
गगन गरजि मघ जोइये तहाँ दीसै तार अनन्त रे ।
बिजुरी चमक घन बरसि है तहा भीजत हैं सब संत रे ।।
षोडस कवल जब चेतिया तब मिलि गये श्री बनवारि रे ।
जरामरण भ्रम भाजिया पुनरपि जनम निवारि रे ।।
गुरु गमि त पाईये, झँखि मरै जिन कोइ रे ।
तहीं कबीर रमि रह्या सहज समाधी सोइ रे [४] ।।

---

१ सूरसागर, पृ० १११-११२
२ वही, पृ० ११२
३ कबीर ग्रंथावली पृ० १३
४ क०ग्र०, पृ० ८८, प० ४

मीराबाई

मीराबाई गिरधर नागर की सांवली सूरत पर अपना सर्वस्व अर्पित करने वाली एक सगुणात्मक भक्त थी। इनकी रचनाओं पर संतमत का पर्याप्त प्रभाव परिलक्षित होता है। ये जब सुरति निरति के दीपक में मनसा की बत्ती और प्रेम का तेल लाने की उस अहर्निश जलाने की बात करती है तथा पंच रंग चोली पहन कर अपने साईं से झुरमुट खेलने जाती है तब निर्गुण साधना के अत्यधिक निकट जान पड़ती है—

सखी री मैं तो गिरधर के रंग राती।
पचरंग मेरा चोला रंग दे मैं झुरमुट खेलन जाती॥
झुरमुट में मेरा साई मिलेगा खोल अडम्बर गाती॥
चंदा जायगा सूरज जायगा जायगी धरण अकासी।
पवन पाणी दोना ही जायेंगे अटल रहे अविनासी॥
सुरत निरत का दिवला सजोले मनसा की करि बाती।
प्रेम हटी को तेल मंगा ले जगा करे दिन राती[1]॥

उनका होली-वर्णन तो पूर्णत: कबीर के पद चिह्नों का अनुसरण करता है—

फागुन के दिन चार रे होरी खेल मना रे॥ टेक।
बिनि करताल पखावज बाजै अणहद की झणकार रे॥
बिनि सुर राग छतीसौं गावै रोम रोम रंग सार रे।
सील संतोख की केसर घोली प्रेम प्रीत पिचकार रे।
उडत गुलाल लाल भयो अंबर बरसत रंग अपार रे।
घट के पट सब खोल दिये है लोक लाज सब डार रे॥
होरी खेलि पीव घर आये सोइ प्यारी प्रिय प्यार रे।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर चरण कंवल बलिहार रे[2]॥

कुछ विद्वानों ने मीरा के सन्त मत से प्रभावित पदों की प्रामाणिकता पर सदेह प्रकट किया है। इस सम्बन्ध में विचारणीय यह है कि मीराबाई का वातावरण सगुणोपासक भक्तों तथा निर्गुण पंथी सन्तों-दोनों द्वारा न्यूनाधिक प्रभावित था और आप उक्त दोनों प्रकार के साधकों के सत्संग का इन्हें सुअवसर मिल चुका था[3]। यही

---

१ मीरा पदावली (परशुराम चतुर्वेदी), पृ० १०३ न

२ मीरा पदावली, पृ० २४६

३ मीरा स्मृति ग्रंथ—बंगीय हिन्दी परिषद्, कलकत्ता, पृ० २५२

नहीं, कदाचित् उन्होंने प्रसिद्ध संत रैदास को अपना गुरु भी बनाया था[१]। ऐसी स्थिति में उनकी संतमत से प्रभावित रचनाओं को एकदम अप्रामाणिक ठहराना युक्ति संगत प्रतीत नहीं होता।

गोस्वामी तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदास को भी हम निर्गुण साधना के प्रभाव से अछूता नहीं पाते। यद्यपि 'रामचरित मानस' में उन्होंने यत्र-तत्र कुछ ऐसे उद्गार अवश्य व्यक्त किये हैं जिनसे निर्गुणियों के प्रति उनका विरोध सूचित होता है किन्तु ग्रन्थ के अन्तर्गत अनेक स्थलों पर उन्होंने संत स्वभाव, नाम महिमा और गुरु महिमा का वर्णन किया है तथा सगुण निर्गुण के सामंजस्य पर विशेष बल दिया है। इसके अतिरिक्त कलियुग वर्णन में उन्होंने अपने समकालीन समाज में प्रचलित पाखंड की जैसी खरी आलोचना की है उससे उन पर इस युग तक प्रचलित संत मत के सिद्धान्तों की छाया स्पष्ट लक्षित होती है[२]। तीर्थों और मंदिरों में होने वाले अनाचारों[३] तथा बहुदेवोपासना[४] की भयंकर बाढ़ को देखकर गोस्वामी जी के मुख से जो कुछ निकला वह कबीर आदि निर्गुणियों की तीखी आलोचनाओं से कम तीखा नहीं था।

रसिक भक्तों की नाम-साधना पर निर्गुण प्रभाव

स्वामी रामानन्द का मुख्य उपदेश रामनाम जप ही था जिसे आगे चलकर गोस्वामी तुलसीदास ने निर्गुण एवं सगुण ब्रह्म की प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन और दोनों के बीच 'चतुर दुभाषी' घोषित किया। कृष्णदास पयहारी भी रामोपासना की इस समन्वयात्मक प्रवृत्ति के पोषक थे। परवर्ती रामभक्त कवियों ने अपनी रचनाओं में निर्गुण तत्त्व को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। कृष्णदास जी के शिष्य ने राम

१ रैदास संत मिले मोहिं सतगुरु दीन्हा सुरत सहदानी।
मैं मिली जाय पाय पिय अपना तब मोरी पीर बुझानी।
मीरां खाक खलक सिर डारी मैं अपना घर जानी।
—मीरा पदावली, पृ० २४६

२ उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ० ३८६

३ सुर सदननि तीरथ पुरिन, निपट कुचालि कुमाज।
मनहुं मवासे मारि कलि राजत सहित समाज॥
—तुलसी ग्रन्थावली पृ० १५०

४ पात-पात के सींचिबो, बरी-बरी के लोन।
तुलसी खोटे चतुरपन कलि डहके कहु को न॥
—वही, पृ० १५०

भक्ति-शाखा में इसी उभय (निगुण-सगुण) प्रवाधक ध्यान-योग का प्रचार किया। रामोपासना की प्रधान साम्प्रदायिक धारा आज भी इसी पथ पर प्रवहमान है[1]।

कहने की आवश्यकता नहीं कि रसिकों की साधना का श्रीगणेश भी नाम जप में होता है। रसिक भक्तों ने उसके अन्तर्गत नामाभ्यास,[2] अजपाजप,[3] आरती ध्यान (मानसी आरती[4]) आदि का विधान किया है। उनकी धारणा है कि आराध्य युगल के नाम जप, रूप ध्यान, और गुण स्मरण में भाव की उत्पत्ति होती है। इसका प्राथमिक उद्रेक विरह के रूप में होता है। विरह की ज्वाला में प्रिय मिलन के बीज सन्निहित रहते हैं। विरह की आग एक बार जलकर तब तक नहीं बुझती जब तक प्रिय का दर्शन न हो जाय। उत्कंठापूर्ण विरह की इस स्थिति को लगन की संज्ञा दी गई है[5]। इस प्रकार रसिक भक्तों का अजपाजप, मानसी आरती, नाम-जप, रूप ध्यान और गुण-स्मरणजन्य विरह-वेदना निगुणिया सन्तों के नाम-जप मानसी आरती और विरह-दशा से बहुत कुछ मिलती जुलती है। इस प्रसंग की तुलना सन्तों के सुरति-शब्द-योग से करने पर रसिक सम्प्रदाय पर पड़े हुए निगुण प्रभाव की बात और भी स्पष्ट हो जाती है।

इस प्रकार जब सगुण भक्ति धारा निगुण साधना के तत्वों को धीरे धीरे आत्मसात् कर रही थी, देश की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक परिस्थिति बदल गयी और सगुण-साधना के लिए उपयुक्त वातावरण नहीं रह गया। जिस परिस्थिति में रामसनेही सम्प्रदाय का विकास हुआ इसकी संक्षिप्त विवेचना उपादेय होगी।

समसामयिक परिवेश

राजनीतिक परिस्थिति

अठारहवीं शताब्दी का राजनीतिक इतिहास मुगल साम्राज्य के चरमोत्कर्ष और पतन की एक करुण कहानी है। सम्राट शाहजहाँ (१६८८ १७१५) का शासन स्वर्ण-युग की झांकी दिखा कर मुगल साम्राज्य को पतन के कगार पर छोड़

१ भारतीय साहित्य, वर्ष ५, अंक २ ३, पृ० ४२ ८, श्री कृष्णदास पयहारी शोधक लेख—डा० भगवती प्रसाद सिंह

२ रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ० २१०

३ वही, पृ० २११

४ वही, पृ० २१२

५ वही, पृ० २२२

गया। उसके शासनकाल में मुगल राज्य-श्री बन ठन कर मयूर सिंहासन पर समासीन हुई और ताजमहल के दर्पण में अपने सौंदर्य को निहार निहार कर मुग्ध हो रही थी। सिंध के लाहिरी बन्दरगाह से लेकर आसाम में सिलहट तक तथा अफगान प्रदेश के विस्त के किले से लेकर दक्षिण में औसा तक साम्राज्य का विस्तार हो चुका था। मुगल साम्राज्य की अखंड शक्ति, अपार धनराशि तथा कलाओं विकास की चरम सीमा पर पहुँच चुका थी। किन्तु उसके शासन के अन्तिम दिनों में जहाँ-तहाँ अपकर्ष के चिह्न भी दिखाई पड़ने लगे। अजेय मुगल वाहिनी को पश्चिमोत्तर प्रान्तों में तीन तीन बार पराजित होकर (सं० १७०६, १७०६, १७१०) कंधार से हाथ धो देना पड़ा, जिससे साम्राज्य की प्रतिष्ठा को बहुत बड़ा आघात पहुँचा। दक्षिण के गोलकुन्डा और बीजापुर के राज्यों में भी उपद्रव शुरू हो गये। इमारतों के निर्माण, कला के विकास और युद्ध में अत्यधिक व्यय हो जाने के कारण राजकोष भी खाली हो गया[1]। इस प्रकार विशाल मुगल साम्राज्य के वृक्ष की जड़ में विनाश के कीट प्रवेश कर गये और धीरे धीरे उसे जर्जर बनाने लगे।

सम्वत् १७१४ में शाहजहाँ बीमार पड़ा। देश में यह शोर हो गया कि सम्राट की मृत्यु हो गयी। मृत्यु का समाचार पाकर उसके पुत्रों—दारा, शुजा, औरंगजेब, और मुराद में सिंहासन के लिये युद्ध आरम्भ हो गया। सम्राट का ज्येष्ठ पुत्र दारा शिकोह अपने चारित्रिक बल और सांस्कृतिक व्यक्तित्व के कारण सम्राट का ही नहीं वरन् प्रजा का भी श्रद्धा-पात्र था। वह सब कुछ था केवल कूटनीतिज्ञ नहीं था। दूसरी ओर राजकुमार औरंगजेब बहुत ही कठोर और दृढ़ व्यक्तित्व वाला था। कूटनीति और इतर धर्मों के प्रति असहिष्णुता की भावना उसमें कूट-कूट कर भरी हुई थी। समय की गति को भी वह भली भाँति पहचानता था। इन दोनों राजकुमारों का युद्ध मानो देश की सात्विक एवं तामसी वृत्तियों का द्वन्द्व था। मुराद और शुजा भी दिल्ली के सिंहासन पर बैठने का स्वप्न देख रहे थे। राज्य लिप्सा से प्रेरित अपने पुत्रों का यह भयंकर संघर्ष सम्राट शाहजहाँ बन्दीखाने के भीतर से हृदय थामकर देखता रहा और अंत में रक्त से लथपथ दारा का सिर देख कर उसका हृदय विदीर्ण हो गया। औरंगजेब भाइयों के रक्त में स्नान करके सिंहासनासीन हुआ। उसने मुराद को पहले बढ़ावा दिया, फिर कूटनीति से बन्दी बना कर उसे राजनैतिक मंच से सदा के लिए हटा दिया। शुजा बार बार हारता और भागता हुआ जीवन रक्षा के लिए अराकान जा पहुँचा, जहाँ उसे माघ जाति के लोगों ने मार डाला[2]। सम्पूर्ण देश इन निर्मम कृत्यों को आश्चर्य, घृणा और उदासीनतापूर्ण नेत्रों से देखता रह गया।

---

१ द्रष्टव्य, मुगल कालीन भारत, पृ० ३४१-३४७
२ द्रष्टव्य, मुगल कालीन भारत, पृ० ३४८-५५

औरंगजेब ने लगभग अर्धशताब्दी (सं० १७१५ से १७६४) तक राज्य किया। उसका राज्य-काल अशांति और संघर्ष में ही व्यतीत हुआ। वह धर्मांध था। धर्म किस लिए है? उसमें मनुष्य का क्या सम्बन्ध है? इस पर उसने कभी नहीं सोचा। जिसे धर्म समझ कर उसने आजीवन दुःख भोगा, करोड़ों को दुःख पहुँचाया और कलंक का टीका लगाकर इस नश्वर संसार से चला गया, उसके द्वारा उसे जीवन में सुख और शांति नहीं नसीब हो सकी। धर्म के नाम पर, स्वार्थ के वशीभूत होकर उसने भाइयों का वध किया, हिन्दुओं को सताया, शिया लोगों पर अत्याचार किया, हजारों मन्दिरों को ध्वस्त करवाया तथा पुस्तकालयों को जलाकर कला और शिल्प का नाश किया। उसके इन दुष्कृत्यों का परिणाम बड़ा ही भीषण हुआ। सम्पूर्ण देश में असंतोष की आग सुलगने लगी। मथुरा में गोकुल के नेतृत्व में जाटों ने, अवध में बैस राजपूतों ने, इलाहाबाद में हरदी तथा अन्य बहुत से जागीरदारों ने शासन की अन्यायपूर्ण नीति के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। उसकी धर्मांधता ने राजस्थान के राजाओं और रईसों की स्वामिभक्ति को भी विचलित कर दिया। इन सब विद्रोहों को तो वह यथासमय बुरी तरह से कुचलता रहा, किन्तु मरहठों के साथ युद्ध करने में उसके दाँत खट्टे हो गए। इस दीर्घव्यापी संग्राम ने उसका सारा कोष और सैन्य-शक्ति को समाप्त कर दिया। केन्द्रीय शासन की दुर्बलता से राजनीतिक विशृंखलता के साथ ही संस्कृति, आर्थिक जीवन, सैनिक शक्ति और सामाजिक संगठन सब कुछ बड़ा तेजी से सर्वनाश की ओर बढ़ने लगे। दक्षिण भारत तो पूर्णतया बरबाद हो गया। समकालीन विदेशी दर्शक मनुची ने लिखा है—"औरंगजेब अहमद नगर को वापस लौट गया और पीछे उन प्रान्तों के खेतों में वृक्षों और फसलों का नामोनिशान भी नहीं रहा। उनके बजाय सर्वत्र मनुष्यों और पशुओं की हड्डियों के ढेर पड़े थे। हरियाली के स्थान पर सर्वत्र खाली जमीन वीरान पड़ी थी। उसकी सेना में प्रति वर्ष कुल मिलाकर एक लाख मनुष्य मरते थे। प्रति वर्ष मरने वाले पशुओं, बारबरदारी के बैल, ऊँट, हाथियों आदि की संख्या तो तीन लाख से भी ऊपर पहुँच जाती थी[1]। इस प्रकार औरंगजेब अर्धशती का रक्त रंजित और अराजकतापूर्ण इतिहास उत्तराधिकारियों को सौंप कर अपनी असफलता पर पश्चाताप करता हुआ इस लोक से विदा हो गया।

औरंगजेब के उत्तराधिकारी बहुत ही विलासी, निर्बल और तेजहीन सिद्ध हुए। उनका अधिकांश समय अन्तःपुर के भीतर बेगमों, मसखरों और चापलूसों

1 औरंगजेब—यदुनाथ सरकार, पृ० ४७७

समाज म व्यतीत होता था[१] । जिस समय फरु खसियर न सम्राट अबुलफतह मुहम्मद मुईजुद्दीन जहादरशाह पर आक्रमण किया उस समय वह किस प्रकार विलासिता मे लिप्त था श्रीधर कृत 'जगनामा' म उसका आखो देखा हाल वर्णित है ।

इत मौजदी मगरूर मस्त अलस्त अमलै खाइक ।
सिगरे कनावत ह्वै अमीर भरे रहै चित चाइक ॥
आवै न आवै मननि म फूने रहै इक भाइक ।
माही मरातिब अलम पजा ताग नौबति पाइकै ॥
दारू सु दारू भरत गोली अमल गोली रग की ।
मिरदग ढालक तोप औ सुरनाइ रीत तुफग की ॥
प्याला पलीता सुमरिकै तह जीति मौजै भग की ।
दिन रात यह चरचा रहे सतबोर और न जग की ।
सब कमल लोचन दुक्ख मोचन काम रूप मनोहरा ।
अति चतुर नृत कलान म मखवान मजलिस नोहरा ॥
अनुराग उपजत राग सुनि सुनि कवित रस क दोहरा ।
मनु ढर साजे नवल नाचे नटानट क छोहरा ॥
कहु सभा मस्त कलावता कहु पातुरन की गाहकी ।
कहु नचत हरखे हीजरा भर लगी अहि र माहि की ॥
कहु छोकरे बागे दरबार कुजरिन राह की ।
यह मौजदी की मौज है गति और नाहि निबाह की[२] ॥

देश म एक ओर ता विलासिता का नग्न नृत्य हो रहा था और दूसरी ओर सिहासन के लिए रक्तपान की परम्परा अबाध गति से चल रही थी । औरगजेब की मृत्यु के १३ वर्ष के भीतर उत्तराधिकार के लिए सात युद्ध हुये जिनमे अपार जन धन की हानि हुई[३] । इस घोर अराजकता का परिणाम यह हुआ कि औरगजेब की मृत्यु

---

१ Their intellect and spirits were dulled and they found diversions only in the society of the harem women buffoons and flatterers

Later Mughals, Vol II p 311

२ जगनामा, पृ० २८

३ In the thirteen years, following the death of Aurangzeb seven bloody battles of succession had been fought among his descendents in which large numbers of Princes nobles and the best soldiers had perished

Later Mughals Vol II, p 307

व २०-२५ वर्ष के भीतर ही मुगल साम्राज्य के अंग प्रत्यंग विच्छिन्न हो गये। हैदराबाद में आसफजाह ने, अवध में सआदत खां ने, बंगाल में अलीवर्दी खां ने और रुहेलखंड में रुहेलों ने अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिए। इन्हीं दुर्दिनों के दिनों में नादिरशाह ने दिल्ली पर आक्रमण करके हजारों आदमियों की जान, करोड़ों का माल, कोहिनूर हीरा और तख्तेताऊस लेकर अपनी चिर पिपासा शांत की[1]।

राजस्थान की दशा और भी शोचनीय हो गई थी। राजपूत अब भी पारस्परिक द्वेष की ज्वाला में जल रहे थे। धन-जन, मान-सम्मान, यहाँ तक कि बेटी देकर भी वे सुख शांति में नहीं रह सके। शाहजहाँ और औरंगजेब के खूनी पंजे इन पर समय-समय पर पड़ते रहे। धन-जन की क्षति होती रही। मंदिरों के स्थान पर मस्जिदों का निर्माण होता रहा। इस समय में भी राजपूतों की फूट पूर्ववत् बनी रही। मरहठों की बढ़ती हुई ताकत को देखकर भी ये संगठित न हो सके। दो-एक बार मरहठों और मुगलों के विरुद्ध संगठन के प्रयत्न भी हुए किन्तु वे सब विफल रहे। देशाभिमान और जातीय गौरव पर मर मिटने वाली इस जाति का इतना पतन हो गया कि अधिकार के लिए पिता-पुत्र में भी युद्ध होना सामान्य सी बात हो गयी। यदि सिंहासन के लिए औरंगजेब पिता को कारागार में डाल सकता था तो पिता की हत्या करके राज्य लेने वाले अमरसिंह यहां भी मौजूद थे। चूंडावत और शक्तावत वंशों के गृह-कलह में मेवाड़ की स्थिति जर्जर हो चुकी थी। मुसलमान बादशाहों की अधीनता में रहकर दरबार में चाटुकारिता करते-करते, राजपूतों का नैतिक बल समाप्त हो चुका था। इस वीर जाति में अब केवल विलासिता शेष रह गयी थी। बहुपत्नीक राजपूत राजाओं के रनिवासों में मुगल हरमों की भांति आंतरिक कलह और ईर्ष्या का नग्न नृत्य होता था। बप्पारावल और प्रताप के वंशज अपने प्रतिपक्षी समकालीन मुगल बादशाहों को अपनी सुरा और सुन्दरी के चरणों में सर्वस्व अर्पित करने में पीछे नहीं रहे।

सामाजिक परिस्थिति

तत्कालीन सामाजिक स्थिति का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने के लिए आलोच्य युगीन समाज को हम सामान्य रूप से तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—

१ राजपरिवार और राज्याश्रयी सामन्त अथवा उच्च वर्ग

२ मध्यम वर्ग

३ श्रमिक एवं कृषक अथवा निम्न वर्ग।

मुगल परिवार और राज्याश्रय में रहने वाले अफसरों तथा अमीरों का जीवन वैभव और ऐश्वर्य की आभा से आलोकित था। उनकी शान-शौकत की रक्षा में अपार

---

१ मध्यकालीन भारत पृ० ४६६

धन राशि व्यय होता था। सम्राट शाहजहाँ के लिए हर साल एक हजार बहुमूल्य वस्त्र तैयार किये जाते थे जो वर्ष के अन्त तक दरबार के अमीरों को भेंट कर दिये जाते थे। दरबार में रत्नों और मणियों से जटित वस्त्राभूषणों का व्यापक रूप से प्रयोग होता था। शाही खजाने के पास इतनी अधिक रत्न राशि थी कि जिसके वर्णन को सुनकर लोग भौचक्के हो जाते थे। शाहजहाँ के पास पाँच करोड़ निजी रत्न थे। इसके अतिरिक्त लगभग दो करोड़ रत्न शाही परिवार को भेंट कर दिये थे। वह रत्नों से विभूषित मयूर सिंहासन पर बैठता था। सिंहासन तक जाने के लिए रत्नों से जड़ी हुई तीन सीढ़ियाँ थीं और उसके चारों ओर ग्यारह चौखटें, जिनके बीचोंबीच एक बहुमूल्य रत्न था[1]। सरदारों और अमीरों का जीवन भी कम वैभवपूर्ण नहीं था। उन्हें बड़ी-बड़ी तनख्वाह मिलती थी। उनके नौकर चाकर तथा दास-दासी अधिक रहते थे। ये लोग उत्तम भोजन करते थे। बहुमूल्य वस्त्राभूषण धारण करते थे। धनवान पुत्र और पुत्रियों के ब्याह में, मकान, मकबरे एवं मस्जिद मन्दिर बनवाने में तथा गाड़ियों अन्य विदेशी वस्तुओं के खरीदने में अपने धन का अपव्यय करना था[2]। मुगल अमीरों का रहन-सहन का स्तर इतना ऊँचा हो गया था कि ईरान के शाह या मध्य एशिया के सुलतान उसका स्वप्न भी नहीं देख सकते थे। उनके महलों में विषय भोग चरम सीमा को पहुँच गया था। उनके हरम सदैव विभिन्न देशों तथा जातियों की स्त्रियों से भरे रहते थे। अन्तःपुरों में परिचर्या के लिए हिजड़े और दासियाँ नियुक्त थीं। उन्हीं की देख-रेख में उनके पुत्रों और पुत्रियों का लालन-पालन होता था। इनके सम्पर्क में वे प्रायः बाल्यकाल से ही पुरुषोचित गुणों से रहित हो जाते थे। विलासपूर्ण जीवन के कारण उनका शरीर अत्यधिक कोमल हो जाता था। परिणामस्वरूप साहस के कार्य में उनकी स्वाभाविक अरुचि हो जाती थी। अनियन्त्रित व्यभिचार, मदिरापान और जुआखोरी के दुर्गुणों के साथ वे पुरुषों में अप्राकृतिक व्यभिचार की लत के भी शिकार हो जाते थे[3]। तत्कालीन विलासिता की एक क्षीण झाँकी पद्माकर के निम्नलिखित छन्द में देखी जा सकती है—

गुलगुली गिलमें गलीचा हैं गुनीजन हैं,
चाँदनी है चिक है चिरागन की माला है
कहै पद्माकर त्यों गजक गिजा है सजी,
सेज है सुराही है सुरा है और प्याला है।
शिशिर के पाला को न व्यापत कसाला तिन्हें
जिनके अधीन एते उदित मसाला है

१ मुगलकालीन भारत, पृ० ५६८
२ वही, पृ० ५७१
३ औरंगजेब—यदुनाथ सरकार, पृ० ५८६-८७

तान तुक गाना है विनोद को रमाना है,
सुवाला है दुशाला है बिछाना चित्रशाला है ॥[1]

दूसरी श्रेणी थी, मध्यम लोगों की। इस श्रेणी में व्यवसायी कलाकार और राजकर्मचारी आते थे। व्यापारियों की दशा अच्छी थी। निपुण कारीगर खूब कमा लेते थे। इस प्रकार यह वर्ग अपव्यय से बचकर अपने व्यवसायानुसार विकसित व साथ सुन्दर जीवन व्यतीत कर रहा था।

अंतिम श्रेणी था उन श्रमिकों की जिनकी गाढ़ी कमाई के पैसे से दरबार की सजावट, सिंहासन, चित्रकला, वस्त्राभूषण, सुगंधित द्रव्य तथा विदूषकों, चापलूसों और मसखरों का खर्च चल रहा था। उनसे काम अधिक लिया जाता था किन्तु उनके अनुपात में वेतन बहुत कम दिया जाता था। ऊपर से उन्हें सरकारी अफसरों की धौंस भी सहनी पड़ती थी[2]। दिन भर परिश्रम करने वाला व्यक्ति एक वर्ष भी समय में वर्षा न होने पर दुर्भिक्ष का शिकार हो जाता था। इस दशा में अपने बेटे और स्त्री को बेच कर भी वह जीवन रक्षा में असफल होता था। इसी वर्ग में शोषित धन में, शासक वर्ग सुरा की सरिता बहाता, व्यभिचार का व्यवसाय बढ़ाता और उनके बेटी-बेटा को खरीद कर मुसलमान बनाता था[3]।

धार्मिक स्थिति

राजनीतिक और सामाजिक स्थिति की भांति हमारे अध्ययन युग की धार्मिक स्थिति भी अत्यन्त शोचनीय थी। तत्कालीन समाज निम्नांकित तीन वर्गों में विभक्त था —

(१) पंडितों और मौलवियों का वर्ग
(२) अंधविश्वासी अशिक्षित जनसमुदाय
(३) शास्त्रीय कट्टरता और रूढ़िवादिता से दूर रहने वाला उदार सन्तों का वर्ग

प्रथम वर्ग में वे लोग आते थे जो धर्मशास्त्रों को ईश्वर की वाणी समझते थे। शास्त्रीय धर्म के नाम पर हिंदी प्रदेश में वैष्णव धर्म की ही विविध शाखाओं का

१ जगद्विनोद, छन्द ३६१

२ Their work was not voluntary, wages were low, food and houses poor and they were subject to the oppression of the imperial officers —An Advanced History of Inbia, Dr R C Mazumdar, p 567

३ उत्तरमध्यकालीन भारत (अवधविहारी पाण्डेय), पृ० ४६८

प्रचार था। तत्युगीन प्रवृत्तियों के अनुकूल पड़ने के कारण, वैष्णव धर्म की कृष्ण भक्ति शाखा सर्वाधिक प्रचलित हुई। गोस्वामी विट्ठलनाथ, हरिराम, गोकुलनाथ प्रभृति महात्माओं के समय तक तो कृष्ण भक्ति के स्वरूप में किसी प्रकार की विकृति नहीं आने पाई, किन्तु इसके बाद मानवीय जीवन के प्रभाव से वैभव की काली छाया इस सम्प्रदाय की धवल गरिमा को स्पर्श करने लगी। राजाओं और अमीरों में महात्माओं का सम्पर्क बढ़ने लगा। धन पाने की लालच में, उन्हें दीक्षा देकर शिष्य बनाने में, इस काल के संत सम्प्रदाय का गौरव मानने लगे। परिणाम यह हुआ कि वैभव की छाया और विलासिता के विषाक्त वायुमंडल का आश्रय पाकर भक्ति का यह वृक्ष अवस्वस्थ हो गया। इसकी जड़ों में पतन के कीड़े लग गये। 'राधिका कन्हाई के सुमिरन को बहाना' का आदर्श स्थापित कर शृंगारी रचनाओं में हृदय की कलुषित भावनाओं को व्यक्त किया जाने लगा। इस प्रकार कृष्ण भक्ति के स्नेहहीन दीपक के धुंए में सम्पूर्ण धार्मिक वातावरण दूषित हो गया। देखा देखी मर्यादा प्रधान राम भक्ति में भी अष्टयाम पूजा विधि तथा कहीं-कहीं, वंचक भक्तों की कृपा से, अश्लील भावनाओं का विकास हुआ। धर्म के दार्शनिक आधार के अभाव में एतत्कालीन जीवन पूर्णतः विशृंखल हो गया।

विजेता इस्लाम धर्म भी इस समय तक शक्ति खो चुका था। अत्यधिक कट्टरता के कारण इसमें रूढ़िवादिता आ गयी थी। मुसलमानों के राजनीतिक पतन का भी प्रभाव उनकी सामाजिक स्थिति पर पड़ा। शासक का धर्म होने के कारण इसे बार-बार तलवार के बल से अन्य धर्मावलंबियों पर लादने का प्रयत्न किया गया जिसके फलस्वरूप इसके प्रति विरोध की भावना निरंतर बढ़ती गई।

समाज में दूसरा वर्ग था अशिक्षित और अंधविश्वासी लोगों का। इन लोगों की गति धार्मिक बाह्याचारों तक थी। तीर्थ-व्रत, संत पीर, जादू टोना, तन्त्र-मन्त्र गण्डा-ताबीज तथा इसी प्रकार के अन्य देवी देवताओं के प्रति इनके हृदय में अगाध विश्वास था। अन्धविश्वासों ने इतनी गहरी जड़ जमा ली थी कि कट्टर औरंगजेब ने भी पैगम्बर मुहम्मद के झूठ-मूठ चरण चिह्नों और बालों (आसार इ-शरीफ) की परिक्रमा ऐसी श्रद्धा तथा आदर के साथ की थी मानो वे ईश्वर के साक्षात् प्रतीक ही हों। औरंगजेब की इस भावना और पत्थर पर बने विष्णु के पद चिह्नों को हिन्दुओं द्वारा पूजा में किसी प्रकार की भिन्नता नहीं दिखाई पड़ती।

इन दोनों के अतिरिक्त समाज में एक तीसरा वर्ग भी था जो परम उदार था और ब्राह्मण शूद्र हिन्दू-मुसलमान तथा काबा और काशी के झगड़े से ऊपर उठकर सरल सात्विक जीवन का उपदेश दे रहा था। उनके लिये हिन्दू मुसलमान सब एक ही पिता की संतान थे, न कोई ऊँचा था न कोई नीचा। धार्मिक बाह्याचारों में ड्र है

चला था। यह वर्ग कबीर, नानक, दादू आदि के पद चिह्नों का अनुगमन करते हुए पथभ्रष्ट समाज का पथ प्रदर्शन कर रहा था। दादू पंथ, सतनामी सम्प्रदाय, बावरी लाली सम्प्रदाय, धरनीश्वरी सम्प्रदाय आदि इस वर्ग में आने वाले प्रमुख निर्गुण पंथ थे।

मुसलमानों में भी इस प्रकार की एक उदार विचार धारा चल रही थी जिसे हम सूफी मत के नाम से पुकारते हैं। सूफियों की चिश्तिया, निजामिया, नक्शबंदिया, कादिरिया, सत्तारिया शाखाएं काफी प्रसिद्ध हो चुकी थीं। इस पतन के युग में संतों और सूफियों द्वारा देश और समाज की जो सेवा हो रही थी, वह अभिनंदनीय है किंतु इसे यथोचित नहीं कहा जा सकता क्योंकि ये संत भी साम्प्रदायिकता के संकुचित घेरे में फँसे हुए थे।

मुगल बादशाहों की धार्मिक नीति

मुस्लिम आक्रामक धन लूटने और राज्य स्थापित करने के साथ-साथ इस्लाम धर्म का प्रचार तथा इतर धर्मानुयायियों का विध्वंस करने में आरंभ से ही सचेष्ट रहे हैं[१]। मुगल साम्राज्य की स्थापना करने वाले सम्राट बाबर की नीति हिंदू धर्म के प्रति बड़ी ही अनुदार थी। उसने चंदेरी के मंदिरों को ढहाया। इसके अनंतर उसी की आज्ञा से मीर बाकी ने अयोध्या में राम जन्म भूमि पर स्थापित मंदिर को ध्वस्त कर उसी स्थान पर १५२८-२९ ई० में एक विशाल मस्जिद बनवायी। उसके शासन-काल में कई अन्य हिंदू और जैन मंदिर भी गिराये गये[२]। बाबर के पुत्र हुमायूँ ने अपने पिता की नीति का अनुसरण किया किन्तु सारा जीवन संघर्षों में बिताने से वह उसे कार्यान्वित न कर सका। हुमायूं का प्रसिद्ध प्रतिस्पर्धी अफगान शासक शेरशाह दिल्ली के तख्त पर बैठने वाले पूर्ववर्ती बादशाहों से अधिक उदार था फिर भी वह भारत में इस्लामी झंडे को फहराने के लिये सतत् प्रयत्नशील रहा। उसने जोधपुर के प्रधान मंदिर को तोड़कर उसे मस्जिद बना दिया जो प्रमाणस्वरूप आज भी खड़ी है। शेरशाह का अधिकारी इस्लामशाह तो मुस्लिम उलेमाओं के हाथ में कठपुतली की भांति नाचता था। उसकी धार्मिक नीति का मुख्य उद्देश्य हिंदू काफिरों को सताना था[३]। हुमायूं के पुत्र सम्राट अकबर के समय में हिंदुओं को कुछ सुख और शांति नसीब हुई। उसने हिंदुओं के प्रति बड़ी ही सहृदयता का व्यवहार किया था। हिंदुओं

१. औरंगजेब पृ० ५८८
२. मुगलकालीन भारत, पृ० ५८२-८३
३. मुगलकालीन भारत, पृ० ५८३

पर से जजिया जैसे घृणित कर का हटाना उसका सबसे बडा कार्य था[१]। इसके उपरात उसने गैर मुसलमानो के धार्मिक उत्सवा पर लगाये गये प्रतिबन्ध को भी समाप्त कर दिया। यही नही उसने राजाज्ञा से गो-वध बन्द कर दिया और गोमांस का छूना तक हराम ठहराया[२]। वह हिन्दुओ के त्योहारा को बडे उत्साह से मनाता था। उसके राज्य-काल म 'रक्षा बधन' सर्व सामान्य द्वारा मनाया जाने लगा था[3]। जहाँगीर और शाहजहा इस उदार धार्मिक नीति का पालन न कर सके। उनका झुकाव इस्लाम की ओर विशेष रहा। अवसर आने पर उनकी असहिष्णुता का भयकर परिचय भी मिल जाता था। जहाँगीर ने अपने रोजनामचे म कई जगह हिन्दू राजाओ को काफिर, गलीज, गवार इत्यादि कहा है। उसने काशी म राजा मानसिंह कछवाहा का मन्दिर तुडवाया था[४]। मेवाड पर आक्रमण के समय उसके सैनिको ने अनेक मन्दिर धराशायी किय थे[५]। उसने सिक्खो के गुरू अर्जुनदेव के साथ जो दुर्व्यवहार किया था उसका मुख्य कारण धार्मिक विद्वेष ही था। गुजरात के जैनियो के प्रति किया गया घोर अत्याचार भी इसी भाव से प्रेरित था[६]।

शाहजहाँ जहाँगीर से भी दो कदम आगे निकला। वह हिन्दुओ के मन्दिरो को तोडना पुण्य काय समझता था। उसक समय म तीर्थ-कर पुन लगा दिया गया और उसने मुसलमानों की सख्या बढाने के लिये भी हर सम्भव प्रयास किया[७]। औरगजेब

---

१ The great achievement of Akbar in this field was the abolition of the hateful 'Jaziya

The Religious Policy of the Mughal emperors P 23

२ 'Beef was interdicted and to touch beef was considered defiling

The Ain I Akbari, p 202

३ The custom of Rakhi became quite common

Ibid, p 193

४ राजपूताने का इतिहास, पृ० ४०

५ When Mewar was invaded many temples were demolished by the invading mughal army

—*The Religious Policy of the mughal emperors, p* 73

६ मुगलकालीन भारत, पृ० ३८४ ८५

७ He revived the pilgrimage tax and took steps not only to check to conversions of the muslims to other faiths but also to add their number

—An Advanced History of India, p 88

तक आते-आते मुगल बादशाहो की यह असहिष्णुता नृशसता म परिवर्तित हो गयी। औरगजेब न हिंदुओ के साथ जो बर्ताव किया उसकी करुण कहानी सुनकर हृदय रो उठता है। वह कट्टर मुसलमान था। उसने हिंदुओ को मुसलमान बनाने, मन्दिर एव मूर्तियाँ तोडवाने, हिंदुओ के धर्मग्रथो को नष्ट करने तथा उनका पठन-पाठन रोकने के लिये एक मुहकमा खोल दिया था। सवत् १७२६ मे, उसने हजारो मूर्तिया व मन्दिर तोडवाये, जिसस वल्लभ सम्प्रदाय के गोसाई पुजारी मथुरा से भाग कर मवाड चले आये। औरगजेब ने जब हिंदुओ पर जजिया लगाया तो हिंदुओ ने बहुत प्रार्थना की, किन्तु उसने एक न मानी और जब कुछ हिन्दू जुमा मस्जिद के सामने सम्राट से इस कर को हटा लेने के लिय प्रार्थना करने गये तो उसने हाथी छोडकर उन्हे कुचलवा दिया[१]। इस पर मेवाड के राणा राजसिंह ने, ईश्वर और खुदा एव मन्दिर और मस्जिद को एक बताते हुए, एक जोरदार पत्र द्वारा जजिया बन्द करने का निवेदन किया। राणा के पत्र को पढ कर औरगजेब बहुत अप्रसन्न हुआ और स० १७३७ मे एक विशाल सना भेज कर चित्तौड, माडलगढ, उदयपुर तथा अन्य बहुत से स्थानो के मन्दिरों को धराशायी करवाकर मूर्तियों को खडित करवाया[२]। 'लाल' कवि ने औरगजेब की हिन्दू-विरोधी नीति का आँखो देखा वर्णन किया है—

जब त साह तख्त पर बैठे तब तैं हिंदुन सों उर ऐंठे।
महग कर तीरथनि लगाये वेद देवाले निदर ढहाये॥
घर घर बाधि जेजिया लीनै अपने मन भाये सब कीनै[३]।

उस समय हिंदुओ के तीर्थ-स्थान कितने अरक्षित हो गये थे इसका परिचय तत्कालीन राम भक्त महात्मा सूरकिशोर जी के निम्नलिखित छन्द से स्वत मिल जायगा—

जह तीरथ तह जवन वास पुनि जीविका न लहिये।
असन बसन जह मिले तहा सतसग न पैये॥
राह चोर बटपार कुटिल निरधन दुख देही।
सहवासिन सन बैर दूर बहुँ मिलै सनेही॥

---

१ देखिये राजपूताने का इतिहास, जगदीश सिंह गहलोत, पृ० २५२

२ This protest so enraged the emperor that in 1680 he sent an over whelming army which destroyed many temples and idols in Chitore, Mandalgarh, Udaipur and other places —

—Rajputana Gazetteer (The W R S Residency Bikaner Agency 1909), p 23

३ छत्रप्रकाश, पृ० ६८

कह 'सूर किशोर' मिले नहीं यथा जोग चाहो जहां ।
कलिकाल प्रसेउ अति प्रबल हिय हाय राम रहिये कहां[1] ॥

इस प्रकार राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक सभी दृष्टियों से अठारहवीं शताब्दी भारतीय इतिहास में एक घोर पतन का युग था । विधर्मी शासकों की स्वच्छंदचारिता, विलासिता और धर्मांधता से लोक-जीवन में एक विचित्र निराशा, रूढ़िवादिता और सड़न पैदा हो गयी थी, जिसे दूर करने के लिये सामाजिक एवं धार्मिक मूल्यों का पुनरंकन आवश्यक था । संक्षेपतः इस शताब्दी में देश की स्थिति बहुत कुछ वैसी ही थी जिसमें कबीर, दादू ऐसे युग प्रवर्तक महात्माओं का आविर्भाव हुआ था । इतिहास के इस पुनरावृत्ति काल में उनके द्वारा प्रवर्तित पंथों ने ही जातीय गौरव की रक्षा की ।

सगुण भक्ति में इन परिस्थितियों की प्रतिक्रिया

सगुणोपासकों में इन विषम परिस्थितियों की प्रतिक्रिया तीन रूपों में अभिव्यक्त हुई —

(१) तीर्थों में रहकर साधना करने वाले कुछ भजनानंदी महात्माओं ने नगरस्थ तीर्थों को छोड़कर चित्रकूट, मिथिला जैसे मुस्लिम प्रभाव से दूर तथा निर्जन तीर्थों का आश्रय लिया ।[1]

(२) कुछ महात्माओं ने परिस्थितियों का डट कर सामना करने के लिए चारों सम्प्रदायों को सैनिक संगठन का रूप दिया जिसके अनुसार स्थान-स्थान पर द्वारा और अखाड़ों की स्थापना हुई तथा वैरागियों के लिये सैनिक शिक्षा की व्यवस्था की गयी । उदाहरण के लिए महात्मा बालानंद (जन्म सं० १७१०)[2] की लश्करी शाखा का नाम लिया जा सकता है ।

(३) नित्य ध्वस्त किये जाने वाले मंदिरों और खंडित मूर्तियों को देखकर कुछ लोगों के हृदय में अर्चावतार के प्रति स्वाभाविक अनास्था उत्पन्न हुई जिसने उन्हें निर्गुणोपासना की ओर प्रेरित किया । हरिरामदास की निम्नलिखित पंक्तियों में मूर्ति-पूजा की इस प्रतिक्रिया का स्पष्ट उल्लेख है —

देवल ढहता देखिया देव न भया उदास ।
जन हरिया उन मूढ़ को हूदो न खूनै गास[3] ॥

रामसनेही सम्प्रदाय की स्थापना

रामसनेही सम्प्रदाय का प्रवर्तन इन्हीं विषम परिस्थितियों में हुआ । इसको

१ मिथिला माहात्म्य ■ द १ (राम भक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ० ११७ से उद्धृत)
२ रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ० ३६६
३ श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश, पृ० ६५

तीनों शाखाओं की स्थापना का श्रेय प्रतिक्रिया के उपयुक्त तीनों रूपों में से अंतिम को है। शाहपुरा शाखा के आद्याचार्य रामचरण पहले सगुणोपासक थे और बाद में परम्परागत धर्म को छोड़कर निर्गुणोपासक हो गये[1]। दरियाँ साहब के माता पिता तीर्थव्रत आदि में विश्वास करते थे[2] और दरियासाहब के भी दीक्षा से पूर्व तीर्थव्रत में विश्वास करने के संकेत मिलते हैं।[3] सिंहथल खेड़ापा शाखा के आद्याचार्य जयमलदास के सम्बन्ध में भी कहा जाता है कि वे पहले सगुणोपासक थे और बाद में उन्होंने निर्गुण निराकार राम को अपना आराध्य बनाया। कहते हैं कि वे पहले सावतसर नामक किसी ग्राम में निवास करते थे और परम्परागत वैष्णव धर्म के अनुसार मूर्ति पूजा एवं सगुणोपासना में आस्था रखते थे। सं० १७६० में 'चतुर्मास्य' मनाते हुए एक दिन दोपहर के समय वे गीता प्रवचन कर रहे थे। उसी समय पथिक रूप में परब्रह्म राम वहाँ आये और इनसे पानी माँग कर पिया। जाते समय उन्होंने एकांत में इन्हें योग क्रिया सहित मूल तारक मंत्र का उपदेश दिया और कर्मकांड से दूर रहने के लिए कहकर अन्तर्धान हो गये[4]। इस घटना से इतना स्पष्ट प्रतीत होता है कि उन्होंने सगुणोपासना का परित्याग करके निर्गुणोपासना स्वीकार की थी।

रामसनेही सम्प्रदाय की तीन शाखाएँ

राजस्थान में रामसनेही सम्प्रदाय की तीन प्रधान शाखायें स्थापित हैं जिनकी

---

१ The preci e period nor the causes, which led him to abjure the religion of his fathers, do not appear but he steadily denounced idol worship and suffered on this account great persecution from the Brahmans

Journal of the Asiatic Society of Bengal P 65

२ तब उर उपजा क्रोध पिता ने ताज घर बारा।
मक्का मदीना जाय करी पुनि तीरथ सारा।
मना मनोरथ धार नानि निज साथे लीन्ही।
चले द्वारिका धाम सुरत हरि चरणा दीन्हीं।

—अनुभवगिरा (जीवन चरित्र), पृ० ५०

३ अड़सट तीरथ न्याय करे पृथ्वी का दौरा।
चहूँ फर फिर जाम गुरू बिन रहता कोरा।
कब मिलि है गुरुदेव सत्य समरथ गुरु पाऊँ।
कब द्विविधा मिट जाय साधु का शिष्य कहाऊँ।

—अनुभवगिरा (जीवन चरित्र), पृ० ५८

४ श्री रामस्नेह धर्मप्रकाश, पृ० १२

अपनी अलग अलग परम्परायें हैं। तीनों के मूल केन्द्र शाहपुरा, सिंहथल और रेण में हैं। सिंहथल की एक शाखा खेडापा में है, जिसकी परम्परा स्वतन्त्र रूप से चल रही है। अत प्रस्तुत अध्ययन में सिंहथल शाखा के अन्तर्गत ही खेडापा गद्दी के साहित्य एवं आचार्य-परम्परा का अनुशीलन किया जायगा।

सम्प्रदाय की तीनों शाखाओं मे समानता

ये तीनों सम्प्रदाय कहने के लिए तीन हैं, किन्तु इनके आचार विचार प्राय एक से है, अत इनके दार्शनिक विचारों, साधना और धर्म का विवेचन सम्मिलित रूप से प्रस्तुत किया गया है।

सगुण भक्ति का प्रभाव

रामसनेही सम्प्रदाय की स्थापना सगुणोपासना से विरक्ति और मूर्तिपूजा के प्रति उत्पन्न अनास्था के परिणामस्वरूप हुई थी। इस सम्प्रदाय के सन्त कवियों ने एक ओर तो अन्य निर्गुणिया सन्तों की भाँति अवतारवाद, मूर्तिपूजा, तीर्थव्रत एवं कर्मकाण्ड की घोर निन्दा की है, और दूसरी ओर अपने व्यावहारिक जीवन में सगुण भक्ति के अनेक तत्वों को ग्रहण भी कर लिया है जिनमें गीता, भागवत आदि संस्कृत ग्रन्थों की स्वीकृति, अवतारवाद की आंशिक भावना, माला तिलक आदि की गणना की जा सकती है। इन सन्तों का विरहानुभूति तथा की अभिव्यक्ति में गृहीत स्थूल प्रतीक भी इस सम्प्रदाय के सन्तों पर पूर्ववर्ती सगुण भक्तिधारा का प्रभाव सूचित करते है।

जैन-प्रभाव

यों तो रामसनेही सम्प्रदाय की साधना पर वैदिक, बौद्ध, नाथपंथी, निरंजनी और सूफी प्रेम साधना का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पडता है, किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि इस सम्प्रदाय पर इन सब साधनाओं की छाया सतमत के माध्यम से ही पडी है। साम्प्रदायिक आचार पर स्वतन्त्र प्रभाव केवल जैन धर्म का पडा। इसका कारण था, सम्प्रदाय की मूल भूमि राजस्थान की शताब्दियों से जैन धर्म के केन्द्र रूप मे प्रतिष्ठा। इस हेतु वहाँ के लोक जीवन में जैन धर्म के तत्व अलक्षित रूप से जड जमा चुके थे। अत इसके प्रवर्तक सन्तों की विचार धारा उनके पूर्व संस्कारों से प्रभावित रही। इस सम्बन्ध मे दूसरा कारण यह है कि शाहपुरा शाखा के आद्याचार्य रामचरण माहेश्वरी वैश्य थे। इस जाति की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि खडेले के खगल सेन राजा ने पुत्र प्राप्ति के लिए यज्ञ किया। यज्ञ कुंड से एक सुजान नामक लडका उत्पन्न हुआ। वह बाद में जैन धर्मावलम्बी हो गया और अपने साथियों को लेकर विष्णु मन्दिर गिराने लगा। अन्त मे ब्राह्मणों के शाप से वह अपने समस्त साथियों के साथ पाषाण हो गया। कुछ दिनों के उपरान्त शिव-पार्वती के अनुग्रह से वे सब पुन जीवित हो

गय। महेश की कृपा से जीवित होने के कारण वे माहेश्वरी कहलाये।[1] इस जाति के आचार विचार आज भी बनिया जैसे हैं। कहने की आवश्यकता नही कि रामसनेही सम्प्रदाय म माहेश्वरियो की सख्या आज भी आधे से अधिक है।

आलोच्य सम्प्रदाय के निम्नलिखित आचार जैन-प्रभाव के द्योतक है —

१ जल छान कर पीना।
२ रात म दीपक न जलाना।
३ सूर्यास्त के बाद भोजन न करना।
४ वर्षा ऋतु म घर से दूर न जाना और चौमासा एक ही स्थान पर व्यतीत करना।

रामसनेही शब्द की व्याख्या

रामसनेही शब्द 'राम' और 'सनेही' अथवा 'स्नेही' शब्दो के योग से बना है। स्नेही का शाब्दिक अर्थ होता है, स्नेह करने वाला अभिभावक या मित्र। इस प्रकार रामसनेही शब्द के दो अर्थ होते हैं—राम से स्नेह रखने वाला भक्त और भक्तो म स्नेह रखने वाले राम। भक्तो ने इस शब्द का प्रयोग अधिकतर भक्तो के स्नेही राम के अर्थ म किया है। नामदेव,[2] कबीर,[3] गोस्वामी तुलसीदास[4] आदि की कृतियो मे यह शब्द इसी अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है, किन्तु भक्ति-साहित्य म इस शब्द का प्रयोग यत्र-तत्र राम से स्नेह रखने वाले भक्तो के अर्थ

१ जाति भास्कर, पृ० २७६ ७७

२ मोकउ मिलिउ राम सनेही।
जिहि मिलिए देह सुदेही ॥

हिन्दी को मराठी सन्तो की देन, पृ० २४४

३ (अ) कब देखू मेरे राम सनेही।
जा बिन दुख पावै मेरी देही ॥

क० ग्र० प १६४

(ब) अब मैं पायो राजाराम सनेही,
जा बिन दुख पावै मेरी देही ॥

वही' पृ० १८४

४ राम राम कहि राम सनेही।

—मानस—अयोध्या काड, दोहा १४४

अपनी अलग अलग परम्परायें हैं। तीनों के मूल केन्द्र शाहपुरा, सिंहथल और रेण में हैं। सिंहथल की एक शाखा खेड़ापा में है जिसकी परम्परा स्वतन्त्र रूप से चल रही है। अत प्रस्तुत अध्ययन में सिंहथल शाखा के अन्तर्गत ही खेड़ापा गद्दी के साहित्य एवं आचार्य-परम्परा का अनुशीलन किया जायगा।

सम्प्रदाय की तीनों शाखाओं में समानता :

ये तीनों सम्प्रदाय कहने के लिए तीन हैं, किन्तु इनके आचार विचार प्राय एक से हैं, अत इनके दार्शनिक विचारों, साधना और धर्म का विवेचन सम्मिलित रूप से प्रस्तुत किया गया है।

सगुण भक्ति का प्रभाव

रामसनेही सम्प्रदाय की स्थापना सगुणोपासना से विरक्ति और मूर्तिपूजा के प्रति उत्पन्न अनास्था के परिणामस्वरूप हुई थी। इस सम्प्रदाय के सन्त कवियों ने एक ओर तो अन्य निर्गुणिया सन्तों की भांति अवतारवाद, मूर्तिपूजा, तीर्थव्रत एवं कर्मकांड की घोर निन्दा की है, और दूसरी ओर अपने व्यावहारिक जीवन में सगुण भक्ति के अनेक तत्वों को ग्रहण भी कर लिया है, जिनमें गीता, भागवत आदि संस्कृत ग्रन्थों की स्वीकृति, अवतारवाद की आंशिक मान्यता, माला तिलक आदि की गणना की जा सकती है। इन सन्तों का विरहानुभूति की अभिव्यक्ति में गृहीत स्थूल प्रतीक भी इस सम्प्रदाय के सन्तों पर पूर्ववर्ती सगुण भक्ति धारा का प्रभाव सूचित करते हैं।

जैन-प्रभाव

यों तो रामसनेही सम्प्रदाय की साधना पर वैदिक, बौद्ध, नाथपंथी, निरंजनी और सूफी प्रेम साधना का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है, किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि इस सम्प्रदाय पर इन सब साधनाओं की छाया सन्तमत के माध्यम से ही पड़ी है। साम्प्रदायिक आचार पर स्वतन्त्र प्रभाव केवल जैन धर्म का पड़ा। इसका कारण था सम्प्रदाय की मूल भूमि राजस्थान की शताब्दियों से जैन धर्म के केन्द्र रूप में प्रतिष्ठा। इस हेतु वहाँ के लोक-जीवन में जैन धर्म के तत्व अलक्षित रूप से जड़ जमा चुके थे। अत इसके प्रवर्तक सन्तों की विचार धारा उनके पूर्व संस्कारों से प्रभावित रही। इस सम्बन्ध में दूसरा कारण यह है कि शाहपुरा शाखा के आद्याचार्य रामचरण माहेश्वरी वैश्य थे। इस जाति की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि खडेले के खंगल सेन राजा ने पुत्र प्राप्ति के लिए यज्ञ किया। यज्ञ कुंड से एक सुजान नामक लडका उत्पन्न हुआ। वह बाद में जैन धर्मावलम्बी हो गया और अपने साथियों को लेकर विष्णु मन्दिर गिराने लगा। अन्त में ब्राह्मणों के शाप से वह अपने समस्त साथियों के साथ पाषाण हो गया। कुछ दिनों के उपरान्त शिव-पार्वती के अनुग्रह से वे सब पुन जीवित हो

गये। महेश की कृपा से जीवित होने के कारण वे माहेश्वरी कहलाये।[1] इस जाति के आचार विचार आज भी बनियों जैसे हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि रामसनेही सम्प्रदाय में माहेश्वरियों की संख्या आज भी आधे से अधिक है।

आलोच्य सम्प्रदाय के निम्नलिखित आचार जैन-प्रभाव के द्योतक हैं —

१ जल छान कर पीना।
२ रात में दीपक न जलाना।
३ सूर्यास्त के बाद भोजन न करना।
४ वर्षा ऋतु में घर से दूर न जाना और चौमासा एक ही स्थान पर व्यतीत करना।

रामसनेही शब्द की व्याख्या

रामसनेही शब्द 'राम' और 'सनेही' अथवा 'स्नेही' शब्दों के योग से बना है। स्नेही का शाब्दिक अर्थ होता है, स्नेह करने वाला अभिभावक या मित्र। इस प्रकार रामसनेही शब्द के दो अर्थ होते हैं—राम से स्नेह रखने वाला भक्त और भक्तों से स्नेह रखने वाले राम। भक्तों ने इस शब्द का प्रयोग अधिकतर भक्तों के स्नेही राम के अर्थ में किया है। नामदेव,[2] कबीर,[3] गोस्वामी तुलसीदास[4] आदि की कृतियों में यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, किन्तु भक्ति-साहित्य में इस शब्द का प्रयोग यत्र-तत्र राम से स्नेह रखने वाले भक्तों के अर्थ

१ जाति भास्कर, पृ० २७६-७७

२ मोकउ मिलिउ राम सनेही।
जिह मिलिए देह सुदेही॥

हिंदी को मराठी संतों की देन, पृ० २४४

३ (अ) कब देखूं मेरे राम सनेही।
जा बिन दुख पावै मेरी देही॥

क० ग्र० प १६४

(ब) अब मैं पायो राजाराम सनेही,
जा बिन दुख पावै मेरी देही॥

वही' पृ० १८४

४ राम राम कहि राम सनेही।

—मानस—अयोध्या काण्ड, दोहा १४४

म भी देखन को मिलता है[1] । राम सनेही सम्प्रदाय क साहित्य म यह श द राम स स्नेह रखने वाले प्रेमी भक्तो का ही व्यजक माना गया है।

रामसनेही सन्त के लक्षण

साम्प्रदायिक साहित्य म रामसनेही साधु के अनेक लक्षण दिय गय हैं। स्वामी रामचरण ने रामसनेही सन्त की निम्नलिखित विशेषताए बताई हैं —

१ राम का स्मरण ।
२ माया का त्याग ।
३ भिक्षा पर जीवन निर्वाह ।
४ अपने ही स्थान पर निवास करना ।
५ किसी से कुछ प्राप्ति की आशा न करना ।
६ एकमात्र राम का इष्ट ।
७ बहुदेवोपासना से विमुखता ।
८ नगे पैर रहना ।
९ गुरु-दर्शन ।
१० दयालुता ।
११ विषय-त्याग ।
१२ विष वचन-त्याग ।
१३ हँसी-तमाशा का परित्याग ।
१४ मादक द्रव्यो का त्याग ।
१५ जुआ, चोरी, झूठ, कपट का त्याग ।
१६ मास मदिरा का त्याग ।
१७ पानी छान कर पीना ।
१८ देख कर पृथ्वी पर पैर रखना ।

---

१ (अ) जाप मरै अजपा मरै अनहद हू मरिजाय।
रामसनेही ना मरै कहै कबीर समुझाय॥
—कबीर, पृ० ३६२

(ब) कामणि कालो नागणी, तीयू लोक मझारि।
रामसनेही ऊबरे, विषइ खाय झारि॥
—क० ग्र०, पृ० ३९

(स) जगत सनेही जीव है, राम सनेही साध।
तन मन धन तजि हरि भजै, जिनका मता अगाध॥
—स० वा० रे स०, भाग १, पृ० १७७

१९ अयाची होना।
२० अपरिग्रही होना।
२१ अडिग समाधि धारण करना।
२२ निश्चल मन।
२३ संयम शील, संतोष तथा सत्यव्रत धारण करना।¹

प्रायः इन्हीं लक्षणों की ओर सकेत करते हुए महात्मा दयालुदास ने भी कहा है —

मिलता पारख प्रसिद्ध विमल चित रामसनेहीं
उर कोमल मुख निर्मल प्रेम प्रवाह विदेही
स्मरण परसण भाव नेम नित श्रद्धा दासा
साच वाच गुरु नाम भक्ति प्रणमत इक आसा

---

१ साधु सुमिरै राम काम माया से नाहीं।
छान्न भोजन हेतु बसे नहिं दुनिया माहीं॥
(क) पर इच्छा की भीख पाय बरते निज देहा।
अपणा निज घर छाडि करै नहिं पर घर नेहा॥
आशा बाध्या ना फिरै विचरै सहज सुभाय।
रामचरण ऐसा जनी रामकृपा सं पाय॥

इष्ट राम रमतीत आन को पूठ दई है।
पग लगे गुरु दश दया को मूठ गही है॥
विषय त्याग विष वचन हास खिलवत नहिं जाणे।
हानि वृद्धि की बार भरोसा हरि को आणे॥
जूवा चोरी पर लुध झूठ कपटा नहिं राखै।
भांग तमाखू अमल अखज मदपान न चाखै॥
वे राम स्नेही जाणिय जो कारज अपणो करै।

अणभैवाणी, पृ० १२२

(ख) रामस्नेही साध सो ऐसी लक्षण माहिं।
मुख सू कछु मांगै नहीं संग्रह परसा नाहिं॥
संग्रह हरसा नाहिं राम बिन और न जानै।
श्रामण सुमरण अचल चचलता मन की भानै॥
सजम शील सन्तोष सत दया धर्म उपजाहिं।
रामस्नेही साध सो ऐसो लच्छन माहिं॥

—अमृत उपदेश—चौथा प्रकाश, छन्द ३६

देह गेह सम्पति सकल हरि अपरण पर मानिय
जन रामा मन वच कम रामसनेही जानिये
खान पान पहिरान निर्मलो दशा सुहाई
सात्विक लेत अहार हिंसा करिहै न कदाई
नीर छाण तन वरत दया जीवा पर राखै
बोले ज्ञान विचार असत कबहूँ नहिं भाखै
साधु सगति व्रत सुदृढ नम प्रेम दासातिया
रामस्नेही रामदास तन मन धन लेखे किया
श्रद्धा सुमिरण राम मौन मन राम सनेही
गुण ग्राही गुणवन्त साथ लेखे हरिदेही
अमल तमाखू भाग तजै आमिष मद पानम्
जुआ द्यूत का कम नारि पर माता जानम्
साच शील क्षमा गहै राम राम सुमरण रता
रामा भक्ति भाव दृढ रामस्नेही य मता[1] ॥

सत जगन्नाथ न राम रामसनहिया के ३२ लक्षण बताये है, जो उपयुक्त दोनों महात्माओ द्वारा निर्दिष्ट सूची के अन्तगत आ जाते हैं—

रामसनही नाम सो पाल बत्तीस लछि।
सबै ठाम का ठाम सो आगै सुण लीजियो ॥२९९॥
गुरु दरसण परभात, करै परिक्रमा गुर की।
सीस चरणामृत पाई तिलक माथै श्री भरकी ॥
भजै राम दोइ अक सक बिन हरि जस गावै।
जल गाढै पर छाण आस पूजै न पुजावै ॥
हरिप सोग सम भाई भरम पस्या न मान।
भाग तमाखू अमल पान जरदो नहि खाल ॥
ऊचो सगति करै नीच का सग न राखै।
झूठ कपट पाखड पार की बुरा न ताकै ॥
नचा ममा की गाल सुणै नहिं मुख सू भाप।
रामसनेही चाल सुध ऐ लछण बत्तासे ॥
जगन्नाथ गाय कहै जावे सतगुर सीस[2]॥

---

१ दयालुदास की वाणी, प० स० ६८४ ६९८

२ गुरु लीला विलास (जगन्नाथ), छन्द २९९ ३००

ॐश्रीगणेशायनमः श्रीगुरुभ्योनमः अथगुरुदेव अंगगुरु श्री
स्वप्रगुरुदेवरामदासदाय॥माधमहाराजश्रीदयालदासजी
महाराजकीवाणीलिखते॥अनभैवाणीगुरुदेवकाअं॥
अथप्रथमगुरुदेवअंग॥श्लोक॥ब्रह्मरूपपरापरब्रह्म॥सच्चि
दानंदनिराभिमिहा॥सर्वैपरमप्रकासीच॥रमन्तीनरामारम॥
केसारमतत्तमच॥रामदासगुरुहृष्टं॥सदाकालंजपेजापं॥
त्रिविधतापविनासनं॥१॥गुरुपरपरापरब्रह्म॥गुरुरदीनद
यालजी॥चदामासरामदास॥दयालवालनिमस्तत्र॥२॥सा॥
॥नमोरामगुरुदेवजी॥जननिकालनकेवद॥विघनहरण
मंगलकरण॥रामदासआनंद॥१॥जैजैजैमनदासगुर॥
नमोनमोहरराम॥रामदासपदकंजरज॥दयालवालविश्रा
म

दयालुदास की वाणी (श्री बडा रामद्वारा, सूरसागर, जोधपुर की प्रति) के प्रथम पत्र की छायाचित्र लिपि।

देसणोक नामक स्थान पर निवास करने लगे।[1] रामदास के शिष्य महजराम के मुख से 'सतगुरु सबद' सुनकर ये प्रभावित हुए, और सम्वत् १८४४ मे खेड़ापा जा कर दीक्षा ले ली।[2] कुछ ही दिनों में ये बहुत बड़े साधक के रूप में प्रसिद्ध हो गये। गुरु आज्ञा से इन्होंने घूम घूम कर धर्म प्रचार किया। इस सम्बन्ध में इन्होंने अलवर, कोटा, उदयपुर, जयपुर, भरतपुर आदि स्थानों का भ्रमण किया था। अन्त में जोधपुर में इन्होंने अपनी साधना-कुटी बना ली और मृत्युपर्यन्त वहीं रहे। यह स्थान जोधपुर नगर के सूरसागर मुहल्ले में स्थित है। आज भी वहां सम्प्रदाय का एक सुरम्य राम द्वारा है, जहां अनेक सन्त महात्मा निवास करते हैं। परशुराम जी का देहावसान पौष कृष्ण २, सोमवार सम्वत् १८६६ को हुआ।[3]

रामसनेही सम्प्रदाय में विरक्त शाखा के प्रवर्तन का श्रेय इन्हीं को है। इन्होंने संयम नियम पर विशेष बल देकर सम्प्रदाय में अनुशासन स्थापित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। इनकी समस्त रचनाएं सूरसागर के रामद्वारे में सुरक्षित हैं। इस गद्दी के वर्तमान महन्त परमहंस अभयराम जी ने बड़ी कृपा करके इन पंक्तियों के लेखक को सम्पूर्ण सामग्री दिखाई। परशुराम जी की निम्नलिखित सात रचनाएँ हैं —

१ शिष्य प्रश्न सोरठा	४ गुरु महिमा
२ गुरु-शिष्य संवाद	५ ज्ञानसबोध
३ गूढकूप का प्रसंग	६ प्रत्यय सिद्धान्त

७ सजीवण बोध

इनकी काव्यधारा के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं —

अवचल अखंड अनादि है जिण का काहा परवान।
नाही है है परसराम अनभव करत बखान॥

---

१ बीठनोक में जनमहि धरियो।
पीछे वास देसणोक करियो॥
— वही (वही, पृ० १३००)

२ चमालीसा बरस में महावद पप जाय।
तब सतगुरु दिया लई सुन जो सत सकोय॥
सेवकरामकृत परचो (वाणी गुटका, पृ० १३०१)

३ (अ) डेढ मास अरु तीन दिन बरस बहोत्तर जान।
परस राम परगट हुआ मिले ब्रह्म स्थान॥
वही (वही, पृ० १३२१)
+ + +
(ब) समाधि में मिला सेन से

पुरुष प्रगट ताते भयो दिव्य कला सयुक्त।
याको परकर वरह हूँ गुरगम ग्यान उक्त॥
प्रग्रत प्रगट भई पुरषते दोय को भयो सयोग।
यू जग उतपत परम राम देह इन्द्री गुणभोग॥[1]

जल तरग जल म उठै जल मै रहै समाय।
तरग सत्त न सत्त जल, याको भेद बताय॥
याको भेद वताय ताय मन कैसी भावै।
सत ग्रसत का भ्रम कहा मोहि निश्चै भावै॥
परसराम जन कहत है ग्यान गुप्ट कै माहि।
जल तरग जल म उठै जल म रहै समाय॥
निराकार दरियाव है लहैर उठै ग्राकार।
उलट समावे तास म द्वैत रहै न लिगार॥
द्वैत रहै न लिगार धारता को विसवासा।
ग्रौर ग्रस्त सब नाम उपज फिर होत विनासा॥
परसराम सतगुर मिल्या इनको लहै विचार।
निराकार दरियाव है लहैर उठै ग्राकार॥[2]

पीथोदास

पीथोदास रामदास के बावन शिष्यो मे स थे।[3] इनका जन्म मारवाड के ग्रन्थावम नामक ग्राम मे कार्तिक ग्रमावस्या (दीपावली) सम्वत् १७६६ को हुग्रा था। इनके पिता का नाम भाना जी ग्रौर माता का नानूबाई था। कुछ समय के उपरान्त इनके पिता जी सपरिवार मेल्हाणे ग्राम मे जाकर रहने लगे थे। एक बार मारवाड मे भयकर ग्रकाल पडा। उस समय ये मध्य प्रदेश के चारखेडे नामक स्थान पर चले गये। सुकाल ग्राने पर फिर य मारवाड के रुदिये ग्राम म ग्राकर बस गय।

रुदिये मे इनका परिचय रामदास क शिष्य गगाराम स हुग्रा। गगाराम से रामदास की प्रशसा सुनकर य ग्रत्यन्त प्रभावित हुए ग्रौर खडापा जाकर उनसे दीक्षा ग्रहण की। दीक्षोपरान्त स० १८३२ तक इन्होने रुदिये ग्राम मे ही रहकर साधना की। स० १८३३ म य मालवा चल गय ग्रौर वहा जमुनिया नामक ग्राम मे ग्रपना ग्रासन जमाया। इसी स्थान पर १२ वष की घोर तपस्या के उपरान्त इनकी साधना

१ ग्ररथ सिद्धान्त (वाणी गुटका, पृ० स० २५१)
२ वाणी गुटका -मायाब्रह्म निरण को ग्रग, छ० १-३
३ श्री नाद बृग

फलवती हुई। अपनी सिद्धि के लिये ये चारों ओर विख्यात हो गये। इनकी प्रसिद्धि सुनकर रतलाम नरेश परवत सिंह ने इन्हें अपने यहाँ आमंत्रित किया। तब ये रतलाम में स्थायी रूप से रहने लगे और वहाँ पर रामद्वारे की स्थापना की। इसी स्थान पर फाल्गुन शुक्ल २, स० १८५१ को पंच भौतिक शरीर त्याग कर ये ब्रह्म लीन हो गये।

अभी तक पीथोदास की केवल तीन रचनाएं प्राप्त हैं

१ बेहद बोध।
२ गुरुमहिमा
३ छुगुल ग्रन्थ।

साखी, कवित्त, सवैया, रेखता, पद आदि छंदों में लिखी गई इनकी कुछ अणवद्ध वाणी भी मिलती है। इसके अतिरिक्त इन्होंने प्रचुर मात्रा में पद लिखे थे जो यत्र-तत्र भजन संग्रहों में प्रकाशित हैं। इनकी रचना के दो नमूने नीचे दिये जाते हैं -

तुम हरि मेरे मैं हूँ तेरो मंगल गाय बधाऊँ सबेर ॥ टेक ॥
तुम बिन पल न सुहावें मोकूं बिरद किसा द गाऊं तोकूं ।
बीन बजाऊं शब्द सुनाऊं मैं मेरे मंदिर ले जाऊं ॥
खोजो खोज पकर के पाया साधु सवारण कर सुख आया ।
पीथल के पति राम रमैया दुखित दुबल को दान देवैया ॥[1]

देख सहेली भाग हमारो आठ पहर रहा मगन मतवारो ॥ टेक ॥
अमृत पाता नहीं अघावे जा पाव ताको तृपार जावे ॥
राम चखावें मैं ले चाखू आप भखावें ज्यों भाखू ॥
अनुभव ग्रन्थ सदा शुद्ध बोलू ग्राहक आगे गाठ ही खोलू ॥
सखी सयानी रामलड़ावो, पीथल पिया पिया गुन गावो ॥[2]

हरिदेवदास

हरिदेवदास जी सिंहथल के आदि पाठाचार्य संत हरिरामदास के शिष्य और पौत्र थे। इनके पिता विहारीदास का निधन युवावस्था में हो गया था जिसके कारण हरिदेवदास ने अपने पितामह श्री हरिरामदास से दीक्षा ली और मात्र १० वर्ष की अवस्था में वि० स० १८३५ में वैशाख कृष्ण ८ को सिंहथल की गद्दी पर आसीन हुए। इनके पीठासीन होने के केवल एक महीने बाद हरिरामदास का निधन हो गया।

---

१ श्री हरियश-मणि मंजूषा, पृ० ३६८
२ श्री हरियश-मणि मंजूषा पृ० ३६८

अत हरिदेवदास, हरिरामदास के प्रिय शिष्य नारायणदास के संरक्षण में, अध्यात्म पथ पर सयम पूर्वक अग्रसर हुए। थोडे ही समय में इनके शास्त्राभ्यास और तपोमय जीवन को देख कर लोग आश्चर्यचकित रह गये। मोतीराम कृत निम्नलिखित छंद में हरिदेवदास के व्यक्तित्व पर विशद प्रकाश पडता है—

> हरिराम के पाट तपे हरिदेव जु हंस दशा सब संतन प्यारो।
> दीरघ दृष्टि रु नैन विशाल जु राग रु द्वेष दोऊ पख न्यारो।
> सील सतोष सदा मन सीतल ग्यान रु ध्यान भगति को भारो।
> मोतियराम कहै कर जोर जु भेष को टेक निभावन वारो।

इनका देहावसान वि० स० १८६४ में फाल्गुन कृष्ण ५ को हुआ।

हरिदेवदास ने गुरु महिमा, आत्म बुत, ग्यान विचार, नाम महिमा, आत्म विचार, ब्रह्म प्राप्ति जन विचार, सिवरण बोध और करुणा निधान के अतिरिक्त प्रचुर मात्रा में साखियो, वाणी और पदों की रचना की। इनकी वाणी में आत्म चिंतन और लोकानुभव का अद्भुत सामंजस्य हुआ है। इनकी रचना शैली के कुछ नमूने निम्नोद्धृत हैं—

> दीप मति ग्यान होइ पायो अनक ग्यान,
> हुसमे लघुसान माहि महिमा विचार है,
> मन सा सत वग बाये विचारे विहग सोद,
> कछु हक पर ग्यान पक्षा उडिय सरिधार है।
> वस्त्रादि अनाट सारे कम्बल कुचील एवा,
> ओड्या तन सोय सरिहै श्याम रङ्ग सार है
> कहे मति हीम मोहि होव न लोय एसो,
> तसा उर आप जसो बरणे निज भार है॥[1]

> अक्षर सार अनपार गम अंत न को,
> पावन प्रकार ताको वाने विधि सार है
> पावन गुण ग्यान वाको धार न सरकार जोहा,
> नामहू निकार एको निहचे उरधार है।
> देवा निज देव ताहि सेवा अपार सोई
> अधम उधारि वर वाने विन तारि हैं
> आवे हरिदेव भेव पाखे मलीन जीवा,
> आपा विरद बाचि राम ताकू उधारि है॥[2]

---

१ हरिदेवदास जी महाराज की वाणी, सम्पा० भगवद्दास शास्त्री, पृ० १०१

२ वही, पृ० ११३

नैतिक विधान :

रामसनेही सम्प्रदाय की सिंहथल-खेड़ापा शाखा में 'नियम पंचदशी' नाम से पंद्रह नियम नैतिक विधान (Moral Code) के रूप में स्वीकार किये गये हैं।[1]

१ निर्गुण निराकार राम इष्ट रखना और उन्हीं की परामक्ति से उपासना करना।

२ वेद, श्रुति, स्मृति, गुरुवाणी, शास्त्र, आर्ष ग्रंथ, पुराण, आप्त वाक्यों को मानना और सद्विद्या का प्रचार करना।

३ पाठ-पूजन, सन्ध्या-वंदनादि नित्य कर्मों का पालन करना और शरीर के सारे सुखों को छोड़कर निरंतर रामस्मरणपूर्वक योगाभ्यासी होना।

४ सद्गुरु और संतों की आज्ञा मानना, उनको ईश्वर-रूप जानना और सत्संग को परम लाभ समझना।

५ अपने सब व्यवहारों को ईश्वराधीन जानना और सत्य धर्मयुक्त सात्विक उद्यमी होना।

६ भोजनादि की चिन्ता न करना और न किसी से याचना करना। केवल सर्वशक्तिमान् एक ईश्वर का आश विश्वास रखना।

७ ईश्वर को अर्पण किया हुआ प्रसाद ग्रहण करना। अन्य देवताओं का प्रसाद न स्वीकार करना।

८ शील, संतोष, त्याग, वैराग्य, क्षमा, सरलता, धृति आदि धारण करना और हित, मित तथा सत्यभाषी होना।

९ काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष, अभिमान, ईर्ष्या, निन्दा आदि का त्याग कर अंतःकरण शुद्ध रखना, यम-नियम से रहना और स्त्री मात्र को माता-बहिन समझना।

१० जल छान कर पीना, रात्रि में भोजन न करना, जीव रक्षार्थ देखकर पैर रखना, और चातुर्मास्य में विहार न करना अर्थात् एक स्थान पर रहना।

११ दूसरों के सुख-दुःख हानि-लाभ को अपनी ही तरह समझना और सबकी उन्नति में अपनी उन्नति मानना।

१२ मानापमान रहित होकर तन-मन-वचन से परोपकार करना और प्राणी मात्र को आत्मरूप से देखना।

१३ भांग, तम्बाकू, अफीम, पोस्ता, गांजा, चरस, सुल्फा आदि नशा करने वाली वस्तुओं और मांस, मदिरा, जुआ आदि दुर्व्यसनों से दूर रहना तथा व्यसनी एवं बुरे लोगों की संगति में न रहना।

१४ बाह्याडम्बर में रत न हो शुक्ल अथवा सात्विक रङ्ग रञ्जित वस्त्र धारण करना और हर समय ईश्वर को याद करते रहना।

---

१ श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश, प्रथम भाग, पृ० ७८

१५ भ्रमात्मक भीरुता में न फँसकर सद्गुरु द्वारा प्राप्त वेदानुकूल सत्पथ का अनुसरण करना।

इन्हीं से मिलते जुलते, रामसनेही सम्प्रदाय की शाहपुरा शाखा[1] में ६ और रेण[2] में ११ नियमों का विधान किया गया है।

वस्त्र

रामसनेही सम्प्रदाय की तीनों शाखाओं में वस्त्र सम्बन्धी भिन्नता है। शाहपुरा शाखा के सन्त हिरमिज में रंगे वस्त्रों का उपयोग करते हैं। अब ये हिरमज के बदले गुलाबी रङ्ग के वस्त्र धारण करने लगे हैं। इस शाखा के साधु कोपीन धारण करते हैं तथा चादर के दोनों किनारों को दोनों पार्श्वों से लाकर गर्दन पर बाँध लेते हैं जिसे ब्रह्मचोला कहा जाता है। ऊपर से एक चादर भी लपेटी जाती है। साधु बैठते समय शरीर को चादर से इस प्रकार ढक कर बैठते हैं कि पैर की अंगुली भी नहीं दिखाई पड़ती। इस शाखा के 'विदेही' महात्मा, जिन्हें अवधूत भी कहते हैं, केवल कोपीन धारण करते है, चादर का उपयोग नहीं करते। मौनव्रत की साधना करने वाले मौनी साधु जिन्हें 'मुनि' भी कहा जाता है केवल काली चादर या चोगा धारण करते है। उनके परिधान का रङ्ग हिरमिज नहीं होता।

सिंहथल खेड़ापा शाखा के रामसनेहियों की चार कोटियाँ हैं—प्रवृत्तिमार्गी, विरक्त, विदेह और परमहंस। प्रवृत्तिमार्गी रामसनेही गृहस्थ की भाँति वस्त्र धारण करते हैं और उनके सिर पर हिरमिज या गुलाबी रंग का साफा होता है। विरक्त सन्त सिला हुआ वस्त्र नहीं पहनते। वे हिरमिज रंग की सदरी, गाँती या ब्रह्मचोला धारण करते हैं। विदेह महात्मा काला कपड़ा पहनते है। वे हाथ के बने कपड़े के जूते (खापन्यिा) धारण करते हैं और वैसा नहा छूत। परमहंस महात्मा वस्त्र नहीं धारण करते किन्तु परमहंस गद्दी सूरसागर (जोधपुर) के लोग नंगे न रह कर काला वस्त्र धारण करते हैं। इस शाखा में पीठाचार्यों के राजसी वस्त्राभूषणों से सुसज्जित रहने का नियम है, जिसको लेकर सम्प्रति कोई आग्रह नहीं दिखाई पड़ता। रेण शाखा के सन्तों का कोई निश्चित वस्त्र नहीं है। इस शाखा में कुछ सन्त शाहपुरा शाखा के सन्तों की भाँति हिरमिज रङ्ग का ब्रह्म चोला' धारण करते हैं।

तिलक

सगुणोपासना में तिलक का बड़ा महत्व है। निर्गुणोपासक सन्त तिलक को वाह्याडम्बर के अन्तर्गत मानते हैं। कबीर दास ने स्पष्ट शब्दों में कहा है—

वैसनो भया तौ का भया बूझा नहीं बवेक।
छापा तिलक बनाइ कर दगध्या लोक अनेक[3]।

---

१ नित्य स्वाध्याय, श्री रामस्नेही महामंडल, देहली, पृ० १३-१४
२ रामस्नेही सतवाणी एवं भजन संग्रह—प्रवेश भाग, पृ० ४-५
३ कबीर ग्रंथावली, पृ० ४६

रामसनेही सम्प्रदाय के महात्माओ ने भी तिलक की यथता पर अनेक प्रकार से प्रकाश डाला है, फिर भी इस तथ्य से इनकार नही किया जा सकता कि इस सम्प्रदाय मे तिलक का व्यवहार सामान्य रूप से होता है। इसे रामनन्दी वैष्णव आचार का अवशेष माना जा सकता है।

रामनन्दी तिलक का स्वरूप

श्री वैष्णव दर्शन पर आधारित होने के कारण रामावत सम्प्रदाय के पच संस्कार भी वैष्णव शास्त्रानुमोदित हैं। तिलक पच संस्कारो का ही एक अग है। रामानुजाचार्य के देहावसान के अनन्तर श्री वैष्णव सम्प्रदाय दो शाखाओं मे विभाजित हो गया—एक टेङ्गलै नाम से प्रसिद्ध हुआ और दूसरा बडकलै कहलाया। इन दोनो शाखाओ मे दो प्रकार के तिलक प्रचलित हुये, जिन्हे क्रमश तिंगल और बडगल कहा जाता है। बडगल तिलक सिंहासन रहित होता है, और तिंगल सिंहासन सहित। रामावत सम्प्रदाय मे इन दोनो प्रकार के तिलकों का प्रचलन है।[1] कालान्तर में सम्प्रदाय की वृद्धि के साथ तिलको के अनेक भेद प्रचलित हो गये। सगुणोपासना म विश्वास न करते हुये भी सन्तो को यह संस्कार पूर्वाचार्य परम्परा से रिक्थ रूप मे प्राप्त हुआ।

रामसनेही सम्प्रदाय के तिलक

रामसनेही सम्प्रदाय मे कुल मिला कर तीन प्रकार के तिलक प्रचलित हैं—(१) वैष्णवों का तिंगल तिलक, (२) श्री तिलक, (३) रामनामी तिलक।

तिंगल तिलक इस तिलक के तीन अंग होते हैं। पहला सिंहासन जो भृकुटि के सन्धि स्थल के नीचे और नासिका के मूल पर रहता है। दूसरा अग ऊर्ध्व पुण्ड्र है, जिसमें सिंहासन से मिली हुई मस्तक के दाहिनी और बाई ओर, बीच म थोडा अवकाश छोड़कर, दो रेखायें लगायी जाती हैं। और तीसरा अग है श्री बिन्दु या श्री रेखा जो ऊर्ध्व पुण्ड्र की दोनों रेखाओ के बीच मे मस्तक पर धारण की जाती है। यह तिलक रामसनेही सम्प्रदाय की केवल सिंहथल खेड़ापा शाखा म प्रचलित है, किन्तु धीरे-धीरे अब इसका प्रचार समाप्त हो चला है।

श्री तिलक श्री तिलक वैष्णव तिलक का एक अग है। इसमे गोपीचन्दन की केवल एक श्री रेखा का प्रयोग होता है। यही तिलक रामसनेही सम्प्रदाय की तीनो शाखाओ का सर्वाधिक प्रसिद्ध तिलक है। शाहपुरा शाखा के सन्त तो आवश्यक रूप से इसी तिलक को व्यवहार म लाते हैं।

रामनामी तिलक इस तिलक का श्री गणेश खेड़ापा शाखा के महात्मा परशुराम ने किया था। इसमें पत्राकार पुण्ड्र के भीतर 'राम' शब्द लिखा रहता है। इस तिलक का प्रयोग अब नहीं के बराबर होता है।

---

१ रामभक्ति म रसिक सम्प्रदाय, पृ० ३२६ २७

तिलक-विवरण

परिचय

(१) स्वामी रामानन्द का तिलक, सिंहासन सहित श्वेत ऊर्ध्व पुण्ड्र, मध्य में श्री की विन्द पत्राकार पतली रेखा।

(२) रामसनेही सम्प्रदाय की शाहपुरा शाखा में सामान्य रूप से प्रचलित गोपीचन्दन का श्वेत तिलक।

(३) महात्मा परशुराम का रामनामी तिलक, पत्राकार पुण्ड्र में भीतर राम।

माला

रामसनेही सम्प्रदाय के सन्त सगुणोपासकों की भाँति माला का भी प्रयोग करते हैं। यद्यपि साम्प्रदायिक साहित्य में माला की निन्दा की गई है फिर भी सम्प्रदाय की तीनों शाखाओं में तुलसी माला का मुक्त रूप में प्रयोग होता है। इसे भी सगुण रामोपासक आचार्यों का प्रसाद समझना चाहिये।

दिनचर्या

रामसनेही सन्तों का सम्पूर्ण समय वाणी-पाठ, गुरु वन्दना, भगवद्भजन सत्संग तथा अपने उपदेशामृत से जनता को लाभान्वित करने में व्यतीत होता है। सन्ध्या को ये निर्गुण आरती करते हैं, जिसमें सन्त और गृहस्थ सभी भाग लेते हैं। इधर इस सम्प्रदाय के बहुत से सन्तों ने वैद्यक का कार्य अपना लिया है। इससे समाज को बहुत बड़ा लाभ हो रहा है।

पर्व

रामसनेही सम्प्रदाय की तीनों शाखाओं में पर्व बहुत कम मनाये जाते हैं। इनके यहाँ का एक मात्र पर्व 'फूलडोल' है। यह पर्व सम्प्रदाय की तीनों शाखाओं में समान रूप से प्रतिष्ठित है। शाहपुरा में इस पर्व के मनाये जाने का समय सामान्य रूप से फाल्गुन शुक्ल ११ से चैत्र शुक्ल ५ तक है, किन्तु उत्सव का विशेष पुरोगम चैत्र कृष्ण १ से चैत्र कृष्ण ५ तक रहता है। खैड़ापा और रेण में इसके मनाने की तिथि क्रमशः फाल्गुन पूर्णिमा और चैत्र पूर्णिमा है।

फूलडोल नामकरण सामान्य रूप से प्रतीत होता है कि वसन्तागमन के समय मनाये जाने वाले इस पर्व का नामकरण प्रकृति का शृंगार करने वाले फूलों के नाम पर हुआ होगा किन्तु गम्भीरता पूर्वक विचार करने पर यह बात स्वतः समझ में आ जाती है कि हर समय षट्ऋतु की शोभा से मंडित अगम देश में विहार करने वाले महात्माओं के लिए राजस्थानी प्रकृति इतनी आकर्षक लग ही कैसे

सकती थी कि वे साधना छोड़कर उत्सव मे तल्लीन हो जाते। कैप्टन वेस्काट ने इस पर्व का सम्बन्ध कृष्ण भक्ति मे मनाये जाने वाले 'फूलडोल' से जोड़ा है,[1] जो कि सम्भावनाओ से परे न होते हुये भी प्रस्तुत प्रसग मे समीचीन नहीं प्रतीत होता। साम्प्रदायिक मान्यता के अनुसार इस पर्व का सम्बन्ध प्रह्लाद और हिरण्यकश्यपु के आख्यान से है। फाल्गुन पूर्णिमा के दिन हिरण्यकश्यपु की बहिन होलिका ने प्रह्लाद को जलाने का उपक्रम किया था। भगवान की कृपा से प्रह्लाद बच गये और होलिका के प्राणो की 'होली' जल गया। भक्त की रक्षा से प्रसन्न हो कर देवताओ ने गगन से फूलो की वर्षा की थी। अतः रामसनेही सम्प्रदाय के सन्तो ने इस पर्व का नाम फूलडोल रखा है।[2]

फूलडोल पर्व के महत्त्व की विवेचना हम दो दृष्टियो से कर सकते हैं। पहली सामाजिक और दूसरी साम्प्रदायिक। निर्गुणी पामक सन्तो की साधना अन्तर्मुखी हुये भी आरम्भ से ही सामाजिक हितो की सजग प्रहरी रही है। उसका प्रवर्तन दूषित, नैतिक तथा आध्यात्मिक प्रवृत्तियो का परिष्कार करने के लिए हुआ था। फूलडोल होली के अवसर पर मनाया जाता है। इसका आयोजन सन्तो ने होली के अवसर पर प्रचलित कुत्सित गीतो और भद्दे प्रदर्शनो की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप किया था। इस प्रकार यह पर्व होली को एक मर्यादित रूप देने की चेष्टा का परिणाम है।

साम्प्रदायिक दृष्टि से भी इस पर्व का कम महत्त्व नहीं है। इस अवसर पर दूर दूर के रामसनेही सन्त आचार्य पीठ पर एकत्र होते हैं। रात-दिन सत्सग चलता है। साम्प्रदायिक व्यवस्था भी इसी अवसर पर ठीक की जाती है। अनुशासनहीन सन्तो के प्रति दण्ड व्यवस्था करने का समय भी यही है।

---

1 The name of festival signifying 'Flowers Swinging' is borrowed, I understand, from the eighteen purans called 'Sri Math Bhagwat, which contains an account of Krishna and intended more particularly for the instruction of his followers

Journal of Royal Asiatic Society, p 76.

२ ऋत वसन्त फागुन मे होई पुरवासी जानू सोई।
सो दिन तो असुरन को होई ग्रह प्रह्लाद जू जारे सोई॥
राम कृष्ण प्रह्लाद न जरिया फूल डोल ता पीछे करिया।
देवन आय पुहुप बरसाये फुलडोल ता नाम कहाये॥

—फूलडोल समाधि, छन्द २०

प्रचार-क्षेत्र

रामसनेही सम्प्रदाय का प्रचार-क्षेत्र मुख्य रूप से राजस्थान है, यद्यपि म प्रदेश, गुजरात और दिल्ली में भी इनकी शाखायें हैं और बम्बई, सूरत, हैदरा पूना, अहमदाबाद तथा बनारस में भी इसके रामद्वारे बताये जाते हैं।[१] प्रस्तुत ले ने बहुत पता लगाने पर भी बनारस मे इस सम्प्रदाय के किसी रामद्वारे का कोई नहीं चला। फिर भी बनारस जैसे सांस्कृतिक केन्द्र पर गत दो शताब्दियों के रामसनेही सम्प्रदाय के किसी छोटे-बड़े रामद्वारे का स्थापित होना असम्भव नहीं हरिरामदास के एक शिष्य लक्ष्मणदास ने मुलतान को अपनी साधना भूमि बन था।[२] पता चला है कि वहां उनकी परम्परा अब भी चल रही है और वे अपने रामसनेही जाति का बताते हैं। सम्प्रदाय में दीक्षित माहेश्वरी और ओसवाल जाति व्यापारी अन्य देशों में भी निवास करते हैं। इनसे इस धर्म के सिद्धान्त विदेशों में प्रचार पाने लगे हैं।

पीठाचार्य की निर्वाचन-पद्धति

शाहपुरा और रेण की पद्धति शाहपुरा और रेण में पीठाचार्य का चुनाव जनतान्त्रिक ढंग से होता है। १८वीं शताब्दी में यह प्रणाली आश्चर्य की बात है, क्योंकि उस समय भारतवर्ष में राजा का ज्येष्ठ पुत्र और सम्प्रदायाचार्य के प्रधान शिष्य ही गद्दी के अधिकारी होते थे। जन तान्त्रिक प्रणाली से हमारा तात्पर्य यह नहीं है कि यहाँ लोग आचार्य पद के लिए चुनाव लड़ते हैं और बहुमत प्राप्त करने वाले को विजयी घोषित किया जाता है। इस सम्प्रदाय की चुनाव पद्धति भिन्न प्रकार की है। नियम यह है कि दिवगत आचार्य की तेरहवी तिथि या किसी निर्धारित समय पर समस्त रामसनेही सन्त एवं गृहस्थ एकत्र होते हैं। साधुओं और गृहस्थों की अलग अलग गोष्ठियाँ होती हैं और विचार विमर्श करके सर्वसम्मत से किसी एक महात्मा को आचार्य बनाने का निर्णय किया जाता है। आचार्य बनने के लिए कोई आवश्यक नहीं है कि वह पीठ-स्थान का ही हो। पीठस्थान, खालसा, थाम्भायत किसी स्थान का रामसनेही साधु आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया जा सकता है। समिति के द्वारा निर्णय हो जाने पर निर्वाचित साधु को बारह द्वारी के ऊपर छत्र मंडल में ले जाकर

---

१ They are met within the neighbourhood of most large cities and towns such as Bombay, Surat Hydrabad, Punah, and Ahmedabad and there are some at Benares,

—Journal of Royal Asiatic Society of Bengal, p, 76

रामसनेही सम्प्रदाय का प्रसार क्षेत्र
साम्प्रदायिक आचार्य पीठ
प्रसार क्षेत्र
अ फ गा नि स्ता न
ति ब्ब त
दिल्ली
बीकानेर
जोधपुर
जयपुर
उदयपुर
सूरत
बम्बई
पूना
हैदराबाद
अ र ब
सा ग र
ब गा ल
की
खा ड़ी
हि न्द म हा सा ग र

गुदडी या अलफी पर बैठा दिया जाता है। से यही चुनाव की मूक घोषणा है। दूसरे दिन वह *विधिवत् आचार्य* पद पर समासीन होता है।

सिंहथल-खेडापा की पद्धति

सिंहथल खेडापा में पीठाचार्य के चुनाव की प्रणाली शाहपुरा और रैण से भिन्न है। यहाँ पर उत्तराधिकार के परम्परागत नियमों का अनुसरण किया जाता है। यहा के आचार्य सम्प्रदाय के सन्तों की सम्मति से अपने जीवनकाल में ही उत्तराधिकारी मनोनीत कर देते हैं। किसी विशेष कारणवश जब कभी ऐसा नहीं हो पाता है तब यहा भी उसी जनतान्त्रिक प्रणाली का अनुसरण किया जाता है, जिसका प्रचलन शा पुरा और रैण की शाखाओं में है।

परम्परा

रामसनेही सम्प्रदाय की तीनों शाखाओं का सम्बन्ध स्वामी रामानन्द से है। रामानन्द का आविर्भाव वैष्णवाचार्य स्वामी रामानुज की परम्परा में हुआ था।[1] 'रामार्चन पद्धति' में रामानन्द को रामानुजाचार्य की १४वीं पीढ़ी में बताते हुये निम्नलिखित परम्परा दी गई है[2] —

१—श्री रामचन्द्र	१३—श्री बोपदेवाचार्य
२— ,, सीता जी	१४— ,, देवाचार्य
३— ,, विश्वक्सेन	१५— , पुरुषोत्तम
४— ,, शठकोप (आलवार)	१६— ,, गंगाधर
५— ,, नाथमुनि	१७— ,, रामेश्वर
६— , पुण्डरीकाक्ष	१८— ,, द्वारानन्द
७— ,, राममिश्र	१९— ,, देवानन्द
८— ,, यामुनाचार्य	२०— ,, श्रियानन्द
९— ,, महापूर्णाचार्य	२१— , हरियानन्द
१०— , रामानुज	२२— ,, राघवानन्द
११— , कूरेश	२३— ,, रामानन्द
१२— ,, माधवाचार्य	

---

१ कुछ लोग रामानन्द को आचारी वैष्णवों से पृथक बताते हुये इनका सम्बन्ध पुरुषोत्तमाचार्य अथवा बोधायन नामक किसी प्राचीन वैष्णव से प्रमाणित करते है, किन्तु यह मत सर्वथा अप्रामाणिक और मनगन्त है। इसके पीछे एक साम्प्रदायिक रहस्य है जिसका अब उद्घाटन हो चुका है।

द्रष्टव्य रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय पृ० ३२०-२३

२ रामार्चन पद्धति, श्लोक ३-५

'रामार्चन पद्धति के एक अन्य संस्करण के अनुसार स्वामी रामानन्द का नाम श्री रामानुजाचार्य की २१वीं पीढ़ी में आता है —

द्रष्टव्य—रामार्चन पद्धति (टीकाकार पं० रामनारायण दास
(प्रकाशक सेठ छोटेलाल लक्ष्मीचन्द अयोध्या १९१४ ई०)।

नाभादास कृत 'भक्तमाल' मे रामानन्द का प्रादुर्भाव रामानुज की पांचवी पीढ़ी मे दिखाया गया है।[१] सतवाणी पुस्तकालय बीकानेर के हस्तलिखित पत्र के आधार पर श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' नामक ग्रन्थ मे जो गुरु प्रणालिका उद्धृत की गयी है उससे प्रकट होता है कि रामानन्द रामानुज की २३वी पीढ़ी मे हुये थे।[२] उक्त ग्रन्थ के सम्पादकों ने इस परम्परा को प्रामाणिक बताते हुए रामसनेही सम्प्रदाय में इसी के मान्य होने का उल्लेख किया है, लेकिन उनका यह कथन प्रामाणिक नही प्रतीत होता क्योंकि रामसनेही सम्प्रदाय (शाहपुरा शाखा) की एक मान्य पुस्तक 'रामस्नेही धर्मदर्पण' मे एक भिन्न परम्परा दी हुई है जिसमे रामानन्द को रामानुज की ३४वी पीढ़ी मे बताया गया है।[३]

यही नही प्रस्तुत लेखक को श्री दयालु पुस्तकालय खैडापा से प्राप्त मोतीराम द्वारा लिखित एक हस्तलिखित पत्रक के अनुसार श्री रामानन्द रामानुज की ३४वी पीढ़ी मे ठहरते हैं —

(१) आद मुनि	(१६) प्रलाकाश	(३१) पदमाचार्य
(२) महामुनि	(१७) पुहुपदव	(३२) कमलाचार्य
(३) निरगुन	(१८) रमेमुनेसर	(३३) देवाचार्य
(४) निराकार	(१९) महापूरण	(३४) दयाचार्य
(५) आकार	(२०) विद्याधर मुनि	(३५) रिपाचार्य
(६) बीज ओंकार	(२१) श्रीवण मुनि	(३६) वशीधराचार्य
(७) आदि पुरुष नारायण	(२२) जिग्यास मुनि	(३७) कृपालाचार्य
(८) महालक्ष्मी	(२३) रामानुज	(३८) सुखाचार्य
(९) विपक सेन	(२४) श्रुत प्रकास	(३९) बृषभाचार्य
(१०) इच्छा स्वरूप	(२५) श्रुतधाम	(४०) पुरुषोत्तमाचार्य
(११) उजास मुनि	(२६) श्रुतपा	(४१) नरोत्तमाचार्य
(१२) जात मुनि	(२७) मगलमुन	(४२) सामाचार्य
(१३) प्रगट मुनि	(२८) प्रताल मुनि	(४३) पूरणाचार्य
(१४) गभीर मुनि	(२९) सिष्टगोप	(४४) मणाचार्य
(१५) धीरज मुनि	(३०) पद्मविलोचन	(४५) माराचार्य

१ भक्तमाल सटीक (रूपकला), पृ० २८७।
श्री रामसनेही सम्प्रदाय, पृ० ३८
३ श्री रामसनेही धर्मदर्पण, श्री मनोहरदास, पृ० १०६–११०।

(४६) रामेश्वराचार्य	(५०) सच्चतानन्द	(५४) दरियानन्द
(४७) द्वारानन्द	(५१) अच्युतानन्द	(५५) सरियानन्द
(४८) देवानन्द	(५२) श्यामानन्द	(५६) हरियानन्द
(४६) सत्यच्युतानन्द	(५३) पूरणानन्द	(५७) राघवानन्द
		(५८) रामानन्द

इन परस्पर विरोधी मतों के बीच सत्यान्वेषण बड़ा ही दुरूह कार्य है। सौभाग्यवश रामानुजाचार्य और स्वामी रामानन्द की ऐतिहासिकता अब पूर्णरूपेण निश्चित की जा चुकी है और उनके आविर्भाव-काल का भी बहुत कुछ पता चल चुका है। इससे उनके सम्बन्ध-निर्णय में महत्त्वपूर्ण सहायता ली जा सकती है। रामानुज का समय सं० १०१६ और ११३७ के बीच माना जाता है[1] और रामानन्द १४वीं-१५वीं शताब्दी में वर्तमान थे। इस प्रकार दोनों महापुरुषों के जीवनकाल में तीन साढ़े तीन सौ वर्ष का अन्तर पड़ता है। अब ध्यान देने की बात यह है कि इस अवधि में कितनी पीढ़ियाँ व्यतीत हुई होंगी? विद्वानों ने एक पीढ़ी के लिये औसत २५ वर्ष निश्चित किया है, जो समीचीन प्रतीत होता है। इस कसौटी पर परीक्षा करने पर उपर्युक्त परम्पराओं में से केवल 'रामार्चन पद्धति' की परम्परा, जिसके अनुसार रामानन्द रामानुज की १४वीं पीढ़ी में आविर्भूत हुए थे, सबसे अधिक विश्वसनीय जान पड़ती है।

रामसनेही सम्प्रदाय नाम से राजस्थान में तीन सम्प्रदाय (रेण, सिंहथल-खेड़ापा और शाहपुरा में) चल रहे हैं। तीनों की अपनी-अपनी स्वतन्त्र शाखाएँ और परम्परायें हैं। इनमें से रेण की शाखा सर्वाधिक प्राचीन है किन्तु साहित्यिक उत्कृष्टता, परिमाण, साम्प्रदायिक महत्त्व एवं व्यापकता की दृष्टि से शाहपुरा तथा सिंहथल-खेड़ापा के पीठ उससे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। अतः इस अध्ययन में इनकी परम्परा इसी क्रम में प्रस्तुत की गई है।

---

१ द्रष्टव्य—(क) गीता रहस्य-बालगंगाधर तिलक।
(ख) Ramanuja—Rajagopalachariar
(ग) Ramanuja—K S Aiyangar
(घ) Life and teachings of Ramanuja—Rangacharya
(च) Vaisnavism and Saivism—Bhandarkar

२ द्रष्टव्य—(क) Vaishnavism and Saivism—Bhandarkar
(ख) Journal of the Royal Asiatic Society, 1920
(ग) Outlines of Religious Literature of India—Farquhar
(घ) Kabir And his followers—F A Keay

शाहपुरा की परम्परा—

(१) शाहपुरा रामद्वारा की परम्परा

इस गद्दी की स्थापना आचार्य रामचरण जी ने की थी। शाहपुरा शाखा के रामसनेहियो का यही प्रधान पीठ है। इस गद्दी को रामजन दूल्हेराम और हिम्मतराम जैसे प्रसिद्ध महात्मा और विद्वान् सुशोभित कर चुके हैं।

स्वामी रामचरण की, रामानन्द के बाद की गुरु परम्परा इस प्रकार है१ —

(१) रामानन्द	(७) प्रेमभूरा
(२) अनन्तानन्द	(८) रामदास
(३) कृष्णदास पयहारी	(९) छोटा नारायणदास
(४) अग्रदास	(१०) सन्तदास
(५) नारायणदास	(११) कृपाराम
(६) प्रेम पठाजी	

रामचरण के परवर्ती पीठाधीश्वरो की नामावली नीचे दी जाती है—

(१) रामचरण	(८) दिलशुद्ध राम
(२) रामजन	(९) धर्मदास
(३) दूल्हेराम	(१०) दयाराम
(४) चनदास	(११) जगरामदास
(५) नारायणदास	(१२) निर्भयराम
(६) हरिदास	(१३) दर्शनराम
(७) हिम्मतराम	(१४) रामकिशोर (वर्तमान)

(२) जीवणदास का राम द्वारा नागौर

इस राम द्वारे के संस्थापक थे स्वामी रामचरण के शिष्य जीवणदास। महात्मा नारायणदास, जो आगे चलकर प्रधान पीठ शाहपुरा के चौथे पीठाधीश्वर हुये, यहीं के महात्मा भूधरदास के शिष्य थे। रामद्वारे के निकटवर्ती भू भाग में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। यहीं के सन्त मनसुखराम ने लाडनू में रामद्वारे की स्थापना की थी। नीचे इसकी परम्परा दी जाती है —

१ (अ) रामस्नेही धर्म-दर्पण, पृ० ११०

(ब) श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' में दी गई परम्परा में नारायण दास और प्रेम भूरा जी के बीच में प्रेमपठा जी का नाम नहीं है। इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। सम्भव है नाम साम्य के कारण असावधानी से प्रेम पठा का नाम छूट गया हो।

(१) जीवणदास	(५) नवलराम
(२) भूधरदास	(६) हेमदास
(३) सुखरामदास	(७) कुशविराम
(४) लालदास	(८) लच्छी राम (वर्तमान)

(३) लाडून राम द्वारा

नागौर रामद्वारे के महात्मा सुखराम के शिष्य मनसुखराम ने इस रामद्वार की स्थापना की थी। मनसुखराम जी लाडून के रहने वाले पारीक ब्राह्मण थे। कहते है कि बचपन मे ये गायें चराया करते थे। एक दिन इनकी भाभी ने, जिनके प्रति इनके हृदय म बड़ी श्रद्धा थी, कुयें म गिर कर आत्म हत्या कर ली। इस घटना स बालक मनसुखराम क हृदय को बड़ा आघात पहुँचा। परिणामस्वरूप इनके हृदय मे वैराग्योदय हुआ और इन्होंने, नागौर आकर, सुखरामदास स दीक्षा ले ली। सुखराम दास के परमधाम पधारने के पश्चात् ये नागौर रामद्वारे के प्रधान बने किन्तु शीघ्र ही आस पास का वातावरण प्रतिकूल पाकर, नागौर का रामद्वारा अपने गुरु भाई लालदास को सौंप कर स्वयं लाडून चले आये। लाडून में इनकी परम्परा अभी चल रही है जो निम्नोक्त है —

(१) मनसुखराम	(४) मेवाराम
(२) बिलासी राम	(५) रामनिवास (वर्तमान)
(३) लज्जाराम (पदत्याग करके कहीं चले गये)	

(४) मूडवा का रामद्वारा

मूडवा रामद्वारे की स्थापना सुखरामदास के शिष्य रामनारायण ने की थी। रामनारायण की मृत्यु क पश्चात् गद्दी के प्रधान उनके शिष्य आदवराम हुये। आदवराम बड़े ही चरित्रवान् और संयमी महात्मा थे। 'विनय बावनी' नामक एक लघु कृति की रचना भी इन्होने की थी। इनकी मृत्यु वि० सं० १९९२ के आस-पास हुई। आजकल मूडवा रामद्वार में कोई महत्व नहीं है।

(५) खजवाणा का रामद्वारा

नारायणदास जी रामचरण महाराज के शिष्यो मे प्रमुख थे। ये विदेही महात्मा थे। इन्होने खजवाणा को अपनी साधना-भूमि बनाया। खजवाणा म इनकी परम्परा अब तक चल रहा है, जो इस प्रकार है —

(१) नारायणदास	(४) गरकराम
(२) सुजाणदास	(५) भगीरथराम
(३) जरणराम	(६) भोलाराम
(७) भगतराम जी (वर्तमान)	

(१४) कूचा पातीराम का रामद्वारा, देहली

कूचा पातीराम रामद्वार की स्थापना मनोरथराम शास्त्री ने की है। शास्त्री जी का जन्म फाल्गुन शुक्ल १४, सं० १९७७ को दिल्ली के एक गर्गगोत्रीय अग्रवाल घराने हुआ था। पिता का नाम लालरुगन और माता का वर्फीदेवा है। रुगन जी ने इन्हें आठ वर्ष की अवस्था में चैत्र कृष्ण ५, वि० सं० १९८५ को चितलीकबर रामद्वारे के महात्मा अमोलकराम जी का शिष्य बना दिया। उन्होंने इनके लिए एक मकान भी बनवा दिया जो अब रामद्वारा, कूचापातीराम के नाम से प्रसिद्ध है। शास्त्री जी ने इसी रामद्वार में एक रामसनेही विद्यालय की भी स्थापना की है।

शास्त्री जी बड़े भजनानन्दी महात्मा हैं। आपकी एक 'भजन पाप्प मंजरी' नामक पुस्तक भी प्रकाशित है।

सिंहथल खेडापा की परम्परा—

(१) सिंहथल का रामद्वारा

इस रामद्वारे की स्थापना रामसनेही सम्प्रदाय की सिंहथल शाखा के आद्याचार्य हरिरामदास ने की थी। इसकी शाखायें प्रशाखाएं पर्याप्त दूर दूर तक फैली हुई हैं। खेडापा की परम्परा, जो अब प्रायः स्वतन्त्र रूप से चल रही है, हरिरामदास के शिष्य रामदास की चलाई हुई है। इस प्रकार सिंहथल, खेडापा की गुरु गद्दी है।

हरिरामदास के पूर्ववर्ती आचार्यों की परम्परा इस प्रकार है[1] —

१ रामानन्द	८ मोहनदास
२ अनतानन्द	९ माधोदास
३ कर्मचन्द	१० सुन्दरदास
४ दिवाकर	११ चरणदास
५ पूरणमालवी	१२ जयमलदास
६ दमोदरदास	१३ हरिरामदास
७ नारायणदास	

---

१ (क) श्री दयालु पुस्तकालय, खेडापा से प्राप्त हस्तलिखित 'गुरु प्रणालिका' से

(ख) रामानन्द वन्दि दास वन्दन अनतानन्द
वन्दों कर्मचन्द दिवाकर सुखकन्द को
पूरण ही मालवी रु दामोदर दास वन्दों
नारायण रु मोहन वन्दों तजि द्वन्द्व को
वन्दों जन मधोदास सुन्दर चरणदास
जैमल हरिराम वन्दों वन्दों ।

—श्री रामसनेहीधर्मप्रकाश, पृ० ३२८

हरिरामदास के पश्चात् इस गद्दी पर निम्नांकित आचार्य आसीन हुए —

१ हरिरामदास	६ चेतनदास
२ विहारीदास	७ रामप्रताप
३ हरदेवदास	८ चौकसराम (चतुर्भुज दास)
४ मोतीराम	९ रामनारायण (पद त्याग दिया)
५ रघुनाथदास	१० भगवद्दास (वर्तमान)

(२) खैडापा का रामद्वारा

इस रामद्वारे की स्थापना हरिरामदास के शिष्य रामदास ने की थी। रामदास जी के ५२ शिष्य थे जिनकी पृथक्-पृथक् परम्पराएँ मेवाड़, मारवाड़, मध्य प्रदेश, गुजरात आदि में फैली हुई हैं। इस परम्परा में एक से एक महात्मा, विद्वान् और साहित्यकार हुये।

खेडापा गद्दी के पीठाधीश्वर हरिदास जी दर्शनायुर्वेदाचार्य, हिन्दी और संस्कृत के प्रकांड पंडित तथा बड़े ही उदार महात्मा थे। आपने लोकहितार्थ जोधपुर में दयालु औषधालय तथा खेडापा में दयालु विद्यालय की स्थापना की, जहाँ निःशुल्क औषधि और शिक्षा की व्यवस्था है। हरिदास जी ने 'आचार्य चरितामृत, नामक ग्रन्थ के माध्यम से रामसनेही सम्प्रदाय की परम्परा और इस गद्दी की परम्परा और विचार धारा का विशद विवेचन किया है। इस गद्दी की परम्परा निम्नलिखित है —

१ रामदास	५ हरिलालदास
२ दयालुदास	६ लालदास
३ पूरणदास	७ केवलराम
४ अर्जुनदास	८ हरिदास
	९ पुरुषोत्तमदास (वर्तमान)

(३) नारायणदास की शिष्य-परम्परा

नारायणदास हरिरामदास जी के प्रमुख शिष्यों में से थे। इनके आठ शिष्य हुये—सदाराम, मूलदास, मयारामदास चेतनदास कान्हडदास, विजयराम सांवतराम और गजाराम। इन लोगों द्वारा स्थापित रामद्वारों की परम्परा नीचे दी जाती है —

क—सदाराम का रामद्वारा, ऊढसर

१ सदाराम	४ गिरधारीदास
२ मानराम	५ जमुनादास
३ योगीदास	६ ईश्वरदास

ऊड़सर रामद्वारे की तीसरी पीढ़ी में मोगोदास के एक शिष्य ध्यानदास ऊड़सर से बरसीसर चले गये और वहाँ अपना रामद्वारा स्थापित किया जिसकी परम्परा इस प्रकार है —

१ ध्यानदास   २ शिवरामदास   ३ कन्हीराम

कन्हीराम के पश्चात् यह परम्परा समाप्त हो गई।

ख—मूलदास का रामद्वारा, कालू

१ मूलदास	५ अमरदास
२ राघोदास	६ मानगराम
३ गोविन्दराम	७ भक्तिराम
४ राममुखदास	

मूलदास की शिष्य प्रशिष्य शाखा का विस्तार डूंगरगढ़, सूरतगढ़, गुसाईसरवाड़ा, सिनावड़ा और बाटसर आदि स्थानों पर हुआ।

ग—मयाराम का रामद्वारा, गोगासर

१ मयारामदास	४ शालग्राम
२ प्रेमदास	५ अमरकृष्णदास
३ लक्ष्मणदास	६ अक्षयराम

घ—चेतनदास का रामद्वारा, पलाना

१ चेतनदास	३ सवाराम
२ चतुरदास	४ शिवरामदास

ङ—कान्हड़दास का रामद्वारा, मूडमर

१ कान्हड़दास   २ उदेराम   ३ अमृतराम

अमृतराम के पश्चात् मूडमर रामद्वारे की परम्परा टूट गयी और अब वहां कोई नहीं रहता।

च—रामनारायणदास के छठ शिष्य विजयराम ने सिंहथल में निवास किया किन्तु उनकी कोई परम्परा नहीं चली।

छ—सावतराम का रामद्वारा, सिंहथल

१ सावतराम   २ दूगाराम   ३ मुकुन्दास

मुकुन्दास के बाद यहाँ कोई महात्मा नहीं हुआ।

ज—गजाराम का रामद्वारा, जेतपुर

१ गजाराम	३ मुक्तिराम
२ हरिराम	४ रामी बाई

रामीबाई के उपरान्त जेतपुर रामद्वार की परम्परा खण्डित हो गई।

रामदास की शिष्य-परम्परा

संत रामदास जी रामसनेही सम्प्रदाय की सिंहथल शाखा के संस्थापक संत हरिरामदास के यशस्वी शिष्य थे। इनके बावन शिष्य हुये, जिनमें दयालुदास, गंगाराम, पीयोदास, निमलराम, परसुराम आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। रामदास जी के अधिकांश शिष्यों की परम्पराएँ स्वतन्त्र रूप से चल रही है। कुछ प्रमुख शिष्यों की परम्परा का उल्लेख नीचे किया जाता है।

(४) गंगाराम का रामद्वारा, बडलू

१ गंगाराम ३ प्रह्लाददास २ गोविन्ददास ४ माधवदास

(५) कन्हडदास का रामद्वारा, बालीसर

१ कान्हडदास
२ बालकदास ४ शोभाराम
३ नवला बाई ५ आसाराम

(६) हेमदास का रामद्वारा, जैतारण

१ हेमदास ४ कल्याणदास
२ दौलतराम ५ चेनराम
३ रूपदास ६ रामगोपाल

हेमदास की तीसरी पीढ़ी में रूपदास के एक शिष्य नृसिंहदास ने अपना रामद्वारा बलोदा में स्थापित किया। इनकी परम्परा इस प्रकार है—

१ नृसिंहदास २ भावनादास ३ गिरधारीदास

(७) श्री मनीराम का रामद्वारा, बडलू

मनीराम रामदासजी महाराज के प्रमुख शिष्य थे। इनके अनेक शिष्य हुए, जिनकी पृथक् पृथक् परम्पराएँ चलीं, बडलू, साथीण, बाबा, खोगटा, आदि स्थानों पर चल रही हैं। मुख्य रामद्वारा बडलू की परम्परा निम्नलिखित है—

१ मनीराम ४ गिरधारीदास
२ कृपाराम ५ परमलदास
३ प्यारा राम ६ सुखराम

(८) पीयोदास की परम्परा, रतलाम

पीयोदास रामदास जी के प्रमुख शिष्यो में से थे। इनकी शिष्य प्रशिष्य शाखा का विस्तार गौतमपुरा पंचेवा, सरसी, इगणोद, डोमदिया आदि स्थानो पर हुआ। पचेवा की परम्परा अब समाप्त हो गयी है। वहाँ के रामद्वारे में अब कोई नहीं रहता। रतलाम के रामद्वारे की परम्परा की निम्नलिखित है —

(१) पीथोदास (४) साधूराम
(२) कन्हीराम (५) कल्याणदास
(३) उदयराम (६) आत्माराम (७) रामविलास (वर्तमान)

(९) ज्ञानदास का रामद्वारा, कालाउना

ज्ञानदास रामदास जी के शिष्य थे। इन्होंने अपना साधना क्षेत्र कालाउना को बनाया। इनके द्वारा स्थापित कालाउना के रामद्वारे की परम्परा निम्नलिखित है :—

(१) ज्ञानदास (३) हरिकृष्णदास (५) वदिगम्बरदास
(२) कृष्णराम (४) जगरामदास (६) भगवतीदास
(७) शिवरामदास

(११) निर्मलदास का रामद्वारा, पाली

निर्मलदास रामदास जी महाराज के शिष्य थे। ये रामसनेही सम्प्रदाय की सिंहथल-खेड़ापा शाखा के विशिष्ट महात्मा माने जाते हैं। इनकी परम्परा इस प्रकार है —

(१) निर्मलदास (५) नानगराम
(२) बखत राम (६) रघुवर दास
(३) साईराम (७) भलाराम
(४) गंगाराम (८) तुलसीदास

(१०) हरीदास का रामद्वारा, आटया

हरीदास रामदास जी के शिष्य थे। ये गृहस्थ थे और इनकी परम्परा भी जुक्ति राम को छोड़कर गृहस्थो की ही थी। यहाँ की परम्परा इस प्रकार है —

(१) हरिदास (३) टाकूदास
(२) लच्छीराम (४) रामलाल (५) जुक्तिराम

(१२) बल्लूराम का रामद्वारा, देवातड़ा

देवातड़ा के रामद्वारे की स्थापना रामदास जी के शिष्य बल्लूराम जी ने की थी। यह रामद्वारा गृहस्थ महात्माओं का था। अब इसकी परम्परा समाप्त हो गयी। यहाँ के अन्तिम महात्मा हरसुखदास थे। परम्परा इस प्रकार है —

(१) बल्लूराम (३) स्वरूपदास
(२) जगरामदास (४) रामप्रताप (५) हरसुखदास

(१३) लालदास का रामद्वारा, डागियास

लालदास का डागियास में बड़ा सम्मान था। इनके प्रशिष्यो ने घूम-घूम कर धर्म का प्रचार किया। इनकी शाखा का विस्तार जोधपुर, बालोसर आदि स्थानों पर हुआ। यहाँ की परम्परा निम्नलिखित है —

(१) सान्तदास (३) अमृतराम
(२) ध्यानदास (४) रामप्रताप
(५) हिम्मतराम

(१४) प्रेमदास का रामद्वारा, समुदडी

(१) प्रेमदास (३) सुन्दरदास
(२) लाधूराम (४) शालिग्राम
(५) भक्तराम

(१५) बुधाराम का रामद्वारा, जोधपुर

(१) बुधाराम (४) प्रेमदास
(२) हेमदास (५) क्षमादास
(३) चरणदास (६) रामलग्न

बुधाराम के शिष्य हेमदास की शिष्या लालाबाई ने जोधपुर में ही अपना अलग रामद्वारा स्थापित किया। इस गद्दी पर रामनारायण, रामस्वरूप आदि महात्मा हुये।

(१६) राघोदास का रामद्वारा, नीमाज

यह रामद्वारा रामसनेहियों का प्रमुख पीठ है। यहाँ पर हरिराम जैसे महात्मा और प० दिगम्बरदास जैसे विद्वान् हो चुके हैं। परम्परा इस प्रकार है —

(१) राघोदास (५) हरिराम जी
(२) चैनराम (६) हुलासराम
(३) अमृतराम (७) चौकसराम
(४) गुलाबदास (८) प० दिगम्बरदास

(१७) मनीराम का रामद्वारा खोटावद

(१) मनीराम (४) ईश्वरदास
(२) अर्जुनदास (५) बलमदास
(३) गोपालदास (६) गंगाराम

मनीराम की एक शिष्या गंगाबाई ने अपना रामद्वारा गरौता में स्थापित किया। उनकी परम्परा नीचे दी जाती है।

(१) गंगाबाई (३) रामरतन बाई
(२) बाणारसीबाई (४) हरिदास

(१८) रूपराम का रामद्वारा, बूडीवाडा

(१) रूपराम (३) शालिग्राम
(२) गोविन्दराम (४) गङ्गाराम
(५) समदराम

(१९) कालूराम का रामद्वारा, मकला [मालवा]

(१) कालूराम
(२) काशीराम
(३) परमानन्द
(४) भक्तिराम
(५) मोडीराम

कालूराम की एक अन्य शाखा रामसर में विकसित हुई।

(२०) सगरामदास का रामद्वारा, ईडर

सगराम जी ईडर (गुजरात) नरेश शिवसिंह के पुरोहित थे। ये गृहस्थ महात्मा थे। इन्होंने गुजरात में निर्गुण रामभक्ति के प्रचार का बड़ा ही गौरवपूर्ण कार्य किया। इनके शिष्यों प्रशिष्यों ने बड़ौदा, सूरत, प्रान्तीज आदि में रामद्वारे की स्थापना की जिसकी परम्परा नीचे दी जाती है —

क—ईडर-रामद्वारा की परम्परा —

(१) सगरामदास
(२) रामचन्द
(३) मुनिजी
(४) भगवानदास
(५) उदयराम
(६) गुलाबदास
(७) रूपराम
(८) माव्दाम
(९) हिम्मतराम
(१०) समर्थराम

(ख) मुनि जी का आविर्भाव महात्मा सगरामदास की तीसरी पीढ़ी में हुआ था। इनके एक शिष्य दयाराम ने बड़ौदा रामद्वारे की स्थापना की थी। इनकी परम्परा इस प्रकार है —

(१) दयाराम
(२) बदरीदास
(३) बालकदास
(४) विष्णुराम
(५) केशवराम
(६) गोविन्दराम
(७) लाखाराम

(ग) बड़ौदा रामद्वारे के सतन्याराम के एक शिष्य मुक्तराम ने अपना रामद्वारा प्रान्तीज (गुजरात) में बनाया। उनकी परम्परा निम्नलिखित है—

१ मुक्तराम २ जुक्तिराम ३ जीवणदास

(घ) दयाराम के शिष्य और मुक्तराम के गुरु भाई स्वरूपदास ने सूरत में रामद्वारे की स्थापना की। उनकी परम्परा इस प्रकार है —

१ स्वरूपदास
२ मनसुखराम
३ रामलाल
४ मगलदास

(२१) परशुराम का रामद्वारा, सूरसागर (जोधपुर)

परशुराम जी का नाम सिंहथल और खेडापा के रामसनेहियों में बड़े ही आदर के साथ लिया जाता है। रामसनेही सम्प्रदाय में विरक्त शाखा के प्रवर्तक यही महानुभाव हैं। इनकी शाखा का विस्तार मालू, बीकानगर चाखा, जयपुर, देहली, मांडला, आदि स्थानों पर हुआ। जब सूरसागर के नये परमहंस गद्दी पर बैठते हैं तब उनके लिए सिंहथल खेडापा दोनों स्थानों के महन्तों के सामने रूईदार गद्दी बिछाई जाती है और तदनन्तर वे परम्परानुसार बाघम्बर या मृगचर्म अथवा टाट के आसन ग्रहण करते हैं। इस रामद्वारे की परम्परा नीचे दी जाती —

१ परशुराम (विरक्त)	५ सम्पतिराम
२ सेवगराम (परमहंस)	६ हरसुखदास
३ मोवतराम	७ रामवल्लभ
४ सुखरामराम	८ अभयराम (वर्तमान)

(२२) वक्ताराम का रामद्वारा, तीतरी

रामदास के शिष्यों में सर्वाधिक विशाल परम्परा वक्ताराम की है। इनकी शिष्य शाखा का विस्तार बासणी राजलदेसर, रतनगढ, दहली, गाड़ मूंडवा, बीदासर, जैसलमेर, गंगाशहर, सरदारशहर, मैंदूसर, गारासणी, बीकानेर आदि स्थानों पर हुआ। विस्तारभय से यहां केवल तीतरी की परम्परा दी जाती है —

१ वक्ताराम	४ शीतलदास
२ तुलसीदास	५ गंगाविष्णु
३ रामरतन	६ रूपराम

(२३) सावतराम का रामद्वारा, बानारावास

१ सावतराम	३ चरणदास
२ सगरारामदास	४ मुक्तराम
	५ कन्हीराम

२४—दौलतराम की परम्परा, बोयल

दौलतराम की साधना-भूमि जोधपुर जिले के बिलाडे परगनान्तर्गत बोयल नामक स्थान पर है। इनके दो शिष्य हुये—धीरमदास और गङ्गाराम। धीरमदास गद्दी के अधिकारी हुये और गङ्गाराम रामगढ़ी (जोधपुर) में रहने लगे। बाद में वहीं उन्होंने अपना रामद्वारा स्थापित कर लिया। धीरमदास के मृत्योपरान्त उनके शिष्य गुलराम भी जोधपुर चले आये और मोती चौक में अपना रामद्वारा बनवाया। इन दोनों रामद्वारों की परम्परा नीचे दी जाती है—

(क) गगाराम का रामद्वारा, रामगढी [जोधपुर]

(१) गङ्गाराम (३) पमगडीराम
(२) रामरतन (४) श्रीराम (५) रामकिशन (वर्तमान)

(ख) मोती चौक-जोधपुर का रामद्वारा

(१) गुतराम (४) उदोराम
(२) आगाराम (५) भक्तिराम
(३) प्रतीतराम (६) प० उम्मेदराम (वतमान)

(२५) साईदास का रामद्वारा, आचीणा [नागौरा]

(१ साईदास (३) परमलदास
(२) माहिबराम (४) लच्छीराम (५) गणेशदास

साईदास की शाखा देशनोक, बिरमीदेसर, गङ्गाशहर, नयाशहर आदि स्थानो मे फैली, और उस भूभाग म राम भक्ति के प्रचार म विशेष सहायक हुई।

(२६) वक्तराम का रामद्वारा, जोधपुर

(१) वक्तराम (३) विष्णुदास
(२) सदाराम (४) श्यामदास

(२७) हरिश्चन्ददास का रामद्वारा, खवासपुरा [मारवाड]

(१) हरिश्च ददास (४) रामलाल
(२) आतमाराम (५) प्रेमदास
(३) भक्तिराम (६) लाधूराम

(२८) दयालुदास की शिष्य-परम्परा

दयालुदास रामदास ज के पुत्र और शिष्य थे। य बहुत बड महात्मा, विद्वान् तथा वाणीकार थे। इनके अनेक शिष्य हुये जिनकी पृथक् पृथक परम्परायें अब तक चल रही है। यदि सब की गद्दी का परिचय और परम्परा का उल्लेख किया जाय तो केवल परिचय और परम्परा पर ही एक विशाल ग्रथ तैयार हो जायेगा। अस्तु केवल एक, दो रामद्वारो की परम्परा का उल्लेख करके सतोष करना पडता है।

क मोतीराम का रामद्वारा, सियोणा

१ मोतीराम ४ जगजीवनदास
२ भक्तिराम ५ केशवदास
३ साहिबराम ६ श्रीराम

इ हीं महाराज की शिष्य परम्परा बीदासर रतनगढ, सुजानगढ, छापार, डोवा, आदि स्थानो मे।

ख तुलसीदास का रामद्वारा, रामसर

१ तुलसीदास ३ मनोहरदास
२ गुमानीराम ४ गलतानदास

तुलसीदास की दूसरी पीढ़ी में गुमानीराम हुए। गुमानीराम के एक शिष्य जेठाराम ने बीकानेर में निवास किया, और रामद्वारे की स्थापना की। इस गद्दी के वर्तमान प्रधान लक्ष्यरामजी हैं। ये सम्प्रदाय के बड़े ही प्रसिद्ध और यशस्वी महात्मा हैं। इनकी परम्परा नीचे दी जाती है—

१. जेठाराम २ मानगराम ३ लक्ष्यराम

रेण की परम्परा

रेण रामद्वारे की स्थापना दरिया साहब ने की थी। यह गद्दी रेण शाखा के रामसनेहियों का आचार्य-पीठ है। दरिया साहब के जीवन काल में इसे पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त हुई, किन्तु उनकी मृत्यु के उपरान्त कोई ऐसा महात्मा नहीं हुआ जो इस गद्दी का महत्त्व अक्षुण्ण रख सके। परिणामस्वरूप यहाँ की परम्परा खण्डित हो गयी, और रामद्वारा तथा देवल एक प्रकार से श्रीहीन हो गये। गुरु गद्दी की दुर्दशा देखकर हरखाराम जी ने इसकी देख भाल का भार लिया। उनके पश्चात् इस कार्य को, सम्प्रदाय के पाँच महात्माओं ने जिनमें नागौर के निवासी रमकरण जी प्रमुख थे अपने हाथ में लिया। इस प्रकार लगभग सवा सौ वर्ष तक रामद्वारे का प्रबन्ध होता रहा। इतने दीर्घ व्यवधान के उपरान्त सम्प्रदाय के कुछ प्रमुख लोगों के आग्रह से महात्मा भगवद्दास ने इस सूनी गद्दी को सं० १९३८ में सुशोभित किया। तब से यहाँ का प्रबन्ध सुचारु रूप से चल रहा है।

दरिया साहब के पूर्ववर्ती आचार्यों की नामवली स्वामी रामानन्द से लेकर सन्तदास तक शाहपुरा गद्दी से अभिन्न है। इसके बाद की परम्परा इस प्रकार है—

१ सन्तदास
२ बालकदास
३ प्रेमदास
४ दरिया साहब

वर्तमान समय में सम्प्रदाय के महात्मा प्रेमदास का गुरु सन्तदास को मानते हैं, किन्तु साम्प्रदायिक साहित्य एक स्वर से प्रेमदास को सन्तदास का प्रशिष्य और बालक दास का शिष्य बताता है। दरिया साहब के प्रमुख शिष्य पूरणदास[१], और

---

१ बालक दास प्रेम जन पूरा। दरिया साह परमानन्द मूरा॥

—भक्तमाल, छन्द ३१

किसनदास[1] कृत भक्तमाला में प्रेमदास को स्पष्ट रूप से बालकराम का शिष्य कहा गया है। हमदास के शिष्य प्रेमदास विरचित 'भक्तमाल,'[2] मदाराम कृत 'ज म-लीला,[3] बालकराम कृत भक्तमाल[4] तथा सम्प्रदाय द्वारा प्रकाशित, पाठ पुस्तक स भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है। तथ्य का पता लगाने के अभिप्राय से प्रस्तुत लेखक ने दांतडा के वतमान पीठाचार्य से भी इस सम्बन्ध में बातचीत की थी। उन्होंने चारणों की एक प्राचीन बही का साक्ष्य देते हुए बताया कि प्रेमदास बालकराम के शिष्य थे, और सन्तदास के शिष्यों में प्रेमदास नाम का कोई महात्मा नहीं हुआ था। अनुसधान करने पर पता लगा है कि इसके पीछे एक रहस्य है और वह यह है कि इस सम्प्रदाय के लोग अपने आद्याचार्य को रामसनेहियों की शाहपुरा शाखा के आचार्य रामचरण से

---

१ बालक दास भजन बहो किया भजन भेद बहो आगो।
सतदास जा सतगुरु मेटे होय विरक्त वैरागी।
प्रेम नाव मा बहोत पिपासा सत्गुर सग मिल पीया
जन दरियाव साध बड भागी राम भजन कर लीया
—भक्तमाल, छद १६८ ६९

२ स्वामी सन्तदास जी जग म ररकार रट लीन्हा।
जे जे चरण परस कर प्राणी तीनुक पावन कीन्हा।
बालक राम जिनके सिष जाणो प्रेमी जन मतवाला।
अगभ प्रगट मैपरी बाणी पिया प्रेम रस प्याला।
जिनके सिष दरियाव बपाएया नो तो ध्यान समाधी॥
—प्रेमदास कृत 'भक्तमाल' स

३ सन्तदास का सिष्य एव बालक प्रवाणी।
जाका सिष सन्त प्रेम ब्रह्म की भगत पिछाणी॥
—मन्नाराम कृत 'ज म लीला' म

४ या पैहारा की प्रणाली म भया सन्तदास है।
ताही को बालक राम तास प्रेम ताम सम॥
—बालकराम कृत 'भक्तमाल' स (राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० ११२ से उद्धृत)

५ धाम दांतडो सन्तदास प्रगट किय स्थान।
जिन चरणों का रज्ज म बालक भय निधान।
बालक दाम प्रताप स प्रेम पिछाण्या राम।
जन दरिया रहण भय मरया मनोरथ काम॥
—पाठ पुस्तक, पृ० ८८ (गुरु प्रनाली)

पीढ़ी म छोटा नहीं देखना चाहते । इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए आजकल यत्र-तत्र साम्प्रदायिक साहित्य को भ्रष्ट करने की प्रवृत्ति भी दिखाई पड़ती है । इस सम्बन्ध मे अपनी धारणा यह है कि सत अपनी साधना से महान् होता है, जाति, कुल परम्परा का उसके यहाँ कोई अर्थ नहीं होता । एक पीढ़ी ऊपर-नीचे होने से कोई कथमपि बड़ा या छोटा नहीं हो सकता ।

दरिया साहब के परवर्ती आचार्यो की नामावली नीचे दी जाती है —

१—दरिया साहब	३—रामगोपाल
२—भगवतदास	४—पेमाराज (वर्तमान)

(२) सुखरामदास का राम द्वारा, मेड़ता

इस रामद्वारे की स्थापना दरिया साहब के यशस्वी शिष्य सुखरामदास ने की थी । इसका परम्परा निम्नलिखित है—

१—सुखरामदास	५—चतुरराम
२—गंगाबाई	६—तुलसीराम
३—मानकराम (परमहंस)	७—विलासीराम
४—मोतीराम	८—प्रभुदास (वर्तमान)

(३) अर्जुनदास जी का राम द्वारा, गुलाब सागर (जोधपुर)

अर्जुनदास सुखरामदास के शिष्य थे । इन्होंने जोधपुर को अपना साधना-भूमि बनाया है । इस रामद्वारे का परम्परा इस प्रकार है—

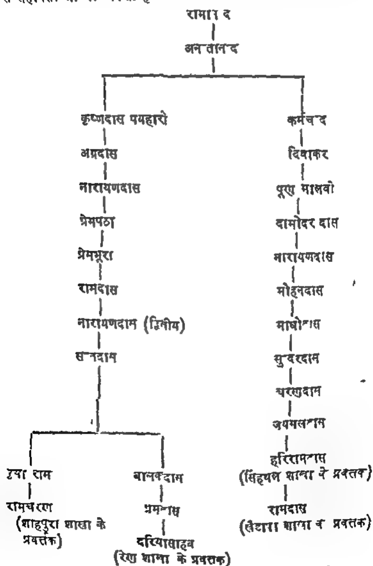
१—अर्जुनदास	४—सन्तरामदास
२—शिवरामदास	५—रघुनाथदास
३—भरतदास	६—आनन्दराम (वर्तमान)

इसी प्रकार इस सम्प्रदाय के और भी बहुत से रामद्वारे हैं, स्थानाभाव के कारण इनमें से प्रमुख की नामावली नीचे दी जाती है —

१—पूरणदास का रामद्वारा, भोकर (मालवा)
२—किसनदास का रामद्वारा, टाकला (राजस्थान)
३—नानकदास का रामद्वारा, कुचेरा (राजस्थान)
४—हरखाराम का रामद्वारा, नागौर (राजस्थान)
५—बाई का रामद्वारा, नागौर (राजस्थान)
६—प्रेमदास का रामद्वारा, डीडवाना (राजस्थान)
७—मनसाराम का रामद्वारा, साँजू (राजस्थान)
८—हरदेव का रामद्वारा, साँजू (राजस्थान)
९—...देव का रामद्वारा (राजस्थान)

कतिपय महत्त्वपूर्ण रामद्वारों का संक्षिप्त परिचय देने के उपरान्त यह निवेदन करना अप्रासंगिक न होगा, कि स्थानाभाव के कारण सैकड़ों रामद्वारों पर प्रकाश नहीं डाला जा सका है। फिर भी एतद्विषयक जो सामग्री प्रस्तुत की गई है, उससे सम्प्रदाय की व्यापकता का अनुमान सहज ही किया जा सकता है।

तीनों शाखाओं के परम्परागत सम्बन्ध को समझने के लिए निम्नलिखित तालिका से सहायता ली जा सकती है —



[illegible]

[illegible] नमो राम रमतीत नमो गु

रदेव गुसामी नमो नमो सब संतन चरणि जग गुसामी

जिनके चरण देवि रहो निसि सीस सदा ए तन मन धन

प्राण करु सब छावर सारा राम सतगुरु देव बिन नही

कोइ आधार राम चरण हरि जोइ के बंदै बारंबार १

[illegible]

॥ नमो राम रमतीत सकल व्यापक घण नामी सब

घट प्रतिपाल सकल का सेवग स्वामी करता मैं करता

सकल सबइ हरि निवारे न्यारा नित विरहु सरादि इदु जगमत

न का ऊधारै रामचरण वदन करे सब ई सत कोइ सि

जग पालक तुम जगत गुर जगजीवन जगदीस १ आनंद

घन सुख रासि विनासक हीन स्वामी निराल व निरलेप

अकल करे अंतरजामी वारंवार मधि नाहि कछु विधि

करी सेवा नहीं निरकार आकार अजन अवगति दे

वा रामचरण वदन करे अलख अपार अनूप सु[illegible]

पाल पाली नहीं रमा सकल भरपूर २ नमो नमो

परब्रह्म नमो निह केवल राया नमो अजन अमगन

ही कछु गया न आया नमो अलेप अछेप नही कोई

के मन काया नमो अमाप अपाप नही कोइ पार न

पाया सिव सिनकादिक सेस सहसमुख रटत न पावे अंत रा

मचरण वंदन करे नमो निरंजन संत ३

[illegible]

क्रिपा गंग कलि अवनी जीवन प्रमद [illegible]

ज्ञानसमुद्र (डा० भगवती प्रसाद सिंह, एम० ए०, डी० लिट के निजी संग्रहालय की प्रति) में संकलित स्वामी रामचरण की वाणी के प्रथम पत्र की छायाचित्र लिपि।

तीसरा अध्याय

साम्प्रदायिक साहित्य और साहित्यकार

(क) साम्प्रदायिक साहित्य

रामसनेही सम्प्रदाय के साहित्य की सजना एस स तों द्वारा हुई है जिन्होंने स्वप्न मे भी कवि बनने और ख्याति प्राप्त करने की बात नहीं सोची थी। काव्य रचना करना उनका लक्ष्य नहीं था। काव्यशास्त्र और छन्दशास्त्र का अध्ययन उन्होंने नहीं किया था। उनमे से अनेक की 'मसि कागद' से भी भेंट नही हुई थी। वे भक्त थे, अत उनकी वाणी म भक्त-हृदय का स्वाभाविक उद्‌गार ही देखा जा सकता है। साधक होने से साधनागत अनुभूतियों की अभिव्यक्ति उनकी रचनाओ का सब कुछ है और समाज द्रष्टा होने के कारण उनकी रचनाओ मे सामाजिक कुरीतियो पर कठोर आघात किये गये हैं। उनकी वाणी का प्रतिपाद्य विषय परम पुरुष राम के स्वरूप का निरूपण, ज्ञान, भक्ति, योग वैराग्यादि का विधान, सहज सात्विक जीवन का उपदेश और माया मोह, विषय-वासना तथा आडम्बरपूर्ण जीवन की निंदा है। इस दृष्टि से इस सम्प्रदाय के स तो का काव्य-क्षेत्र पूर्व मध्यकालीन सत कवियो की अपेक्षा किसी भी अश म विस्तृत नही कहा जा सकता, फिर भी अनुभूतियों की निश्छल व्यजना तथा विभिन्न भाषा शैलियो का सफल समन्वय इसकी विशेषताए ह जो अनुसधित्सुओं का ध्यान बरबस आकृष्ट कर लेती हैं।

स्वरूप

रामसनेही सम्प्रदाय के साहित्य को सामान्य रूप स हम चार वर्गों मे विभाजित कर सकते हैं —

१ अगबद्ध वाणी।

२ भक्ति-भावनापूर्ण पद।

३ ग्रन्थ।

४ गद्य।

अगबद्ध वाणी

प्रारम्भिक सत कवियो का उद्देश्य ग्रन्थ प्रणयन करना नही था। वे अनुभूतियों को अनेक छन्दो म अभिव्यक्त करके सन्तुष्ट हो जाते थे। उन्होंने किसी विषय का क्रमबद्ध विवेचन करने का प्रयास नहीं किया। यही कारण है कि पूर्ववर्ती सतो की रचनाए अगबद्ध रूप म नही मिलती। उदाहरणार्थ नानक, दादूदयाल और कबीर की

रचनाए ली जा सकती है। 'आदि ग्रन्थ' मे अग का वर्गीकरण नही किया गया है। दादूदयाल ने भी अपनी वाणी की रचना अगबद्ध रूप मे नही की थी। उनकी साखियां को अगो में विभाजित करने का काम उनके शिष्य रज्जब ने किया। इसी प्रकार कबीर की रचनाए भी उनके शिष्य प्रशिष्यो द्वारा व्यवस्थित रूप मे प्रस्तुत की गई। रामसनेही सम्प्रदाय की शाहपुरा शाखा के सस्थापक रामचरण ने भी अपनी वाणी की रचना अगबद्ध रूप मे नही की थी। उनके शिष्य रामजन और नवलराम ने मिलकर गुरु की रचनाओं को विषय के अनुसार सुयोजित किया। कालान्तर मे वाणी-सग्रह के साथ ही साथ वाणी साहित्य को व्यवस्थित क्रम मे रखने और अगबद्ध रूप मे रचना करने की परम्परा का सूत्रपात हुआ। शनै शनै इस प्रवृत्ति का पर्याप्त विकास हुआ। दादूदयाल की वाणी मे जहाँ केवल ३७ अग है वहीं रज्जब की रचनाओं मे लगभग दो सौ अग मिलते है। रामसनेही सम्प्रदाय का बहुलाश साहित्य अगबद्ध रूप मे ही है। इसके ऐतिहासिक अनुशीलन से ज्ञात होता है कि परवर्ती सत निरन्तर नय अगो का समावेश करते गये है। शैली के विचार से भी पिछले खेवे के साम्प्रदायिक कवियो ने सवैया, कुण्डलिया, झूलना, अरिल, चन्द्रायण, कवित्त आदि अनेक छन्दो का प्रयोग किया है जबकि पहले के सतो ने अभिव्यक्ति का माध्यम प्रधान रूप से साखी को बनाया था।

पद

हमारे अध्ययन युग के सन्तो ने पदो की रचना पर्याप्त मात्रा मे की है। ये पद अनेक राग रागिनियो मे लिखे गये है। आकार मे विचार से ये छोटे बडे सब प्रकार के हैं। सन्त साहित्य मे पदो का बहुत बडा महत्त्व है। इन्हे 'शब्द' या 'भजन' कहते है। सन्तो की रचनाओ का प्राचीन रूप पदो के रूप मे ही दिखाई पडता है। इन पदो को पढने से प्रकट होता है कि इनकी रचना अनुभूति की सघनता की स्थिति मे की गई है। इन पदो मे जितनी आत्मपरकता है, उतनी सन्त साहित्य मे अन्यत्र दुर्लभ है। इनमे प्रधान रूप से भक्त की भगवान के लिए विह्वलता, दैन्य आत्मनिवेदन और कभी-कभी मायाजाल से बचने की चेतावनी दी गई है। कभी भक्त अपने प्रियतम राम के वियोग मे रोता है, कभी भावनागत सयोग की स्थिति मे मिलन के गीत गाता है, कभी अपने को अत्यन्त दीन, हीन एव पतित बता कर शरण की याचना करता है। कभी वह भगवान को उनके विरद की याद दिलाता है और कभी प्रवचनापूर्ण ससार को त्याग कर अगम देश मे शरण लेने का उपदेश देता है। वस्तुत सत साहित्यकारो के कवि रूप का दर्शन उनके इन पदो मे होता है।

ग्रन्थ

रामसनेही सम्प्रदाय के साहित्य मे छोटे-बडे अनेक ग्रन्थ मिलते हैं। इन ग्रन्थों

को मुख्य रूप से हम दो वर्गों में रख सकते हैं (१) मौलिक और (२) अनूदित। मौलिक ग्रंथों का स्वरूप की दृष्टि से कई वर्गों में रखा जा सकता है। पहले हम मौलिक ग्रंथों के विविध रूपों पर विचार करेंगे।

समय के भिन्न भिन्न अंगों पर आधारित ग्रंथ

सन्त परम्परा में, प्रारम्भ से ही, वार अथवा समय के भिन्न भिन्न अंगों के आधार पर रचना करने की प्रवृत्ति रही है। सहजोबाई की 'सोलह तिथि निर्णय' सन्त रज्जब की 'पन्द्रह तिथि' सन्त हरिदास की 'बड़ी तिथि योग,' 'लघु तिथि योग' आदि इसी प्रकार की रचनाएं हैं। कहना न होगा, तिथि और वार शीर्षक के अन्तर्गत रचना करने की परम्परा सन्तों को नाथयोगियों से मिली थी। 'गोरखबानी' में गोरखनाथ की 'पन्द्रह तिथि' और 'सप्तवार' नाम की दो कृतियाँ संकलित हैं। परिशिष्ट भाग में 'सप्तवार नवग्रह' नाम की एक रचना और दी गयी है। कालान्तर में, इस परम्परा का विस्तार सगुणोपासक भक्तों में भी हुआ। रसिक रामभक्त युगलानन्यशरण ने भी 'बारह राशि सप्तवार' नाम की एक रचना की है। रामसनेही सम्प्रदाय में इस प्रकार की अनेक रचनाएं प्राप्त हैं, जिनमें 'तिथि बोध' (रामजन) 'सप्तवार प्रकाश,' 'तिथि प्रकाश' (दयादास), 'तिथि नामू' (मुक्तराम), 'सातहों कला' (रामदास), सोलहै तिथा का विचार' (हरिरामदास) आदि प्रमुख हैं। तिथियाँ वस्तुतः पन्द्रह होती हैं किन्तु इन सन्तों ने तिथि की गणना अमावस्या से लेकर पूर्णिमा तक करके सोलह दिन पूरा कर लिया है। स्मरण रखना चाहिए कि गोरखनाथ की 'पन्द्रह तिथि' नामक रचना में भी सोलह तिथियाँ दी गई हैं, यद्यपि नाम के अनुसार इसके अन्तर्गत पन्द्रह तिथियों का निरूपण होना चाहिए था।

भक्तमाल

रामसनेही सम्प्रदाय में 'भक्तमाल' की रचना का बहुत प्रचार था। मुझे अब तक, इस सम्प्रदाय की छोटी-बड़ी कई भक्तमालें देखने को मिली हैं जिनमें दयालुदास, किसनदास, सुखरामदास, प्रेमदास, और पूरणदास (दरिया साहब के शिष्य) की कृतियाँ विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। रामदास ने भी एक छोटी सी भक्तमाल की रचना की है जो 'श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश' में प्रकाशित हो चुका है। भक्तिकाल में मध्यतागों के लिये भक्तमाल साहित्य वरदान स्वरूप रहा है। दुर्भाग्य से अभी तक नाभादास कृत 'भक्तमाल' उसकी कुछ इनीगिनी टीकाओं और एकाध अन्य भक्तमाला के अतिरिक्त इस परम्परा की अन्य रचनाएँ प्रकाश में नहीं आ सकी हैं। प्रस्तुत लेखक का विश्वास है कि यदि भक्तमाल-परम्परा में विरचित ग्रंथों की खोज की जाय तो एक महत्त्वपूर्ण साहित्य राशि के प्रकाश में आने के साथ ही साथ उत्तर मध्यकालीन भक्ति काव्य पर अनुसंधान करने वालों का मार्ग प्रशस्त हो जायगा।

गुरुमहिमा

निर्गुणिया संत गुरु के अनन्य भक्त हैं। वे गुरु और ब्रह्म को स्वरूपतः एक मानते हैं। यही कारण है कि प्रायः सभी संतों ने गुरुमहिमा सम्बन्धी पदों की रचना की है। गुरु माहात्म्य वर्णन की यह परम्परा परवर्ती युग तक आते आते और भी बढ़ गयी। परिणामस्वरूप सामान्य रूप से सभी संत कवियों ने 'गुरुमहिमा' नाम से स्वतन्त्र ग्रंथ विरचित करके ही संतोष किया। हमारे अध्ययन-युग के संतों ने भी 'गुरु महिमा' शीर्षक ग्रन्थ लिखे हैं। रामचरण, दरिया साहब, रामदास, पीथो दास, पूरणदास, किसनदास, सूरतराम, मुक्तराम, नानकदास आदि महात्माओं के 'गुरु महिमा' ग्रन्थ, विशेष रूप से, उल्लेखनीय हैं।

परची

इन संतों की, रामनाम में जितनी अनुरक्ति थी, काम और दाम से उतनी ही विरक्ति। भौतिक जीवन के प्रति उन्हें कोई राग नहीं था। इसलिए उनकी वाणी में आत्मोल्लेखों का सर्वथा अभाव है। यही कारण है कि अधिकांश संत कवियों के जीवनवृत्त की खोज में शोधक, अभी अंधकार में, भटक रहे हैं। परवर्ती संतों ने 'गुरु महिमा' के साथ-साथ गुरु की 'परिचयी' लिखना आरंभ किया। अतः संतों के जीवनवृत्त पर, साम्प्रदायिक साहित्य से, जो थोड़ा बहुत प्रकाश पड़ता है उसका श्रेय 'परची' या 'परिचयी' साहित्य को है। इस वर्ग की कृतियां अनुसंधित्सुओं के लिए बड़ी ही उपयोगी हैं। रामसनेही सम्प्रदाय में 'परची' साहित्य की सर्जना प्रारम्भ से ही होती रही है। रामजन कृत 'राम पद्धति', पूरणदास (खेड़ापा) कृत 'जन्मलीला', जगन्नाथ कृत 'ब्रह्म समाधि लीन योग', दयालुदास कृत 'गुरु प्रकरण परची', लालदास कृत 'रामचरण की परची' पदुमदास कृत 'दरिया साहब की जन्म-लीला', मदाराम कृत 'दरिया साहब की परची' और 'बुधसागर की परची,' सेवकराम कृत 'परसुराम की परची,' अर्जुनदास कृत 'परचीसार' आदि कृतियाँ, सम्प्रदाय के अंधकारपूर्ण अतीत के अनुसंधायकों के लिए अक्षय ज्ञान-स्रोत के रूप में, अभिनन्दनीय हैं।

संख्याबद्ध कृतियां

आलोच्ययुगीन साम्प्रदायिक साहित्य का एक वृहदंश छन्द-संख्या के आधार पर नामांकित ग्रंथों के रूप में है। इस प्रकार की रचनाओं में 'बत्तीसी,' 'पचीसी,' 'छत्तीसी,' अष्टक, बावनी आदि प्रमुख हैं। रामसनेही सम्प्रदाय में उपर्युक्त सभी प्रकार की रचनाएं मिलती हैं। संख्या के आधार पर रचित ग्रंथों में 'करुणा रस बत्तीसी' (हरखाराम), 'ककाबत्तीसी (प्रेमदास),' रक्षा बत्तीसी (दयालुदास), 'पदबत्तीसी (रामदास)' पदबत्तीसी (हरिरामदास), 'करुणा छत्तीसी' (पूरणदास) 'गुरु अष्टक (दयालुदास), 'विनय बावनी' (माधवराम), वार बावनी (पं० उत्साहराम) आदि

का नाम गिनाया जा सकता है। इस शैली में लिखी गई, पूर्ववर्ती सतों की भी कुछ रचनाएं मिलती हैं। कबीरदास ने 'रमैणी' ग्रंथ में 'सप्तपदी', 'बड़ी अष्टपदी', 'दुपदी', 'अष्टपदी', 'बारह पदा' तथा चौपदी रमैणियों का संग्रह किया है। 'आदि ग्रंथ' में भी 'असट पदीया' नाम की कुछ रचनाएँ, गुरु नानक, गुरु अमरदास, गुरु रामदास तथा गुरु अर्जुनदास की कृतियों के रूप में, संकलित हैं। कबीरदास तथा सिख गुरुओं की उपर्युक्त रचनाओं में छन्द संख्या प्रायः स्वतन्त्र ढंग से रखी गयी है किन्तु रामसनेही सम्प्रदाय के कवियों ने नियम का उचित ढंग से पालन किया है। इस सम्प्रदाय की उपर्युक्त रचनाओं में से किसी में भी संख्या विषयक घट-बढ़ नहीं है।

ककहरा

रामसनेही सम्प्रदाय में ककहरा प्रणाली पर ग्रंथ रचना करने की भी परम्परा रही है। रामप्रताप (*गुरु रामचरण*) *विरचित 'कका काया कारिज करणीसार निरूपण'*, 'कका काया करणीसार निरूपण' और मुक्तराम विरचित 'ककरा बत्तीसी' की रचना इसी पद्धति पर की गयी है। अक्षरानुक्रम से लिखने की यह प्रणाली कोई नयी नहीं है। कहा जाता है कि इसका आरम्भ अपभ्रंश-काल में ही हो गया था[1]। सुन्दरदास की 'बावनी' एक ककहरा ग्रंथ है, यद्यपि इसमें सभी वर्णों का समावेश नहीं हो सका है। धरनी साहब, गुलाल साहब, और भीखा साहब ने भी इस प्रकार के ग्रंथों की रचना की है। कहना न होगा कि ककहरा पद्धति का प्रयोग केवल देवनागरी लिपि में ही नहीं वरन् फारसी लिपि में भी किया गया है। यारी साहब और गोविन्द साहब के 'अलिफनामे' फारसी अक्षरानुक्रम में लिखे गये हैं। असम्भव नहीं कि इस विषय में जायसी का 'अखरावट' इनका पथ प्रदर्शक रहा हो।

गोष्ठी

साम्प्रदायिक साहित्य में 'गोष्ठी' ग्रंथ भी देखने को मिलते हैं, जैसे रामचरण विरचित 'गुरु शिष्य-गोष्ठी'। 'गोष्ठी' ग्रंथों की रचना कथोपकथन के रूप में होती है। इस प्रकार की रचनाओं की एक सुदृढ़ परम्परा नाथपंथी साहित्य में मिलती है। 'गोरखबानी' में 'गोरख-गणेश-गुष्टि', 'महादेव-गोरख-गुष्टि' । 'महादेव-गोरख-गुष्टि' और 'नाम की तीन गोष्टियां' नामक तीन ग्रंथ प्रकाशित हैं। गोष्ठियों का दूसरा नाम 'सम्वाद' भी है। रामसनेही सम्प्रदाय में 'गुरु शिष्य-सम्वाद' नाम की दो रचनाएं प्राप्त हैं, एक की रचना सेवकराम ने की है और दूसरी की परशुराम ने।

प्रश्नोत्तरी

'गोष्ठी' से कुछ मिलते-जुलते 'प्रश्नोत्तर', नाम के ग्रंथ भी देखने को मिले

१ मधुकर (जून जुलाई १९४६), पृ० ४९२

जीवन-चरित्र और साम्प्रदायिक सिद्धांत विवेचन। टीका के रूप में हम 'दृष्टांत सागर' की टीका (रामजन) 'घघर निसाणी' की टीका (चोकसराम) और चोकसराम तथा उत्साहराम कृत 'करुणासागर' की टीकाओं का नाम ले सकते है। भूमिकाएं तो बहुत महत्त्व की नहीं हैं फिर भी 'रामसनेही सन्तवाणी' और 'अणभवाणी' तथा भगवद्दास जी द्वारा सम्पादित 'हरिदेवदास की वाणी' की भूमिकाएं उल्लेखनीय हैं। श्री हरिदास शास्त्री कृत 'आचार्य चरितामृत' जीवन चरित्र सम्बन्धी एक सुन्दर ग्रंथ है। विवेचनात्मक गद्य में लिखी गई 'रामसनेह धर्मदर्पण' (मनोहरदास) ही एकमात्र ऐसी रचना है जिससे, साम्प्रदायिक सिद्धांतों के अनुशीलन में, पर्याप्त सहायता मिलती है।

(ख) साहित्यकार

'उद्भव और विकास' के अध्याय में कहा जा चुका है कि राजस्थान में रामसनेही नाम से तीन सम्प्रदाय चल रहे हैं। इनकी मूल गद्दियां, रेण, सिंहथल खेड़ापा और शाहपुरा में, अभी वर्तमान है। इन तीनों शाखाओं में प्रचुर मात्रा में साहित्य-सर्जना हुई है। स्थानाभाव के कारण प्रत्येक शाखा के कतिपय प्रमुख कवियों का परिचय दिया जायगा।

रेण शाखा के आद्याचार्य दरिया साहब (सं० १७३३ १८१५), सिंहथल के हरिरामदास (मृ० १८३५) और शाहपुरा के रामचरण (सं० १७७६ १८५५) थे। तीनों संस्थापकों के जीवन-काल को ध्यान में रख कर विचार करने से विदित होता है कि इनमें सर्वाधिक प्राचीन रेण शाखा है, सिंहथल तथा शाहपुरा का स्थान क्रमशः दूसरा और तीसरा है। किन्तु प्रस्तुत प्रबन्ध में लोकप्रियता की दृष्टि से प्रथम स्थान शाहपुरा को, दूसरा सिंहथल-खेड़ापा को और रेण को तीसरा स्थान दिया गया है। आगे इसी क्रम में साहित्यकारों का जीवनवृत्त प्रस्तुत किया जायगा।

शाहपुरा शाखा के साहित्यकार

रामचरण

रामसनेही सम्प्रदाय की तीनों शाखाओं में सर्वाधिक चर्चित नाम महात्मा रामचरण का है। इनका जन्म ढूंढाड़ राज्यस्थित सोडा नामक ग्राम में माघ शुक्ल १४, शनिवार, सम्वत् १७७६ को, ननिहाल में, हुआ था।[1] ये जाति के बीजावर्गी

(अ) सम्मत सतरा सै हुतो और छहतर जान।
चतुरदशी तिथि माहसुद वार सनीसर जान ॥
+ + +
ढूंढाड़ देश सोडे नगर नाना जी के द्वार।
भगतिराज वपि अवतरे जग जीवन हितकार ॥
—जगन्नाथ कृत रामचरण की परची।



श्री रामचरण जी (शाहपुरा शाखा के आद्याचार्य)



आचार्य पीठ शाहपुरा (मेवाड़)

वैश्य (माहेश्वरी) थे।[1] इनके पिता का नाम बखतराम और माता का दऊ जी था। बखतराम मालपुरा निकटस्थ बनवाड़ा नामक ग्राम के निवासी थे।[2] रामचरण का बचपन का नाम रामकृष्ण था।[3] इन्होंने तीस वर्ष की अवस्था तक गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत किया था। कुछ समय तक ये जयपुर नरेश के प्रधान मन्त्री भी रहे। अन्तर साक्ष्य से भी इनका दरबार में रहना सिद्ध होता है।[4] इनके विरक्त होने के सम्बन्ध में कहा जाता है कि एक बार ये एक दूकान में सोये हुये थे। वहां एक यती आया। उसने इनके चरणचिह्नों को देखकर इनके गृहस्थ होने पर आश्चर्य प्रगट किया और महात्मा होने की भविष्यवाणी की। इस घटना के बाद रामकृष्ण के हृदय में निर्वेद समा गया। संसार की असारता का भान होते ही पारिवारिक बंधन ढ़ीले पड़ने लगे। इस प्रकार एक वर्ष भी नहीं बीत पाया कि एक दिन रात के अन्तिम प्रहर की मधुर निद्रा में सोये हुये रामकृष्ण ने एक स्वप्न देखा। इन्हें लगा कि वे नदी में स्नान कर रहे हैं। इतने में सरिता के प्रबल प्रवाह से इनके पैर उखड़ गये और वे धारा में बहने लगे। अब इनके लिए चारा ही क्या था? वे 'बचाओ-बचाओ' के ऊंचे स्वर में चिल्लाने लगे, किन्तु श्मशान की सांय-सांय में इनके करुण क्रन्दन को सुनने वाला एक

(ख) देस ढूंढाड सोभै अजमेरो सोढो नगर मालपुर नेरो।

+ + +

सतरा से र छहतर बरसा मास महासुद कहूं विसेसा॥
चवदस वार मनीसर नीको जा दिन काढ्यो बहुमिर टीको।

— ब्रह्म समाधि लीन जोग छं० ८,११ और १२

१ वैश्य बरण कुल उत्तम जानो।
बीजावर्गीत महाबुधिवानो॥

— वही छं० ८

२ तास ग्राम बनवाडो कहीए मालपुर के नेरे लहीए।

+ + +

वइस वरण हरिभगता माता बखतराम जी पिता विख्याता।
देऊ जी माता का नामा परम सुसील सुलछन धामा॥

—परची

३ कुल का प्रोहित लिया बोलाई जन्म पत्रिका वेग लिखाई।
राम किसन जी नाम बताया सकल कुटुम्बी के मन भाया॥

— वही

४ जन्म व य घर पाइय पुनि सेवत राजद्वार।
रामचरण जन न मिलै तो होता बहुत खवार॥

अमृत उपदेश, अ० ५ छं० ३६

वृद्ध मन के अतिरिक्त और कोई न था। उस दिव्य व्यक्तित्व-सम्पन्न महात्मा ने रामकृष्ण को मृत्यु के कराल गाल में जाने से बचा लिया। तदनन्तर नींद टूट गई और रामकृष्ण की प्रकृत निद्रा के साथ-साथ मोह निद्रा भी भंग हो गई। ये तत्काल स्वप्न में आये हुए उसी महात्मा की खोज में निकल पड़े। ढूंढते-ढूंढते दांतड़े निवासी महात्मा कृपाराम से इनकी भेंट हुई और मनमाना गुरु पाकर भाद्रपद, सं० १८०८ में उन्हीं से दीक्षा ले ली।[१] दीक्षोपरान्त इनका नाम रामचरण पड़ा।

रामचरण कुछ समय तक वेष धारण कर साधना करते रहे। एक बार रसोई बनाते समय जलती लकड़ी में से चींटियां निकलते देखकर इनका मन उचट गया। धीरे धीरे साधुओं की आपसी खींचतान से इन्हें चिढ़ हो गई और साम्प्रदायिक बाह्याचार प्रवृत्ति का बखेड़ा सा लगने लगा। अतः स्वामी कृपाराम की आज्ञा से ये विरक्त हो गये। विरक्ति-भाव धारण करके रामचरण जी वृन्दावन की ओर चल पड़े। कहते हैं मार्ग में इन्हें साधु वेष में साक्षात् ईश्वर ने दर्शन दिया और वृन्दावन न जाकर मेवाड़ में निर्गुण राम भक्ति का प्रचार करने के लिए कहा। इस प्रकार दैवी प्रेरणा प्राप्त कर वे मेवाड़ की ओर लौट गये और वहीं तपोमय जीवन व्यतीत करने लगे। इन्होंने पहले अपनी साधना भूमि भीलवाड़ा को बनाया। दस वर्ष की अनवरत साधना के उपरान्त इस प्रदेश में स्वामी जी का प्रभाव बड़ी तेजी से बढ़ने लगा। इनकी कीर्ति को बढ़ते देखकर इनके विरोधियों को, जो मूर्ति पूजक थे, बड़ा चिन्ता हुई। उन लोगों ने उदयपुर के राणा से इनकी शिकायत की। महाराणा ने इन्हें बुलाने के लिए सिपाही भेजे। इस पर रामचरण को बहुत दुःख हुआ और ये कुहाड़ ग्राम चले गये। कुछ दिन वहां रहने के अनन्तर, शाहपुरा नरेश के आमन्त्रण पर, सं० १८२६ में ये शाहपुरा चले आये और जीवन पर्यन्त वहीं रहे। शाहपुरा-नरेश रण सिंह का पूरा परिवार इनका अनन्य भक्त था। ये अपने समय के बहुत प्रसिद्ध महात्मा थे। इन्हें मेवाड़ और उदयपुर के राजाओं द्वारा भी सम्मान मिला था।

---

१ (अ) समत अठारा सै अरु आठा ले वैराग गये तन काठा।
भाद्र पद मास दास पद पायो रामचरण जी नाम कहायो॥
—ब्रह्म समाधि लीन जाग छ० २३ ३४

(ब) अठारा सै अरु आठ को साला मास द्वाम दियो किपाला।
भाद्रमास भए निरबन्धा रामचरण जो नाम पसन्धा॥
—गुरु लीलाविलास छ० ४४

(स) अष्टादश अरु आठ मैं समत भई गुरु भेंट।
आप परीक्षा कर लिया मूल भ्रमना भेंट॥
—परची, छ० ३१

इनका देहावसान वैशाख कृष्ण ५, बृहस्पतिवार वि० सं० १८५५ को शाहपुरा में हुआ।[1]

रामचरण जी के कुल २२५ शिष्य बताये जाते हैं किन्तु अभी तक उनकी नामावली प्राप्त नहीं हो सकी है। शाहपुरा रामद्वारे की 'बारहद्वारी' की भित्ति पर इनके १२६ शिष्यों का नाम अंकित है। इनके शिष्यों में १२ प्रमुख माने जाते हैं— वल्लभराम, रामसेवक, रामप्रताप, चेतनदास, कान्हड़दास, द्वारकादास, भगवानदास, रामजन, देवादास, मुरलीराम, तुलसीराम और नवलराम।[2]

रामचरण जी ने २२ ग्रन्थों तथा स्फुट अणवद्ध वाणी की रचना की, जिसकी सम्पूर्ण छन्द संख्या ३६३६७ है। ग्रन्थों की नामावली इस प्रकार है

१	गुरुमहिमा	१२	चिन्तावणी
२	नामप्रताप	१३	मनखंडन
३	शब्दप्रकाश	१४	गुरु शिष्य-गोष्ठि
४	अणभैविलास	१५	लिंग पारख्या
५	सुखविलास	१६	जिद-पारख्या
६	अमृत उपदेश	१७	पंडित-संवाद
७	जिज्ञासबोध	१८	लच्छअलच्छ योग
८	विश्वासबोध	१९	वेयुक्ति निरस्कार
९	विश्रामबोध	२०	दृष्टांतसागर
१०	समतानिवास	२१	काफरबोध
११	रामरसायण	२२	शब्द

---

१ (क) सम्वत अठारा से सही जान पचावन और।
वैशाख बदी पाँचैं तिथी ब्रस्पति छतरयाँ ठौर॥
दिवस पहर पिछलो रह्यो कियो कूँच प्रतीवार।
—ब्रह्म समाधि लीला-जोग, छन्द १४३-४४

(ख) सम्वत अठारा से पचान वैसाख बदी पाँचैं प्रमान।
गुरुवार पहर तीजै तयार आप भये निज निराकार॥
—राम पद्धति, रामजन, छन्द ३१

२ वलभराम बलवंत रामसेवक तपधारी।
राम प्रताप पुनीत दास चेतन सुस्नेही।
कान्हड़ करणीवान द्वारकादास विदेहा।
भगवानदास भजनीक राम ही जन अधिकारी।
देवादास निर्मल शुद्ध ज्ञान मुरली घन धारा।
तुलसी तत परबीन नवल पुस्तीधरप्यारा।
ये द्वादश शिष्य साध कस्या रथ कारणहारा।
—राम रसाम्बुधि, भाग २, पृ० १२३

इनकी काव्य-शैली के उदाहरण के लिए कुछ छंद नीचे दिये जाते हैं—

सग लगे तिर जाय सोही सिष्य जो गुरु पाव जहाज समाना।
सो परमारथ कारण जानिये भवजल सू ततकाल तिराना॥
आप न चाह करे न कछू मन अन्य कथा कबहूं न बखाना।
राम कहे अरु राम कहावत सोही पूरा निज भेद बताना॥[१]

संसार ब्रच्छ की छाहडी फिरती ढलती जोय।
ज्ञान वृच्छ की एक रस सदा ज शीतल सोय॥
सदा ज शीतल सोय ज्ञान अधिकारी पावै।
घटती बधती सबै देखि द्रष्टा होई जावै॥
रामचरण समझ्या जिके ज्यां प्रतिती भजक न होय।
संसार वृच्छ की छाहडी फिरती ढलती जाय॥[२]

माया को स्वरूप सोतो बर्यो है थिरत सारो,
विचारीये ज्ञान भया तेरी ये बडाई है,
ज्ञान के विचारे बिना घना घना भूर मुवा,
हुवा न तपति कोई समना गुमाई है।
कपटी कुबुधि कूर कहै नाना भांति कोऊ,
तोहू न रहै र थार नहचे दुराई है,
राम ही चरण कहै करे तू अकाज काइ,
माया की मरोड सबै झूठी असनाई है॥[३]

पतित उधारण विरद तुम्हारो,
अबकै राम पतित कू त्यारो॥टेक॥
भक्त बछल कू भक्ति पियारी, हम तो पतित पाप की क्यारी।
अजामील गणिका सी त्यारी, उन सू मैलो भाति हमारी॥
कामी कपटी मैं पण हारो, लोभी लपटि विकल विकारी।
तन मन अशुचि नहीं आचारो, परपची अरु परधन हारो॥
गुण करता मू अवगुणकारी, अपणो अवगुण गुण विस्तारी।
रामचरण मन यहि विचारी, गुण-सागर में शरण तुम्हारो॥[४]

१ जिज्ञासा बोध—द्वितीय प्रकरण, छं० ५१
२ विश्राम बोध प्रथम प्रकरण, छं० ५७
३ विश्राम बोध—दशम् विश्राम, छं० १
४ अणभैवाणी, पृ० ६६२

रमइया मेरी पलक न लागै हो।
दरस तुम्हारे कारणे निशि वासर जागै हो ॥टेक॥
दसू दिशा आतुर करू, तेरो पथ निहारू हो।
रामराम को टेर दे, दिन रैण पुकारू हो ॥१॥
नैन दुखी दीदार विन रसना रस आसै हो।
हिरदो हुलसे हेत सू, हरि कब परकासै हो ॥२॥
स्वाति बूंद चातक रटे, जल और न पीवै हो।
घन आशा पूरे नही, तो कैसे जीवै हो ॥३॥
दास की अरदास सुण, पिया दरण दाजै हो।
रामचरण विरहिनि कहै अब विलम न कीजै हो ॥४॥[1]

रामजन

रामसनेही सम्प्रदाय की शाहपुरा शाखा के द्वितीय पीठाचार्य रामजन जी थे[2]। इनका जन्म वि० सं० १७९५ में, वैश्य कुल (मोहश्वरी) में हुआ था[3]। ये सिरसा नामक ग्राम के निवासी थे[4]। कवलराम स्वामी के अनुसार इन्होंने सम्वत् १८२४ में रामचरण से दीक्षा ली थी[5]। गार्सां द तासी ने इनका दीक्षा-काल सन् १७६८ (सम्वत् १८२५) माना है[6]। प्रमाणों के अभाव में उक्त दोनों मतों की समीचीनता के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। ये स्वामी रामचरण के बारह प्रमुख शिष्यों में से थे। स्वामी रामचरण से इनकी घनिष्टता का उल्लेख करते हुए जगन्नाथ ने 'नैन पूतरी' से उपमा दी है[7]। रामचरण की परमधाम-यात्रा के पश्चात् इन्होंने सम्वत् १८५५ में आचार्य पद ग्रहण किया[8] और जीवन पर्यन्त इसी पद पर आसीन रह कर धर्म प्रचार करते रहे। इनका

---

१ अणभैवाणी, पृ० १००६

२ रामचरण महाराज सूर ज्यों अवनि उजागर।
जाकी गादी दिपै रामजन सुख के सागर॥
— जगन्नाथ कृत 'महिमा के शब्द'

३ श्री रामसनेही सम्प्रदाय, पृ० ४४

४ इस्त्वार दला लितरात्यूर ऐंदुई एँ ऐंदुस्तानी, पृ० २३७

५ श्री रामसनेही सम्प्रदाय, पृ० ४४

६ इस्त्वार दला लितरात्यूर ऐंदुई एँ ऐंदुस्तानी, पृ० २३७

७ रामचरण और रामजन नैन पूतरी जेम।
—महिमा के शब्द

८ श्री रामसनेही सम्प्रदाय, पृ० ४४

देहावसान आषाढ़ कृष्ण ११, बुधवार, सं० १८६७ को हुआ[1]। 'श्री रामसनेही सम्प्रदाय' नामक ग्रंथ में भी इसी तिथि का उल्लेख है। गार्सां द तासी ने इनकी मृत्यु सन् १८०७ (सं० १८६६) में मानी है[2]। इसी तिथि का समर्थन पं० परशुराम चतुर्वेदी ने भी किया है।[3] वस्तुतः रामजन जी का देहावसान-काल सम्वत् १८६७ मानना उचित होगा क्योंकि शाहपुरा स्थित उनकी समाधि पर यही तिथि अंकित है जिसकी समीचीनता पर किसी प्रकार से अविश्वास नहीं किया जा सकता।

इनके बीस ग्रंथ प्राप्त हैं, जिनकी नामावली इस प्रकार है —

१	उपदेशबोध	११	चाणक्यबोध
२	कालबोध	१२	ज्ञानबोध
३	रसनबोध	१३	ध्यानप्रबोध
४	विचारबोध	१४	भक्तिबोध
५	प्रतीतिबोध	१५	विवेकबोध
६	वैराग्यबोध	१६	विनतीबोध
७	सुमिरणबोध	१७	ध्यानगाथो
८	गुरुस्तुतिबोध	१८	सुमिरणसिद्धांत
९	साहीनबोध	१९	रामपद्धति
१०	तिथिबोध	२०	दृष्टांतसागर की टीका

उपर्युक्त ग्रंथों में से 'रामपद्धति' और 'दृष्टांतसागर की टीका' को छोड़कर सब ग्रंथ अप्रकाशित हैं। इनकी छंदबद्ध वाणी की संख्या भी पर्याप्त है। रामजन विरचित 'दृष्टांत सागर की टीका' में तत्कालीन गद्य के स्वरूप का अच्छा परिचय मिलता है। रामजन जी का सम्पूर्ण साहित्य शाहपुरा के 'रामनिवास धाम' में सुरक्षित है, जिसे इन पंक्तियों के लेखक ने स्वयं जाकर देखा है।

इनकी रचना के कुछ नमूने नीचे दिए जाते हैं —

वैराग कू राम कृपाकरि जागोए।
विरत रत को हरि निवारे,
भोजन पान कू हाथ न छोवत,
माया गहे ताको गति टारे।
सो गुरु ग्यान विचार कू जोगि है,
वानी सुवानी को मन प्रहारे,

---

१ अठारा सैं सतसठ सुभी कृष्ण असाढ़ सु बुध।
ग्यारसी तन त्यागि मिलि रामजन हरि मधि॥
— समाधि के शिलालेख से

२ इस्त्वार द ला लितरात्यूर ऐन्दुई ऐ ऐन्दुस्तानी, पृ० २१७

३ उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ० ६२०

आप अजाचिक काहु न जाचिव,
नाचि की सगत नाहि निहारे ॥[१]

गुरु के चरण चित राखोए ज एक रवि,
दसौय ज वाक वासि पासि कटे भ्रम की,
होइ निरखध वद आन द को पाइ रह्यौ,
गह्यौ गुरु वाइक अधारी भागे भ्रम की।
होइ प्रकास मह्य पद को उदोतकार,
दोसति विभूति निति आतम धरम की,
रामजन मन दिच गुरु क सरनि सदा
जनम मरण मिटे लगे जा मरम की।[२]

जेठ असाढ ज आईया धन आगम घन घोरि।
विरहिन बोल प्रीति अति मानौ कुरले मोर ॥ टेक ॥
घटा चढ़ी घन उमग कै वढी बिरहनि क आस।
कब हरि बरसै प्रेम जल तव तन होइ निवास ॥
रस न उचारे धारिया चाल्या धरि हू धीर।
सुमरण लागी लू ब झडि साहर भरया गम्भीर ॥
बिरहनि सूते तास मधि करि करि आनन्द आप।
लहस्या सवै प्रेम की ज्यू ज्यू मिट है ताप ॥
ताप मिटी तन सानि करि हर बरसै हरनीर।
रामजन सुख पाईया रुम रुम सुख सीर ॥[३]

रमत रमत तत अपर जटल मत
बरतत बरजन मरन मटत ह।
सरप गरल गात रसन अम्रत रत,
रटत रटत पत भ्रमस फटत ह
घटत घटत घट भट समटत मन
हटत हटन तम सबद रटत ह
धरन धरत तव मदन मरत जत्र
सदन सजत जत सबत रटत ह ॥[४]

१ ग्यान प्रबोध—नवम् खड, छ० २८
२ सुमिरण सिद्धान्त, छ० १८३
३ शब्द, छ० १०
४ श्री रामसनेही सम्प्रदाय, पृ० १६७

दूल्हेराम

दूल्हेराम का जन्म जयनगर में वैशाख, कृष्ण ४, सं० १८०६ को हुआ था।[1] इनके पिता का नाम सुखदेव और माता का विष्णुकांता था।[2] ये जाति के खंडेलवाल वैश्य थे। इनका बचपन का नाम दयानिधि था[3]। बाल्यकाल में ही कुलगुरु ने इनकी जन्मपत्री देखकर बहुत बड़ा महात्मा होने की भविष्यवाणी की थी।[4] शिशु दयानिधि धीरे धीरे सयाना हुआ और गृहकार्य संभालने लगा। एक दिन ये अपने व्यापारिक लेखा-जोखा में व्यस्त थे। इतने में एक महात्मा आया और इनको कार्यरत देखकर उसने निम्नलिखित साखी कही—

> क्यूं काला कागद करो इन बातां क्या होय।
> रामचरण भज रामको दिल का दस्ता खोय॥'

इन शब्दों को सुनकर दयानिधि के ज्ञान-नेत्र खुल गये। इन्होंने उस महात्मा से साखी के रचयिता का नाम पूछा। उसने रामचरण जी का परिचय दिया और फिर अपनी राह ली। उस क्षण तो दयानिधि फिर कार्यरत हो गये किन्तु उनके हृदय में विरक्ति की भावना जागृत हो गई और महदय के रंगमंच पर एक नये अभिनय की तैयारी होने लगी।

इनका विवाह मेवाड़ नरेश के सचिव रामलाल की सुपुत्री के साथ होना तय हुआ। निश्चित तिथि पर धूमधाम से बारात चली। जूनिया नगर तक पहुँचते-पहुँचते सूर्यास्त हो गया। रात्रि-विश्राम के लिए शिविर पड़ गये। प्रातःकाल दयानिधि भाई के साथ वन जंगल की ओर टहलने गये। जाकर देखा कि एक वृक्ष के नीचे कोई महात्मा समाधि लगाये बैठा है। दयानिधि उसके निकट जाकर बैठ गये और 'राम राम' जपने लगे। ध्यान टूटने पर महात्मा के नेत्र खुले तो सम्मुख दयानिधि को बैठा देखा। उसने संसार को असार बताते हुए भवसागर पार करने के लिए रामनाम की नौका का आश्रय लेने की शिक्षा दी और फिर ध्यान मग्न हो गया। दयानिधि अपनी

---

१ रस शून्य वसु क्षिति वाम गति स अब्द विक्रम मान लो।
  कृष्ण माधव वेद तिथि अवतार प्रभु का जान लो॥
  —दूल्हेचरितामृतम्, पृ० १२

२ वही, पृ० १२

३ कुल गुरु ने मंडित आकर जन्म पत्र बना दिया।
  ग्रह योग विधि से दयानिधि शुभ नाम निश्चय कर लिया॥
  —वही, पृ० १२

४ होगा महा यागी यती जन्माग पत्र गुरु ने कहा।
  वही पृ० १२

निधि पा गये। वे शादी-व्याह सब कुछ भूल गये। घरबार से तरणवत नाता तोडकर वे उसी क्षण रामचरण जी की पावन तपोभूमि शाहपुरा की ओर चल पडे। वहा जाकर इन्होंने माघ शुक्ल प्रतिपदा, स० १८३३ को उनसे दीक्षा ली। दीक्षोपरान्त इनका नाम दूल्हेराम पडा, क्योंकि 'दूल्हा' वेष में ही ये शरणागत हुए थे।[1]

लगभग दस वर्ष तक घूम घूमकर धर्म प्रचार करने के उपरान्त ये शाहपुरा लौटे और रामचरण जी का आज्ञा से वही रहने लगे। रामजन के देहावसान के पश्चात्, ये वि० स० १८६७ में शाहपुरा गद्दी के पीठाधीश्वर हुए। इन्हें राजस्थान के राजवंशो में काफी सम्मान मिला था। प्रसिद्ध है कि एक बार इन्होंने मेवाड के राजा भीमसिंह का आतिथ्य भी स्वीकार किया था। इनका देहान्त आषाढ कृष्ण १०, मगलवार वि० स० १८८१ को हुआ।[2]

इनकी सम्पूर्ण वाणी-सख्या १४००० श्लोक है। इन्होंने स्वतन्त्र ग्रथो का प्रणयन नही किया। इनकी वाणी का विवरण इस प्रकार है —

साखी	अग ९५	सख्या २९४५
चान्द्रायण	अग ३४	,, २९२
सवैया	,, ३६	,, १९४
झूलना	,, २९	,, ११२
मनहर	,, ३९	,, १४६
कवित्त	,, ३२	,, १९६
कुण्डलिया	,, ४८	,, ३६२
रेखता	,, २२	,, ७५
पद	राग ५०	,, २११

दूल्हेराम की भाषा राजस्थानी मिश्रित साधारण हिन्दी है। अभिव्यक्ति में सतजनोचित सरलता और भाषा का सहजता ही इनकी वाणी की प्रमुख विशेषता है।

---

१ भीम सिंह मेवाड भूप, विनय कीन अतिशय अनूप।
कर स्वीकृत सग ले सत वृन्द, उदय नगर भयो उदय चन्द्र ॥
—दूल्हेचरितामृतम्, पृ० ३३

२ (अ) सम्वत् इक्यासी हे विख्यात, आषाढ कृष्ण दशमी प्रमान।
तन त्याग भये गुरु निराकार ॥
—वही, पृ० ३६

(ब) सम्वत अठारा इक्यासीय अषाढ कृष्ण पचनाम्।
भौम दशे तनत्यागि क गये दूल्हैराम निज धाम ॥
—समाधि के शिला लेख से।

नमूने के लिए कुछ छन्द नीचे दिये जाते हैं —

सन्तो ऐसा जोगी भाई।
एकाएकी रमता रहता, वन बस्ती समलाई॥ टेर॥
सैली सील नाद दिल विच करि मन मुद्रा पहिराई।
भोग तज्या भगवा तन बस्तर, त्रिगुण छुरी गहाई॥ १॥
परण पातर कर माही लीया, सत का भिक्षा खाई।
आत्म तपति ग्यान की छोला तन मन सीतल थाई॥ २॥
अगम अगोचर देव निरजन, सतगुरु सबदा पाई।
दूल्हेराम दीदार पाक दिल, राम कह्या होइ जाई॥ ३॥[1]

नाम सम तारण तिरण मज सुत्र पद मिलिय।
देह काचो है दूल्हैराम जाय साच बलिए॥
रावण हिरणकुस्स से दुर्योधन सिसुपाल।
पोय्या दल बल छाडि गया मन यह नहच हाल॥
यह मन न्हचे जाण न जाणा रहणा नाहि।
दूल्हैराम ता कारणे राचा राम समाहि॥[2]

राम रमै सब माहि वदन मैं करू ताहि।
द्वितीया गुरु राम रूप नहचै यह जान है।
भूत भविष्य वतमान सत सबै है प्रमान,
नाम के तिहारी जन राम ही समान है॥
तन मन वार फेर वदन कर बेर बर,
जना की कृपा सू मिट जाय ध्यारू खान है।
राम गुरू सत बिना कहू मुन्त नाहि छिना,
तातै दूल्हैराम तू तो शीश तेरे भ्रान है॥[3]

सूरतराम

सूरतराम रामचरण के शिष्य थे।[4] इनकी साधना भूमि जयपुर थी। ये अपने समय के बड़े सिद्ध महात्मा थे और इन्हे राज्य-सम्मान भी मिला था। जीवन

१ श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० २०४

२ श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० २०३।

३ श्री पचरत्न स्तोत्र, पृ० ४८ ४६

४ रामचरण गुरु तपत हैं सुरत राम के सीस।
—सुरत राम की वाणी, पृ० स० १५०

के अन्तिम दिनों मे ये शाहपुरा आकर रहने लगे थे। यहीं फाल्गुन सुदी २ भृगुवार स० १८७५ को इनकी परमधाम-यात्रा हुई।[१]

इन पंक्तियों के लेखक को इनकी रचनाओं का जो संग्रह मिला है, उसके अनुसार इनकी वाणी-संख्या ११३२ है। इनकी अगबद्ध वाणी का विस्तार साखी, सवैया, कवित, चन्द्रायण, कुण्डलिया, रेखता आदि छन्दों मे हुआ है। सूरतराम कृत 'चितावणी बोध', 'ककावतीसी' और 'पद वधावणा' नामक तीन ग्रंथ भी प्राप्त हैं। 'चितावणी बोध' में संसार को अनित्य बताते हुए जीव को माया-मोह से विरत रह कर राम-नाम जपने की शिक्षा दी गई है। 'ककावतीसी' एक ककहरा ग्रंथ है। 'पद बधावणा' में भक्त के भावाकुल हृदय के व्यंजक पद संग्रहीत हैं।

इनकी काव्य-शैली के नमूने के लिए दो छंद नीचे दिये जाते हैं —

ना कोई साथी ना कोई संगी एको जासी आप प्रसंगी।
ना कोई पिता न कोई भाई, राम नाम जपित्यो रे भाई।
ना कोई नारी ना कोई नाती ना कोई जाति नहीं कोई पाती।
ना कोई बंधु सगा न साई, राम नाम जपि त्यौरे भाई।
ना कोई माया ना कोई काया ना कोई धाम नहीं कोई जाया।
निशिदिन काल करत है धाई, राम नाम जपिस्यारे भाइ॥[२]

नैना झरणा भरत हैं, छिन्न के आठजाम।
सूरत राम साची कहै दरसोगे कब राम॥
दरसो तो आनंद होई दीज्यो तुम दीदार।
सूरत राम अब विरहिनी निसिदिन करै पुकार॥
निसिदिन रहत पुकारती, पल भरि रहती नाहि।
सूरतराम विरहिनि तणी खबरि लीजियो आहि॥
तन सू क्यों पड़पड़ भयो रह्यो न लोहू मास।
सूरतराम विरहिनि कहै हुक्म आवे सास॥[३]

भगवानदास

भगवानदास जाति से माहेश्वरी वैश्य थे। ये पीपाड के निवासी थे। इनका जन्म आश्विन शुक्ल १४ शनिवार सम्वत् १८०१ को हुआ था।[४] इनके पिता का नाम

१ समत अठार पचतर फागुण सुद भृगुवार।
दोज तिथि ब्रह्म पद मिल जन सुरत राम निरधार॥
—शाहपुरा स्थित समाधि के शिलालेख से।

२ चितावणी बोध, छंद-सं० ७-६

३ सूरतराम की वाणी, पृ० सं० १७७

४ श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० ५१

दामोदर था।[1] एक बार ये व्यापार के सम्बन्ध में भीलवाड़ा गये थे। यहाँ इनकी भेंट रामचरण जी से हुई। उनसे प्रभावित होकर इन्होंने भीलवाड़ा में ही, सं० १८२३ के आश्विन मास में, दीक्षा ले ली। इन्होंने मधुकरी वृत्ति से जीवन-यापन करते हुए धर्म-प्रचारार्थ, रेण, भरून्दे, जोधपुर, जैसलमेर, बीकानेर, अजमेर आदि स्थानों का पर्यटन किया था।[2] इनके २१ शिष्य थे जिनमें रामदास, चत्रदास (चतुरदास), नानकदास और मुक्ताराम बहुत विख्यात हुये। श्रावण शुक्ल १, बृहस्पतिवार, वि० सं० १८५६ को इन्होंने महाप्रयाण किया।[3]

इनकी वाणी संख्या लगभग ४००० श्लोक है। ये सभी फुटकर रूप में प्राप्त हैं जिनमें साम्प्रदायिक सिद्धान्तों के अनुसार आध्यात्मिक जीवन के विविध पक्षों का निरूपण किया गया है। इनकी रचना के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं —

सन्तो ऐसी विधि अब करिये।
मन पवना दोई थिर राखो राम ही राम उचरिये॥ टेर॥
अगल बगल का छाडि पसारा ध्यान अखण्डित धरिये।
पाइ समझ मिल्या गुरु पूरा इन पवन कू जरिये॥
सुरति-सबद को माणो जोडो आसन अचल जु करिये।
सास उसासा अरध-उरध में ऐसी जुगति पकरिये॥
चहुंको चटको पटको झटको इनको धरिये।
भगवान दास सतगुरु के सरणै काहू हेत न डरिये॥[4]

भगति करो भगवान की ज्यू होइ कामना नास।
निस वासुरि सुमरण करो, छाड्यो दूजी आस॥
सिर उपरि मेरे सदा एक राम सिर दार।
भगवानदास सुमरण करो, रसना नित उचारि॥
नित रसना सु सुमरिये सास उसासा दौर।
भगवानदास तब ही घुले इम्रत रूपी सीर॥

१ श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० ५१
२ रेण भैरदे मेडते जोधाणा जैसलमेर।
अजमेर सिरियारी वही उत्तर बीकानेर॥
—अवतार चरित्र, प० सं० २७
३ अठारा से अरु गुणसठे सावण पड़वा जानि।
सकुल पाप गुरुदिन मिल निज पद जा भगवान॥
—शाहपुरा स्थित समाधि के शिलालेख से।
४ श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० २३६

इम्रत पीवे अहनिसा सुमरण करि करि सत।
भगवानदास रसना रटे राम नाम निज तत ॥[१]

कामना के काज काई धरत धरम धारा।
तेनो रोजगारी मारा अन्त पछितावेंगे ॥
कहा जोग जिग तप का सर्या अनन्त रीति।
प्रीत प्रेम हीन जाका फल नहिं पावेंगे ॥
कहा हिन्दू तुरक और जैन सिव पन्थन के।
एक साथ सुद्ध भाव राम जी को भावेंगे ॥
ताते भगवान सब जानिये पाखण्ड रूप।
अनुपम गुरू राम भजन बतावेंगे ॥[२]

रामप्रताप

ये भी रामचरण जी के शिष्य थे। इसकी पुष्टि इनके निम्नलिखित दोहे से होती है

सतगुरु मेरे सीस पर रामचरण महाराज।
राम प्रताप शरणे सदा रखियो मेरी लाज ॥[३]

इनका जन्म भीलवाडा जिले के नारी नामक ग्राम में हुआ था। ये प्रारम्भ से ही साधुप्रवृत्ति के थे। इनको दीक्षा भी बाल्यकाल में मिल गयी थी। रामप्रताप रामचरण जी के बारह प्रमुख शिष्यों में से थे। इनकी साधना भूमि माधोपुर थी।[४] इनका देहावसान ढूंढाड क्षेत्र-स्थित भारज नामक नगर में, माघ शुक्ल २, शुक्रवार, सम्वत् १८५७ को हुआ था।[५]

---

१ भगवानदास की अणभै वाणी—सुमिरण को अङ्ग, छ० १-४
२ श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० २३५
३ वही, पृ० २१३
४ जिनको मुख्य स्थान शहर माधोपुर जानो।
—गिरधरदास कृत महिमा के शब्द
५ नग्र भारज माइ सहज मैं स्रूगो त्यागो।
समत अठारा सै जानि उपरै सत्तावनि जोई।
महासुदि जो दोजि वार शुक्र जो होई ॥
परम धाम मिल गया गिरधर दास ह्वै जग जुवा।
गुरु रामचरण प्रताप सू रामप्रताप ऐसा हुआ ॥
—वही

दामोल्र था।[1] एक बार ये व्यापार के सम्बन्ध मे भीलवाडा गये थे। वहाँ इनकी भेंट रामचरण जी से हुई। उनसे प्रभावित होकर इन्होने भीलवाडा म हो, स० १८२३ मे आश्विन मास मे, दीक्षा ले ली। इन्होन मधुकरी वृत्ति स जीवन-यापन करते हुए धर्म-प्रचारार्थ, रेण, भेरुदे, जोधपुर, जैसलमेर, बीकानेर, अजमेर आदि स्थानो का पर्यटन किया था।[2] इनके २१ शिष्य थे जिनमे रामदास, चत्रदास (चतुरदास), नानकदास और मुक्ताराम बहुत विख्यात हुये। श्रावण शुक्ल १, बृहस्पतिवार, वि० स० १८५८ को इन्होंने महाप्रयाण किया।[3]

इनकी वाणी सख्या लगभग ४००० श्लोक है। ये सभी फुटकर रूप में प्राप्त हैं जिनम साम्प्रदायिक सिद्धातो के अनुसार आध्यात्मिक जीवन के विविध अगो का निरूपण किया गया है। इनकी रचना के कुछ नमूने नीचे दिय जाते हैं —

सन्तो ऐसी विधि भव तरिये।
मन पवना दोई थिर राखो राम ही राम उचरिय ॥ टेर ॥
अगल बगल का छाडि पसारा ध्यान अखडित धरिये।
पाइ समझ मिल्या गुरु पूरा इन पचन कू जरिय ॥
सुरति-सबद को मागो जोडो आसन अचल ज करिये।
सास उसासा अरध-उरध म ऐसी जुगति पकरिय ॥
चहुको चटको पटको भटको इनको धरिय।
भगवान दास सतगुरु के सरणे काहू हेत न लरिय ॥[4]

भगति करो भगवान की ज्यू होइ कामना नास।
निस वासुरि सुमरण करो, छाड्यो दूजी आस ॥
सिर उपरि मेरे सदा एक राम सिर दार।
भगवानदास सुमरण करो, रसना निस उचारि ॥
नित रसना सू सुमरिये सास उसासा बीर।
भगवानदास तब ही धुले इम्रत रूपी सीर ॥

१ श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० ५१
२ रैण भैरूदे मरुते जोधाणा जेसलमेर।
अजमेर सिरियारी यही उत्तर बीकानेर ॥
—अवतार चरित्र, प० स० २७
३ अठारा से अरु गुणमठे सावण पडवा जानि।
सकुल पाप गुरुदिन मिले निज पद जन भगवान ॥
—दादूपुरा स्थित समाधि के शिलालेख से।
४ रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० २३६

इम्रत पीवे अहनिसा सुमरण करि करि सत ।
भगवानदास रसना रटे राम नाम निज तत ॥[1]

कामना के काज कोई धरत धरम धारा ।
तेती रोजगारी सारा अंत पछितावेंगे ॥
कहा जोग जिग तप का सर्‌या, अनंत रीति ।
प्रीत प्रेम हीन जाका फल नहिं पावेंगे ॥
कहा हिंदू तुरक और जैन सिव पंथन के ।
एक साथ सुद्ध भाव राम जो को भावेंगे ॥
ताते भगवान सब जानिय पाखंड रूप ।
अनुपम गुरु राम भजन बतावेंगे ॥[2]

रामप्रताप

ये भी रामचरण जी के शिष्य थे। इसकी पुष्टि इनके निम्नलिखित दोहे से होती है

सतगुरु मेरे सीस पर रामचरण महाराज ।
राम प्रताप शरणे सदा रखियो मेरी लाज ॥[3]

इनका जन्म भीलवाडा जिले में नारी नामक ग्राम में हुआ था। ये प्रारम्भ से ही साधुप्रवृत्ति के थे। इनको दीक्षा भी बाल्यकाल में मिल गयी थी। रामप्रताप रामचरण जी के बारह प्रमुख शिष्यों में से थे। इनकी साधना भूमि माधोपुर थी।[4] इनका देहावसान ढूंढाड क्षेत्र स्थित भारज नामक नगर में, माघ शुक्ल २, शुक्रवार, सम्वत् १८५७ को हुआ था।[5]

---

१ भगवानदास की अणभै वाणी—सुमिरण को अङ्ग, छ० १४
२ श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० २३५
३ वही, पृ० २१३
४ जिनको मुख्य स्थान शहर माधोपुर जानो।
—गिरधरदास कृत महिमा के शब्द
५ नग्र भारज आइ सहज में भूमी त्यागी।
समत अठारा से जानि ऊपरे सत्तावनि जोइ।
महासुदि जो दोजि वार शुक्र जो होई॥
परम धाम मिल गया गिरधर दास ह्वै जग जुवा।
गुरु रामचरण प्रताप सू रामप्रताप ऐसा हुआ॥
—वही

रामप्रताप सुमरण करो रसना राम उचारि।
आसण सजम सुद्ध मन ले संतोष विचारि॥
आसण करि थिर एक रस वसि परणाम सवारि।
रामप्रताप जिह्वा अगरि रामहिं राम उचारि॥
सुरति पवन मन जोडि कै रसना करो उचार।
रामप्रताप कहे राम को सोही भजन ततसार॥
सुरति निरति मन पवन की लगो एक झुणकार।
रामप्रताप तब जाणिये सुमरण सुख को सार॥[1]

देवादास

देवादास रामचरण जी के द्वादश प्रमुख शिष्यों में से थे। इनका जन्म ढूंढाड प्रदेश के बाहातरि परगना स्थित गुढा नामक ग्राम में हुआ था। साम्प्रदायिक साहित्य से इनके सम्बन्ध में अब केवल इतना ही पता चलता है कि ये जगत् से बहुत विरक्त थे और गृहस्थ लोग इनके निकट आने से डरते थे। इन्हें सम्वत् १८२८ में ज्ञान प्राप्त हुआ।[2] ये किस कुल में उत्पन्न हुए थे? इनके माता पिता का क्या नाम था, इन्होंने दीक्षा कब ली आदि बातों का कोई पता नहीं चलता। यों तो इन्होंने जोधपुर में एक रामद्वारे की स्थापना भी की थी जो आज तक वर्तमान है, किन्तु वस्तुतः इनका कोई अपना निवास स्थान न था। भ्रमण करते हुए जहाँ भी इच्छा होती थी, रात व्यतीत कर लिया करते थे। इनका देहावसान इसी प्रकार भ्रमण करते हुए हुआ। एक बार ये पर्यटन करते हुए चित्तौडगढ के निकट स्थित स्यावो नामक ग्राम मे आये। इनके साथ तीन सन्त और थे। वहीं दस दिन निवास करने के उपरान्त

१ श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० २१४

२ देस ढूंढाड माही परगनो बाहातरि जानू
कस्बा मधि एक गाम नाम गुढो सो मानू
जहा प्रगट भये आइ जन सो देवादासा
लिया ग्यान अरु भगति वैराग धरि बहोत उदासा
जगत डरत रहै दूरि निकटि नहिं आवै कोई
ब्रह्म देश की वात सबद कहै यहा बताई
समत अठारा पूरि उपरि हूं अठाईस विलाए
गिरा उचारी तब राम जब हिरदै आये
रामचरण गुरुदेव जास का सिर पर राजै
रामत दिसा ज च्यारि सुखी होइ तहा विराजै
—हरीराम कृत महिमा का शब्द वाणी गुटका प० ४४०
(देवादास का रामद्वारा, जोधपुर)

जनम मरण मति दुख देन बोहो पाहि रे।
परिहा देवा भगति कीया मे नाहि यव मुख माह रे॥[1]

रामवल्लभ

रामचरण के बारह प्रमुख शिष्यों में रामवल्लभ भी थे। [illegible] थे।[2] इनकी साधना-भूमि कनकपुर नामक किसी ग्राम में थी।[3] इनका देहावसान अगहन कृष्ण १२, शुक्रवार, स० १८७० को हुआ।[4] इनके [illegible] इससे अधिक और कुछ ज्ञात नहीं है।

इन्होंने साखी, चन्द्रायण, सवया, झूलना, कवित्त, कुण्डलिया, रेखता [illegible] छन्दों में भगवद् वाणी की रचना की है, जिसका विवरण निम्नलिखित है —

साखी १६३७ अग ४७। चन्द्रायण १४८ अग ४२। सवया ११४ अग २१। झूलना ३५ अग ७। कवित्त ३० अग १३। कुण्डलिया २१४ अग १४। रेखता ११ अग ८। पद ४८६ राग ७०। कहा जाता है कि इन्होंने ११ [illegible] की रचना की थी किन्तु अभी तक इनकी कोई भी कृति प्राप्त नहीं हो सकी है। इनकी रचना के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं —

सरणा को सच्चा तुम राखो राम जी।
बार बार अरदास करो मन मांय जी॥
रामवल्लभ की अरज राम जी [illegible]।
परिहां, इनहूं [illegible] मुख सरणाई [illegible] रख्यो।[5]
झक नाहि पड सखी [illegible] दिना,
[illegible] [illegible] [illegible] है।

---

1 वाणी गुटका, बिनावरी की प्रति, पृ० १२
2 'रामवल्लभ जी सत बन्हों'।
वाणी गुटका की पुष्पिका ([illegible])
3 नगर कनक जानि जहाँ जो [illegible] [illegible]।
दरस परस जो करत सकल के [illegible] [illegible]॥
—[illegible] [illegible] [illegible] के [illegible]
4 समत अठारा स सत्तरि [illegible] [illegible]।
अगहन [illegible] वार सुकर [illegible] [illegible]॥
दिन [illegible] पहर जो पहलो [illegible] [illegible]।
राम राम [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
—[illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]

तन माहि सबद की भिद बहै,
विस कारा पाडै घणी आपती है।
पनि उठै बैठे इछै ऊँचे चोयें,
रग महल की वारी म भाक्ती है।
राम बलभ अरदास कहै,
पीया सेज अलू णी लागती है ॥[1]

राम ही राम रटै सिव सकर ध्यान सदा सुप देवल गावै।
आएद मै विचरैं सनकादिक राम ही राम वे भी मुपि गावै ॥
नाम की यो परताप देवी हनूमानजी लक पलक के जावै।
रामबलभ भजन जोरावर वेद पुराण भागोत बतावै ॥[2]

मरलीराम

महात्मा मुरली राम का जन्म मेवाड स्थित मेहता नगर म माघ कृष्ण सप्तमी, स० १८०२ को[3] हुआ था। इनकी माता का नाम गगादेवी और पिता का रामनाथ था।[4] ये जाति के गग गोत्राय अग्रवाल थे। इनका प्रारम्भिक नाम मुरलीधर था। य अल्पावस्था मे ही विद्याध्ययन समाप्त करके व्यापार करन लग। एक बार ये व्यापार के सम्बन्ध मे भीलवाडा गय। वहा इनकी भेंट रामचरण के गृहस्थ शिष्य नवलराम से हुई। मुरलीधर नवलराम के व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुए।[5] रामचरण विरचित 'रामचेतावनी' ग्रन्थ पढकर इनके ज्ञान-चक्षु खुल गये। मन मे

१ रामवल्लभ को वाणी—झूलना विरह को अग, छ० १

२ रामवल्लभ की वाणी—सवैया—सुमिरण को अग, छ० ४

३ ताक घर अवतार भो मुरलीधर शुभ बाल को।
माघ कृष्ण सातम तिथी, सम्वत् अठारा दो साल को॥
—मुरलीराम का जीवन चरित्र, पृ० १

४ रामनाथ तहाँ बसै परम दानी गुणखानी।
विट अग्रवाल धनवान गगगोत्री सु कहीजै।
पतनी गगादेवी पतिव्रत धम गहीज॥
ताके घर अवतार भो मुरलीधर शुभ बाल को।
—वही, पृ० १

५ व्यापार निमित मेवाड मे भीलोडे जावत भये।
सतसग कर नवलेस के वे प्रेमी उनके बन गये॥
—वही, पृ० २

वैराग्योदय हो गया और इन्होंने धन कुटुम्बादि नश्वर पदार्थों को त्याग दिया।[1]

नवलराम ने मुरलीराम को गृहस्थाश्रम में रह कर भगवद्भजन करने की अनुमति दी[2], किन्तु इन्हें यह विचार अच्छा न लगा। ये भीलवाड़ा छोड़ कर रूपाहेली चले गये[3]। वहाँ से शाहपुरा जाकर वैशाख शुक्ल ५, वि० सं० १८२५ को रामचरण जी से दीक्षा ले ली[4]। दीक्षापरान्त इनका नाम मुरलीराम पड़ा। मुरलीराम का हृदय-कमल सद्गुरु की मन्त्र किरण के स्पर्श मात्र से विकसित हो उठा। साधना का पराग दसों दिशाओं में उड़ने लगा। कुछ समय की एकान्त साधना के उपरान्त ये घूम घूम कर धर्म प्रचार करने लगे। इसी स्थिति में इन्होंने बलाड़, भरतपुर, बाड़मेर, पाली, जोधपुर आदि स्थानों का भ्रमण किया। इनका देहावसान भाद्रपद कृष्ण १, सम्वत् १८५७ को हुआ[5]।

कहते हैं कि जब इनका अग्नि संस्कार किया गया तब शव तो जल कर भस्म हो गया किन्तु काला कम्बल जिससे ये ढके हुए थे, नहीं जला। वह आज भी रामपुर के रामद्वारे में सुरक्षित है। इनकी समाधि पर प्रतिवर्ष फाल्गुन मास में पन्द्रह दिन मेला लगता है, जिसमें संत महात्माओं और श्रद्धालु गृहस्थों की अपार भीड़ होती है।

---

१ गर्भ चितावणी ग्रन्थ पढ़ यो अति भय उपजायो।
यह संसार असार सार किमी समुझ समायो॥
मन माहीं वैराग बढ़ यो अति तिव्र करारो।
धन जन नश्वर जानि त्यागि दिया सकल पसारो॥
—मुरलीराम का जीवन चरित्र, पृ० २

२ भेष लेन की चाह करो मति उत्तर आई।
गृहवश भक्ति करो, मने भो या फरमाई॥
—वही, पृ० ३

३ यह न रुची मन माहि, त्यागि भीलाड़ा दीनो।
ग्राम रूपाहेली जाय भेष परिवर्तन कीन्हो॥
—वही, पृ० ४

४ संमत अठारा पचीस वैशाख सुदी पंचमी भीनो।
करी दया गुरुदेव कमल कर सिर पर दीनो॥
—वही, पृ० ५

५ संमत अठारा सौ सत्तावन भादवा बदी एकम जानो।
नश्वर तन को त्याग ब्रह्म में लीन पयानो॥
—वही, पृ० १०

मुरलीराम की सम्पूर्ण वाणी-संख्या १८,००० है, जिसमे निम्नलिखित नव ग्रन्थ भी सम्मिलित है —

१ चेतावनी सारबोध　　५ कवित सार बोध
२ अमृत सार बोध　　६ गृहस्थ सार बोध
३ नावयोग　　७ दयाबोध
४ वैष्णव सार बोध　　८ गुरुमहिमा-स्तुति
९ साध पारख्या

इनकी वाणी का मुख्य प्रतिपाद्य विषय गुरु-माहात्म्य, रामनाम-माहात्म्य, वैष्णवधर्म, गृहस्थधर्म, दयाधर्म एव निर्गुण ब्रह्म का स्वरूप निरूपण है। इनकी रचना के दो नमूने नीचे दिये जाते हैं —

अधर पियाला नाव का कोई पीवै निज दास।
सुमरै रमता राम कू निस दिन सास उसास॥
सास उसासी नाव का प्याला पिया अघाइ।
मुरली मन सीतल भया मिटी सकल तन ताइ॥
राम रसायन पीजिये रसना होठ सुमेल।
मुरली सास उसास सू सुरति निरति परिवेल॥
उभै होठ फरक्यो करै रसना सास स जारि।
मुरली सुमिरै राम कू ज्या भोका अति भौर॥[1]

सता राम दया बहु कीनी।
हम अपराधी अधम असाधी ताते एक न कीन्ही॥ टेक॥
मिनखा जनम कछू अवतारा उत्तम कुल मे जामा।
सा हम धन कू जाण्यो नाहीं हरि सू भया हरामा॥
नीचा कुल का करम कमाया जैसा सुपचा माहि।
विषया भोग किया बहुतेरा कबहूँ नाहि अघाहि॥
खर कूकर भी हम सू आछा रति सिर विषय विचारे।
हम अपराध करत नहिं डरप्या नित प्रति भाणस मारे॥
धनि वे राम धनि सतसगति जिन सतगुर न्यिा बताई।
लोहा कू पारस सु भेट्या कुल यह मेल मिलाई॥
सतगुर दस्त धर्या सिर ऊपर रामनाम मुख भाख्या।
जगत जाल तज कर वरागी चरण कमल तल राख्या॥

---

१ मुरलीराम की वाणी—सुमिरण को अग, साखी ५३ ५६

अब तो धोल्या तिल भर नाही दया भई भरपूरी।
मुरलीराम राम गुर परस्या दे जगतर दिमी पूरी ॥[1]

पोहकरदास

पोहकरदास रामचरण के शिष्य थे। इनका जन्म दिल्ली नगर म दिल्ली दरवाजा के निकट एक स्वर्णकार परिवार मे हुआ था। इनकी साधना भूमि दिल्ली ही थी। इन्होंने कुछ दिनो तक शाहपुरा म रहकर गुरु-सेवा की थी, फिर कालान्तर मे दिल्ली आकर रहने लगे। कहा जाता है कि एक बार भिक्षा म कहीं से पापड आया था। भोजन के समय किसी कारण से उन्हे पापड नही मिला। ये अपने को सम्हाल न सके और माग बैठे। अत रामचरण जी ने इनपर अप्रसन्न होकर इन्हे निष्कासित कर दिया और लौट कर फिर मुख न दिखलाने की आज्ञा देते हुए कहा कि जो जिह्वा को अनुशासित नही कर सकता वह इन्द्रियो को कैसे नियमित कर सकेगा ? गुरु आज्ञा को शिरोधार्य कर आप दिल्ली चले आये। यही चौकुज की एक टूटी मस्जिद मे साधना करते हुये उन्होने जीवन व्यतीत किया। इनका देहावसान श्रावण शुक्ल १४, स० १८७२ को हुआ।[2] इसी तिथि को पहाडपुर रामद्वार म उनकी बर्षी मनायी जाती है।

पोहकरदास ने अपनी आत्मानुभूतियो को साखी, सवैया, कुण्डलिया आदि छन्दो म व्यक्त किया है जिनका विवरण इस प्रकार है —

स्तुति ५, स्तुति की साखी १, साखी १७३, सवया २१३, कुण्डलिया २६ और पद २०१।

पोहकरदास की वाणी की सबसे बडी विशेषता यह है कि इनके प्रत्येक छन्द म रामचरण का नाम आया है। इसस उनकी गुरुनिष्ठा का पता चलता है। भाषा राग म लिखा हुआ इनका एक बहुत बडा पद प्राप्त हुआ है जिसमें आदि भक्त शकर से लेकर रामानुजाचार्य और तदनन्तर रामचरण तक के अनेक सन्तो की नामावली दी गई है। इस पद को 'भक्तमाल' की पद्धति पर लिखा हुआ एक छोटा सा ग्रन्थ माना जा सकता है।

ये फारसी के अच्छे जानकार थे। अत इनकी वाणी मे फारसी शब्दो की बहुलता है। नमूने के लिये कुछ छन्द नीचे दिये जाते हैं -

रहम रख दिल, रहम रख दिल, रहम रख दिल यार रे।
कहर मत कर, कहर मत कर कहर है बदकार रे ॥ टेक ॥

---

१ श्री रामसनेही सम्प्रदाय, पृ० १४७
२ समाधि के शिला लेख से।

होवैगा इनसाफ तेरा साईं के दरबार रे।
रहम से रब दाद देवै कहर पै काहार रे ॥१॥
रब की कहर खैर कहा होवै सजावार रे।
तुरबत मै तक्लीफ पावै क्यामत तक आजार रे ॥२॥
बाद दोजक बीच मै तू होवै गिरफ्तार रे।
पोछे ता पछतावेगा वहा पहल हो हुँसियार रे ॥३॥
मालिक का कर खौफ बन्द तोबा कर हर बार रे।
तरक दे बद फैलिया कर बन्दगी इख्त्यार रे ॥४॥
रामचरन कहै मुरसद रहम है रब प्यार रे।
प्होकर फजले हक होवै रीफ द दीदार रे ॥५॥[1]

नमो नमो राम राइ सब के करतारा।
आप तो अथाय देव स्वय उजियारा ॥ टेक ॥
पाच तत तीन गुन सुमरे अधारा।
चौदा तीन सप्त दीप नौ खड विसतारा ॥१॥
अगम अगम नेति नेति निगम कहै पुकारा।
सकर सनकादिक सस रटेत लैन पारा ॥२॥
पतित पावन दीनबन्धु नाम हैतिहारा।
जुग जुग जन साहि करी सतन का प्यारा ॥३॥
काहे राम देर करा प्होकर की बारा।
लीज राम चरन सरन बक्स गुन्हा म्हारा ॥४॥[2]

रता रही राम सुमरन मैं, नफा ये ही नरतन मैं।
हवाले ध्यान गुलसन मैं, भूले मत जग भरम बन मैं ॥ टेर ॥
न था जग आद मै माही, न रहना अन्त क ताई।
अथिर मध बीच थिर नाही, य झूठा काल तीनन मै ॥१॥
अनादी राम अबनासी, आद अरु अन्त सुघरासी।
वही मध बीच परकासी, उसी का ध्यान धरमन मैं ॥२॥
ध्यावो नित राम निरकारा, अनत आकार विसतारा।
अनित स मति रच प्यारे, य दामिन ज्यू चपल घन मैं ॥३॥

---

१ पोहकरदास की वाणी (गुटका), पृ० स० १२०-१२१
१ पोहकरदास की वाणी (गुटका), पृ० स० १०० १०१

कहै गुरुदव रामचरना, भरम दूजे को परहरना।
ध्याकर आ राम की सरना अमर होई नाम रंजमन मैं ।।४।।[1]

रामनिवास और इच्छाराम

रामनिवास और इच्छाराम दोनों सग भाई और सहजात थे। ये भीलवाडा के निकटस्थ रीछडा नामक ग्राम के निवासी थे। दोनो भाई प्रारभ से ही बडे आस्तिक थे। इनके विरक्त होने की एक मनोरजक घटना है। प्रसिद्ध है कि एक बार रामचरण जी धर्म प्रचार करते हुए रीछडा गये। गाव के लोगो पर इनके व्यक्तित्व और सदुपदेशों का बहुत प्रभाव पडा। जब व चलने लगे तो उनके साथ रामनिवास और इच्छाराम भी चल पडे। गाव वालो के बहुत कहने पर भी वे न माने। उस गाव के अठारह व्यक्ति जो इन दोनो भाइयो को बारी-बारी से मनाने आये थे, वे भी इन्हीं के रग मे रग गये।

बन्धु-द्वय ने रामचरण से दीक्षा ली और भ्रमण करते हुए गुजरात की ओर चले गये। वहाँ ईडर नामक स्थान पर पहाड की एक कदरा मे साधनापूर्ण जीवन व्यतीत करने लगे। कहा जाता है कि एक बार छोटे भाई इच्छाराम भिक्षा लेने गये थे। इधर राम निवास ने स्वेच्छया महाप्रयाण कर दिया। इच्छाराम लौट कर आये तो देखा कि बडे भाई चिरनिद्रा म पाव पसारे सो रहे है। भ्रात वियोग में व्याकुल होकर इन्होंने भी उसी समय प्राण त्याग दिया। इस प्रकार दोनो साथ ही इस ससार मे आये और साथ ही आश्विन शुक्ल ६, शुक्रवार, वि० स० १८४६ को परलोक वासी हुए[2]।

इच्छाराम की वाणी का अभी तक पता नहीं चला है। इनकी केवल एक साखी प्राप्त है, जो निम्नलिखित है—

राम कहत सनकादिका सतगुरु सत महत।
गुरु रामचरण परताप ते इच्छाराम कहत[3] ।।

रामनिवास की वाणी साखी, कुडलिया और सवैया आदि छदों मे प्राप्त होती है। इनकी भाषा मे बोलचाल के राजस्थानी शब्दो की बहुलता है। नमूने के लिए दो छद नीचे दिये जाते हैं —

---

१ मोहनदास की वाणी (गुटका), पृ० स० ११४

२ अठारा से गुणचास शुक्ल, आसोज सुन छठ।
धाम पधारे दोउ भ्रात, इक मग गवन मठ ।।
— वतमान पीठाचाय श्री रामकिशोर जी के सौजन्य से।

३ वतमान पीठाचाय श्रीरामकिशोर जी के सग्रह स उद्धृत

चार मोख से मोख है भोलाडो ही जान ।
धन्य देस व ठाम है जहं रामचरण परमाण ॥
रामचन्द्र ज्या रामचरण हैं ईश्वर अवतार ।
वा तारी अयोधिया या तारी मवाड ॥
सतगुरु मेरा है सही रामचरण जी आप ।
दरसण करता दुःख मिट और मिटावे पाप ॥
दोष नही करतार कू गुन्हा घणा मो माहि ।
पण मेरे विश्वास है बूडण देवे नाहि[1] ॥

अनत कोटि ने आदि दे गोरख य ही आप ।
गुरु बिन तारक को नही वेद माहि दे साधि ॥
वे माहि दे साधि तास सम तुल्य न कोई ।
ज्या के सरणै जीव बहुत ही परगट होई ॥
रामनाम को जाप दे सोही गुरु सू आप ।
अनत कोटिने आदि दे गोरख य ही आप[2] ॥

जगन्नाथ

जगन्नाथ आचार्य रामचरण जी के शिष्य थे[3] । ये माहेश्वरी (डोडूसोना गोत्रीय वश्य) जाति मे उत्पन्न हुए थे[4] । इनके जन्म मरण आदि के सम्बन्ध में साम्प्रदायिक साहित्य सर्वथा मौन है, फिर भी विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि ये सम्वत् १८८१ मे अवश्य वर्तमान थे, क्योकि चत्रदास (चतुरदास) की महिमा का वर्णन करते हुए इन्होने लिखा है —

रामचरण महाराज की चौथी पीढी आजि ।
वही चाल वहि ह्वाल सू चत्रदास महाराजि[5] ॥

---

१ श्री रामकिशोर जी महाराज के सग्रह से उधृत

२ वही

३ सतगुरु पाया रामचरण तान उपज्या ग्यान ।
—जथारथ बोध

४ (अ) जाति हमारी महेसरी डोडूसोनी गोत ।
—वही

(ब) जगन्नाथ मो नाम जातज डोडू मसरी ।
—गुरु लीलाविलास, छ० ३२०

५ चत्रदास की महिमा के सबद, छ० २

उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट परिलक्षित होता है कि इनकी रचना चतुरदास के पीठाचार्य होने के बाद हुई है। चतुरदास दूल्हाराम की मृत्यु के अनन्तर सम्वत् १८८१ में गद्दी पर बैठे थे। अतः यह स्वतः प्रमाणित हो जाता है कि जगन्नाथ का देहावसान सं० १८८१ के बाद ही कभी हुआ।

इन्होंने 'जथारथबोध', 'फूल डोल समाधि', ब्रह्म समाधि लीनयोग', 'चौरासी बोल' और 'गुरु लीला विलास'—ये पांच ग्रन्थ लिखे। 'जथारथ बोध' निर्गुणपंथी सिद्धान्तों से प्रभावित रचना है। 'फूल डोल समाधि' में फूल डोल महोत्सव की महिमा गायी गयी है। 'ब्रह्म समाधि लीन योग' और 'गुरु लीला विलास' में रामचरण जी की जीवन लीला वर्णित है। 'चौरासी बोल' में चौरासी शुभ-अशुभ का वर्णन किया गया है। उदाहरण स्वरूप इनके कुछ छन्द नीचे दिये जाते हैं —

नवकारा नीरस वचन नटतहि उपजे दुःख।
या चौरासी जाहिगा नटै तो वरतै सुक्ख॥
मिनख जन्म को पाइके टालो इतना दोष।
जगन्नाथ नर नारि को सुधरै लोक प्रलोक[1]॥

गुरु दरसण परभात करै परकम्मा गुर की।
सीत चरणामृत पाई तिलक माथ श्रीवर की॥
भजै राम गाइ अब सब बिन हरिजस गावै।
जल गाढै पट छाण आन पूज न पुजावै॥
हरष सोग सम भाई भरम परस्या नहिं मानै।
भांग तमाखू अमल पान जरदा नहिं खानै॥
ऊंचो भगत कर नीच को मग न राखै।
झूठ कपट पाषंड पार को बुरो न ताकै॥
उंचा भमा की गाल सुणी नहीं सुण मूं आनै।
रामसनेही चाल सुध ए लछ जा बतासै॥
जगन्नाथ गाटा गहै जाव सतगुर सीस[2]।

नवल राम

नवलराम रामचरण जी के तीन प्रमुख गृहस्थ शिष्यों में से थे[3]। ये माहेश्वरी

---

[1] चौरासी बोल, छं० १२

[2] गुरु लीला विलास, छं० ३००

[3] स्वामी रामचरण के गरहा शिष्य अनेक।
दयाचरण बुगसा नवल मुदिया तीन विसेष॥
—परचो—छं० ५१

वैश्य कुल मे उत्पन्न हुए थे। इनका निवास-स्थान भीलवाडा था। इन्होने सपरिवार रामसनेही सम्प्रदाय स्वीकार कर लिया था। इनके दीक्षा-काल के सम्बन्ध म निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। इतना अवश्य है कि इन्होंने सम्वत् १८१७ के बाद ही दीक्षा ली थी। इसकी पुष्टि इनके समकालीन सत जगन्नाथ की इन पक्तियो से भी होती है —

> अठारासै सतरा की साल ऐकादसी विगत ह्वाल।
> देवकरण तहा दरसन पायो सुणि जन वचन मोद मन आयो।
> नवलराम कुमला पुनि मिलिया सुणत ग्यान हिरदै पट खुलिया[1]।

इनका अधिकाश समय शाहपुरा म रह कर स्वामी रामचरण की सेवा म बीता। रामचरण जी की वाणी को सकलित करके पाठको के सम्मुख लाने का बहुत कुछ श्रेय आप ही को है। इनका देहात चैत्र वदी ५, सोमवार, वि० स० १८४२ को भीलवाडा म हुआ था[2]।

नवलराम जी की सम्पूर्ण वाणी 'नवलसागर' नामक ग्रन्थ म सकलित है। इसके अतिरिक्त इनका 'श्रवणसार' नामक एक ग्रन्थ भी बहुत प्रसिद्ध है। 'श्रवणसार' एक सग्रह ग्रन्थ है जो सत साहित्य के अनुसधित्सुओ के लिए बडा ही महत्त्वपूर्ण है। नीचे इनकी रचना के कुछ नमूने दिये जाते है —

> राम रे राम रमतीत भरपूर है दूर क्या जाय नर खाइ गोता।
> सूझि गुरदेव सू सूझि ताकू पडे, सूझि बिन सकल जग फिरे रोता॥
> कोइ बहुकाम नरकामना हेत जू चेतर चित्त हरि नाम ल्यावै।
> मान हो मान बहु मान सू पूजिये आप नर मान बहु दुख पावै॥
> देस परदेस अरु सुरग पाताल म भरम आधीन भव दुख माही।
> नवल निर्वाण पद राम का नाम है सुमरि अठ जाम य दूरनाही॥[3]

> आन धरम का आस कबहु नहि कीजिये।
> रामनाम निरवाण प्रीति कर लीजिये॥

---

१ जयारथ बोध (जगन्नाथ)

२ अठारा से बयाल समत चैतर पाचे।
सोमवार बदि पाप दिवस मध्याह्न सुराचे॥
नगर भीलेडा माहि समाधि दरगो ऐसो।
जगनाथ कर जोडि कह्यो जसा का तसा॥
प्रात उठाइ ता दिन भया सब कू उपजी प्रीति।
नवल साल सजि राम भजि गया नगारा जाति॥
—जगन्नाथ कृत महिमा के ग्रन्थ

३ श्री रामसनेही सम्प्रदाय, पृ० २५५

मुखदानी सम्रथ सदा हो आप हे।
परिहा, नवल राम दुख दान ग्रान की जाप है।
मेरा सिर पर राम निरजरण एक है।
दूजा मानू नाहि हमारी टेक है।
टेक बिना नहि भलो जीव को होय रे।
परिहा नवलराम सत राम कह सब कोय रे ॥[1]

स्वाति सदा समरूप प्रभु तुम हो परपूरण काम सदाई।
काहूं सो वर विचारत नाही बडे ही कृपाल नही कपटाई ॥
जो तुम कू तजि और भजे ताहि को मूरख जानीए लाई।
स्वान की पूछ समाइ के माइर कसे तिरै जय होत हसाई ॥[2]

हरिदास

ये शाहपुरा आचाय-पीठ के पाचवें पाठाधीश्वर थे। इनका जन्म मेवाड के आगूचो नामक स्थान पर वि० स० १८६० म हुआ था।[3] स० १८७२ मे बारह वय की अल्पावस्था म हा इन्होने दीक्षा ला थी।[4] चौथे पीठाधीश्वर नारायणदास के परमधाम पधारने के पश्चात् वि० म० १६०५ मे, इन्हें आचाय पद प्राप्त हुआ। इन्होंने चैत शुक्ल अष्टमी, वि० म० १६२१ को अगमदेश के लिये प्रस्थान किया।[5]

हरिदास की बहुत कम कृतियां प्रकाश म आई है। इनकी वाणी की भाषा साधारण राजस्थानी है। बीच बीच म सस्कृत शब्दों का भी प्रचुर मात्रा मे प्रयोग हुआ है। इनकी वाणी पर अद्वैत वेदान्त की गहरी छाप है। इनका पूरा साहित्य अभी प्राप्त नही हुआ है।

हरिदास जी की रचना के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं —

नमो अनत अनत कहत वेदात बखान।
अस्ति भन्ति प्रिय विपेपन करत प्रमान।

---

१ श्री रामस्नेही सम्प्रदाय पृ० २५४ ५५ (नवल सागर)
२ श्रवग सार—चाणीपवा विधान, छ० ७८
३ श्री रामसनही सम्प्रदाय, पृ० ४४
४ वही, पृ० ४४
५ उगणीस इकसे चैत सुद तिथि अष्टमी गुरवारा।
परमधाम प्राप्ति भये थी हरिदास निराकार ॥
—समाधि के शिलालेख से

धरण द्वादश वाक्य था कि महावाक्य रहावै।
करत विधेय निषेध वेदसो भेद न पावै।
ज्ञेय ध्येय प्रमेह नही नहिं प्रमाण प्रमात।
नमो नमस्ते देव तुम वह हरिदास सुनाथ ॥[1]

जाग जाग जन कहते हैं लाग लाग हरिनाम।
त्याग त्याग ससार कू, भाग मिल्या निजधाम ॥
भाग मिल्या निजधाम काम जामू सिध होई।
मात पिता परिवार लार लागै नहिं कोई ॥
कहै दास हरिदास जन फिर फिर धारे धाम।
जाग जाग जन कहत है, लाग लाग हरिनाम ॥[2]

झूठा जग झूठा हिया, फिर्या अपूठा श्याम।
लूटा धन खालो गया, लूटा नही हरिनाम ॥
लूटा नही हरिनाम धाम दामा सब छूटा।
पकड ले गया दून पून घर का कर कूटा ॥
तजै सार की खाज कर खल ताकै तन चाम।
हरि गुरु बिन साहिब का है हरिदास जताम ॥[3]

हिम्मतराम

शाहपुरा पाट गादी के सातवें पीठाधीश्वर हिम्मतराम का जन्म आश्विन कृष्णा १४ सम्वत् १८८३ को धानणी (सीकर) नामक स्थान पर हुआ था।[4] ये जाति के माहेश्वरी चारण थे। इन्होंने सम्वत् १९०७ में श्री हरिदास से दीक्षा ली, और उनके परम धाम पधारने के पश्चात् वि० स० १९२१ में आचार्य पद को सुशोभित किया। ये संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे। इनकी गणना अपने समय के प्रकाण्ड पंडितों में होती थी। ये चैत्र शुक्ल नवमी, शनिवार, स० १९४७ को परलोकवासी हुए।[5]

---

१ श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० २०६

२ वही, पृ० २०९

३ वही, पृ० २१०

४ वही, पृ० ४४

५ श्री गुरु हिम्मत राम महाराज सिरताजा।
वपु त्यागे निज राम धाम आचार्यपदराजा ॥
सम्वत् सत उगणीश उपरि सैंतालिस जानो।
चैत्र शुक्ल नवमी सनी वासर कीन्ह पयानो ॥
—समाधि के शिला लेख से

इन्होंने दो ग्रन्थों का प्रणयन किया—'प्रश्नोत्तर प्रकाश' और 'ज्ञान बत्तीसी'। दोनों ग्रन्थों का प्रतिपाद्य विषय, ब्रह्म, माया, जीव, जगत तथा निर्गुण भक्ति है। 'प्रश्नोत्तर प्रकाश' की रचना ब्यावर, अजमेर और सीतामऊ के कतिपय भाव समाजियों के दार्शनिक प्रश्नों के उत्तर रूप में हुई है। 'ज्ञान बत्तीसी' एक स्वतन्त्र आत्मानुभूति व्यंजक ग्रन्थ है।

हिम्मतराम अच्छे विद्वान् थे। अतः उनकी वाणी पाण्डित्य से भरी है। इनके साहित्य में भावों की गम्भीरता तथा संस्कृत निष्ठ परिमार्जित भाषा के दर्शन होते हैं। भाषा भाव और अभिव्यक्ति सभी दृष्टियों से हिम्मतराम की वाणी सन्त साहित्य में उच्चासन की अधिकारिणी है। उदाहरणार्थ कुछ छन्द नीचे दिये जाते हैं —

विशपद वाच्य सारवाचक, अनक पद।
गत्य क समय बिना मत्यता न लेश है॥
रामपद वाच्य सार वाचक प्रभून ...।
आधार की सत्ता पाइ सत्य म प्रवेश है॥
ऐसी उपचार जाव उर म विचार करे।
धार शुद्ध भाव तान मिटत कलेश है॥
मालवेश नाना म प्रमाण एसा कह्यो वद।
वेद साइ राम मत्र जाको जपत महश है॥[1]

पूरव महान ऋषि भय ते बखान गये।
पार नही पायो ताते और कौन पावगो॥
जसे महासागर ते बूद एकपान किये।
य तो ही पिपीलिका के उदर म समावेगो॥
प्रौढ़ अपयाश ज्वाल माला त फुलिंग एक।
ताय तेज पुंज को प्रभात कम आवगो॥
हीमत बखान कियो ज्ञान को अलप अंग।
सकल कह यो न जाय ताकू वेद गावेगो॥[2]

नटो कम्मपासो मार्यो मोह सो मवासो
भई ऋद्धि सिद्धि दासी शुद्धि ब्रह्म सावकासी है।
आनंद उपासी भ्रम निद्रा को विनाशी,
वीर धीरज धरासो जाको शांतिता सुधासो है।

---

१ ज्ञान बत्तीसी, छ० स० २४

२ ज्ञान बत्तीसी, छ० स० २६

असत प्रपंच जासी, विरला रहासी तासूं,
भयो हैं उदासी, पायो सुख अविनासी है।
दे सिख कृपासी, दिव्य ज्योति की उजासी,
व्योम सविता प्रभासी, जाको कीरति प्रकासी है।[1]

मुक्तराम

मुक्तराम भगवानदास के शिष्य और रामचरण के प्रशिष्य थे। ये भरु दे के निवासी थे।[2] तेरह वर्ष की अल्पावस्था में इन्होंने दीक्षा ले ली थी। इसकी ओर संकेत करते हुए ये एक स्थान पर लिखते हैं —

बाल अवस्था बरस जु तेरह।
ता दिन मारग खुल्या है मेरा॥[3]

दीक्षा लेने के उपरान्त ये काफी समय तक भ्रमण करते रहे। बाद में बीकानेर को इन्होंने स्थायी रूप से अपनी साधना भूमि बनायी, और जीवन पर्यन्त वहां रहे। बीकानेर में इन्हें बड़ा सम्मान मिला। तत्कालीन बीकानेर नरेश सूरतसिंह इनकी साधना से बहुत प्रभावित थे, और समय समय पर इनका दर्शन करते रहते थे। इनका देहावसान फाल्गुन, सुदी १४ शनिवार, सम्वत् १८७२ को हुआ[4]।

इनकी सम्पूर्ण वाणी संख्या १४१८१ श्लोक है। इन्होंने बीस ग्रंथों का प्रणयन किया जिनकी सूची निम्नलिखित है —

१ गुरु स्तुति	११ तिथिनाम्
२ नाम प्रताप	१२ विचार बोध
३ ककहा बत्तीसी	१३ ध्यान प्रकाश
४ वैराग बत्तीसी	१४ मन चरित
५ भक्ति महिमा	१५ आनन्द निवास
६ ग्रंथ चिन्तामणि	१६ भक्त विरदावली
७ ग्रंथ सार असार	१७ गुरु समाधि लीन जोग
८ गुरु उपकार	१८ कन्या सवाद
९ गुरु मिलाप	१९ कवित्त
१० ग्यान अग्यान पारख्या	२० आरती

---

१ ज्ञान बत्तीसी, छं० ८
२ श्री रामसनेही सम्प्रदाय, पृ० ५४
३ वही, पृ० ५४ पर उधृत
४ समत अठारै सौ सततरा सुद फागण शनिवार।
तिथि चौदस मिध्यान मे सत भये निरकार॥
—समाधि के शिला लेख से

इनकी रचना साखी सवया चन्द्रायण, झूलना, कवित्त, कुडलिया और पद आदि छदो म हुई है।

मुक्त राम जी की वाणी, भाषा, भाव और अभिव्यक्ति सभी दृष्टियो स महत्त्वपूर्ण है। इनकी अपरोक्षानुभूति, सशक्त भाषा और सहज अभिव्यक्ति का सहारा पाकर साकार हो उठी है।

नमून क लिए कुछ छद नीचे दिये जाते हैं —

नूर लहयो परमातम को, जब आतम ब्रह्म सवै दरसाया।
सूक्ष्म स्थूल सवै सचराचर, व्यापक नूर निरजण राया॥
ज्यू रवि ज्योत प्रकाशक कु भ म, है घट माहि जु पूरि रहाया।
दास मुकत कहे न्मटर के ब्रह्म का रूप अरूप समाया॥[1]

चाद को चाह चकोर कर, पुनि सीपक ज्योति चहै जुपत॥१
चात्रग मोर चहै घनघोर कू, स्वाति का बूद कु सीप चहै जु उतगा॥
प्रीतम होय ज्यो परदेस पधारत नारी को सुक्ख कबहूँ होय अगा।
मुक्त हा राम विलाग कर निस आप विना नहि लागत रगा॥[2]

भरम माहि ससार भूलि गया राम कू।
पूजे पत्थर देव सब जड धाम कू।
सरजीवत कू ताडि चढावे जडे कू।
परिहा विन सतगुरु के ग्यान अकल नहि मूढ कू॥
पूजे अघी लोग दवता गारका।
कहू थागो घात वार और जददार का।
राम नहो जीव पीव कहा पाव हो।
परिहा मुक्ता भजन विना नर नारिवाद ही जावही॥[3]

सग्रामदास

इनके जीवन वृत्त का कुछ पता नही चलता। अतस्साक्ष्य के आधार पर इतना ही ज्ञात हो सका है, कि ये मुरलीराम क शिष्य थे।[4] मुरलीराम रामचरण जी क शिष्यो मे से थे। सग्रामदास राजस्थान क सत महात्माओ म अपने कुडलियो क

१ श्री रामसनेही सम्प्रदाय, पृ० २६७
२ वही, पृ० २६७
३ वही, पृ० २६६
४ मिनख चमारो ने भल गुरु पाया मुरलस॥
—सग्रामदास की कुडलिया, पृ० ४६

लिये बहुत प्रसिद्ध है। इनकी कुडलिया का एक सग्रह के० आर० महता, नागौरी द्वार जोधपुर स प्रकाशित हो चुका है।

इनकी कुडलिया में राजस्थानी लोक भाषा का निखरा हुआ रूप देखा जा सकता है। यत्र-तत्र कहावता तथा मुहावरो क प्रयाग तो सोने म सुगन्ध का काय करत हैं। सग्रामदास की भाषा का यह रूप साहित्यिक एव आकषक होत हुय भी अन्य प्रात वालों के लिए सहजग्राह्य नहीं है। नमून के लिए कुछ कुडलिया नीचे दी जाती हैं

कहे दास सगराम गरीबी मे गुण भारी।
राम गरीब निवाज जहान जानत है सारी॥
जाणे सारी जहान पण राखो किणसू जाय।
वेरणिया आडो फिर मान बडाई खाय॥
मान बडाई खाय करे कुण यान प्यारी।
कहे दास सगराम गरीबी मे गुण भारी॥[1]

कागद सारो वाचिया आग पीछ जाय।
मिरे आक दीठा नही सगराम दास कहे दाय॥
सगराम दास कहे दोय आखिया फूटी थारा।
साहिब र दरबार माहि भुगत ला मारी॥
पहला कह दू हूँ थन या वड अनरथ हाय।
कागद सारो वाचिया आगे पोछे जोय॥[2]

अण छाण्या जल म पडे परभात ही जाय।
मारे जीव असख्य हा पाछे रोटा खाय॥
पाछे रोटी खाय कुबध या कूण सिखाइ।
नव लाख जात सू बर पड है सुण र भाई॥
बावो लेखा बूझसी जद भुगत सा किण माय।
अण छाण्या जल म पडे परभात हा जाय॥[3]

स्वरूपाबाई

स्वरूपाबाई का जन्म भीलवाडा म हुआ था। ये रामचरण के प्रसिद्ध गृहस्थ शिष्य नवलराम की पुत्री थी। भक्त-दम्पति की सतान होने के कारण स्वरूपाबाई

१ सग्रामदास की कुडलिया, पृ० ६४ ६५
२ वही, पृ० ६५ ६६
३ वही, पृ० ६५ ६६

बचपन में ही राम भक्ति में अनुरक्त हो गयी। सयानी होने पर उनकी इच्छा के विरुद्ध उनका विवाह कर दिया गया। ससुराल पहुँचने पर वहाँ वाले इनके भगवद्भजन में बाधक सिद्ध हुए। कहते हैं एक बार स्वरूपाबाई के पति ने इनकी नित्यपाठ पुस्तक और गुरुवाणी को कूप में डाल दिया। मर्त्य पति के द्वारा परमपति का अनादर देखकर स्वरूपाबाई का हृदय क्रोध, घृणा और उदासीनता की भावना से भर गया। परिणामस्वरूप इन्होंने पति का परित्याग करके गार्हस्थ्य जीवन से मुक्ति ले ली और रामचरण जी से दीक्षा लेकर शाहपुरा में ही साधनापूर्ण जीवन व्यतीत करने लगीं। इनकी जन्म-मरण तिथि का कोई निश्चित पता नहीं चलता किन्तु इतना निश्चित है कि ये सं० १८५५ में वर्तमान थीं, क्योंकि संत रामचरण की मृत्यु के समय इनके उपस्थित रहने का पुष्ट प्रमाण उपलब्ध है।[1]

स्वरूपाबाई ने अनेक ललित पदों की रचना की है। इनके पद बड़े ही सरल और भावपूर्ण हैं। इनकी हस्तलिखित वाणी शाहपुरा रामद्वारे में सुरक्षित है, जो केवल फूलडोल महोत्सव के अवसर पर खोली जाती है। नमूने के लिए इनके दो पद नीचे दिये जाते हैं —

सुखदाता सतगुरु जी मेरा रामचरण अवतारी हो।
जनम सुधारण काज धर्यो तन पार किये नर नारी हो॥ टेर॥
अधम जीव का पावन करिया सब ही दया विचारी हो।
दुख दुन्दता मेट दिया सब सुख उपजायो भारी हो॥
चरण रेणु ले मस्तक धरिये काम कुबुधि होइ न्यारी हो।
जे नर अबल सबल किये सतगुरु जग में जस विस्तारी हो॥
यह जग वर्जित महा अति दुस्तर सुख नहीं कहूँ लगारी हो।
सुखसागर सब के हित कारण रामचरण तनधारी हो॥
तुम गुण सागर थाह न कोई को बरणे सब सारी हो।
दास स्वरूपा शरण पड़ी है बार-बार बलिहारी हो॥[2]

आज मगरो गुरु कीया चलायो यो दुख सह्या न जावगा।
छाती फाटै जीव लहराय मन माया नहिं भावगा॥ टेर॥
तालावेली लगी जीव में सुरत मारछा खावगा।
रामचरण जी जसा सतगुरु अब कुण फेर मिलावगा॥

---

१ गुरु प्रसादि यं वचन जं माँही बाई सरूपा सरिर धाई।
नव कस्यो कूँ न यह मायो भाई, राम जन कह्यो सरूपा बाई॥
—ब्रह्मसमाधि मौन योग, छं० १३४-३५

२ श्री रामसनेही सम्प्रदाय पृ० २५६

और दुख तो सब मह सेस्यू यो दुख कहां समावेगा।
हिरदै नाम कठ के माही छाती स्वास न मावेगा॥
सीच्या खोत चरणामृत केरा बालक ज्यू वतलावेगा।
ऐसी हम नही जाणी सतगुरु अवर पदो ल जावेगा॥
नवनराम जो निज घर चाल्या सो तो दुख विसरावगा।
यो तो दुख मानरा बोतो कहवा म नही आवगा॥
घर आगण आछो नही लागे बावन विरह सतावेगा।
दाससरूपा विरह विलखी, बोलत बाच न आवेगा॥[1]

मनोरथराम

मनोरथराम, स्वामी रामचरण के प्रशिष्य और निहचलराम (निश्चलराम) के शिष्य थे।[2] इनकी साधना भूमि राजगढ थी। साम्प्रदायिक स्रोतो से इनकी जीवन-यात्रा विषयक कोई महत्त्वपूर्ण सूचना नही मिलती। किन्तु इतना निश्चित है कि ये वि० स० १८७१ मे वर्तमान थे, क्योकि इन्ही के सत्सग म रहकर सदाराम नामक किसी दादूपथी साधु ने पौष शुक्ल २ स० १८७१ को 'ज्ञानसमुद्र' नामक महान सग्रह ग्रन्थ तैयार किया था।[3]

मनोरथराम कृत 'ज्ञानसमाधि' नामक एक ग्रन्थ और प्राप्त है जिसमे सत्सग-महिमा, साधुलक्षण, नवधाभक्ति काम माया, जगत्, धर्म, नाम, आदि का विशद वर्णन है। इसके अतिरिक्त इन्होने फुटकर अगबद्ध वाणी की रचना भी की थी, जिनकी सख्या १८२६ है। इनकी रचना के नमूने नीचे दिये जाते हैं —

आसण अडिग जमाइ कै नामा निरति लगाइ।
राम राम मुख उचर सुरति र सबद मिलाइ॥
राम राम मुख उचर जग सू होय एकत।
मना मनोरथ छाडि करि एकाग्रह करि चित॥
साम उसासा ध्याइऐ निस दिन ऐसो राम।
मन विकार सब ही मिट सरै मनोरथ काम॥[4]

---

१ श्री पच रत्न स्तोत्र, पृ० १३५

२ कलियुग माही प्रगट्या रामचरण महाराज।
जिनके निहचल राम जी किया हमारा काज॥
—मनोरथराम की वाणी गुरुदव का अग, छ०—२

३ ज्ञान समुद्र, प० स० ८८४

४ ज्ञानसमाधि—चौथी समाधि, छ० २४

मन रे आणद माहि विचरणा ।
वादि बिवाद विषमता त्याग्यो ध्यान अखंडित धरणा ।। टेक ।।
आसण अडिग जमाओ नीको राम ही राम उचरणा ।
नामा निरत टरै नहि कबहूँ चित चितवन नही करणा ।।
पापी अमर भया जन जुग म मट्यो जनम र मरणा ।।
ऐसो अमृत पीकरि छकिया अणभै वाणी वक्रणा ।
तरक करक रहौ जग सू न्यारा अति मोहबति नहि करणा ।।
छुधा निवारण भूख अजगरी जल नित पीणा झरणा ।
मनोरथराम सतगुर किरपा तै भव सागर कू तरणा ।।[1]

जगत बध कू त्यागो सतो, जगत बध कू त्यागो रे ।। टेक ।।
करम पाप तो हुसि हुसि करि है सीख्यो लवो लवो रे ।
मोह माया म गरक फिरत है मन म बौहोत सीहाबो रे ।।
काम दाम को मार्‍या डोलै त्रिसना दुख अपारो रे ।
चगडी मे कोई बलभ नाही सब ही द दुरकारो रे ।।
भेली करि करि बौहोता मूवा सग न चली लिगारो रे ।
लका से कोट कचन के छाजा रली न वाली लारो रे ।।
झूठ कपट पाषड करीया लिया सीस पर भारो रे ।
लख चौरासी जाम मरसी कही याहा कुन थारो रे ।।
रामचरण जी कहै औतारी सुणि ज्यो पिडत ग्यानी रे ।
राम राम रसना रस पीवो ब्रह्म मिलाव ग्याना र ।।
निहचन राम जी सतगुर सूरा दत सबद भरपूरा रे ।
मनोरथराम निस बासर रति है जा मुख झलक नूरा रे ।।[2]

सगति कीज साध की दिन म सौ सौ बार ।
जे एता नाही बण तो दिन म कर दो बार ।।
सो दिन मे कर दो बार नाहि तो एक ही वारा ।
एक वार के माहि चूकिऐ नाहि लिगारा ।।
मनारथराम सतसग मैं उपजै भगति करार ।
सगति कीजै साधु की दिन म सौ सौ वार ।।[3]

---

१ सबद, स० १४
२ मनोरथराम का सबद, स० ५
३ मनोरथराम की वाणी—साध सगति को अग, छ० १०

सिंहथल-खेडापा शाखा के साहित्यकार

हरिरामदास

हरिरामदास जी सिंहथल-खेडापा-शाखा के आचार्य थे। इनका जन्म बीकानेर राज्य मे स्थित सिंहथल नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम भाग्यचन्द्र था। ये गुरड़ा (चमार) जाति के थे। अंतस्साक्ष्य से भी इनका गुरड़ा होना सिद्ध होता है।[1] इस जाति के लोग मेघवाल (चमार) जाति के गुरु होते हैं। उनके विवाह आदि संस्कार कराते हैं और अपने को जोशी ब्राह्मण बताते हैं।[2] शायद इसीलिए 'श्री रामस्नेह धर्मप्रकाश'[3] और 'आचार्य चरितामृत'[4] में इन्हे जोशी ब्राह्मण या वैष्णव गृहस्थ कहा गया है। इनकी जन्मतिथि का ठीक-ठीक पता नहीं चलता किन्तु यत्र-तत्र इस बात का उल्लेख अवश्य मिलता है कि इन्होंने अल्पावस्था में वेद शास्त्रादि का अच्छा ज्ञान प्राप्त करके सम्वत् १८०० में गुरु-दीक्षा ली थी।[5] इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि दीक्षा के समय इनकी अवस्था कम से कम पचीस-तीस वर्ष अवश्य रही होगी। अतः इनका जन्म वि० सं० १७७० के आस-पास माना जा सकता है।

हरिरामदास बड़ी ही प्रखर बुद्धि के थे। इन्होंने थोड़े ही समय में वेद, शास्त्र ज्योतिष आदि का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त इन्होंने गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया। इनकी धर्मपत्नी का नाम चापाबाई था।[6]

इनके गार्हस्थ्य जीवन में ज्ञान, भक्ति और कर्म का संगम था। गृहस्थ-जीवन व्यतीत करते हुए भी ये भगवद्भक्ति में तन्मय रहते थे। इनकी परमतत्व को प्राप्त करने की जिज्ञासा निरन्तर बढ़ती गयी। धीरे धीरे इन्हें एक योग्य गुरु की आवश्यकता

१ जाति पाति है गुरु हमारी, नाम दिया हरिराम।
पिता हमार भागचन्द्र है ग्रह सिंहथल ग्राम॥
गुरु परीक्षा, छ० २३ (बड़ा वाणी गुटका, प० सं० ७२)

२ राजपूताने का इतिहास, भाग १, जगदीश सिंह गहलोत, पृ० ८२

३ श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश, पृ० ४

४ आचार्य चरितामृत, पृ० ११०

५ हरिया सम्वत् सत्रहसे वर्ष अईको जान।
तिथि तेरस आषाढ़ वदि सतगुरु पड़ी पिछान॥
घघर निसाणी (हरिराम दास), साखी सं० १

६ पुनि अर्धांगी चापा माता।
सीता माता जसे राम॥
— मगाराम कृत परची।

का अनुभव होने लगा। एक दिन जब हरिरामदास जी इसी प्रश्न पर विचार कर रहे थे, रामसर निवासी उदयराम नामक एक व्यक्ति आ गया। प्रसगवश उसने दुलचासर निवासी श्री जयमलदास के विषय म बताया। हरिराम जी उदयराम के साथ दुलचासर गये और जयमलदास से भेंट की। वहीं आषाढ कृष्ण १३, वि० स० १८०० म इ होंने दीक्षा ले ली। दीक्षोपरा त ये सिंह्थल चले आये और विदेह भाव से जीवन व्यतीत करने लगे।

हरिरामदास बहुत बडे गुरु भक्त थे। दुलचासर सिंहथल से १४ मील की दूरी पर स्थित है। ये नित्य प्रति सध्या के समय दुलचासर जाते थे और गुरु दर्शन करके प्रात काल लौट आते थे। यह नियम निरतर ६ महीने तक चलता रहा कि तु इसके बाद गुरु के आग्रह पर य प्रतिदिन आने-जाने का नियम बन्द करके हर दसवें दिन जाने लगे। थोडे ही दिनो के उपरात गुरु प्रेरणा से इ हे इस नियम का भी परित्याग करना पडा। फिर आपने महीने म एक बार गुरु-दर्शन करने का नियम बनाया और आजीवन इसका पालन करते रहे।

इनके सम्बन्ध म अनेक चमत्कारपूर्ण घटनाए प्रचलित है। कहा जाता है कि एक बार शिष्यो ने इनका जीवित महोत्सव मनाने का निश्चय किया। उत्सव की तिथि से १५ दिन पूर्व ही इ होने देह त्याग दिया। इससे शिष्यो को बडा दु ख हुआ। अन्त म य एक महीने के लिए पुन जीवित हो गये। इसी बीच अपनी अन्त्येष्टि क्रिया की पूर्ण व्यवस्था करके चैत्र शुक्ल ७, गुरुवार, वि० स० १८३५ को इ होने परमगति प्राप्त की।[1]

अब तक इनके ९ ग्र थ प्राप्त हुए ह जिनकी नामावली इस प्रकार है—

१ घटपरचा	५ घघरनिसाणी
२ नावपरचा	६ प्रश्नोत्तर
३ निजज्ञान	७ अक्षर अण अ रर
४ पदबत्तीसी	८ सोलहे तिथी को विचार
९ गुरु परीक्षा	

इनके अतिरिक्त इ होंने अनबद्ध वाणी की रचना भी की है। इनकी भाषा राजस्थानी मिश्रित हिन्दी है। कहीं-कहीं पर अरबी, फारसी और पजाबी शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। 'घघर निसाणी' इनकी प्रसिद्ध रचना है। इसमे हठयोग साधना का अ छा वर्णन हुआ है।

---

[1] सवत अठारह आठ दस पुनि शुभ पैंतीस।
चैत्र शुक्ल सप्तमी मिले परमात्मा ईस॥
श्री हरिरामदास की परची (गगाराम)-(रामस्नेहधर्मप्रकाश पृ० ३३६)



श्री हरिरामदास (सिंहथल के आद्याचार्य)



श्री रामदास (खेडापा के आद्याचार्य)



श्री दयालुदास जी



श्री परशुराम जी

साजन घर ग्रावो भावन मैं किन सग खेलू फाग।
तो कारण निस भर नहीं सोऊ जोई पलपल जाग
क्या जानू कब आवे करता रहो अनैसे लाग
स'ऊ तो सजन सुख देखू जागू ता जब नांहि।
प्रीतम कारण विरहन ठाडी थौ दरसण दिलमाहि।
बेग मिलो प्रभू अतरयामी अवसर वीतो जाय।
जन हरराम राम कर अपनी हाथ लिवौ बिलमाय ॥[1]

प्राणी कर लो राम सनेही
विनस जायगी एक पलक मैं या सदा नर देही
रातो मातो विषै स्वाद मैं घर पुतल मन माही
जीव तणा श्राय जम किंकर पकड ले गया बाही
मूरख मगन भया माया मैं मरो कर कर मान
अतकाल मैं भई बिराणी सूनी जाय मसान ॥[2]

रामदास

रामदास जी का जन्म जोधपुर राज्य में भीकोकोर नामक ग्राम में फाल्गुन कृष्ण १३, स० १७८३ को हुआ था।[3] इनके पिता का नाम शार्दू (शार्दूल) और माता का अणभीबाई था।[4] इनकी जाति के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं

१ खाटे की बडी वाणी, प० स० ७६ पद स० १८
२ वही, प० स० ८०, पद स० ९६
३ सम्वत सतरह सौ जान बरष तयास्यो कहिए।
(क) फागण वद त्रयोदशी रामदास जन भइय॥
अर्जुनदास कृत परचीसार (रा० प० प्र०, पृ० १६)
\+ \+ \+
(ख) जन्म भयो सत्रह समत बरष तयास्या जान।
फागण वदि तेरस सुदिन धिन धिन समय प्रमान॥
— गुरु प्रकरण परची, ३६।७
\+ \+ \+
(ग) सत्तर रव पर सप्तअष्ट त्रिय मिल है वरष।
वद फागण त्रियोदशी प्रहे सबहा मिन हरष॥
—नानकराम कृत परचो
४ शार्दू नाम सकार तिधना धिर धिर पिता पुत्र उमगा।
अणभा उदर लिया अवतारा शार्दू कायर नगर मझारा॥
—गुरु प्रकरण परचा, पृ०

कहा जा सकता। पं० मोतीलाल मेनारिया ने इन्हें मघवाल जाति का बताया है।[1] अन्य स्थानों से भी इनका मघवाल होना पुष्ट होता है।[2] दयाकुंवर कृत 'गुरु प्रकरण परचा' में भी 'मरना पति इष्म ऋषि जानो' कहकर 'मेघना-पति' अर्थात् मघ की ओर संकेत किया गया है।[3] राजस्थान में मघवाल चमारों की एक जाति है। इस जाति के लोग मोची का काम करते हैं।[4] स्वामी दयानन्द सरस्वती ने इन्हें (चमारों की ही एक जाति का) माना है।[5] जो हो इतना तो निश्चित है कि अधिकांश निर्गुणिया सन्तों की भाँति ये भी समाज के निम्न स्तर से आये थे। इन्होंने स्वयं भी अपने को निम्न जाति का कहा है —

पात होएा कुल होएा है, ह'एा हमारी जात।
होएा पलटे रामदास तुम उजल करा रघुनाथ[6] ॥

ये बहुत छोटे थे तभी इनकी माता का देहान्त हो गया। इस घटना के बाद ही सिंहथल बीकानेर में भयंकर अकाल पड़ा। सब लोग गाँव छोड़-छाड़ कर इधर उधर भागने लगे। शार्दूल भी शिशु रामदास के साथ अपनी ससुराल मढ़ाणा में आ कर बस गये। वहीं अभी थोड़े ही दिन बीते थे कि अचानक साँप के काटने से शार्दूल की मृत्यु हो गई। बाल्यावस्था में ही माता-पिता की छाया उठ जाने से इनके सांसारिक बन्धन ढीले पड़ने लगे। किन्तु गृहस्थाश्रम का त्याग इनके लिए सम्भव न था, क्योंकि मरणासन्नावस्था में पिता ने इनके विवाह कर लेने के लिए वचनबद्ध कर लिया था। अतः विवश होकर इन्हें दिवंगत पिता की इच्छा पूरी करनी पड़ी। इनका विवाह हो गया। पत्नी का नाम गुदड़बाई था।

यों तो भक्ति और वैराग्य के बीज रामदास के हृदय में बाल्यकाल में ही अंकुरित हो गये थे, किन्तु माता-पिता के असामयिक अवसान से वे और भी दृढ़ होकर ये शान्त हो पत्नी सहित हो गये। इन्होंने एक व्यक्ति मेघ स्तम्बा का अपना गुरु बनाया किन्तु उनके मन के अनुरूप इनके हृदय में शान्ति हो पाई न आप उत्पन्न हो सके। अतः ये सद्गुरु की खोज में इधर उधर भटकने लगे। कहते हैं कि इन्होंने सत्संग प्रेम के कारण अवस्था में बारह गुरु बनाये थे, पर इनमें से कोई भी इन्हें शान्ति न दे सका।

1 राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १०७
2 राजस्थानी जातियों का नाम, पृ० ६२
3 गुरु प्रकरण परचा, पृ० ५
4 The Chamars—W Briggs, p 30
5 सत्यार्थ प्रकाश, पृ० २१६
6 रामदास की वाणी, पद सं० ७३

हुआ[1]। अन्त में संयोगवश एक दिन ये बीकानेर गये। वहां एक गृहस्थ के मुख से हरिरामदास का एक रेखता[2] सुनकर ये बहुत प्रभावित हुए और सिंहथल जाकर वैशाख शुक्ल ११, वि० सं० १८०६ को उन्हीं से दीक्षा ले ली।[3] अंतस्साक्ष्य से भी इनका इसी तिथि को दीक्षित होना प्रमाणित होता है।[4]

दीक्षा लेकर इन्होंने मारवाड़ के महलाणे नामक ग्राम में अपनी कुटी बनायी। यहीं रहकर कठोर साधना करते हुए इन्हें सिद्धि मिली।[5] फिर इन्होंने कुछ दिनों तक धर्म प्रचारार्थ भ्रमण किया। धीरे-धीरे इनकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल गई। इनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर जोधपुर नरेश राजा विजयसिंह और बीकानेर नरेश सूरत सिंह ने इन्हें विशेष सम्मान दिया था। इनकी साधना से प्रसन्न होकर हरिरामदास ने अपने जीवनकाल में ही इन्हें पृथक गद्दी स्थापित करने की आज्ञा दे दी।

इस प्रकार इनकी कीर्ति बढ़ने लगी, दरबार विराजियों को इनसे ईर्ष्या होने लगी। उन लोगों ने जोधपुर नरेश से शिकायत की। राजा ने निन्दकों की बात में आकर फाल्गुन शुक्ल ६, वि० सं० १८४६ को इन्हें अपने राज्य से निष्कासित कर दिया।

१ पूरा पुरुष कहूं नहिं पाया लोने द्वादश गुरु को जाय।
जटा विभूति धरया बहु बाना काज सरया नहिं नाव काय॥
—श्री रामस्ने धर्मप्रकाश, पृ० ३४६

२ अगम अगाध में नाम पोथी पढ़या भ्रम अज्ञान कूं दूर टार्या।
नाम निधार आधार मेरे भया गहर गुम्मान मन मोह मार्या॥
तीन चकचूर करि चित्त चौथे गया नाभि अस्थान धुनि धम्मकारा।
श्वास उच्छ्वास में नाम निरभय किया रम रह्या एक आतम्म यारा॥
सहज में श्याम सुख राम ऐन मडे रोम में राम ररकार जागे।
दास हरिराम गुरुदेव परतापत हद को जाति बेहद लागे॥
—गुरु प्रकरण परची, प० ६

३ समत अठारो भन भन आया नौ के वर्ष पदारथ पायो।
मास वैशाख शुक्ल पख मांहीं एकादशी तिथी सुख दाही॥
—गुरु प्रकरण परची, ७।२२

४ वरस नरोतड़ो वसाख मास, सुद इग्यारस जाण।
रामा कूं सतगुर मिल्या भागी मन की काण॥
समत अठारै नरोतड लगी राम सूं प्रीत।
पचसट दोन वृष तोन मैं सुणी सुन की रीत॥
—जाम फारगती, छं० १२

५ श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश, प० २०

आदेश पाते ही रामदास जी सब कुछ छोडकर बटोही की भांति हाथ में कुबरी और कंधे पर कंबल रखकर चल पडे। निष्कासन-काल में इन्होंने देवगढ नामक स्थान पर प्रवास किया। कुछ समय के बाद नरेश को अपनी भूल का अनुभव हुआ। उन्होंने इन्हें बुलाकर उचित सम्मान दिया और त्रुटियों के लिए क्षमा याचना की।[1]

रामदास का देहावसान लगभग ७२ वर्ष की आयु भोगने के उपरान्त आषाढ कृष्ण ७, मंगलवार, सं० १८५५ को खेडापा रामधाम में हुआ।[2]

इन्होंने छोटे-बडे कुल २४ ग्रन्थों तथा विविध छन्दों में अंगबद्ध वाणी की रचना की। इनके ग्रन्थों की नामावली इस प्रकार है —

१ ज्ञान विवेक	१३ आकाश बोध
२ गुरु महिमा	१४ नाम माल
३ भक्तमाल	१५ आत्मसार
४ चेतावनी	१६ ब्रह्मजिज्ञासा
५ जमफारगती	१७ पटन्तर
६ मन (स) राड	१८ पद बत्तीसी
७ जग जन	१९ बालबोध
८ रणगीत	२० पचमात्रा
९ अमर बोध	२१ सोलह कला
१० मूल पुराण	२२ आत्मबलि
११ उभय ज्ञान	२३ निरालंब
१२ आदि बोध	२४ नीसाणी

उपर्युक्त सब ग्रन्थों का प्रतिपाद्य विषय मतानुकूल है। इनकी भाषा में ठेठ राजस्थानी शब्दों की बहुलता है। आध्यात्मिक विरह-वर्णना में ये सूफी विरह वर्णन-पद्धति से प्रभावित प्रतीत होते हैं।

---

१ लिख पत्र भाव भक्ती समत दे भेंट पठाय सतद्रत।
+ + +
सत विराजे मग्न में आनन्द में गुन गात॥
—श्री रामस्नेह धर्मप्रकाश, पृ० २१-२२

२ समत अठारै ताम मध वष पच युग जोय।
तिथि सातम आषाढ वदि मंगलवार दिन सोय॥
+ + +
रामदास निजपुर चले पूरण समय सुनाना॥
गुरुप्रारण परची, पृ० ११३

नमूने के लिए इनकी रचना व कुछ छंद नीचे दिये जाते हैं—

तुम ही तीरथ तुम असनानो तुम ही पुन तुमही दानू ।
तुम ही त्यागी तुम ही भोगी तुम ही जगम तुम ही जोगी ॥
तुम ही सतगुरु तुम ही चेला तुम ही सगो तुमो अकेला ।
तुम ही बाहर तुम ही काया तुमही मारे तुम ही खाया ॥
तुम ही हिन्दू तुरक कहाया तुम ही तानू लाक समाया ।
तुम ही पिता तुमही माता तुम ही बधु तुम ही भ्राता ॥
तुम ही सगा तुमही सोइ तुम बिन भरे और न कोई ।
तुम ही सब घट साइया तुम बिन और न कोय ।
दुतिया मिट्यो रामदास उलट आप में जोय[1] ॥

साहब सिरजन निरजन राया नाथ अनाथ अजात अजाया ।
राम रहीम करीमह कसा, ब्रम निरालब कास नरसा ।
नाम न भेखल भेखल न्यारा, रामदास मिल्या तहा प्यारा ॥
निरालब निरलेप है राम निरजन राय ।
रामदास सब सत जन मिल्या तासु में आय ॥
ब्रह्म विरल है रामदास छाया माया होय ।
उलट मिल्या सत ब्रह्म में जा माया नी कोय[2] ॥

ब्रह्म का सत ससार में आविया, धार अवतार भूलोक माही
धरण अवर बिच माग मुगता किया जगत अर भेष कु गम नाही
सतगुरु सबद ले उलट सु न में मिल्या निर्पार थात तिहुलोक जाणी
परपखी जन काई आद अनाद का सुणत सत सबद अणभैत वाणी
जगत कू दूर कर उरड आगा धस्या सिखर महाराज महाराज होई
जीव अर सीव अब द्वार दसवे मिल्या रामीया ब्रह्म ऐरोज साई[3] ॥

गुरु मेरे ऐसी खबर बताई साते सुरत शब्द घर आई । टेर ।
रसना नाम नेम करि लीया, निशिदिन प्रीति लगाई ।
हिरदै माहि प्रेम परकास्या आतम की गम पाई ॥
नाभी माही नाद परकास्या सब ही बन ॥ जाणा ।
पछिम दिसा की बाटी खूली मेरु दड हुए जाणा ॥

---

१ आदिबोध छ० ८४ ८८
२ निरालब, छ० ३१ ३५
३ रेखता, छ० ५६

सहजा उलट आदि घर आया तिरवेणी के तीरा।
रामदास मुन सागर माही चुगत हम जद्द हीरा[१] ॥

दयालुदास

दयालुदास रामसनेही सम्प्रदाय की खेडापा शाखा के प्रवर्तक रामदास जी के पुत्र थे[२]। इनकी माता का नाम सुन्दर बाई था[३]। इनका जन्म मार्गशीर्ष शुक्ल ११, भृगुवार, वि० सं० १८१६[४] को आधुनिक नागौर जिले में मडला परगनान्तगत बड़ू[५] नामक गाँव में हुआ था। उस समय रामदास जी धर्म प्रचारार्थ भ्रमण करते हुए बड़ू गाव में ठहरे हुए थे। रामदास की मृत्यु के पश्चात् माघ शुक्ल ६, सम्वत् १८५५ खेडापा आचार्य पीठ के महन्त हुये और लगभग २७ वर्ष तक कार्य भार सभालने के बाद उपरान्त माघ बदी १०, सं० १८८२ को अपनी ऐहिक लीला संवरण की[६]।

---

१ हरजस, पृ० १४

२ रामदास पितु पाय चिन
—पूरणदास कृत 'जन्म लीला' (रामस्नेहधर्मप्रकाश, पृ० ३०)

३ सुन्दर माता कूख भात।
—वही (रामस्नेह धर्म प्रकाश पृ० ३०)

अर्जुनदास कृत 'पूर्व जन्म' से भी इसी बात की पुष्टि होती है —
माता सुन्दर कूख मल, बाल लियो अवतार।
रामदास पितु पाय चिन जीवा करण उधार ॥
—रामस्नेहधर्मप्रकाश पृ० ३११

४ समत अष्टारह जान वरष षोडश परवानो
ता मध मिगसर मास सुकल एकादसि जानो
भृगुवार परसिद्ध रेवती नखत भणी जे
सब सोभ ग्रह शुभ ठार पर बाल लिय अवतार तब ॥
—जन्म लीला (रामस्नेहधर्मप्रकाश, पृ० ३१)

५ बड़ू गाव शुभ नाम तहा इक सदन कहीजे।
नमो बाल तहा जन्म प्रथम परची सुनहीजे ॥
—वही, (वही पृ० ३१)

६ (अ) समाधि व शिला लेख से।

(ब) महा अग जो निज विजय करके वरष गुनतर बीतिया।
इक मास ऊपर प्रगट पुनिता दिवस पनरे पर भए
तब करी इच्छा मोक्ष की निज लाल को चितवन ठए
तहा मास बद तिथि भई दशमी मध्य दिन मणि आविया
तब स्पर्श कर उधा खैंचि के निज सुरत शब्द मिलाविया।
—जन्म लीला (श्री रामस्नेह धर्म प्रकाश, पृ० ३५)

रामसनेही मतानुयायी सन्तों में से अधिकांश ने गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करते हुए साधना मार्ग पर चल कर जनक के आदर्श का जीवन में उतारा था। दयालुदास भी एसे ही सहज मार्ग के पथिक थे। उनकी धर्म पत्नी का नाम यशोदा बाई था। ये महाराज अपने समय के महान् तपस्वी थे। खेडापा शाखा को सुव्यवस्थित और सुसंस्कृत रूप देने वालों में आपका बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है।

रामसनेही सम्प्रदाय में दयालुदास के समान वाणी का बादशाह कोई दूसरा नहीं हुआ। इन्होंने उन्नीस ग्रंथों और अनेक छंदों में अगवद्ध वाणी की रचना की। इनकी रचनाओं की तालिका निम्नलिखित है —

१ भक्तमाल	१० करुणासागर
२ मन प्रतिबोध	११ पिता-पुत्र-सम्वाद
३ चेतनबोध	१२ निरण मायासार
४ सूरजन का समाजबोध	१३ रक्षा बत्तीसी
५ प्रगट बोध	१४ अरदास बत्तीसी
६ निर्णयबोध	१५ चितावणी
७ आतमध्यान	१६ वज्रसूची
८ अद्भुत विलास	१७ शब्द प्रकाश
९ अरथ ततसार	१८ करुणाबोध

१९ गुरु प्रकरण

दयालुदास का समस्त रचनाओं का वर्ण्य विषय निर्गुण भक्ति के विभिन्न अंगों का विवेचन है। 'भक्तमाल' इनकी सर्वोत्कृष्ट रचना है। परवर्ती संत साहित्य के अध्येताओं के लिए यह ग्रंथ बड़ा ही उपादेय है। नीचे इनकी रचना के कुछ नमूने दिये जाते हैं —

वालमीक त्रेता मही ज्यूं कलयुग तुलसीदास धिन
रामरसिक रस प्रीत राम प्रण चित्त उपासी
रामायण ततसार सुगम भाषा परकासी
दरसन दियो दयाल कह्या सो कियो सिहायक
नर श्री विप्र विजाय नाम प्रताप निमायक
पतत अनत पावन भये ब्रह्म हित्या जिव मेट तन
वालमीक त्रेता मही ज्यूं कलयुग तुलसीदास धिन[1] ॥

+ + +

---

१ भक्तमाल, छं० २७५

मोय रसीलो कन्त मिल परम रमइयो राम ॥ टेक ॥
सासा तरगरा ग्रजग चित रोय रोय जोऊ पथ ।
परवत बनी निहार निहारे ग्रज न ग्राये कथ ॥
सरव सिगार ग्रगार भय हैं पारो दगू दिसाट ।
पीतम परमाद जित भारी भई सिसाह ॥
पाया ग्रवर कस्ू सरव तन ह्वेया चल मसान ।
जोगरा हाय हूड़ मवन कद न मिलै भगवान ।
परवा पिजर बार ह वल वल कइ बार ।
जन रामा ट हल ग्रत व्याकुल न्मरराग दो भरतार[1] ॥
जाग रे बडभागी जाय साधु सूर ज्यो ।
नान पसि सुरत श्रवरा नाद ग्रादि पूगो ॥ टेर ॥
सत पथ चलत न्रद माक्ष द्वार खूलो ।
जगत भ्रमत मेट स्वप्ना स्वप्न दूर भूलो ॥
मिटा भ्रन जम का दूत मिटी राम गाया ।
मिनार दे प्रभात भयो राम नाम गाया ॥
ग्रान चोर जोर भाग भरम जलद नाही ।
कमल सवल उग्यकार दरम परस माही ॥
भजन का बीज ग्राज जनम दरद जावै ।
परिपूरण परम तत्व रामदास गावै ॥[2]

परशुराम

ये रामसनेही सम्प्रदाय के विशिष्ट साधका म गिने जाते हैं । इनका ग्राविभाव बीकानेर राज्यान्तगत बीठनोक[3] नामक ग्राम म कार्तिक कृष्ण १४, वि० स० १८२४ को हुग्रा था ।[4] ये जाति स परमवशी बढई थे ।[5] बाद म य बीठनोक को छोडकर

१ हरजस, प० २४
२ श्री रामस्नेह धमप्रकाश, पृ० ४६ ५०
३ बीकानेर मुल्क पुन कहिय बीठनोकपुर तामे लहिए ।
बहाँ सतगुर प्रवतारहि धरियो ॥
—भवकराम कृत परची (वाणी गुटका, पृ० १३००)
४ समत ग्रठारा सौ चौबीसा कार्ती कृष्ण पक्ष चवदीसा ।
घात्यू गोत उधारण कारण इकोत्तर पिरिया को तारन ॥
—वही (वही पृ० १३००)
५ परसवश को पावन करियो ।
— वही (वही, पृ० १३००)

साईं मरै पूरन सकल प्रकासा।
देव मुनी रिष नाग सबै जम करै तुमारी ग्रासा ॥ टेक ॥
तुम एक्त रहो उर सबव वास गृह वनवासा।
ग्राम ग्रनत करे ग्रवगतरो ग्रनत एक निज ग्रासा ॥
सिवरै ग्रादि ग्रत जन देता ग्रातम ग्रग सहेता।
सिवरत मिवरत तुभै समाना पार न तोहि लहेता ॥
तोरा पार लहै कुन तारन ग्रपरम विरद कहाई।
सा हरिदेव जानि हरि ग्रपनो करि हो हमै सिहाही ॥[1]

पूरणदास

पूरणदास का जन्म मालवा प्रान्त के मेलकी नामक ग्राम मे चैत्र कृष्ण २, रविवार स० १८२८ का शुभ नक्षत्र मे[2] हुग्रा था। ये जाति के वैश्य थे। इनकी माता का नाम सामा ग्रौर पिता का जसवत था।[3] व दोनो ही उदार एव धार्मिक प्रवृत्ति के थे। ग्रत ग्रपने नवजात शिशु को रामदास जी के शिष्य पीथलदास को, जो रतलाम मे निवास करते थे, समर्पित कर दिया।[4] दश वर्ष[5] की ग्रायु मे इन्हें पीथलदास ने खैंरापा पीठाचार्य दयालुदास की सेवा मे भेज दिया ग्रौर उसी वर्ष सम्वत् १८३८ मे 'फूल डोल' के शुभावसर पर दयालुदास ने इन्हे दीक्षा दे दी।[6]

पूरणदास गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करते हुए भी, साधना रत रहने वाले सन्त थे। इनकी धर्मपत्नी का नाम लक्ष्मीबाई था। इनके एक पुत्र भी उत्पन्न हुग्रा था जो

१ श्री हरिदेवदास जी महाराज की वाणी, पृ० २५२
२ समत ग्रठार ग्रठाइसै चैत वद तिथ बीज ही।
हस्त नखतर वार सुभ पूरण जन्म लह्यो जही ॥
—ग्रर्जुनदास कृत जन्मलीला, छ० ५
३ सामा जसवत ग्रेह ग्रान जनमे पुन ग्राई।
—वही, छ० ५
४ मात पिता हरि भगत करयो पीथलसुत ग्ररपन।
—वही, छ० ७
५ भये बरस दुग पच इम गुर पीथल के धाम ही।
वही, छ० ७
६ ग्रडतीसा सुद पच मै समत ग्रठारो जान।
बाल सत सतगुर मिल्या फूलडोल परवान ॥
— वही, छ० १०

बाद में भजुनदास नाम से प्रसिद्ध हुआ और इनकी मृत्यु के उपरान्त आचार्यपद को सुशोभित किया।

ये बड़े ही सदाचारी और सत्यनिष्ठ महात्मा थे। इनकी सद्वृत्तियों को देखकर दयालुदास ने इन्हें अपना परमप्रिय शिष्य बना लिया। दयालुदास की मृत्यु के पश्चात् सम्वत् १८८५ में ये गद्दी पर आसीन हुए और सात वर्ष के अल्प समय के उपरान्त कार्तिक शुक्ल ५, सं० १८९२ को परमधाम वासी हुए।[1]

पूरणदास ने निम्नलिखित ग्रन्थों का प्रणयन किया —

१ गुरुमहिमा	४ सुमिरण सार
२ भक्तमाल	५ करुणा छत्तीसी
३ जन्मलीला	६ शिक्षा बत्तीसी

इसके अतिरिक्त इन्होंने साखी, चन्द्रायण, कवित्त, पद, आदि छन्दों में भगवद्वाणी की रचना की। 'जन्मलीला' को छोड़कर इनकी समस्त रचनाएँ अभी अप्रकाशित हैं। नीचे इनकी रचना शैली के कुछ नमूने दिये जाते हैं —

जा दिन तैं या देह धरी दिन ही दिन पाप कमावत हारो।
नीच क्रिया बुध हीन मलीन कुचाल अचार विचार बुहारो॥
औगुण को नही ओर कहा अब एक भरोसो है राम तमारो।
हो हरिया विनती इतनी तुम मुख सूं कहो पूरणदास हमारो॥[2]

धर धीरज ध्यान प्रमान सदा मन धीरज धार विचार धरे।
धुन ध्यान अखण्ड धरी मन बाधक बाधक दोष तिहूँ जर रे॥
धिन धारण तारण पार उतारण धाम परब्रह्म काज सरे।
धरिये गुर ध्रम धन्य नित पूरण संकट कष्ट सब दुःख टरे॥[3]

कोई राम पिया घर लाव रे।
तलफत प्राण दुखी अत मेरो तरसा अगन बुझावे रे॥ टेक॥
है कोई मित्र हमारो एसो जाय सदेसो सुनाव रे।
विरहिन कूं अति आतुर ऐस जागत रण विहाव रे॥

---

१ पुन समत अठारो सो अठ्यास, बाणवा बरस का तीज मास।
कर दीप माल उछव सवार, मा जी प्रति कीनो निमस्कार॥
—भजुनदास कृत जन्मलीला, छ० ७४

२ पूरणदास की वाणी—विनती को अंग, छ० २१

३ शिक्षा बत्तीसी, छ० २१



श्री पूरणदास जी



श्री हरलालदास जी



श्री अर्जुनदास जी



श्री भावनादास जी

तलफ तलफ तन तालावेली सास कलप सम जावे रे।
नीर बिना मछी क्यू जीवे बीछड़िया दुख पावे रे॥
अब तो कृपा करो तुम मोहन दरसन वेग दिखावे रे।
जन पूरण विरहिन अति व्याकुल मरतम आन जिवावे रे॥[1]

मनीराम

ये सूरपुरा नामक ग्राम के एक जागीरदार थे। इनका जन्म राजपूत भाटी कुल में हुआ था। सम्प्रदाय में प्रवेश करने से पूर्व इनका नाम मनरूप सिंह था।[2] इनके श्रीकिशन सिंह नामक एक मित्र थे जो रामदास के शिष्य थे। एक बार रामदास जी श्री किशन के यहाँ आये। मदरूप सिंह को भी यथासमय उनसे सत्सग करने का अवसर मिला जिससे ये बहुत प्रभावित हुए। कहते हैं, एक बार ये किसी तालाब में स्नान कर रहे थे। सहसा इनके पांव फिसल गये और ये डूबने लगे। संकट की इस स्थिति में व्याकुल होकर इन्होंने रामदास को स्मरण किया। रामदास ने तत्काल दिव्य रूप धारण करके इनकी रक्षा की। उसी दिन इन्होंने खेडापा जाकर उनसे दीक्षा ले ली। इनकी साधना भूमि बडलू थी।

मनीराम के पांच शिष्य हुए—कृपाराम, देवादास, दयाराम, सूरतराम, और गंगाराम। इन लोगों ने अपना रामद्वारा क्रमशः बड्लू, साथीण (देवादास, और दयाराम) बागटा और बड़ौदा में स्थापित किया। इनकी शिष्य परम्परा अब भी इन स्थानों पर चल रही है। इनका देहावसान आषाढ कृष्ण ७, सं० १८६० का खटावा ग्राम में हुआ।[3]

इनके द्वारा विरचित साहित्य का विवरण, जो प्रस्तुत लेखक को राजस्थान की शोध-यात्रा के पश्चात् प्राप्त हुआ है इस प्रकार है

१ अनात बोध	५ सुमरणसार
२ महिमासार	६ गभ चेतावनी
३ जजा निसाणी	७ आतम परची
४ ग्रानमसार	८ गुरु माहमा

९ हरजस

इसके अतिरिक्त बहुत से फुटकर पद और साखिया भी इन्होंने लिखी। इनकी भाषा में राजस्थानी का पुट है। इनके कुछ छन्द नीचे दिये जाते हैं —

१ हरजस, पृ० ७
२ आचार्य चरितामृत, पृ० २२
३ आचार्य चरितामृत, पृ० २२३

यो तन जावसी रे चेत सके तो चेत,
मनुष देह यह दूलभ है रे, करिले हरि सो हेत ॥ टेक ॥
सब जीव दीसे जावतारे रहा न दीसे एक ।
काल न छोडे जीव का रे कहा जगत कहु भेक ॥
माता पिता मिल बीछुडे रे बहुरि न मिलना हाथ ।
जीवन जम ले जायसी रे रारा सके नहिं काय ॥
इण अवसर चेत्यो नही रे मूरख महा अजान ।
अंत समय जम मारसी रे बहुती हासी हान ॥
अनत कोट मत कहत है रे सतगुरु कहै बजाय ।
मनीराम मिल शब्द मे रे जहा काल न पहुँच जाय ॥[1]

प्रीतम प्यारा हो आवो घर ।
तुम बिन सुख असार का सब लागत खारा हो ॥ टेक ॥
तुम बिन मैं दुख देखिया जाका बार न पारा हो ।
लख चौरासी में फिरिया बारम्बारा ठगाया हो ॥
मूरख भूल न चेतियो हीरा हाथ गमाया हो ।
बाजी देख न भूलियो बाजीगर न्यारा हो ॥
घट में ऐपा बोलता सा का सकल पसारा हो ।
मनीराम की बीनती सुण सिरजण हारा हो ॥
तुम घर आवो राम जी कीज भी पाग हो ॥[2]

मोटी माया मनीराम किनक कामणी दोय ।
जोगी जता स यासी तपसी सब कू दाना खोय ॥
माया जालम मनीराम तीन लोक के माय ।
सुरग मरत पाताल में जीव सकल कू खाय ॥
माया डाकण मनीराम डकसायो ससार ।
सकल जीव कू खात है, हरजन उतरया पार ॥[3]

अर्जुनदास

ये खैड़ापा गद्दी के चौथे पीठाधीश्वर थे । इनका जन्म कार्तिक पूर्णिमा सोम-

---

१ श्रीहरियन्त-भूसूपा, पृ० २२५
२ खागटे की बड़ी वाणी, पृ० म० ७३६
३ वही, पृ० स० ७१०

वार, वि० स० १८७७ को हुआ था।[1] ये खेडापा आचार्य पीठ के तीसरे पीठाचार्य श्रीपूरणदास के पुत्र थे।[2] इनकी माता का नाम लक्ष्मीबाई था। ये अपने समय के बडे महात्मा थे। जोधपुर के राजवश म इनकी बडी प्रतिष्ठा थी। पूरणदास जी की मृत्यु के उपरात ये स० १८९२ म आचार्य पद पर आसीन हुए और जीवनपर्यन्त कुशलतापूर्वक कार्य भार समालते हुए वैशाख कृष्ण ७, रविवार, स० १९८० को परमधाम पधारे।[3]

अर्जु नदास ने 'जन्म-लीला' और 'पूर्व जन्म' नामक दो ग्रथो की रचना की। 'जन्म लीला' मे पूरणदास की जीवनी वर्णित है और 'पूर्व-जन्म' मे दयालुदास के पूर्व-जन्म का कथा है। दयालुदास कृत 'करुणासागर' ग्रथ की टीका भी इन्होंने लिखी थी। इनके तीन पद और चार फुटकर कवित भी प्राप्त है। इनकी भाषा राजस्थानी मिश्रित सरल हिन्दी है। वाणी म साहित्यिकता का अभाव है। इनकी रचना के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं —

---

१ शुभ समत अठारो सुनउ सोय।
लखि बरस सितंतर अर्नाह लोय॥
शुभ मास जासु कातो सुदेप।
सुद सुक्ल पक्ष पूनम पेप
भल चन्द्रमार कृतका नक्षत्र
+ + +
अर्जु न लिए अवतार तत्व
—हरलालदास कृत जन्म लीला, छ० १० ११

२ जे पूरण ब्रह्म अवधूता है अर्जु न ताको पूता।
— निर्गुण भजन माला, छ० १८

३ समत उगनी सौ जु कहिऐ
(क) बरस पचास वैसाखहि लहिए
तामध सातम वाव सारा (रविवार)
घटिका रात रहो हो चारा
तामध लगा समाधि अपारा
प्रान समाय जोति मझारा
—जन्म लीला, छ० ७७ ७८
+ + +
(ख) श्री नाम कृष्ण

सखी री आज दिवस भल आयो।
चातक मोर पपइया बोले घन घमसाण लगायो ॥
मोटे बूंद घटा घन बरसत सारंग सबद सुहायो।
चहुं दिस बीज चमक अति गहरा घना अम्बर छायो।
दास कृपाल कृपा अब कीज मन वछन फल पायो।
पूरण ब्रह्म गुरु है मेरा उरजन य जस गायो[1] ॥

जिन सतगुर बिन सुख पाव म्हारे नना नींद न आवे ॥ टेर ॥
वे परम सुख के धामी अब याह सूं भय न्यामी।
वे अमरलाल न पूता अब राम जना यहि सुवता ॥
अब वा सूरत कब पाऊं मैं रात दिवस बिलखाऊं।
मैं पल घटी दिन रेता वे वारन इमत वेता ॥
अब धीरज कूं न बधावे मोय राम इमत कुण पाव।
वे पूरण ब्रह्म अवधूता है उरजन जाव पूता[2] ॥

हरलालदास

हरलालदास अर्जुनदास के शिष्य थे। इनके प्रारम्भिक जीवन और दीक्षाकाल के सम्बन्ध म निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। हां, इतना अवश्य है कि य सं० १६१३ भाद्रपद सुदी १ के पूव दीक्षित हो चुके थे, क्योंकि इसी तिथि को अर्जुनदास द्वारा सिंहथल पीठाचाय चेतनदास को लिखे हुए एक पत्र म खेडापा के संतो मे इनका नाम इस प्रकार आया है —

" और अठे साध प्रह्लादास जी, स्वरूपदास जी, तुलसीदास जी, प्रह्लाददास, जानाराम जी, जगजीवनदास जी, जैतराम, रामरतन, आत्माराम, हरलाल, नागाराम आदि का दडवत परिनमासहित राम राम मालूम होसी[3]।"

अर्जुनदास के परमधाम पधारने के पश्चात् इन्होने सम्वत् १६५० म आचाय पद को ग्रहण किया और अठारह वष तक कायभार सभालने के पश्चात् सम्वत् १६६८, पौष कृष्ण ६ को परमगति को प्राप्त हुए[4]।

---

१ अर्जुनदास की वाणी, पद सं० १
२ अर्जुनदास की वाणी, पद सं० ३
३ श्री रामस्नेह धम प्रकाश, पृ० ३६ पर उधृत पत्र से
४ श्रोनाथ वृन

इनके द्वारा विरचित 'जन्म लीला'[1] नामक केवल एक ग्रन्थ प्राप्त है[2]। इसमें अर्जुनदास का जीवन वृत्त दिया गया है। यह ग्रन्थ हस्तलिखित रूप में खेडापा रामद्वारे के दयालु पुस्तकालय में सुरक्षित है। इसके अतिरिक्त इनके लिखे हुए कुछ पद भी मिलते हैं। इनकी रचना-शैली के उदाहरणस्वरूप दो छंद नीचे दिये जाते हैं -

दीन दयाल दया के सागर अब तो विलम न कीज हो ॥ टेर ॥
मैं अनाथ तुम पतिता पावन अब मोरी सुध लीजे हो।
मो निरबल को बल नहिं कोई रक्षक विरद वदीजे हो॥
विषमी वैर घणा है मोमैं अब मोंहि बाहर कीजे हो।
चरण सरण मैं परयो राज री गुना मोय बगसीज हो।
हरलालदास की याही बिनती चरण सरण नित दीजे हो[1]।

+ + +

इम निराकार निगुण अभेद।
छवि दृष्टि माहिं आवे न छेद॥
इक अमर अजूनी हो अलेख।
सत अनत नेति पुनि वेद शेख[2]॥

लालदास

लालदास हरलालदास के शिष्य और खेडापा गद्दी के छठें आचार्य थे। इनका जन्म ढुढाड राज्य के थाड नामक ग्राम में सोनकी सरदार कुल में हुआ था[3]। ये वि० स० १९९८ में गद्दीपति हुये और भाद्रपद कृष्णा ४, स० १९८२ को नश्वर जगत् से सदैव के लिए नाता तोड कर परमधाम वासी हुये[4]।

इन्होंने कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं लिखा। इनके बहुत से पद 'श्री हरियश मञ्जूषा', 'श्री हरियश-मणि मञ्जूषा' आदि साम्प्रदायिक भजन-संग्रहों में संकलित हैं। इनकी वाणी के अध्ययन से रामसनेही सम्प्रदायान्तर्गत एक नयी प्रवृत्ति का पता चलता है और वह यह है कि सम्प्रदाय के परवर्ती सन्तों ने अन्य देवताओं की उपासना प्रारम्भ कर दी थी। उदाहरणार्थ इनका एक पद उद्धृत किया जाता है जिससे इनकी शिव निष्ठा व्यक्त होती है—

१ राममंदिर खेडापाधाम में रखा हुआ वाणी गुटका—हरलालदास की वाणी, प० स० १
२ जन्म लीला, छ० ४
३ श्री रामस्नेहधमप्रकाश, पृ० ४०
४ श्रीनाद वृक्ष

जोगी मेरे द्वारे आयो बावरो निहग ॥ टेक ॥
बैल की सवारी विभूति ललाट चन्द ।
दरशण को आयो तेरे कृष्ण मुखारविन्दु ॥
कुण्डी लिए खाक मे लगाय आप बाघछाल ।
लाल लाल लोचन विशाल गले रुण्ड माल ॥
आक औ धतूरा का झोली भर लीनी सग ।
सेर सात की ये सग म लिए हैं भग ॥
साप की जनोई लगोटी बाजु बाजुबन्द भूरो सी जटा म गग ।
सामने गणेश आप सैकड़ों लपेट बठे भैरु कोतवाल सग ॥
गोदी मैं ले आयी बाल, लायके दिखाया लाल ।
देवे परिक्रमा सिंगी फूक बोले जयगोपाल ॥
लालदास शिव गावे ऐसा सुत जायो नन्दराणी तोको रग[1] ॥

बन्दे रहना रे हुशियार, नगर म चोर आवेगा ॥ टेक ॥
तुपक तीर तरवार न बरछो ना बन्दूक चलावेगा ।
आवत जावत कछू न दीस घर म धूम मचावेगा ॥
गढ नहि फोडे किला न ताड़े ना कोई रूप दिखावगा ।
नगरा सेती काम नही है तुझे पकड़ ले जावगा ॥
वा तेरी फरियाद न चाले ना कुछ कारी लावेगा ।
बैठा कुटुम्ब चीज ले जावे खोजी खोजन पावेगा ॥
जो कोई चतुर विवेकी होवे राम नाम लिव लावेगा ।
लालदास भगवान भरोसे खुली किवाडी जावेगा ॥[2]

मनोहरदास

मनोहरदास का जन्म वि० स० १८८४ कार्तिक शुक्ल २ को मूल नक्षत्र म[3]

१ श्री हरियश मजूषा, पृ० ३४७
२ वही, पृ० २८७-८८
३ समत अठारो बरस वसु वेद बखानो ।
मुनि कातिक द्वि तिथि धरा पर जन्म धरानो ॥
—बाबा श्री मनोहरदास जी महाराज की वाणी-परिचय, पृ० ८

बीकानेर राज्यान्तर्गत मण्डाण नामक कस्बे के निकट मोटोलाई नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम चौधरी रायचन्द्र और माता का पत्तूबाई था।[1] ये जाति के जाट थे। मूल नक्षत्र में जन्म लेने के कारण विचारों की दृढ़ता और ईश्वर प्रेम आपके स्वाभाविक गुण थे जो बाल्यकाल से ही परिलक्षित होने लगे थे। युवावस्था प्राप्त होने पर इनका विवाह सम्पन्न हुआ, जिससे कालान्तर में इन्हें दो पुत्र रत्न भी प्राप्त हुए।

सम्वत् १६०६ मे इन्होंने रामसर निवासी संत गुमानीराम से दीक्षा ली थी।[2] इनका शेष जीवन भगवद्भजन, सत्संग और घूम घूम कर धर्म प्रचार करने में व्यतीत हुआ। फाल्गुन कृष्ण ५, संवत् १६७२ को ८८ वर्ष की अवस्था भोगकर ये परम तत्व को प्राप्त हो गये।[3]

इन्होंने साखी और कुण्डलिया छंद में अबद्ध वाणी की रचना करने के साथ ही 'नाम निश्चय बोध' और 'हाडा बोध' नामक दो लघु ग्रंथ और स्फुट पद एवं कवित्त भी लिखे। इनकी रचना के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं –

राम राम सोई ध्यान है रामा राम समाध,
राम राम रसना रटे तो तुरत कहावे साध।
तुरत कहावे साध और उपाधि मिटावे,
कनक कामणी त्याग क्रोध को मूल उठावे।

---

१ पिता रायचन्द चौधरी फत्ता माता पाट।
—बाबा मनोहरदास जी महाराज की वाणी-परिचय, पृ० ४

२ (क) पूरब पुण्य प्रभाव प्रगट भये पर उपकारी।
शुभ संवत उन्नीस षष्ट में माघ शुक्ल पंचमि मही।
जाल छाडि भक्ती मिले गुरु गुमानीराम गही।
—वही, पृ० ■

(ख) आत्मकथन से भी इनका गुमानीराम का शिष्य होना प्रमाणित होता है–
गुरु गुमानीराम को दास मनोहर बाल
भवसागर में डूबतो काढ़ि लियो तत्काल॥
वही, पृ० ३५

३ इच्छाकरी उन्नीस बहोतर ध्यान स्वरूप मनोहर धारण।
फागुन वदी पंचमी के दिन छाड़ि वपु मिलिये प्रभु कारण॥
—वही, पृ० २३

निन्दा करै न ईरखो आशा तृष्णा बाध,
राम राम साईं ध्यान है रामा राम समाध ।।[1]

और उपाधि सबै तजि दीनी जु, टेक गह्यो इक नाम उचारयो ।
तीरथ व्रत एकादशी आदिक, राम बिना सब आन निवारयो ।।
सूरज तेज ज्यूं शीतल चन्द ज्यूं, ध्यान अखंड भूतेश ज्यूं धारयो ।
सो गुरुदेव नमो परमानन्द, दास गुमान मनोरेको तारयो ।।[2]

कनीराम

कनीराम पीथोदास के प्रमुख शिष्यों में से थे। इनकी साधना भूमि रतलाम थी। गुरु की मृत्यु के उपरान्त वि० सं० १८५१ में रतलाम रामद्वारे के महन्त हुए और आजीवन काम भार सभालते रहे। इनके उत्तराधिकारी उदयराम थे। कनीराम के जन्म मरण आदि के सम्बन्ध में साम्प्रदायिक सूत्रों से कोई प्रमाण नहीं मिलता। इनकी सम्पूर्ण वाणी संख्या ५,१६३ है जिसमें चार ग्रन्थ भी हैं। दुर्भाग्य से इनका साहित्य उपलब्ध नहीं हो सका। अतः साम्प्रदायिक भजन-संग्रहों में इनकी जो रचनायें संकलित है उन्हीं से सन्तोष करना पड़ता है।

नीचे इनकी काव्य-शैली के कुछ नमूने दिये जाते हैं —

प्राण सनेही राम की निशिदिन मग जोऊं,
आवन की आशा लगी छिन भर नहिं सोऊं ।। टेक ।।
मैंने युग देन गये केई जनम अतीत।
अब के अवसर चूक के मत रहो न चीते ।। १ ।।
छोड़ो हठ कठोरता परसन हुय आवो ।
गुण औगुण की वातड़ी मन ते बिसरावो ।। २ ।।
यो तन बीतो जात है अब क्या मन भावे ।
स्नान सोसो राम जी दिया वरण आव ।। ३ ।।
जगत पति पणजण ज्यो विरदारा सारा ।
मनोराम का दाजियो अब दरस तुमारा ।। ४ ।।[3]

---

१ बाबा मनोहरदास की वाणी, पृ० ४०
२ वही, पृ० ६२
३ श्री हरिभजन-मंजूषा, पृ० १३८

पतित उधारण राम जी शरणागत तरी।
डूबत हूँ भवकूप म बैया गहो मेरी ॥टेक॥
सुधम कछु साध्यो नहीं अधम मन दीनो।
अर्थ न सा यो एक हू अनर्थ बहु कीनो ॥१॥
हम सम अपता वा नहीं सब जग फिर देखो।
भरत पाप को पोटलो, करिये कहा लेखो ॥२॥
ऐसे अधम अनाथ को तुम बिन कुण राखे।
शरणाई साधार हो सब शास्त्र भाखै ॥३॥
एसो मुण शरणो गह्या भावै सो कीजो।
कनीराम का बीनती निरभय पद दीजो ॥४॥[1]

सेवकराम

परमहस सवकराम रामसनेही सम्प्रदाय की विरक्त शाखा के प्रवर्तक परशुराम जी के शिष्य थ। इनका पूरा जीवनवृत्त अतीत के अधकार मे विलीन हो गया है। साम्प्रदायिक परम्परा म अब केवल इतना ही ज्ञात है कि इ होने आषाढ पूर्णिमा स० १८६१ को दीक्षा ली थी और पोष शुक्ल अष्टमी, शुक्रवार, स० १९०७ को असार ससार से सदैव के लिए विदा हो गय।[2]

इ होंने कुल आठ ग्र थो की रचना की, जो निम्नलिखित है —

१ भगत प्रभाव
२ शब्द प्रकाश
३ निष्पक्ष निर्णय सार
४ परमहस प्रकाश
५ परसराम जी की परची
६ विधवा विचार
७ गुरु शिष्य सम्वाद
८ हरियश

इनके अतिरिक्त इनकी फुटकर रचनाए भी मिलती हैं, जो हस्तलिखित रूप म, सूरसागर रामद्वारा (जोधपुर) म सुरक्षित हैं। सवकराम की वाणी बडी ही मधुर और भाषा प्रसाद गुणपूर्ण है। इनका सरल जीवन अकृत्रिम भाषा म मुखरित हो उठा है। इनकी रचना के कुछ नमूने नीचे दिय जाते हैं —

कोऊ जात न पात कुटब तरा, घर धाम धरा रह जायगा रे।
अरु मात न तात न भ्रात सगी, सुत दारा यारा थायगा र॥
जब जम जोरावर आय घेरे, तब आडा काऊ नहिं आयगा रे।
कहै सवकराम समार साई, ऐसो जीव अकेलाई जायगा र॥

[1] श्री हरियश मञ्जूषा, पृ० १३७
[2] जोधपुर स्थित समाधि के शिलालेख से

यह सुप ससार सुपन जैसा, सो तो जागत जाय विलायगा रे।
जैसे छाहि बादर की ओर बनी, तो सी नक न थिर रहायगा रे॥
पुन सीत का कोट सूरज उगे, नीर अजरी नाहि ठहरायगा रे।
कहे सेवगराम सभार साइ, जैस जिंद तेरी चल जायगा रे॥[1]

कुजर मि यां कुपीत करे तन, मिघ सर्व भर जावे।
मिलिया अही अत हुय तन का, चोर मार मुस खावे॥
राकस मिल्या रहे नहिं बाकी, मूल आदि ले जावे।
छोडे नही आर बस पूगन, सोइ धसे चढ़ खावे॥
गम है पाप जान कर कसर, बैरी नागिन कहिये।
काम चोर बस है ता माही, वदन एकसी लहिये॥
यह सब प्राण लेहकर छूटे समज्या तो नही जावे।
नारी नरक जीव सा भुगते, मुवा नरक ले जावे॥[2]

ऐसे साधु सगति मिल मेलो री होरी।
साधु सगति अज सकर चाहे, सुर नर नाग सकोरी॥टेर॥
चौरासी फिर मः तन पायो, पूरब पुण्य मिलो री।
छूट गया पीछे पछितासो बहू न सफल करलो री॥
परहित सत पुकार कहत हैं यो जग जाल तजो री।
कोटि निनाणूँ राजा रमिया, सो पुन साख भरो री॥
गुरु गम फाग खेल हुय सनमुख, ज्ञानगुलाल गहो री।
प्रेम मजल पिचकारा छूटत, नख सिख भीजि रहो री॥
चित चदन गुर गाल अरगजो, चोवा नाम चुनो री।
सूधा सुरत लगाय रैन दिन, अनहद नाद सुनो री॥
भक्ति परा जिव पाय परम पद, निश्चल होय रहो री।
जनम मरण फेरा मिट जावे, नव तत देह दहो री॥
अनत कोटि रम पार पहूँचा, गुरु गोविन्द स जोरी।
सेवगराम सतगुर सग खेले, औसर साज समोरी॥[3]

निर्मलदास

इनका जन्म राजस्थान के गसतरो नामक किसी ग्राम मे हुआ था। इनके पिता का नाम कृपाजी और माता का महजाबाई था। ये जाति के गौड ब्राह्मण थे। बाल्यकाल म थोडी शिक्षा प्राप्त करके इ होन एक सिद्ध योगी से उपदेश पाकर स यास

1 वाणी गुटका—चेतावनी को अग छ० ५-६। 2 भक्त प्रभाव—अष्टम प्रभाव, छ० २४ २७। 3 निर्गुण भजनमाला, पृ० ११।

ले लिया। उस समय से ये मारवाड़ के पाली नामक ग्राम मे रहने लगे थे। एक बार रामदास जी के शिष्य लालदास धर्म प्रचारार्थ पाली गये थे। उनके मुख से अनुभव वाणी सुनकर ये बहुत प्रभावित हुए और खेड़ापा जाकर अगहन शुक्ल २, सम्वत् १८४५ को उनसे दीक्षा ले ली। कहते हैं कि दीक्षा देते समय जब रामदास जी इनके गले मे कंठी बाँधने लगे तब इन्होने परीक्षा लेने के अभिप्राय से अपना गला बढ़ाना शुरू किया। रामदास ने इनके मन की बात जान ली और वे भी अपनी कंठी बढ़ाने लगे। अन्त मे उन्होंने इनके गले पर मुष्टिक प्रहार करते हुए इन्हें डाटा। परिणामस्वरूप, इनकी सिद्धि जड़ हो गई। फलतः इन्होने उनकी शरण लेकर क्षमा माँगी। दीक्षोपरान्त ये फिर पाली चले गये और वहीं पर आजीवन साधनारत रहे। इनका महावसान चैत्र शुक्ल १, रविवार, सं० १८८२ को हुआ। इनकी शिष्य परम्परा आज भी पाली में चल रही है।

निर्मलदास की वाणी संख्या १८,२५२ श्लोक है, जो पाली रामद्वारे मे सुरक्षित है। सूरसागर (जोधपुर) रामद्वारे के वर्तमान महन्त परमहंस अभयराम के सौजन्य से केवल वाणी का विवरण मात्र प्राप्त हो सका है जो निम्नलिखित है —

साखी—३७६० । सवैया-१२५ । इदव-८४ । मनहर-८१ । रेखता-२५७ । कवित्त अंग २२-३०९ । कवित्त प्रसंग ८-२६ । पुष्कर-९० । कुंडलिया अंग-८४-८३४ । चन्द्रायण अंग ८४ ५०० । हरिजस राग ३० २६६ । झूलना-६० । इसके अतिरिक्त इन्होने ३५ ग्रंथो की भी रचना की है।

भावनादास

उन्नीसवीं शताब्दी के राजस्थान के प्रसिद्ध महात्माओं मे महात्मा भावनादास का नाम अग्रगण्य है। इनका जन्म सम्वत् १८८९ के आस-पास हुआ था। प्रयत्न करने पर भी इनकी जन्म-भूमि और जन्म तिथि ज्ञात न हो सकी। इनके गुरु का नाम दामोदरदास था।[1] दामोदरदास खेड़ापा आचार्य पीठ के तीसरे पीठाधीश्वर पूरणदास के शिष्य थे।[2]

---

१ भावना हमारे गुरु दामोदरदास हीर।
धीर धर्म धारी वार पूज्य पद पायो है॥
—अमरकोष टीका प्रस्तावना, पृ० १।

२ तिनके प्रगट दास पूरन प्रमानियतु।
पूरन ज्यो चंद प्रेम पूरन प्रकाश है।
जिनकी सुनाइ प्रभुताई साधुताई ताहि।
हरत अनंत होत हिय में हुलास है।
दामोदरदास तासे दीन पनि दयियतु।
मोना मनि मंद का प्रनामी सब पास है।
—श्री भागवत एकादश भाषा टीका (गुरु प्रनालिका), पृ० सं० ११।

इनकी साधना-भूमि जोधपुर थी। जोधपुर में कुचीनगर नामक स्थान पर आज भी भावनादास का रामद्वारा वर्तमान है जहाँ इनकी परम्परा चल रही है। इनका देहावसान वि० सं० १९६५ में हुआ।[१]

भावनादास एक पहुँचे हुए महात्मा, प्रभावशाली उपदेशक और कुशल प्रवचन-कर्ता थे। ये संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित और हिंदी के सिद्धहस्त कवि थे। इन्होंने 'श्रीमद्भागवत' के एकादश स्कंध, 'श्रीमद्भागवत गीता' तथा 'भर्तृहरिशतक त्रय' का पद्यबद्ध अनुवाद बड़ी सफलता से किया है। 'चाणक्यनीति' और 'अमरकोष' को भी हिंदी में छंदबद्ध रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय इन्हीं को है। इनके भजनों का एक संग्रह 'भावन भजन रत्नावली' नाम से प्रकाशित हो चुका है। भावनादास की समस्त रचनाओं को वृंदावन की रघुवीर सिंह की रानी साहिबा ने प्रकाशित करवाया है।

अनुवाद ग्रंथों में भावनादास जी की भाषा परिमार्जित और संस्कृत पदावली से सुसज्जित है, किन्तु भजनादि में राजस्थानी की छटा दर्शनीय है। ब्रजभाषा, अवधी, राजस्थानी और संस्कृत पर आपका समान अधिकार था। इनकी रचना के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं —

उपदेशत सिख मूढ कहुँ, विभिचारिनि ढिग वास।
अरि को भरत विमास उर, विदुषहु लहत विनास ॥४॥
भामिनि दुष्टा मित्र सठ, उत्तरदायक भृत्य।
अहियुत बसत अगार में, सब विधि मरिबो सत्य ॥५॥
धन गहि राखहु विपत हित, धन तै बनिता वोर।
तजि बनिता धन को तुरत सबतें रखहु शरीर ॥६॥
कुल हित त्यागिय एक को, गहहु छाडि कुल ग्राम।
जनपद हित ग्रामहि तजहु, तन हित अवनि तमाम[२] ॥७॥

मन्द मन्द हासन तै वदन अनन्द दय।
सरल तरल नन वैभव कला वढाहिं।
पुहुप झरी से बैन बरसत हुलास होय।
नूतन विलास उक्ति रचना भली रचाहिं।
गौन के अरम्भन में रमहू अचभ गात।
लीला के समाज होत जाहिर सबै जनाहिं।
जबै तरुनाइ मृगनैनिन के छाइ तन।
नाहा रमणीय तबै तिनसी तिलोक माहिं ॥[३]

१ भावन भजन रत्नावली—भूमिका। २ पौरुष चाणक्य नीति, पृ० ३०।
३ भर्तृहरि शतकत्रय—शृङ्गारमञ्जरी, छं० ३०।

भाई भूलो मूढ़ गवारा, तर लगे लुटेरा सारा ।टेर।
मात पिता तिरिया सुत बन्धू, मतही लोग ठगारा ।।१।।
लूटत हैं चहुँ दिश ते तोकूं, दगाबाज ससारा ।।२।।
तूं कर पाप कुटुम्ब को पोषत, तो शिर बंधे भारा ।।३।।
जब जम आय पकड ले जासी, दूर हुतो सुत दारा ।।४।।
कर चलने की त्यारि कूच का, तो शिर घुरत नगारा ।।५।।
करना सो अब ही कर लीजे भावन हुय हुसियारा[1] ।।६।।

खेताराम

खेताराम मरुधर देशस्थ भाडीसर नामक ग्राम के निवासी थे। इनका जन्म कार्तिक शुक्ल १४, स० १९४५ को हुआ था। ये बचपन से ही सत प्रकृति के थे। आठ वर्ष के भी नहीं हुये थे कि इन्होंने स० १९५२ में गुरुदीक्षा लेली। इनके दीक्षा-गुरु खैडापा पीठाचार्य हरलाल जी थे। ये वैशाख शुक्ल १४, स० १९८४ को परलोकवासी हुए।

खेताराम एक कुशल सगीतकार और प्रसिद्ध धर्मोपदेशक थे। अपने इन्ही गुणो के कारण, ये मारवाड मेवाड, गुजरात, मालवा, बरार आदि प्रदेशो मे प्रसिद्ध हो गये। इनके भजनो का एक हस्तलिखित सग्रह बीकानेर के रामद्वारे मे सुरक्षित है, जिसमे से कुछ पद 'श्री हरियश मञ्जूषा' मे सकलित किये गये हैं। इनकी काव्य शैली के उदाहरणस्वरूप दो पद नीचे दिये जाते है —

तेरी कुदरत पे कुर्बान भेद तेरा किसी ने न पाया।
तेरी कुदरत पे बलिहार ।।टेक।।

पल मे बहते अथाह समुन्दर, जिसका वार न पार।
पल मे ढूंढा मिले न पानी, लीला अपरम्पार ।।
पल मे पुष्प खिले बागा मे, फूल रही फुलवार।
पल मे पलट गई सत काया, सूख गई सब डार ।।
पल मे माता पुत्र गोद मे, लेकर करती प्यार।
पल मे रोती खडी पुत्र बिन, चिन्ता न यत्न हजार ।।
पल मे जो मानुष महराजा, परजा पालनहार।
पल मे राज सिंहासन छूटा, बिखर गया घरबार ।।
याते समझ विचार देख लो, यह जग स्वप्न असार।
खेताराम कहे कर जोरे तेरा जग करतार ।।[2]

(१) भावन भजन रत्नावली, पद ३८, पृ० ३३-३४।
(२) श्री हरियश मञ्जूषा, पृ० ३२३-२४।

कोई विरले मिलत सफा दिल के ।।टेक।।
योगी यति संन्यासी जेते, देख लिए सबके खिलके ।
पण्डित कवि जन गुणी गवैया, भेख साधु देखे मिलके ।।
सब घट करत बिगाड शत्रु ये, काम क्रोध उपर दिलके ।
घोर अविद्या अंधकार में, चित उज्ज्वल कैसे विलके ।।
मल विक्षेप आचरण नाही प्रेम नूर मुख पर मिलके ।
सेताराम खरी यो कहता, मन राजी जिनसे मिलके ।।[1]

प० उत्साहराम

प० उत्साहराम का जन्म राजस्थान के बाडमेर जिले के भकुटिया नामक ग्राम में चैत शुक्ल १४, वि० स० १९५५ को एक साधारण किसान परिवार में हुआ था। जब आप बहुत छोटे थे आपके माता पिता अर्थ-कृच्छता के कारण घर छोडकर जीविका की खोज में जोधपुर की ओर चले आये और दुर्भाग्य से इसी बीच आपको ६, ७ वर्ष का छोडकर चल बसे। पिता को खोकर आप इस बाल्यावस्था में ही परमपिता की खोज में लग गये। सौभाग्य से इन्हे हिम्मतराम जैसे उदार महात्मा का आश्रय मिल गया। इन्हीं महाराज से आपने स० १९६२ में दीक्षा ग्रहण की। तनिक बडे होने पर इन्होंने विद्यारम्भ किया और सम्वत् १९७५ तक अध्ययन करते हुए व्याकरण, साहित्य, दर्शन तथा आयुर्वेद का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। इसके उपरान्त आपने धर्म प्रचार का बीडा उठाया। यह गुरु काम करते हुए आपने अहमदाबाद, पूना, नागपुर, अमरावती आदि स्थानों का भ्रमण किया। हिम्मतराम के देहावसान के उपरान्त स० १९९६ से आप जोधपुर में स्थायी रूप से निवास कर रहे हैं। आप धर्मोपदेशक होने के साथ-साथ अच्छे वैद्य भी हैं।

पडित जी इस समय रामसनेही सम्प्रदाय के एकमात्र कवि हैं। राजस्थान के प्रसिद्ध कवि बाकीदान के साहचर्य में रहकर ये काव्य-रचना में प्रवृत्त हुये।[2] इनके काव्य में ब्रजभाषा की माधुरी देखने योग्य है। अभी तक इन्होंने निम्नलिखित ग्रंथों का प्रणयन किया है —

(१) नल दमयन्ती चरित्र
(२) कृष्ण दैरग प्रसग

---

१ श्री हरियश मंजूषा।
२ सदा सुहावन मरवडी थिर निवास शुभ थान।
राम प्रताप विन्ध्य वर कविवर बाकीदान।।
तिन प्रसंग कविता तनो चाव लग्यो मुझ चित्त।।
—श्री दयालु दिव्य चरित्र, पृ० १२३ (कवि का आत्म निवेदन)

(३) दयालुदिव्य चरित्र
(४) कलहस का कलरव
(५) वीर बावनी
(६) श्री रामस्नेही मत- दिग्दर्शन (गद्य)

इनकी काव्य शैली के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं —

कौन कमनीय रूप स्निग्ध द्युति धारिनी तू,
शारदा सयानी भने वीणा युक्त पानि ना
पुरुष पुराण वधू पद्मजा परे ना लखि
सन्तमत ज्ञाता सन्त पन्थ अनजानी ना
नाहीं तू भवानी जगदम्बा जगजानी सोइ
ब्रह्म विद्या रूपा वाके दश कछु हानी ना
रूप मदमानी ज्यों दिवानी बन माहि डोले
बोले वथा न बानी दवि तोहिं पनिचानी ना।[1]

पूरन के मुख नूर बढ़ै रण तूर सुने न मुरै प्रण मेली
भीषण त्यों भृटकी भृकुटी बसिके यमराज रहे रण खेली
सजय साहस के सहमा गलमाल धरै जय श्री अलबेली
कन कृपाणन कानन में कमला कलहस करै नित केली।।[2]

सन्तत सन्तन के हम सेवक
सत्य सनातन मारग गामी
राम निरजन को जप जाप
भये निष्पाप मिटी सब खामी
छोडि सबै विषयारस छीलर
है अब आनन्द सागर स्वामी
कोई हमार बिगारि सकै कहा
साहब रच्छक है घनस्यामी ।।[3]

---

१ श्री दयालु दिव्य चरित्र, पृ० ४७ ४८
२ वीर बावनी, छ० ५०
३ श्री दयालु दिव्य चरित्र, पृ० ५३ ५४

रेण-शाखा के साहित्यकार :

दरिया साहब

रामसनेही सम्प्रदाय की सर्वाधिक प्राचीन शाखा रेण के सस्थापक दरिया साहब की वाणी मे कही भी ऐसा उल्लेख नही है जिसके आधार पर उनकी जन्म तिथि अथवा उपस्थिति काल का निर्णय किया जा सके। इस सम्बन्ध मे हमे बहिस्साक्ष्यो पर ही निर्भर रहना पडता है। दरिया साहब के प्रशिष्य और पूरणदास के शिष्य पदुमदास कृत 'जन्म लीला' के अनुसार दरिया साहब का आविर्भाव भादों कृष्ण अष्टमी, वि० स० १७३३ को हुआ था।[1] इनके एक दूसरे शिष्य किशनदास के प्रशिष्य मदाराम ने भी दरिया साहब का जन्म काल भाद्रपद कृष्ण ८, स० १७३३ ही माना है।[2] जयरामदास[3] एव आत्माराम[4] कृत लावणिओ से भी इसी तिथि की पुष्टि होती है। आचार्य क्षितिमोहन सेन[5] डा० रामकुमार वर्मा, प० परशुराम चतुर्वेदी[6], प० मोतीलाल मेनारिया[7] प्रभृति विद्वानो ने भी इसी तिथि को स्वीकार किया है। दरिया साहब की समाधि पर भी यही तिथि अकित है।

रेणपीठाचार्य श्री क्षमाराम द्वारा प्रकाशित 'श्री स्व० दरियाव महाराज की अनुभव गिरा' म इनकी जन्मतिथि इस प्रकार दी हुई है :—

---

१ सतरा से के समत बरस तैंतीसा भारी।
मास भादवा वद अष्टमी तिथ इदकारी ॥
—जन्म लीला

२ समत सत्रा सो जाणज्यो पुन तैतीसा सार।
वदी भादवा अष्टमी जन दरिया अवतार ॥
—दरिया साहब की परची

३ सतरासै तैंतीस का जन्म अष्टमी जाण
जन्म लियो दरियाव जी, रोप्या भक्ति निमाण
—लावणी, छ० स १

४ सतरा सौ के समत माही तहतीसा की साल
भादवा वद अष्टमी शुभ कारी
—लावणी, छ १

५ Mediaeval Mysticism of India-p 135

६ हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ४०२

७ उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० ५७८

८ राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० ३०५



श्री दरिया साहब (रेण-शाखा के आद्याचार्य)

सतरा सौ की साल में वर्ष बतीसो जान ।
मास भाद्र बदी अष्टमी प्रगट कृपानिधान ।।[1]

उपर्युक्त उद्धरण के अनुसार दरिया साहब की जन्म-तिथि भाद्रपद कृष्ण ८, १७३२ ठहरती है। उपर्युक्त दोनों तिथियों में दिन और मास का अन्तर न होने हुए भी पूरे एक वर्ष का अन्तर पड़ जाता है। इनमें से सं० १७३३ की तिथि ही अधिक समीचीन प्रतीत होती है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित तथ्य विचारणीय हैं —

(१) दरिया साहब की समाधि का निर्माण उनके समकालीन लोगों द्वारा हुआ है इसलिए यह तिथि अवश्य ही उन लोगों द्वारा समर्थित रही होगी।

(२) पदुमदास और मदाराम दरिया साहब के प्रशिष्यों में से थे। इसलिए इन लोगों के साक्ष्य अधिक प्रामाणिक माने जायँगे।

(३) सभी विद्वानों ने इसी तिथि का समर्थन किया है।

(४) 'अनुभव गिरा' में छपे हुए जीवन-चरित्र के लेखक और रचनाकाल का कहीं उल्लेख नहीं है। अतः इसकी प्रामाणिकता संदिग्ध है।

दरिया साहब के जन्म-स्थान के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद नहीं है। सबने एक स्वर से जैतारण को इनकी जन्म भूमि स्वीकार किया है। 'जन्म लीला'[2] और 'परची'[3] से भी इसी मत की पुष्टि होती है। 'अनुभव गिरा' के अनुसार दरिया साहब की प्राप्ति उनके पोषक मानशाह को द्वारका में, समुद्र तट पर स्नान करते समय, सागर की लोल लहरियों में क्रीड़ा करते हुये शिशु रूप में हुई थी।[4] कहने की आवश्यकता नहीं कि यह कल्पना साम्प्रदायिक प्रवृत्ति के अतिवाद से प्रेरित

---

१ स्व० श्री दरियाव जी महाराज की अनुभव गिरा, पृ० ४६

२ जैतारण में आण प्रगट्या दरिया दादू ।
—जन्म लीला

३ मारू देस विख्यात नग्र जैतारण भारी ।
जन दरिया महाराज आप आया वपुधारी ।।
—परची

४ बड़े पजर की बर, गया सिन्धु तट नाणे ।
सलिल न्हान जब मान पेन मुन में न्हाने ।
लीन्ह पुत्र उर लाय हरष मन भवन सिधाय ।।
—अनुभवगिरा, पृ० २१

प० मोतीलाल मेनारिया विद्वानों की दरिया साहब की जाति विषयक इस मान्यता का प्रत्याख्यान करते हुए इन्हें इतर जाति का बताते हैं[१] जो कि सर्वथा भ्रान्तिपूर्ण है। वस्तुतः साम्प्रदायिक साहित्य ने एक स्वर से दरिया साहब के धुनिया जात्योत्पन्न होने की पुष्टि की है।

दरिया साहब की दीक्षा के सम्बन्ध में मतैक्य नहीं है। प० मोतीलाल मेनारिया ने इनको हिन्दी, संस्कृत, फारसी आदि का अच्छा ज्ञाता बताया है।[२] सम्प्रदाय की ओर से प्रकाशित वाणी में छपे जीवन-चरित्र के अनुसार उन्होंने काशी में जाकर, न केवल संस्कृत भाषा का अध्ययन किया था वरन् व्याकरण, पुराण, शास्त्र, ज्योतिष, काव्यशास्त्र, दर्शन आदि विषयों का भी पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया था। इसके अतिरिक्त इन्होंने कुरान के एक-एक कलमे का मनन भी किया था।[३] 'कल्याण-सन्त अंक' में दरिया साहब को निरक्षर कहा गया है।[४] ऐसी स्थिति में इनकी शिक्षा के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता है। इतना अवश्य है कि इनकी वाणी कवित्वपूर्ण और भाषा सुव्यवस्थित है, चाहे वह सत्संग का ही परिणाम क्या न हो।

दरिया साहब के गुरु का नाम प्रेमदास था। प्रेमदास जी बीकानेर राज्य में स्थित खियानसर नामक स्थान के निवासी थे। ये बालकदास के शिष्य और सन्तदास के प्रशिष्य थे। सम्प्रदाय वाले अब प्रेमदास को सन्तदास का शिष्य बताते हैं जो तथ्याधारित नहीं है। साम्प्रदायिक परम्परा के प्रसंग में, इस सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन किया गया है। दरिया साहब का दीक्षा-काल कार्तिक शुक्ल ११, वि० सं० १७६९ है।[५]

दरिया साहब की साधना-भूमि आधुनिक नागौर जिला तगत स्थित रेण नामक स्थान था। जब ये केवल सात वर्ष के थे, इनके पिता का देहान्त हो गया।

---

१ राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० ३०८

२ वही, पृ० ३१०

३ अनुभव गिरा, पृ० १२२

४ कल्याण सन्त अंक, पृ० ६२१

५ (क) समत सतरै भया रया सतरै में एका।
मिले प्रेम दरियाव ध्यान का करण वमेका ॥
—जन्म लीला

(ख) तैंतीसा को जनम गुणातरै दीक्षा ली हो।
काती सुद एकादशी प्रेम जी किरपा की हो ॥
—परची

तभी से ये अपनी माता के साथ ननिहाल रैण में रहने लगे। इनका पालन-पोषण नाना कमीस ने किया।[1] विरक्त होने पर इसी स्थान को दरिया साहब ने अपनी साधना-भूमि बनायी। आज भी रैण में दरिया साहब की समाधि पर निर्मित संगमरमर का भव्य स्मारक उनकी धवल कीर्ति का गुणगान कर रहा है। दरिया साहब ने मरुधरा के इस रेणुकामय रैण में ज्ञान, भक्ति, और योग की ऐसी त्रिवेणी प्रवाहित कर दी कि कुछ लोगों ने 'रैण' को ही दरिया का उद्गम मान लिया। इतना ही नहीं, दोनों का ऐसा घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित हो गया कि रैण दरिया की रेणु बन गये और दरिया साहब बन गये उस मरुभूमि के दरियाव।

दरिया साहब ने ८३ वर्ष से कुछ अधिक आयु भोग कर मार्गशीर्ष पूर्णिमा, सम्वत् १८१५ को अगम देश के लिये प्रस्थान किया।[2]

दरिया साहब विरचित कोई स्वतन्त्र ग्रंथ नहीं मिलता है। इनकी केवल अणभइ वाणी ही प्राप्त है जो संख्या में बहुत कम है। कहते हैं इन्होंने 'वाणी' नामक एक बहुत बड़ा ग्रंथ लिखा था जिसमें १०,००० के लगभग पद दोहे आदि थे किन्तु अब उसका कोई पता नहीं चलता। इनकी वानियों के दो संग्रह—एक बेलवेडियर प्रेस इलाहाबाद से और दूसरा प्रधान पीठ रैण (राजस्थान) से क्रमशः 'दरिया साहब (मारवाड़ वाले) की बानी' और "स्व० श्री दरियाव जी महाराज की अनुभव गिरा" नाम से प्रकाशित हो चुके हैं। झाकर (राजस्थान) निवासी आनन्दराम रामसनेही द्वारा प्रकाशित 'रामस्नेही संत वाणी' में भी दरिया साहब की कुछ रचनाएं संकलित हैं।

दरिया साहब की भाषा में बड़ी ही सरलता तथा अभिव्यक्ति में पर्याप्त सजीवता है। उदाहरण स्वरूप कुछ छंद नीचे दिये जाते हैं —

साधो एक अचंभा दीठा
कड़वा नीम कहै सब कोई पीवे ताको मीठा॥टेक॥

---

१ (क) वर्ष सप्त का भया पिता परलोक सिधाया।
जैतारण से चाल मातु संग राहण आया॥
नाना नाम कमीस भाग मोटो अति भारी। —अनुभव गिरा, पृ० ४५

(ख) कल्याण (संत अंक, पृ० ६२१) में दरिया साहब का पालन-पोषण उनकी दादी कमीरा के घर पर होने का उल्लेख है। यह मत सर्वथा भ्रामक प्रतीत होता है क्योंकि बाप की मां को दादी कहा जाता है और बाप एवं दादी के दो घर नहीं होते। यदि हो भी तो ऐसा नहीं कि दोनों रैण और जैतारण जैसे दूर स्थित स्थानों पर रहने लगें।

२ समाधि के शिला लेख से।

राम भज, राम भज, राम भज रे मना
राम ही राम भज सत आवे
जीव हर जान सब काल की नीरणी
सतगुरा शरण मिल प्रेम पीवे
मर की सेरिया सत जन सचरे,
गुप्त का गली मिल जाय दीना
जोग की जुगत सू पुरष आसन किया
अगम अस्थान घर जाय लीना
सरण दरियाव को दास पूरण कहे
ब्रह्म ही ब्रह्म मिल ब्रह्म चीना ।[1]

अन्त समय की वेर शोक नही कीजिये,
मोह ममत का जीव राम भज लीजिये ।।टेर।।
अन्त मो त्याग देह, तहा नही रोईये,
नैणा डार नीर पाप बहु ढोईय ।।१।।
जो कोई करे विलाप प्राणी दुख पावशी,
मोह ममता के हेत नरक जीव जावशी
अन्त का उत्सव मान बडाई पाइय,
हस गये निज धाम काहे पछिताइय
राव रक सरदार गया सब छोड रे,
झूठो है ससार रहण नही होय र ।
पूरण गुरु दरियाव दया जब होवशी,
सत का अर्थ विचार परम पद पावशी ।।[2]

किसनदास

किसनदास दरिया साहब के शिष्य थे । इनका जन्म दासोजी और वेदो नामक मेघवशीय (चमार) दम्पत्ति के घर माघ कृष्ण पचमी, वि० स० १७४५ को हुआ था । इनकी जन्मभूमि रेण निकटस्थ टूकला नामक स्थान

---

१ वही, पृ० १०३
२ श्री रामसनेही सतवाणी एव भजन सग्रह, पृ० २४६

है।[1] टूकला को ही आपने अपनी साधना भूमि बनायी। इन्होंने २८ वर्ष की अवस्था तक गाहस्थ्य जीवन व्यतीत करने के अनन्तर वैशाख शुक्ल ११, सं० १७७३ को दरिया साहब से दीक्षा ली थी। इनके विरक्त होने का कोई विशेष कारण नहीं ज्ञात होता। दयालुदास ने इन्हें भक्त-अंश से आविर्भूत बताते हुए जगत्-जल से पद्म दल की भाँति निर्लिप्त कहा है।[2]

किसनदास जी की १९ रचनाएँ और साखी, कवित्त, कुंडलिया, चन्द्रायण, रेखता, अरिल आदि छन्दों में लिखित अगबद्ध वाणी प्रस्तुत लेखक ने जोधपुर नगर में गुलाब सागर स्थित रामद्वारे के वाणी-संग्रहालय में देखी हैं। ग्रंथों की नामवली निम्नलिखित है —

(१) गुरु महिमा	(७) निरभे ध्यान
(२) भक्तमाल	(८) ध्यान उदास
(३) गोरख छन्द	(९) सुमिरण ध्यान
(४) भरतरी उपदेश	(१०) अगोचर पुराण
(५) जमविराट	(११) सप्तश्लोकी गीता
(६) चाणक बोध	(१२) अगाध बोध

---

१ ब्राह्मण पासी टूकलो किसन पुरुष को गाँव।
सप्तदीप नवखण्ड में सो तो साना नाँहि।
सो तो साना नाँहि आप हरिदास जी आया।
होता आदू ज्ञान ध्यान धुन वही समाया॥
पतित केतो पावन कियो रटयो ज हरि को नाम।
ब्राह्मण पासी टूकलो किसन पुरुष को गाँव॥
—मंदाराम कृत भक्तमाल

२ भगत अंश परगट भये किसनदास महाराज धिन।
पदम गुलाब सफूल जनम जग जल सूं न्यारा॥
सीप आस आकाश समद अप मिले न खारा।
परगट राम प्रताप अघट घट भया प्रकासा॥
अनुभव अगम उदोत ब्रह्म परचे तत भासा।
मरुधर पावन करी गाँव टूकले वास जन॥
भगत अंश परगट भये किसन दास महाराज धिन॥
—भक्तमाल, (दयालुदास) छन्द १३५

(१३) नाव बोध
(१४) चि तावणी
(१५) समरथ बोध
(१६) अचल बोध
(१७) सुखमण ध्यान
(१८) हरजस
(१९) रामरक्षा

इनकी रचना के कुछ नमूने नीचे दिये जाते है —

राम राम अमर अवनामी सब घट व्यापक स्वामी।
अघट अतोल अमोल अररब्रह्म अविगत अतरजामी ।।
दीनदयाल दयानिधि देवा सेवा सिवरण सारण।
पूरण ब्रह्म परम परमानन्द आणद अधम उधारण ।।
केता तिरया तिरैगा केता सतगुर सबद अराध।
मिथ्या सुफेर मरहिगा नाही सध्या मु होइगा साध ।।[१]

नीन्दला नहिं आवै रमइया जिना । टेक ।
निस वासर मरी पलक न लाग जागत रैण विहावै
सास उसास राम धुन लागी जप तप मारो जावै
जावण कह गया अजू न आया विरहा कु ण विलमावै
व्याकुल विरह भई तन देहा धन जावन नहिं भावै
तन मन वारू वर कर डारू पति दीदार दिखावै
किसनदास बिरहिन की वाता सदगुर बिन कुण थावै ।।[२]

काठ मध्या निकस अगन, दधि मथ निकस धीव।
राम रटया से किसनदास, ब्रह्म होत है जीव ।।
सुख चाहो तो राम कहो, सब म राम अराध।
किसनदास जामण मरण, दोना मिटै वियाध ।।
मन मुल्ला मस्सीत मैं, ऊभा करै अवाज।
किसनदास निज नाव की, निसदिन पढे निवाज ।।
किसनदास सदगुर दिया, किरपा करके पीव।
सरने राम न ओ लख्यो विषै भुलायो जीव ।।
पाखड पातक न मिटै, जत्र ला रटयो न राम।
किसनदास सिवरण सही, खरी खरी को काम ।।[३]

---

१ अचल बोध, छद २-४
२ गावण का पद, स० १३
३ रामस्नेही सत वाणी और भजन सग्रह, पृ० १२७

दिन दिन जन्म बीतो जाय।
भज्य तज भज राम रमता, कह्यो सतगुरु आया। टेर।
काज हेत फिरे निशदिन, तुरा जोबन साम।
सास जाय फिर आवत नाही, नाम की तेज समाय॥
जनम तेरा किया जामू रह्यो क्यों रे रिसाय।
कह्यो मेरो मान मूरख, राम वेग मनाय॥
राम नाम उचार रसना, भजन कर एक भाय।
जाय मिल जहाँ धणी तेरा, आमण मरण मिटाय॥
ऐसो मोसर बोहोर नही, र बारता बह जाय।
भजन कर भला होय तेरा, नाम नर हरि गाय॥
होय हुचेत अचेत मत रह, जाग जीव जगाय।
किसनदास तिहुँ लोक तारण, नाम नाव चलाय॥[1]

नानकदास

दरिया साहब के शिष्यों म नानकदास प्रथम पात्तेय हैं।[2] इनके जन्म और मरण की तिथियाँ अभी तक ज्ञात नही हो सकी हैं, किन्तु इतना निश्चित है कि ये सम्वत् १७७८ म वतमान थे।[3] दरिया साहब के समकालीन होने के कारण भी इनका समय विक्रम का १८वी शताब्दी प्रमाणित होता है। इन्होंने रेण (राजस्थान) को अपनी साधना भूमि बनाया।[4]

सम्प्रदायान्तगत नानकदास की ख्याति एक सिद्ध महात्मा के रूप म रही है। पदमदास ने, किसनदास, सुखराम और पूरणदास

१ रामस्नेही सत वाणी, पृ० २२६ २७

२ अन्तस्साक्ष्य स भी इनका दरिया साहब का शिष्य होना प्रमाणित होता है—

दाता गुरु दरियाव सही गुरुदेव हमारा।
राम-राम सुमिराय पतित को पार उतारा॥
—गुरु महिमा

३ सतरा से चोतर की साला, ताही समय पढियो द्वै काला
पूरण नानक कीये चाला, डूंगर विरया से कियो हाला
—दरियाव जी महाराज की मावणी, आत्माराम, छ० ८

४ पूरण नानक पाम नेनसी गुलाबी दास
कृपाराम बगतराम देवीचद रग मे
सतरे ये सतजन रेण के सग मे।
—दरियाव साहब की अनुभव गिरा, पृ० ३१६

के साथ इहे भी भक्ति को प्रकाशित करने वाला बनाया है ।[१] दयालुदास कृत 'भक्तमाल' के निम्नलिखित छन्द से भी इनके व्यक्तित्व पर विशद प्रकाश पड़ता है —

राम सिवर निरमल भया सुघ मन नानकदास जन ।
सूर वीर मघीर टेक गुरु आज्ञाकारी ।।
काहू लिपत न छिपत भगत पण व्रत को धारी ।
घट विच अघटा पाय त्रिकुटि में आसण कीन्हा ।।
जनम मरन भव मेट जाय निरभै घर लीना ।
भगत भोम का घर सकल गुरु दरिया परताप मन ।।
राम सिवर निरमल भया सुघ मन नानकदास जन ।।[२]

अभी तक नानकदास विरचित फुटकर साखी और पद के अतिरिक्त 'गुरु-महिमा' नामक एक लघु कृति ही प्राप्त हुई है। 'गुरु महिमा' आनन्दराम रामस्नेही द्वारा प्रकाशित, श्री रामस्नेही सतवाणी एवं भजन संग्रह नामक पुस्तक में संकलित हो चुकी है। उदाहरणार्थ इनकी कुछ पंक्तियाँ नीचे दी जाती हैं —

जामण मरण रोग है मोटा ।
सतगुरु बिना ग्यान सब खोटा ।।
गुरु बिन ग्यान कहाँ से सूझै,
गुरु बिन भरम्या पाथर पूजै ।।
गुरु बिन जीव अगति अधिकारी,
गुरु बिन भक्ति मिले नहिं प्यारी ।।
गुरु बिन पार ब्रह्म कुण पावै,
गुरु बिन जीव अगति में जावै ।।
गुरु बिन वेद शासतर बाँचे,
गुरु बिन पंडित झूठ अराधे ।।
गुरु बिन तीरथ व्रत फिर आवै,
गुरु बिन ठीक ठौड नहिं पावै ।।

---

१ किसनदास सुखराम उजागर पूरण नानकदास ।
सिख चारों प्रगट दरिया के, करी भक्ति परकास ।
—रामस्नेही सतवाणी पृ० ३५२

२ भक्तमाल, छ० ४३८

गुरु बिन होम यज्ञ बहु थापे,
गुरु बिन क्रिया कर्म कुण कापे ॥[1]

कर मन आरती राम निवाजे, गगन मंडल धुन अनहद बाजे।
प्रथम पूज गुरां का पाया, दीन दयाल दयाकर आया॥
रसना भजन हृदय हरि वाचा, नाभि कँवल निज नाद प्रकासा।
मन का पुहुप भाव की पूजा, अलख निरंजन और न दूजा॥
इडा पिंगला सुषमन मेला, पाँचू पुरुष त्रिकुटी मेला।
सुरत निरत मे जाय समावै, मालमदास आरती गावै॥[2]

चतुरदास

यह भी दरिया साहब के शिष्य थे। अन्तस्साक्ष्य से भी इनका दरियासाहब का शिष्य होना प्रमाणित होता है।[3] ये एक गृहस्थ संत थे। ये वही चतुरदास है जिनकी बहन से संत हरखाराम के पिता विजयराम का विवाह हुआ था। स्मरणीय है कि चतुरदास का पूरा परिवार दरिया साहब का अनन्य भक्त था जिसके कारण विजयराम जैन धर्म का परित्याग कर रामसनेही सम्प्रदायान्तर्गत दीक्षित हो गये थे। चतुरदास ने अपना सम्पूर्ण जीवन दरिया साहब के साहचर्य में रहते हुए रेण में व्यतीत किया था। रचना-शैली के नमूने के रूप में इनकी 'गुरु महिमा' से दो छंद नीचे दिये जाते है।

सतगुरु जन दरियाव पर वारू तन मन प्राण।
पतित जीव पावन किया आदू अपणा जाण॥
आदू अपणा जाण प्राण मोहि शरणे लीया।
बालक के मुख मांहि हला मिसरी का दीया॥
मुख छोटा वड चीज किसी विध पाई जावे।
चूसे ओली रीत जीभ वाको रस आवै।[4]

विधी रीत कैसे बणे (जहाँ) प्रेम प्रीति को प्यार।
सकल सूंक्ष साइ के सारे ई को किसो विचार॥

---

१ श्री रामस्नेही संत वाणी एवं भजन सग्रह, पृ० १४२
२ श्री दरियाव जी महाराज की अनुभव गिरा, २८९-९०
३ चेला चतुरदास दरिया को दरिया वास वसाणो।
—गुरु महिमा, छ० ४
४ श्री रामस्नेही संतवाणी एवं भजन सग्रह, पृ० १४८

ईको किसो विचार भार सब उनको छाजे ।
उलटा विरद विचार और सब सुल्टा लाजे ॥
साचा शिष्य दरियाव का सत्र सुणलीयो कार ।
कहुँ महिमा गुरुदेव की मेरा मुख उनमान ॥[१]

मनसाराम

मनसाराम भी दरियासाहब के शिष्य थे ।[२] इन्होंने राजस्थान के साँजू-नामक स्थान पर निवास करते हुए साधना की थी ।[३] साम्प्रदायिक साहित्य से इनके जीवन-वृत्त पर स्वल्प प्रकाश पड़ता है । इनकी वाणी मे नाम साधना, साधु-लक्षण, जीवन की नश्वरता आदि का विशद वर्णन हुआ है । उदाहरणार्थ इनकी दो कुण्डलियाँ नीचे दी जाती हैं —

ररंकार महाराज की, महिमा करे महेस ।
नारद सी जोगेसरां, निस दिन ध्यावे सेस ।
निस दिन ध्यावे सेस, पार ब्रह्मा नहिं पावे ।
सनकादिक शुक व्यास, सिपत ध्रुव नामो गावे ।
पैगम्बर अवतार सब, कह्यो नमो आदेस ।
ररंकार महाराज की, महिमा करे महेस ।[४]
साध साध सब कोइ कहे, साधू विरला कोय ।
लालच लोभ न मान मद साधू कहिये सोय ।
साधू कहिये सोय मोल का मारग सावे ।
सब मत मिथ्या देख, एक ही ब्रह्म, अराधे ।
ज्ञान घटा बरस सदा, सगत सीतल होय ।
साध साध सब कोई कहे, साधू विरला कोय ।[५]

---

१ श्री रामस्नेही सतवाणी एव भजन सग्रह पृ० १४८ ४९

२ आभा बाई ने अपनी शिष्य सम्प्रदाय नामक रचना में दरिया साहब के बहत्तर शिष्यों मे मनसाराम का नामोल्लेख किया है ।

३ जादूराम हरीदेव अभीराम मनसाराम ।
मोहणी ये साँजू माँय सत श्रेष्ठ सेम जी ॥
—शिष्य सम्प्रदाय, आभा बाई छ० ४

४ श्री रामस्नेही सतवाणी एव भजन सग्रह, पृ० १५० ५१ ।

५ वही, पृ० १५१-५२

टेमदास

रामसनेही सम्प्रदाय की रेण शाखान्तर्गत टेमदास को बड़ी श्रद्धा के साथ स्मरण किया जाता है। ये दरियासाहब के शिष्य थे। इनकी साधना भूमि डीडवाना थी। पदमदास कृत एक पद में कतिपय अन्य रामसनेही संतों के साथ टेमदास की गुरु-निष्ठा का वर्णन करते हुए उसे जल मीन के सम्बन्ध से उपमित किया गया है।[1] इनका जीवन काल विक्रम की १८वीं एवं १९वीं शती के मध्य माना जा सकता है। इन्होंने अंगबद्ध वाणी और पदों की रचना की है। इनके द्वारा विरचित आरती का एक पद नीचे दिया जाता है —

नमो नमो गुरुदेव को सत्गुरु सत ही सत।
जन टेमदास वन्दन करे नमो निरंजन कंत॥
आरति राम गुरों की कीजे।
सुरति लगाय दरश सुख लीजे॥
सदगुरु शब्द दिया ततसारा।
सांच छूटा जगत पसारा॥
मिट गया भरम भया उजियाला।
सहज ही खुल्या मुक्ति का ताला॥
वार पार से सुरता लागी।
दिल की काई सबही भागी॥
हृदय मांहि ब्रह्म का वासा।
कोटि भानु का भया प्रकाशा॥
सेवक स्वामी एकहु होई।
टेम न दरसै दूजा कोई॥[2]

सुखरामदास

सुखरामदास का जन्म मेड़ता स्थित हरनोर नामक ग्राम में हुआ था। ये जाति के लोहार थे।[3] इनकी साधना भूमि मेड़ता थी। ये अपने समय के श्रेष्ठ साधक थे

---

१ मनसाराम खेम जन टेमा, नानगराम नवलीन।
हिल मिल रहत गुरां का चरणां ज्यूं जल मांही मीन॥
—श्री रामस्नेही सन्तवाणी, पृ० ३५२।

२ श्री दरियाव महाराज की अनुभव गिरा, पृ० ३०० ३०१।

३ जन सुखरामा जात लोहारा।
लिव गुरुज्ञान लगारा।

और दरिया साहब के शिष्यों में अग्रगण्य माने जाते थे। इनकी साधना का परिचय देते हुए दयालुदास जी लिखते हैं —

गुरु दरियाव स हृ पारम पद सुखराम राम पीवक पिया।
मन मजमस मिट जहर, निमल नख चख सुख सारा।
आरत विरह उदोत, लिगन प्रिय प्राप्त पियारा।
आसण अचल सधार, सदा सिवरण दिस सूरा।
खिव बुरसाण लगाय, काल भ्रम कीना दूरा।
जीव सीव मिल अमर पद, चरण सरण आवक पिया।
गुरु दरियाव साह पारमपद सुखराम राम पीवक पिया।[1]

इनकी सिद्धि के सम्बन्ध में अनेक किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। प्रसिद्ध है कि एक बार मारवाड़-नरेश बख्तसिंह किसी असाध्य रोग से पीड़ित हुये। उन्होंने दरियासाहब की प्रसिद्धि सुनकर उनसे कृपा की याचना की। दरियासाहब ने सुखरामदास को भेजा। सुखरामदास के उपदेश से बख्तसिंह पुनः स्वस्थ हो गये। इनका देहावसान फागुन शुक्ल ११ सं० १८२२ को हुआ।

सुखरामदास की वाणी बड़ी ही प्रौढ़ सरस, और भावपूर्ण है। इनकी निम्नलिखित १५ ग्रन्थ प्राप्त हैं —

(१) भक्त वंशावली	(८) आतम बोध
(२) चिन्तामणि	(९) अगाधबोध
(३) स्वाणन बोध	(१०) अणभै बोध
(४) परम लोक	(११) ब्रह्म निसाणी
(५) विचार बोध	(१२) ध्यान मूल
(६) ध्यान दीपक	(१३) नाव निसाणी
(७) ध्यानसार	(१४) विचार निसाणी
	(१५) नृपति बोध

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त साखी, कवित, चन्द्रायण, रेखता, पद आदि छन्दों में अगबद्ध और फुटकर वाणी की रचना भी इन्होंने की थी। इनकी रचना के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं —

निशदिन जोऊँ बाट पीव घर आइये।
चाहि तुम्हारी माँहि दरश दिखलाइये।
कैसे धरिये धीर पीर है पीव को।
हरि हाँ! बिन दरशन सुखराम किसी गत जीव को।

१ भक्तमाल, छ० १३६

तलफत रैण विहाय दिवस जाय तलफता।
बीत गई सब आयु विरहनी कलपता।
दया न आवे तोय खबर नही लेत है।
हरि हा! यूँ विरहन सुखराम सन्देशो देत है॥
आवो दया विचार सलोना श्याम जी।
आया ही सुख होय सरे सब काम जी।
चेरी अपणी जान दरश पिव दीजिये।
हरि हाँ! साच कहे सुखराम विलम नही कीजिये॥[१]

चलो सब सतगुरु जी के दरबार।
चलो सब ग्यानी गुरु के दरबार॥टेर॥
किया करम सबही कट जावे, जम मुख्ख मर तार॥१॥
सब कूँ दान मोष का देवे दरिया सा दातार॥२॥
ग्यान भक्ति वैराग उपजे दरिया के दीदार॥३॥
अर्थ धर्म अरु काम मोष फल देत पदारथ चार॥४॥
अब सुखराम परमपद पावै जीव होत भव पार॥५॥[२]

तन मद धन मद राज मद, पृथ्वी लागे पाय।
जम की झाट बुरी है राजा सब मद उतर जाय॥
माया मद भूले मती जम शिर खरवी खाय।
सुखाराम साची कहे केता गया बिलाय॥
राम सिवर सुखराम कह मरणो एकण वार।
एकण मरणो मुक्ति है, एकण जम की मार॥
क्षमा क्षमा सब कोई कहे हुकम सकल पर होय।
जम पकडे सुखराम कह तो दिन सगी न काय।[३]

क्या तू जटा बधावै रे, क्या तू धुरड मुडावै रे।
क्या तू नित उठ न्हावै रे, क्या तू राख लगावै रे।
क्या तू तन मन नागा रे, क्यूँ गुर सबद न लागा रे।
क्यू तू फिरे उदासी रे, यूँ तेरी कटै न पासी रे।
क्या तू दूधाहारी रे, क्या तै सुध-बुध हारी रे।

---

१ श्री रामस्नेही सतवाणी, पृ० १३०
२ श्री रामस्नेही सतवाणी, पृ० २२९
३ नृपबोध, छ० ११-१४

क्यू तू उठे आकाशा रे, क्यू तू जाइ निराशा रे।
क्यू तू धरणी धँसे रे, क्यू तू मर मर बसै रे।
क्या तू देवल दरसण रे क्या तू मशान परसण रे।
क्या तू फेरै माला रे, यो तेरा कटे न जाला रे।[1]

निगम का अर्थ संसार सारा कहै
अगम को अर्थ कोई संत पावै
निगम हद वेद विधि सिध सबही कहैं
अगम हद ब्रह्म ज्यां संत जावै
नाद की ओट जम चोट लागै नहीं
सुन का सबद भू सुरत लागी
चल्या आकास कर वास सबही मिटी
प्रगटया सुरत जब ज्योत जागी।।[2]

हरखाराम

हरखाराम का जन्म आधुनिक नागौर जिले के फिड़ौद नामक गाँव में, वि० सं० १८०२, भाद्रपद कृष्ण १२ को हुआ था। इनके पिता का नाम विजयराम और माता का बालाबाई था। ये जाति से खंडेलवाल वैश्य थे। हरखाराम जन्म से ही रामसनेही थे। इस सम्बन्ध में ज्ञातव्य यह है कि इनके पिता विजयराम पहले जैन धर्मावलम्बी थे। इनका विवाह रेण में चतुरदास की बहन से हुआ था। चतुरदास दरिया साहब के शिष्य थे। एक बार विजयराम ससुराल गये। वहाँ दरिया साहब का उपदेशामृत पान करने का उन्हें अवसर मिला। उससे प्रभावित होकर ये दरिया साहब के शिष्य हो गये। बाद में इनका पूरा परिवार दरिया साहब का अनुगामी हो गया।

हरखाराम पाँच भाई थे—नेमचन्द, अमचन्द, श्रीचन्द, लक्ष्मीचन्द और वे स्वयं। इनमें हरखाराम सबसे छोटे थे। ये पाँचों भाई दरिया साहब के शिष्य थे।

वडे भ्रात निज नेम विष्णु पद बहु विधि गावै।
द्विज जे चन्द घट ध्यान राम भजि राम रिझावै।।
तृतीये श्रीचन्द राम सबन के आज्ञाकारी।
चतुरथ लक्ष्मीचन्द वृद्ध की किरपा भारी।।

---

१ भ्रमतोड़ छं० सं० १०-१३
२ वाणी गुटका, प० सं० २२५, रेखता छं द २४१-४२

हरखाराम लघु सवन सू करी भगत विरुदावली।
सतगुर जन दरियाव की सब ऊपर किरपा भली ॥[१]

हरखाराम की साधना-भूमि नागौर थी।[२] नागौर के राजवंश में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। जोधपुर के राजघराने म भी इनका बडा सम्मान था। वहीं से इन्हें 'रामनामी महात्मा की उपाधि मिली थी जो अब तक चली आ रही है। इनकी महिमा का वर्णन करते हुए दयानुदास कहते हैं —

रामनाम की टेक पर हरखाराम सधीर मत।
जात पात जग राज मूल मिल पच पच हारे।
किनकी रखा न मक राम जन राम पियारे ॥
कुठण यात राज बल देय दबाई।
सो हम छाडी सकल साध सगत जिन आई ॥
विजयराम मजमन पुतर परण राख्यो महाराज सत।
राम नाम की टेक पर हरखाराम सधीर मत ॥[३]

अगपद्य वाणी और फुटकर छन्दों के अतिरिक्त इनकी निम्नलिखित १७ रचनाएँ उपलब्ध हैं —

(१) गुरुमहिमा
(२) भुजगी गीत
(३) राम चिंतामणि
(४) राम चिंतामणि (छोटी)
(५) भक्तमाल[१]
(६) शब्द भेद निसाणी
(७) ब्रह्म विलास निसाणी
(८) नाम निसाणी
(९) करुणा सागर
(१०) नाम निपार
(११) भेदसार
(१२) भ्रमविध्वंस
(१३) भ्रमतोड
(१४) अजामिल की परची
(१५) नारायण लीला
(१६) करुणारस बत्तीसी
(१७) ग्यान समुद्र

नमूने के लिए इनके कुछ छन्द नीचे दिये जाते हैं —

रामनाम ततसार, सर्व ग्रंथन मे गायो।
सन्त अनन्त पिछाण राम ही राम सरायो ॥

---

१ भक्तमाल, छन्द ६०८-१०
२ जन्मभूमि पीडौद चाल नागौडे आया।
विजय राम का पुत्र विजय निसाण वजाया ॥
३ भक्तमाल, छन्द १४०

वेद पुराण उपनिषद कह्यो गीता मे ओही।
ब्रह्मा विष्णु महेश राम नित ध्यावै सोही।।
ध्रुव प्रह्लाद कबीर, नामदे आदि प्रमाणी।
सनकादिक नारद, शेष जोगेश्वर सारा जाणी।।
सो सदगुरु प्रताप त, कियो ग्रथ विस्तार।
जन हरका तिहुँ लोक में राम नाम तत्सार।।[1]

रमता रमैया हो, म्हारी क्यू नहिं सुणो पुकार।
सरणे आयो अब मैं स्वामी जाऊ किणरे द्वार।।टेर।।
या जग में कोई सग न साथी देख्या निजर निहार।
सुख माहे स्वारथ का सगी सब मतलब का यार।।
भवसागर भव-जल भ्रम भूल्यो मृग तृष्णा ससार।
जाहा जीव जाण कछु नाही देख्यो सुरत विसार।।
चूक बसग मुझ मे ओहो तरी पग पग को गुनागार।
अब मैं तोकूँ कदे न तजूस जीत होय भावै हार।।
सब जन जाणे ए जीवतारण मैं पतितन को दूहार।
मेरा करम सकल सू मिटा जाको वार न पार।।
गात कहूवो याती जाती घर धन देस दुवार।
तरे कारण सब तज दीना राम धणी करतार।।
मरा औगुण कग्न लग वरणु तुम गुण अपरम्पार।
हो महाराज अरज सुण मेरी अपणो विडद विचार।।
सब जिव तरे आपरे बैठा करे इकतार।
हरकाराम कहे हरी आवो इण औसर इण म्हार।।[2]

क्या जामा क्या पागडी, क्या तूबी लगोट।
राम बिना उतर मर्ौ, सिर पापा की पोट।।
सिर पापा की पोट, खोट तो दह में भाई।
कपडा मे क्या दोस दोस कर दो उतराई।।
हरका हर बिन ना मिटे, जम जालम की चोट।
क्या जामा क्या पागडी, क्या तूबी लगोट।।[3]

---

१ दरियाव जी की अनुभव गिरा, पृ० २२७-२८

२ रामसनेही स त वाणी एव भजन सग्रह, पृ०२४२-४३

३ रामसनेही सन्तवाणी एव भजन सग्रह, पृ० १४८

मदाराम

मदाराम का आविर्भाव फाल्गुन शुक्ल १३, स० १८२५ को राजस्थान के खालएयासर नामक ग्राम में राठौर क्षत्रिय वंश में हुआ था। इनके गुरु का नाम बुधाराम या बुधसागर था। बुधाराम किशनदास के शिष्य और दरिया साहब के प्रशिष्य थे। इन तथ्यों के समर्थन में डेह रामद्वार के संत श्री गोपालदास द्वारा प्राप्त निम्नांकित दोहा उद्धृत किया जा सकता है—

जात पांत राठौड़ मे, जन्म जालएयासर ग्राम।
बुधसागर के सरणै रह्यो मदाराम है नाम॥

इन्होंने बीस वर्ष की अवस्था में, वि स० १८४५ के आषाढ़ मास में, दीक्षा ग्रहण की थी। इनकी साधना-भूमि डेह थी जो नागोर से लगभग १२ मील पूर्व में स्थित है। ये भाद्रपद कृष्ण अष्टमी बुधवार सम्वत् १९१० को जीवन-लीला समाप्त कर परमगति को प्राप्त हुए।

अब तक मदाराम विरचित कुल पांच ग्रंथ और कुछ फुटकर पद ही प्राप्त हो सके हैं। इनके 'प्रश्नोत्तर' नामक एक छठे ग्रन्थ का भी पता लगा है किन्तु अभी तक वह प्राप्त नहीं हुआ है। प्राप्त ग्रंथों की नामावली निम्नलिखित है —

(१) दरिया साहब की जन्मलीला
(२) बुधसागर की परचा
(३) गुरुमहिमा
(४) दा अष्टक
(५) भक्तमाल

इनकी रचना शैली के कुछ नमूने नीचे दिए जाते हैं —

राजपाट धन मोष न भावै, दासी तेरी नाम बडाई।
सुरग नरक की सासै नाही सतसगत सुखराम गुसाई॥
जहँ जहँ जाऊँ राम ही गाऊँ ओदत राम सदाई पाऊँ।
मदाराम की अरजी एती ओदत दीजै मिया सहती॥

मन रे जगत झूठो जाण।
कूण तेरा तु कुण कामू ज मिलीछै आण। टेक।
जैसे मारग बीच मे मिल्या बटाऊ आण॥
किस विध प्रीत ज कीजिए आप आप दिस जाय।
जैसे पंछी रैण का तरुवर बैठा छाय॥
भोर भया उड जायगा किरण सु मेह लगाय।
ऐसो यह ससार है सो तू नहचै धार।
जैसे मेलो हाट को किण सू कीजे प्यार॥

आवत था यो एकलो जाता सगी नाहि।
ऐसी जप तप हावसी समझ देप मन माहि॥
सहजा हो साचा चले सहजा सिमरण होय।
सहजा ही निरख्यो करे, कथा आपणो सोय।
कथा आपणो सोय सदा नेणा के माही॥
सोवे नेणा और बाहर साभी फुन नाहीं॥
सहजराम साचो कहै काची नाही कोय।
सहजा हो साचा मिले सहजा सिमरण होय॥

सहजराम

सहजराम जी राजस्थान के चाडो नामक स्थान के निवासी थे। यह मेघदास नामक किसी महात्मा के शिष्य थे। अन्तस्साक्ष्य से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है।[1] इनके बहुत से पद यत्र तत्र सकलित हैं। इनकी 'सतगुरु महिमा' नामक, १४ छन्दों की एक लघु रचना भी प्राप्त होती है। नमूने के लिए कुछ छन्द नीचे दिये जाते हैं।

राम गुण गायले साजा थका शरीर।
पीछे याद न आवसी रे पिजर व्यापै पीर॥ टेक॥
जोबन थका भज लीजिये रे जेज म कीजे बीर।
फेर बुढ़ापो आवसी रे नैना बरसी नीर॥ १॥
अवसर बीतो जात है रे ज्यूं अजलो को नीर।
फेर न हसो आवसी रे इण सरवर के तीर॥ २॥
भाग भला सतगुरु मिल्या रे पड़यो समद से सीर।
हसा होय चुग लीजिये रे नाम अमोलक हीर॥ ३॥
सब देवन को देव है रे सब पीरन को पीर।
'सहजराम' भज लीजिये रे दुःख मेटण सुख सीर॥ ४॥[2]

चेन चेन भज रामसनेहा अवसर बीतो जावे रे
महा पदारथ मिनखा देही बार बार नहिं पावे रे॥ टेक॥

---

१ जन्म जन्म को दालदी भूखो निपट कगाल।
मनवत कीनो सहज कूं सतगुरु मेघ दयाल॥
—सतगुरु महिमा, छन्द २

२ श्री रामसनेही सत वाणी एव भजन सग्रह, पृ० २६८

पाखण्डी है यो तन अब के आज काल म जावे रे।
भज ले राम मुक्ति के दाता सतगुरु भेद बतावे रे ॥ १ ॥
एसो दाव बहुरि नहि आवै गोविन्द क्या नहि गावे र।
आयो हाथ अमोलक हीरा सो जनि वाद गमावे रे ॥ २ ॥
राजा परजा एकण मारग अन्तकाल सब जावे रे।
भजन करे सो पार पहूचे बेमुख परले जावे र ॥ ३ ॥
जग मे साई थिर नहि कोई जो दास सो जावे र।
हरियादिक बचे सो नाही जमरो सबकूँ खावे रे ॥ ४ ॥
एक बेर चारो युग माही यह मिनखा तन पावे रे।
सहज राम भज रामसनेही प्राण परम गति पावे रे ॥ ५ ॥[1]

आभाबाई

राजस्थान के नारी सतो मे आभाबाई का नाम बडे ही सम्मान के साथ लिया जाता है। इनके भौतिक जीवन का वृत्त अतीत के अधकार मे विलीन हो गया है। अन्तस्साक्ष्य स प्रकट होता है कि इनका जन्म किसी राजवश मे हुआ था।[2] ये दरिया साहब के प्रमुख शिष्य टेमदास की शिष्या थी।[3] इनकी साधनाभूमि डीडवाना थी। अभी तक इनकी दो रचनाएँ—'गुरु महिमा' और 'शिष्य सम्प्रदाय' तथा कुछ फुटकर पद ही प्राप्त हो सके हैं। इनकी रचना के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं —

सुणज्यो सिरजण हार, दीन होय कन्त हूँ।
पूरण ब्रह्म निधान सरण मे रहत हू।
पालो पोखो आप तात तुम मात जी।
मस्तक राखो हाथ निरजन नाथ जी।
बिड्द तुमारो आद लज्या है आपने।
छोरु होय कपूत सरम है बाप ने।

---

१ श्रीरामस्नेही सन वाणी एव भजन सग्रह, पृ० २४१

२ राजनीति मे गरक थी नही दाम की रीति।
पर उपकारी गुरु मिल्या कीन्ही साची प्रीति ॥
—गुरु महिमा, छ० २२

३ जन अमा सतगुरु मिल्या परशन हो गयो मन्न।
बलिहारी गुरु टेम जी तपत बुझाई तन्न।
—वही, छ० ३१

सुरत निरत मन ल्याय ध्यान धुन ध्याइये।
सास उसासा राम अखड लिव लाइये।
आठो पहर अखड भजो एक राम जी।
मन का मनोरथ राम सारो सब काम जी।
करो बिडद को वार वेद कहे साध जो।
बकसो मेरा भूल गुन्हा अपराध जी।
दया करी जै दयाल गुरु मुज ऊपरे।
जन अम्भा भजो राम मनोरथ सब सरे।[1]

इस विध देव की आरती कीजै।
तन मन अरप चरन चित दीजै ।।टेर।।
मन माला सवा सतगुर की की हा तपन मिटै सब तन की ।।१।।
ध्यान का धूप मन कर अगार चित कर चदन तिलक गभीर ।।२।।
झालर सुरत शब्द कर डका बाजै नाद लये गढ बका ।।३।।
सुषमन-क्षीर शकोदक छाजै ज्ञान को घण्टा गगन में बाजै ।।४।।
पाँच कर बाती पुष्प चढाय दास अभा मिल हरि गुण गाऊ ।।५।।[2]

कर सतगुरु जी रो सग याद कर पीव ने ।।टेक।।
गरभवास की धार मार बहु जीवने ।।
सुत बनिता क हेत पच्यो दिन रात रे।
जम जोरावर लार, करे नित घात रे ।।

मोह रया लपटाय लोभ बश पड गया।
जोड या पांच पचीस अठे घर गाडिया ।।
तेरो सगो नाम स्वारथी लोग है।
सुण सता की सीख भजन कर जोग है ।।

बुरा पहूँची आय नीर नैना झरे।
[illegible] तन की नर आशा अजू नहि परहरे ।।
सन्त कह्यो समझाय ज्ञान हृदय धरो।
जन अभा भज राम दुर्मतो परिहरो ।।[3]

---

१ श्री रामस्नेही सत वाणी एव भजन सग्रह, पृ० ३४६-४७
२ दरियाव जी की अनुभव गिरा, पृ० ३१०
३ श्री रामस्नेही सतवाणी एव भजन सग्रह, पृ० २४७

ग्रंथ के कलेवर को दृष्टि में रखते हुए इस अध्ययन में रामसनेही सम्प्रदाय के सभी साहित्यकारों का जीवनवृत्त नहीं प्रस्तुत किया जा सकता। अतः अन्य सन्त कवियों का संक्षिप्त विवरण मात्र देकर इस अध्याय को समाप्त करना उचित होगा।

क—शाहपुरा शाखा

क्रम सं०	साहित्यकार	समय सं०	गुरु-नाम	साधना-भूमि	रचनाएं
१	तुलसीदास	मृ० १८८५	रामचरण	—	वाणी और पद
२	कान्हड़दास	मृ० १८६२	रामचरण	जालावाड़	"
३	चेतनदास	१९वीं शती	रामचरण	कोटा	"
४	उमाबाई	१९वीं शती	रामजन	—	"
५	चतरदास	१८०९-१८८७	दूल्हेराम	शाहपुरा	"
६	नारायणदास	१८४३-१९०५	भूधरदास	शाहपुरा	"
७	दिलशुद्धराम	१९१०-१९५३	नारायणदास	"	साखी और आरती
८	धर्मदास	१९०६ १९५४	दिलशुद्धराम	"	"
९	दयाराम	१९१८ १९६२	धर्मदास		"
१०	केशवराम	१९वीं २०वीं शती	हिम्मतराम	"	ज्ञानपचीसी की टीका
११	जगरामदास	१९ ७ १९६७	दयाराम		साखी और आरती
१२	निर्भयराम	१९४३ २०१२	जगरामदास	"	"
१३	लालदास	१९ वीं शती	—	—	रामचरण की परची
१४	आत्मराम	मृ० १९९२	रामनारायण	मूण्डवा	विनय बावनी
१५	सुखधाम	वर्तमान	निर्भयराम	—	निर्भयरामाष्टकम्
१६	रामनिवास	वर्तमान	मवाराम(मुरलीराम)	लाम्ब	फूलडोल उत्सव
१७	मनोरथराम	वर्तमान	अमोलकराम	दिल्ली	साखी और पद

ख—सिंहथल-खैडापा शाखा

क्रम सं०	साहित्यकार	समय सं०	गुरु-नाम	साधना-भूमि	रचनाएं
१८	बिहारीदास	मृ० १८२५ १८३५ के मध्य	हरिरामदास	सिंहथल	पद
१९	नारायणदास	मृ० १८५३	"	"	ग्रंथ चेतावनी, प्राणपरचा
२०	राघोदास	मृ० १८७६	रामदास	निमाज	स्फुट वाणी
२१	जाम्भूराम	१९ वीं शती	"	नसीराबाद	पद
२२	सग्रामदास	"	"	ईडर (गुजरात)	वाणी और पद
२२	गोविन्दराम	"	"	चतरखेड़े	वाणी और पद
२४	सहजराम	"	—	बीकानेर	पद

कालवाद वैशेषिक केवल मान बनात ।
बनात्पास हमरे मते सकल पर मत सत[1] ॥

ऐसी स्थिति में स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि संत साहित्य का दार्शनिक अध्ययन करना समीचीन है अथवा नहीं? निर्गुणिया संत दार्शनिक नहीं थे, यह मानने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती। उनके साहित्य में किसी व्यवस्थित विचार-धारा का दर्शन नहीं होता, यह भी सत्य है। इसके बावजूद इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि वे धार्मिक साधक थे। 'धर्म मनुष्य की अनुभूतियों, विचारों भावनाओं और *क्रियाओं का वह पक्ष है जिसके द्वारा वह अलौकिक सत्ता से सम्बन्ध स्थापित करने का* प्रयास करता है[2]। तात्पर्य यह कि धर्म के माध्यम से मानव उसी परमसत्य या अलौकिक सत्ता का अन्वेषण करता है जो दर्शन का मूल मन्त्र है। इस प्रकार दर्शन और धर्म में बहुत निकट का सम्बन्ध है। दर्शन आध्यात्मिक साधना का सिद्धान्त पक्ष है तो धर्म उसका व्यावहारिक रूप। बिना धार्मिक आचार के द्वारा कार्यान्वित हुए दर्शन की स्थिति निष्फल है और बिना दार्शनिक विचार के द्वारा परिपुष्ट हुए धर्म की सत्ता अप्रतिष्ठित[3]। दोनों का सामंजस्य ही आध्यात्मिक साधना का चरम उत्कर्ष है। अतः परमसत्य के ज्ञान के हेतु मानव-अन्वेषण का अंग होने के कारण धर्म का दार्शनिक अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है[4]।

सन्तों की दार्शनिक विचारधारा पर अपना मत प्रकट करते हुए डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल कहते हैं—"हम उनमें (सन्तों में) कम से कम तीन प्रकार की दार्शनिक विचारधाराओं के स्पष्ट दर्शन होते हैं। वेदान्त के पुराने मतों के नाम से यदि उनका निर्देश करना हो तो उन्हें अद्वैत, भेदाभेद, और विशिष्टाद्वैत कह सकते हैं। पहली विचारधारा के मानने वालों में कबीर प्रधान हैं। दादू, सुन्दरदास, जगजीवनदास, भीखा, और मलूक उनका अनुगमन करते हैं। नानक और उनके अनुयायी भेदाभेदी हैं और शिव-

---

१ विसमरण सम्हार, पृ० ४१

२ Religion is that aspect of a person's experience including his thoughts feeling and actions whereby he endeavours to live in relation ship with what he deems to be divine.

—The world's living Religion (R. E. Hume) P. 2

३ भारतीय दर्शन (बलदेव उपाध्याय), पृ० १३

४ Religion must also be studied philosophically as part of human quest for a knowledge of supreme reality.

—The world's living Religion, p. 7

दयाल जी तथा उनके अनुयायी विशिष्टाद्वैती । प्राणनाथ दरियाद्वय, दान दरवेश, दूल्हेशाह इत्यादि शिवदयाल की ही श्रेणी में रखे जा सकते हैं[1] । इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिए कि इस प्रकार का पूर्वाग्रह लेकर सन्त साहित्य का अध्ययन करना खतरे से खाली नहीं है । सन्तमत का दार्शनिक अध्ययन सर्वथा स्वतन्त्र ढंग से करते हुए विभिन्न पद्धतियों से प्रभावित रचना की ओर संकेत मात्र कर देना पर्याप्त है । डा० बड़थ्वाल ने जो विचार-सरणि प्रस्तुत की है उसके अनुसार रामसनेही सम्प्रदाय विशिष्टाद्वैतवाद के अन्तर्गत आता है किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि परम्परागत रूप से रामानुज की परम्परा में होते हुए भी इन सन्तों के दार्शनिक विचारों पर अद्वैत के साथ अन्य दर्शनों की छाप है । इसका कारण यह है कि सन्तों ने कोई क्रमबद्ध दार्शनिक अध्ययन नहीं किया था । उनमें जो कुछ दार्शनिकता थी वह सत्संग की देन थी । अतः सत्संग द्वारा सकलित ज्ञान में अनेकरूपता और विविधता का होना बहुत ही स्वाभाविक है ।

ब्रह्म

निर्गुण पंथ की परम्परागत मान्यता के अनुसार रामसनेही सम्प्रदाय के आचार्यों ने 'राम' को ब्रह्म का पर्याय माना है और उसे ही परमतत्त्व स्वीकार किया है । साम्प्रदायिक साहित्य में उसे हर रस[2] रामनिरंजन[3] राम,[4] गोविन्द,[5] रामरसायन,[6]

---

१ हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय पृ० १०४

२ रामनाम हर रस पिया अन्या नवग्रह मिलाय ।
पाका कलश कुम्हार का चाक न चढ़सी आय ॥
—रामनाम की वाणी, प० सं० १५

३ (क) राम निरंजन निर्गुण न्यारा
—नाम परचा (हरिरामदास), छ० ३६

(ख) देख्या राम निरंजन राया
—श्री रामस्नेह धर्मप्रकाश, पृ० १५२

४ राम बिना फीका लगे सब किरिया शास्तर ज्ञान ।
दरिया दीपक कहा करै उन्ध भया निज भान ॥
—रामसनेही सन्त वाणी, पृष्ठ ८८

५ गोविन्दा मित्र हमारा रे,
मौंने जग लागे खारा रे ।
—वही पृष्ठ २३६

६ राम रसायन पीया प्याला
जैसे अवधू होय मतवाला ।
—वहीं, पृष्ठ १७

शब्द,[1] ररकार,[2] हरि,[3] जगदीश,[4] नारायण,[5] रमापति[6] माधव[7] खालिक[8] त्रिलोकीनाथ[9] सारङ्गपाणि[10] आदि विविध भारतीय नामों के साथ ही

---

१ (क) शब्द सरूपी राम उपज विनशैऊ नाही।
सकल सृष्टि ता माहि सृष्टि मे आप समाहीं॥
—अमृत उपदेश,—छठा प्रकाश, छं० ४३

(ख) हरिया सौदा शब्द का दूजा सौदा नाहिं।
दूजा सौदा सो करै खाड परै मुख माहिं॥
—श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश, पृ० ५३

२ जन दरिया आकाश लग आकार का राज।
महाशुन्न तिसवे परे ररकार महाराज॥
—रामस्नेही सतवाणी, पृ० ५२

३ कह हरन्य पिता हरि सुणियो बाल करो प्रतिपाला।
—श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश, पृ० १८३

४ जाग रे जाग जगदीश कू याद कर बाद नर देह कू काई खोवै।
—श्री रामस्नेहधर्म प्रकाश, पृ० २८

५ हेरा सज्जन को नहीं नारायण से सुख।
—वही, पृ० ६६

६ धारण सूधा साहि, कारण ना राखि जगत को।
तो मिलै रमापति आप भक्त विछल विडद है जाको।
—अणभै वाणी, पृ० ६

७ माधव का चाकर मैं हूं।
—श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश, पृ० १५४

८ (क) खालिक छोडि खलक सू लगा,
—वही, पृ० १४३

(ख) सो बड भागिया रे खालिक से मिल खेल।
—वही पृ० १४७

९ नमो-नमो गुरुदेव को नमो त्रिलोकीनाथ,
जन रोका कर वन्दना (कर) जोड नमाऊ माथ
गुरु महिमा', छं २

१० ऐसी आरती करो कोई ग्यानी।
भरम तजो गहो सारगपानी॥
—श्री रामसनेही सम्प्रदाय, पृ० २५३

हक्क,[1] रहिमान,[2] रब,[3] और, रहीम[4], आदि सामी, नामो से भी अभिहित किया गया गया है। नामो की इस विविधता का देखकर स्वभावत यह प्रश्न उठता है कि आखिर यह राम है कौन ? निगुण, सगुण, परात्पर या और कुछ ? 'निगुण' और 'सगुण' कहने पर प्राय निगुण म निगुण–निराकार तथा सगुण मे सगुण–साकार का अर्थ लिया जाता है। इस प्रकार के भ्रम का निराकरण हम इन शब्दो म कर देना चाहते हैं कि रामसनेही सम्प्रदाय ही नही वरन् किसी भी निगुण सम्प्रदाय म साकार की आराधना नही की गयी है। उनका आराध्य निगुण सगुण, परात्पर चाहे जो हो किन्तु है वह निराकार ही। रामसनेह सम्प्रदाय क सतो ने अपने परम उपास्य के लिए राम, हरि माधव, रमापति, जगदीश, आदि पौराणिक नामो का प्रयोग अवश्य किया है किन्तु इनसे उनका तात्पय सगुण–साकार अथवा अवतारो से कदापि नही था। यद्यपि इस सम्प्रदाय के साहित्य मे भक्ति के आवेश म लिखे गये ऐसे पदो की कमी नही है जिनसे यह प्रकट होता है कि इस सम्प्रदाय के राम नृसिंह रूप धारण करके प्रह्लाद की रक्षा करने वाले, गज को ग्राह स बचाने वाले, चीर बढाकर द्रोपदी की लाज बचाने वाले, ध्रुव को अटल राज्य देने वाले, वेदोद्धार के लिए बाराह रूप धारण कर धरती को अपने दातो पर उठाने वाले, वामन होकर बलि को छलने वाले तथा अनन्त काल से भक्तों के लिए अवतार धारण करके उनकी इच्छा की पूर्ति करने वाले और सत शिरोमणि हैं,[5] किन्तु इसे भी हम अधिक से अधिक पौराणिक एव वैष्णव प्रभाव ही मान सकते हैं। "राम

१ हक्का साथी हक्क है बहक्का वे हक्क
—श्री रामस्नेहधमप्रकाश, पृ० ६६

२ शिव ब्रह्मा सब ही चले आवै वेद पुराण।
रामदास साई सदा रहे एक रहैमाण॥
—रामदास की वाणी, प० स २३

३ सातवार सोले तिथा नषतर आय सरब।
नभ गिर सब ही जायेंगे रहै एक ही रब॥
—वही, प० स० २३

४ तूही रामा तुही रहीमा, षन हरिराम जपदा है।
—घघरनिसाणी छ० ३०

५ (क) संत सिरोमणि अत जुगे-जुगे भक्त हेतु अवतारा।
'जन पूरण' परताप राम के मिट गया विषय विकारा॥
—रामस्नेही सतवाणी, पृ० ८२

पिता दशरथ कहे तो हाथ जनम की परिण '[1] की घोषणा करते हुए रामसनेही सम्प्रदाय (शाहपुरा शाखा) के प्रवर्तक संत रामचरण ने कबीर के 'दशरथ सुत तिहु लोक बखाना रामनाम को मरम है आना'[2] वाले सिद्धांत का ही अनुसरण किया है। राम का यह

(ख) भज रे मन राम निरंजन कू
जन्म मरण दुख भंजन कू ॥ टेक ॥
अध नाम सिल सायर पऱ्यो रामचन्द्र दल तारण कू।
जल बूडत गज के फन्द काटे अजामील अघ जारण कू।
राम कहत गणिका निसतारी जुग जुग अधम उधारण कू।
ऊंच नीच की भ्रांति न राखे शरणा की प्रतिपालण कू।
'राम चरण' हरि ऐसे दारध अवगुण गुहा निवारण कू।
—अणभै वाणी, पृ० ६६२

(ग) ऐसे हैं राम गरीब निवाज
भीर परी प्रहलाद उबारे हिरण्यकशिपु हणताज।
मा उपदेश दियो ध्रुव सेती अन्न बसायो राज।
टेर सुनत वेगि हरि आये तार लियो गजराज।
जन द्रोपदा को चीर बधारयो भई पथ भरताज।
देवल फेर दिया जन सागहो भक्त नाम द काज।
दास कबीर घरे लदि बालद आन उतारे नाज।
मीरा जहर कियो चरणोदक राखि भरोसो राज।
सब संतन के कारज सारे भक्त विरद की लाज।
'जन हरिराम' सदा सिध कामा राम सुमर महाराज ॥
—श्री रामस्नेहधमप्रकाश, पृ० १४७/४८

(घ) विरदा निधान कहियो निज विरदा आप केरा ॥ टेक ॥
अजामेल से अध मारे अंत पुत्र हेत पुकारे ॥
साद सुणे सुण ध्याय, जमदूता पास छुडाय ॥१॥
गजराज की सुणि वाणी सो ध्याये सारंग पाणी ॥
निज आगै चक्र चलाये गज ग्राह क दुख मिटाय ॥२॥
आग अधम अपारे सो अध टर सुणि तारे।
हम औगुण अधिक यात, प्रभु साद सुणो नहिं तात ॥३॥
मुझ औगुण तुम ना लहिया सो अधम तार तुम कहिया।
निज आपा विरद विचारो हरिदेव न्या करि तारो ॥४॥
—श्री रामस्नेहधमप्रकाश, पृ० १६८

१ अणभ वाणी, पृ० ५०
२ बीजक, शब्द १०६

स्वरूप पुराणानुमोदित विष्णु के अवतार राम से सर्वथा भिन्न है। कबीर ने अनेक स्थलों पर अपनी एतद्विषयक मान्यता को जोरदार शब्दों में प्रस्तुत किया है। उनके राम ऐतिहासिक अथवा पौराणिक दाशरथि राम तथा अन्य अवतारों से भिन्न हैं। इसी तथ्य को हृदयंगम कराने के उद्देश्य से उन्होंने लीलावतारी विष्णु से उनका पृथकत्व प्रतिपादित किया है। वस्तुतः तत्कालीन परिस्थितियों में ब्रह्म के साकार रूप की उपासना के लिए कथमपि अवकाश नहीं था। अतः संतों ने वैष्णवों के आराध्य को तात्विक रूप में स्वीकार करते हुए भी उनके अवतारी रूप का निरसन किया। उन्होंने शाखा पर्ण को छोड़कर मूल को गहा[१]।

कालान्तर में निराकार राम की यह भावना जन-मानस में बद्धमूल होते देखकर गोस्वामी तुलसीदास ने उसके प्रत्याख्यान के लिए एक 'मानस' की सृष्टि कर डाली। उन्होंने 'राम सो अवध नृपति सुत सोई की अज अगुण अलख गति कोई' का समाधान 'रघुकुल मनि मम स्वामि सोइ' और 'सोई दसरथ सुत भगत हित कोसल पति भगवान' कहकर किया और राम को दो मानने वालों का विरोध किया[२]। फिर भी निर्गुण परम्परा में राम का कबीरानुमोदित रूप ही प्रतिष्ठित रहा। रामसनेही सम्प्रदाय के प्रमुख संत दरिया साहब ने स्पष्ट शब्दों में विष्णु एवं दशावतारों को स्वप्नवत मानते हुए[३] कबीर, दादूदयाल और संतों के प्रियतम राम को ही अपना आराध्य माना है[४]। रामचरण अपने आराध्य राम को विष्णु की षोडश कलाओं के विस्तार-स्वरूप समय समय पर होने वाले विविध अवतारों से पृथक बताते हैं —

सतयुग त्रेता द्वापरा कलि समय-समय अवतार।
राम अखंडित अजन्मा धरे न को आकार॥
धरै न को आकार ब्रह्म निहचल पद जाना।
चंचल माया चरित निरति करि किरत निधानो॥
आवै जाय स विष्णु सैं कला अंग विस्तार।
सतयुग त्रेता द्वापरा कलि समय समय अवतार[५]॥

---

१ हरि या निर्गुण मूल है सगुण जु शाखा पान।
—श्री रामस्नेह धर्म प्रकाश ६०

२ रामचरित मानस, बालकाड, दोहा १०८—११८

३ ब्रह्मा विष्नु दस औतारा। सुपना अनर सब ब्योहारा॥
—रामस्नेही संतवाणी पृ० ६०

४ सोई कथ कबीर का दादू का महाराज।
सब संतन का बालमा दरिया का सिरताज॥
—अनुभव गिरा, पृ० १५३

५ अमृत उपदेश—छगा प्रकाश, छ० ४३

उस परमतत्त्व को 'निगम निरूपनम्'[1] अथवा वेदों के द्वारा सम्यक्‌रूपेण अज्ञेय कहा गया है। निर्गुण ब्रह्म का यह निरूपण श्रुतियों में वर्णित परम निर्गुण ब्रह्म के स्वरूप से बहुत कुछ मिलता जुलता है। 'कठोपनिषद्' में ब्रह्म को शब्द रहित, स्पर्शरहित, रूपरहित, व्यय रहित, रसरहित और गंध रहित कहा गया है[2]। 'मुण्डकोपनिषद्' में उसे अदृश्य, अग्राह्य, अगोत्र, अवर्ण, चक्षुश्रोत्रादिहीन, अपाणिपाद आदि विशेषणों से युक्त माना गया है[3]। ये सगुण भक्तों ने भी ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप में आस्था व्यक्त की है। उन्हें ब्रह्म का अविगत, अकल, अनीह, अव्यक्त और अगोचर स्वरूप तो स्वीकार था किन्तु साधनागत सुविधा के कारण वे उसके सगुण रूप की उपासना अधिक उपादेय समझते थे। सूरदास ने इसी नीति की घोषणा करते हुए सगुण-लीला का गान किया था—

अविगत-गति कछु कहत न आवै।
ज्यौं गूँगे मीठे फल कौ रस अंतरगत ही भावै॥
परम स्वाद सबही सु निरंतर अमित तोष उपजावै।
मन बानी कौ अगम-अगोचर सो जानै जो पावै॥
रूप रेख गुन जाति जुगति बिनु निरालंब मन चकृत धावै।
सब बिधि अगम बिचारहिं तातैं सूर सगुन-पद गावै[4]॥

शब्दरूप

रामसनेही सम्प्रदाय में शब्दब्रह्म की साधना भी प्रचलित है। कहना न होगा कि भारत में शब्द ब्रह्म की उपासना बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है। वैदिक साहित्य में इसकी महिमा का विशद वर्णन हुआ है। योग शास्त्र का तो प्रतिपाद्य विषय ही शब्द ब्रह्म है। भर्तृहरि का शब्दाद्वैत भी प्रसिद्ध है

---

1 श्री रामस्नेहिअनुभववाणी पृ० ४१

2 अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं
तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत्।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं
निचाय्य तं मृत्युमुखात्प्रमुच्यते॥

—कठोपनिषद् १।३।१५

3 यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादम्।
नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः॥

—मुण्डकोपनिषद् १।१।६

4 सूरसागर (ना० प्र० स०) पृ० १

निर्गुणिया सन्तो ने भी शब्द ब्रह्म की उपासना की थी। कबीर अपने निरजन को शब्द रूप मानते हैं[१]। रामचरण ने भी शब्दस्वरूप ब्रह्म का वर्णन किया है—

शब्द सरूपी राम उपज विनशै क नाही।
सकल सृष्टि ता माहि सृष्टि मैं आप समाही॥
ज्यूं घट पूरण आकाश सर्व घट तामैं जाणो।
घट उपजै विनशाहि नम थिर नहचल मानो॥
ना कर्ता न अकर्ता नहि किस्न आधार।
रामचरण ता राम का निशिदिन नाम उचार[२]॥

नारायण दास ने सृष्टि की उत्पत्ति शब्द ब्रह्म से बतायी है[३]। दरिया साहब, हरिरामदास रामदास, दयालुदास आदि महात्माओ की वाणी मे भी शब्द-ब्रह्म का सुन्दर वर्णन हुआ है। अनहद[४] प्रकारान्तर से शब्द ब्रह्म का ही निरूपण है। सन्तो का सुरति 'शब्द योग' भी शब्द-ब्रह्म की साधना का दूसरा नाम है।

सगुणरूप

किसी अव्यक्त आलम्बन के प्रति चित्त में एकाग्रता की भावना स्थापित कर उसे अनुराग का विषय बनाना असम्भव न होने पर भी अत्यन्त दुरूह है। इसीलिए भक्तो ने उपासना के लिए ब्रह्म के सगुण रूप को अपनाया है। वैष्णव धर्म मे आराध्य का निर्गुण और सगुण दोनो रूप एक साथ स्वीकृत है। 'श्रीमद्भागवत' के कृष्ण अरूपी होकर भी रूपवान् हैं[५] ब्रह्म होकर भी भक्तो का उद्धार करने के निमित्त भिन्न भिन्न रूप धारण करते हैं[६]। 'पद्मपुराण' के कृष्ण ने शङ्कर जी से स्पष्ट शब्दों में कहा है कि हे शङ्कर जी! मेरे जिस अलौकिक रूप को आज आपने देखा है, वह विशुद्ध प्रेम की घन मूर्ति और सच्चिदानन्द स्वरूप है। उपनिषत्समुदाय मे मेरे इसी रूप को निराकार निर्गुण, सर्वव्यापी, निष्क्रिय और परात्पर ब्रह्म कहते हैं[७]। रामसनेही सम्प्रदाय के सन्तों मे भी

---

१ कबीर ग्रंथावली, पृ० १४४

२ अमृत उपदेश—छठा प्रकाश, छ० ४३

३ सार शब्द का सकल पसारा
—श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश, पृ० १७३

४ जह अनहद सबद है करत घोर।
—स० बा० स०, भाग २, पृ० १५५

५ श्रीमद्भागवत, ३/२४/३१

६ वही, ३/६/११

७ पद्म पुराण, पा० ८२/६६

अपने निगुण निराकार राम को नाना प्रकार के गुणा से मंडित कर उसमे कृतित्व का आरोप किया है। रामचरण के अनुसार सम्पूर्ण सृष्टि राम का ही प्रसार है। यह राम समस्त सृष्टि मे उसी प्रकार ओतप्रोत है, जिस प्रकार काठ में अग्नि, दूध मे घी, पुष्प में गध, तिल मे तेल और धरती मे पानी समाया हुआ है[१]। उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम, सभी दिशाओ में वही राम रम रहा है। कोई भी स्थान उससे खाली नही है। सप्त-द्वीप-नवखड मे, गङ्गा म, गया में, घर म, वन मे, यहाँ-वहाँ, भीतर बाहर, घट-घट, मठ-मठ, सभी स्थानो पर उसी का निवास है[२]। सन्त रामदास ने राम के दयालु और सर्वज्ञ रूप[३] का वर्णन करते हुए दृष्टि और मुष्टि के समस्त विषयो को राममय बताया है[४]। ऐसे अवसर पर गोस्वामी तुलसीदास की 'सियाराम मय सब जग जानी' जैसी पक्ति सहज ही मानस-पटल पर उभर आती है।

भावुक भक्त भावना के आवेश मे अपने उपास्य म श्रेष्ठतम मानव-गुणों का आरोप कर नैकट्य-लाभ के हेतु उससे अनेक प्रकार के कल्पित भावात्मक सम्बन्ध

---

१ राम सृष्टि आधार राम का सकल पसारा।
ओत प्रोत मिल रह्या राम कहुँ नाही न्यारा।
ज्यू काष्ट मे अनल खीर मे घृत मिलाया,
पुष्प गध तिल तेल धरणि मधि नीर समाया,
रामचरण भरिपूर है कहुँ खाली दीसे नाहिं,
राम विश्व में रमि रह्या विश्व राम के माहिं।
—अणभै वाणी, पृ० १२३

२ उत्तर पूरब राम राम ही दक्षिण माही
पश्चिम मध्यम राम राम बिन खाली नाहीं।
सप्त पुरी मे राम राम ही नव खंड मे
गङ्गा गयाज राम राम ही वन अरु घर म
यहाँ वहा इक राम राम ही है सब घट-घट
बाहिर भीतर राम राम ही अस्थल मठ-मठ॥
—अणभै वाणी पृ० १२३-२४

३ मोहि राम दया कर दर्श द्यो हो।
दर्शन द्यो मेरा मन की पूरो आश॥ टेक॥
तुम हो दयाल दया के सागर, निरधारा आधार।
जग जीवण जगदीश गुसाई, सब बिधि जाणनहार॥
—अणभै वाणी, पृ० ६६६

४ राम ही दृष्टि अरु मुष्ट सौ राम है।
राम ही देख अलेख प्यारा।
—श्री रामस्नेह धर्मप्रकाश पृ० २८६

स्थापित करने की चेष्टा करता है। वह अपने को आराध्य का दास भी मानता है, सखा भी बताता है पुत्र भी समझता है और प्रेमिका बनकर उसके वियोग में तीव्र अन्तर्वेदना का अनुभव करता है। रामसनेही सम्प्रदाय के सन्तों ने उपर्युक्त रागात्मक सम्बन्धों से राम की उपासना करते हुए, अपनी रचनाओं में तदनुकूल भाव व्यक्त किये हैं। उन्होंने अपने को राम का पुत्र कहकर अपनी समस्त असावधानियों को बालकोचित भोलेपन का परिणाम बताकर क्षमा याचना की है[१]। सेवक रूप में अहर्निश उनके कमलवत् चरणों की सेवा करने की आकांक्षा व्यक्त की है[२], और पत्नी रूप में प्रियतम राम को पूर्वजन्म के प्रणय की याद दिलाकर दर्शन देने की अभ्यर्थना भी की है[३]।

१ रामराय मैं हूं बालक तेरा पिता ज तुम हो मेरा। टेर।
मैं बालक मति भार रहे उर कहु नहिं जानूं काई।
दीन बन्धु दत्त हम शिशु मति आप बिन्द बिरदाई॥
सेवा साज न जानूं साहिब है मति हीन हमारी।
करि हो अबै मुझे माहिं करता सो हवै रजा तुम्हारी॥
मैं तो बाल बेनि सङ्ग राता का तो मन गृह मोहा।
का तो असन वार वस्त्रादिक ए उर सदा समोहा।
तुम हो पिता मुझे हरि नीका मैं मति भोर अजाना।
जानूं नहीं कछू हम काई तुम हो श्याम सुजाना॥
मैं मतिहीन किया अति औगुण तुम ना पिता दयाला।
कह हरिदेव पिता हरि सुनिज्यो बाल करो प्रतिपाला॥
—श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश पृ० १८३

२ निशिवासर हरि आगे नाचूं, चरण कमल की सेवा जांचूं।
स्वर्ग लोक का सुख नहिं जांचूं जनम पाय हरिदास कहाऊं॥
—वही, पृ० १८६

३ साजन सुख दीजै प्यारा हो।
राम रोम में रमि रहे पीरले म प्यारा हो।
अबला अति व्याकुल भई आपण पी दीजै हो।
साइयां तुझ बिन ना सरै मुज वेग मिलीजै हो॥
तन मन तेरा तू धणी मेरा नहिं सारा हो।
भली बुरी सब जीव को तुही पालन हारा हो।
मैं मध्यम तन हीनता तुम उत्तम यारा हो।
प्रीत पुरबली जान कै होवत नहिं न्यारा हो॥
आपा अन्तर मेटि के अपनी करि लीन्हीं हो।
जन हरिरामे दोस्ती आतम से कीन्ही हो॥
—श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश, पृ० १२१-२२

रामसनेही सम्प्रदाय के सन्त ब्रह्म निरूपण करते समय जब 'हरि रस'[१] 'रामजल'[२] और 'राम रसायण'[३] की बात करते हैं तो उसमें भी ब्रह्म के आनन्द रूप की ध्वनि आती है। राम का यह स्वरूप तैत्तिरीयोपनिषद् के 'रसो वै सः'[४] के मेल में निरूपित जान पड़ता है।

परात्पर रूप—भारतीय चिन्तकों ने सगुण-निर्गुण से परे और सत्, रज, तम से अतीत परात्पर ब्रह्म की कल्पना भी की है। ब्रह्म का यह रूप आलोच्य सम्प्रदाय के सन्तों को पूर्णतया मान्य है। स्वामी रामचरण ने स्पष्ट रूप से परात्पर ब्रह्म का वर्णन किया है[५]। उनकी 'कहा कोंगा है नहीं है तैसा ही दख' जैसी उक्ति ब्रह्म के परात्पर रूप की ओर संकेत करती है। हरिरामदास ने भी ब्रह्म के परात्पर रूप का निरूपण किया है[७]। दयालुदास अगम अगाध ब्रह्म को छोटा मोटा भारी हलका जैसे विशेषणों से सम्बोधित करना उचित न समझ कर मौन धारण कर लेते हैं[८]। उनके 'मून गहो मन माहि' जैसे कथन में ब्रह्म का सर्वातीत एवं परात्पर स्वरूप ध्वनित होता है।

१ रामनाम हरि रस पिया आवा गवण मिटाय।
—रामचरण की वाणी पृ० स० ६१

२ मन मगीवर राम जल अमृत अनप भरपूर।
रामनाम जो जन पिया सुन सागर मिल जीव॥
—वही पृ० स० ५८

\+ \+ \+

मान सरोवर राम जल राग द्वेष कुछ नाहि।
दरिया पीवे प्रीत कर सो तिरपत हो जाहि॥
—रामस्नेही सतवाणी पृ० ६७

३ जननी कबहू ना जणे जो पावे राम रसाण।
राम रसायण पीवता मिटे जीव की बाण॥
—रामरसायण—प्रथम प्रकरण छं० ८

४ तैत्तिरीयोपनिषद्, २,७

५ परापरै पूरण ब्रह्म सो बरत रह्या सब ठाहि।
—समता निवास—द्वितीय प्रकरण, छं० ३६

६ अणभै वाणी पृ० ४३

७ ब्रह्म निरंजन निर्गुण न्यारा
—श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश पृ० १३०

८ छोटा मोटा कैहै डरै भारी हलका नाहि।
रामा अगम अगाद है मून गहो मन माँहि॥
—दयालुदास की वाणी, पृ० स० ५६

एकेश्वरवाद —रामसनेही सम्प्रदाय के साहित्य में एक रहिमान[1] और एक रहीम[2] की भी चर्चा हुई है। ऐसे स्थलों को कोई मुसलमानों की एकेश्वर भावना से अनुप्राणित मान सकता है। स्मरणीय है कि कबीर ने भी 'एक राम' 'एक रहिमान' का उल्लेख किया है किन्तु वे 'मुसलमान कहै एक खुदाई कबीर को स्वामी घटि-घटि रह्यो समाई'[3] कहकर एकेश्वरवाद का प्रत्याख्यान भी करते हैं।

वास्तव में ये सन्त भक्त होने के साथ ही योगी, ज्ञानी, एवं रहस्यवादी भी थे। वे साधु थे इसलिए सार का ग्रहण करके थोथा उड़ा देते थे। वे पक्षापक्षी से ऊपर उठकर सत्यान्वेषण में रत थे। वे पूर्वाग्रह मुक्त थे। उन्हें जो कुछ उचित लगा, बिना किसी सङ्कोच के स्वीकार कर लिया। अतः उनके ब्रह्म निरूपण में अनेक रूपता का होना स्वाभाविक ही है।

जीव

रामसनेही सम्प्रदाय के सन्तों ने जीव और ब्रह्म को तत्त्वतः एक रूप माना है। ये जीव और ब्रह्म में अंशांशि सम्बन्ध मानते हैं। साधारणतया यह सिद्धान्त अद्वैत द्वैताद्वैत और विशिष्टाद्वैत मतावलम्बियों को भी मान्य है। फिर भी तीनों की तत्सम्बन्धी मान्यताओं में कुछ अन्तर है।' द्वैताद्वैतवादियों के अनुसार ब्रह्म अखंड और अपने स्वरूप में पूर्ण है। साथ ही उसमें अनेक शक्तियाँ हैं। ये शक्तियाँ ही उसके अंश हैं। प्रत्येक शक्ति के दूसरे से भिन्न होने के बावजूद ब्रह्म से सबका तादात्म्य है। प्रत्येक शक्ति के दो रूप हैं एक के द्वारा ब्रह्म से उसका एकात्म्य रहता है और दूसरे के माध्यम से उसकी नाम रूप में अभिव्यक्ति होती है। इस प्रकार परम ब्रह्म इन शक्तियों से समन्वित होकर अनन्त नाम रूपों में व्यक्त हो रहा है। जिस शक्ति से इन नाम रूपों का एक साथ भान होता है उसका ईश्वर और जो शक्ति इनको एक-एक करके जानती है, उसे जीव कहते हैं विशिष्टाद्वैतवादी जीव को ब्रह्म का शरीर मानते हैं। जीव और ब्रह्म दोनों चेतन हैं। ब्रह्म विभु है, जीव अणु है। ब्रह्म और जीव में सजातीय और विजातीय भेद नहीं है, स्वगत भेद है। ब्रह्म पूर्ण और जीव खंडित है। अद्वैतवादियों का मत इन दोनों से भिन्न है। वेदान्त सूत्र में कहा गया है कि जीव ब्रह्म का अंश होते हुए भी चिन्मय है। शङ्कराचार्य ने इनके सम्बन्ध को अग्नि और स्फुलिंग के दृष्टांत से व्यक्त किया है।

---

१ सिद्ध ब्रह्मा सब ही चले जावे वेदपुराण।
रामदास साह सदा रहै एक रहमान॥

—रामदास की वाणी, प० स० २३

२ सकल जिहान में रमि रह्या मुल्ला एक रहीम।
बांग देत सो कूण है, बहरा नांहि करीम॥

—अणभै वाणी, पृ० ६४

३ कबीर ग्रन्थावली, पृ० २००, पद, ३३०

उनका मत है कि जिस प्रकार स्फुलिंग अग्नि से निकलकर उसी में समाविष्ट हो जाता है, उसी प्रकार आत्मा भी ब्रह्म से निकल कर उसी में समाविष्ट हो जाती है। वेदान्त-सूत्र में अंशांशिभाव को आभास द्वारा या प्रतिबिम्ब के सहारे सिद्ध किया गया है[१]।

इन मतों के प्रकाश में रामसनेही सम्प्रदाय के सन्तों की जीव ब्रह्म सम्बन्धी धारणा पर विचार करने से यह प्रतीत होता है, कि इस सम्प्रदाय की विचारधारा पर अद्वैतवाद का प्रभाव अधिक है। रामचरण, रामदास और दयालुदास ने जीव और ब्रह्म का संबंध बताते हुए प्रतिबिम्बवाद[२] जल और बुदबुदा,[३] पाला और पानी,[४], नमक और जल[५], नीर और तरंग[६] आदि के दृष्टांतों से अद्वैतवादी अंशांशि भाव की पुष्टि की है। इसीलिए हरिरामदास ने आत्म तत्त्व का वर्णन ब्रह्म निरूपण के ढङ्ग पर किया है। आत्मा का वर्णन करते हुए वे कहते हैं —

१ देखिए कबीर की विचारधारा, पृ० २०२

२ (क) जल सूँ भर कुंभ अनेक धरया
रवि को प्रतिबिम्ब पड्यो सब माही
पवन लग्या से ही नीर हले
कहूँ सूरज तेज हले चले नाही
जैसे ही ब्रह्म आनन्द लह्यो
जिन देह इन्द्री गुण व्यापै न काही
देह अभ्यासी कूँ सुक्ख नही
फिर मार भया बिन ना दरमाही
— अणभै वाणी, पृ० ८७

(ख) जीव ब्रह्म का अंश है, ज्यों रवि का प्रतिबिम्ब होय।
घट परदा दूरा भया, ब्रह्म जीव नहिं दोय॥
—वही, पृ० १०७

३ ज्यों जल केरा बुम्बुदा जल सूँ न्यारा नाहि।
—वही, पृ० १०७

४ पाला गल पाणी हुआ, जीव पलट हुआ ब्रह्म।
—रामदास की वाणी, प० स० ८२

५ (क) जल सेती पैदा भया नाम धरया तब लोन।
जल से मिल जल ही भया लोन कहै अब कोन॥
— विश्वास बोध चतुर्थ प्रकरण, छ० २

(ख) लूँण मिले गल पाणियां पाणी पिंड जल माय।
रामा एकै हुँ गया, न्यारा कह्या न जाय॥
—दयालुदास की वाणी, प० स० २२६

६ (क) एक हुता अनेक हुय, अंत समाणा ऐक।
रामा नीर तरंग भिन, सूर किरन नही रेख॥
—वही, प० स० २२६

(ख) रामचरण दरियाव की लहर्‍या दरिया माहिं।
—अणभै वाणी, पृ० १०७

दारक म पावक बसै यू आतम घट माँहि ।
हरिया पय में घृत है, बिन मथिया कछु नाँहि ॥[1]

इन पक्तियो म अभिव्यक्त विचारो की तुलना निम्नलिखित छद मे वर्णित ब्रह्म क स्वरूप से की जा सकती है —

राम सृष्टि आधार राम का सकल पसारा।
ओत प्रोत मिल रह्या राम कहूँ नाही न्यारा ॥
ज्यो काष्ठ म अगन क्षीर मे घृत मिलाया।
पुष्पगध, तिल तेल धरणि मधि नीर समाया ॥
रामचरण मरिपूर है कहू खाली दीसै नाँहि।
राम विश्व मे रमि रह्या विश्व राम के माँहि ॥[2]

उपर्युक्त दोनो उदाहरणो को परस्पर मिलाने से आत्मा और ब्रह्म की स्वरूपगत एकता सिद्ध हो जाती है। दयालुदास कहते हैं कि आत्मा न हिन्दू है न मुसलमान है। उसका स्वरूप षडदर्शनो के आत्मनिरूपण से भी भिन्न है। उसके परिज्ञान का एक मात्र उपाय परम तत्त्व की पहचान है।[3]

मोक्ष

भारतीय मनीषियों ने मुक्ति की गणना चार पुरुषार्थों म करते हुए इसे नाना प्रकार से व्याख्यापित किया है। चार्वाक दर्शन मे देह के पतन के साथ अनेक दु खों की आत्यतिक निवृत्ति सिद्ध हो जाती है। अत वे मरण को ही अपवर्ग मानते है-मरणमेवा-पवर्ग । जैनदर्शन मे समग्र कर्मों के क्षय को मोक्ष नाम से अभिहित किया गया है-कृत्स्न-कर्मक्षयो मोक्ष । बौद्धो ने मुक्ति के स्थान पर निर्वाण शब्द का प्रयोग करके उस स्थिति म दु ख के अत्यताभाव की चर्चा की है। बौद्धों के वैभाषिक सम्प्रदाय म निर्वाण के दो प्रकार बताये गये हैं सोपाधिशेष और निरुपाधिशेष। सोपाधिशेष निर्वाण अनास्रव जीवितावस्था का नाम है और निरुपाधिशेष जीव की अनास्रव तथा उपाधिहीन उस अवस्था को कहते हैं जो शरीरपात होने के बाद आती है। सोपाधिशेष और निरुपा-धिशेष निर्वाण म वही भेद है जो वेदान्त की जीवनमुक्ति और विदेहमुक्ति म।

वैदिक षडदर्शन मे नैयायिको के अनुसार दु:ख से अत्यन्त विमोक्ष ही अपवर्ग है—तदत्यन्त विमोक्षोऽपवर्ग । अत्यन्त विमोक्ष का तात्पर्य गृहीत जन्म के नाश और

---

१ श्री रामस्नेह धर्मप्रकाश पृ० १३४
२ अणभै वाणी, पृ० १२३
३ रामा जीव हिन्दू नहीं जीव नहीं मुसलमान।
षट दरसण नहि आतमा परमातम पहैचान ॥
—दयालुदास की वाणी, प० स० ३०८

भविष्य जन्म के न होने से है। वैशेषिक दर्शन के प्रतिपादक महर्षि कणाद के अनुसार संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण कर्मों का अन्त हो जाने पर मनुष्य जन्म-मरण की परम्परा से मुक्त हो जाता है। इसी को वे मुक्ति मानते हैं। सांख्य सूत्र के अनुसार प्रकृति-पुरुष का परस्पर वियोग होना ही अपवर्ग है।[१] योगदर्शन में द्रष्टा का अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाना ही कैवल्य कहा गया है।[२] मीमांसाकार ने जगत् के साथ आत्मा के सम्बन्ध के विनाश का नाम मोक्ष कहा है—प्रपंच सम्बन्ध विलयो मोक्षः।[३] अद्वैत वेदान्तदर्शन के अनुसार मुक्ति की दशा नितान्त आनन्दमयी दशा है। इस दशा में मुक्त साधक प्रपंचों से मुक्त होकर अपनी एकता सच्चिदानन्द ब्रह्म से स्थापित करता है।[४] मुक्ति, कैवल्य, मोक्ष, निर्वाण, निःश्रेयस आदि की अवधारणा पर विहगम दृष्टि डाल लेने के उपरान्त हम रामसनेही सन्तों की मुक्तिसम्बन्धी मान्यता पर विचार करेंगे।

रामसनेही सम्प्रदाय का मुक्ति सम्बन्धी विचार अद्वैत वेदान्त से विशेष रूप से प्रभावित है। अद्वैतवादियों की भाँति इस सम्प्रदाय के सन्तों की मान्यता है कि ब्रह्म का अंश होने के कारण आत्मा का स्वरूप ब्रह्म से अभिन्न है, किन्तु माया के आवरण से आच्छन्न होने के कारण वह अपने को पहचान नहीं पाता। अपनी जाति से बिछुड़ कर पंचतत्त्व विनिर्मित शरीर का आश्रय लेकर देहात्मभाव से इधर-उधर भटकता रहता है।[५] उसकी यह अज्ञानजन्य स्थिति कस्तूरी मृग की सी हो जाती है जो कि अपनी ही नाभि में स्थित कस्तूरी के रहस्य को न जानने के कारण इधर उधर ढूँढता फिरता है।[६] रामचरण ने विभ्रान्ति में पड़े हुए जीव की समानता शीश महल में अपने ही प्रतिबिम्ब को देख कर चकित और विभ्रान्त श्वान से दिखाई है —

१ द्रष्टव्य भारतीय दर्शन, पृ० १३४, १७१ २०१-२०५, २७६-२७७, ३१७ और ३५६

२ पातंजलि योगदर्शन, ४, ३४

३ भारतीय दर्शन, पृ० ४२१

४ भारतीय दर्शन, पृ० ४७८–७६

५ जीव जात से बीछुड़ा धर पंच तत का भेष।
दरिया निज घर आइया पाया ब्रह्म अलेख ॥
—रामस्नेही सन्तवाणी, पृ० ६२

६ (क) कस्तूरी कुंडल बसै, मृग न पावै भेद।
रामचरण घट राम है, भूला हेरै वेद ॥
—अणभै वाणी, पृ० ४७

(ख) कस्तूरी कुंडल भरी मेली उड गाव।
दरिया छानी क्यों रहे सास भरे सब गाव ॥
—अनुभव गिरा, पृ० १५५

(ग) किस्तूरिया मृग जगत है, भ्रमत दसू दिस ध्याय।
हरि वीरज नाभी बसै ताकी गम न काय ॥
—दयाबाई की वाणी, पृ० सं० २६१

काच के मन्दिर स्वान घुसै मधि
आप की भाई दिसै बहुतेरा।
भूकत भजी गिराय गई तेहि,
भ्रम का मास न हाय निवे रा॥
भूलि गया अपना निज रूप कू,
होय विभ्रात करे चहु फेरा।
रामचरण यू रुच जगत का,
आप बणाय ले आप कू घेरा [1]॥

माया के फंदे में पड़ा हुआ जीव जब अपने शुद्ध चेतन स्वरूप को पहचान लेता है, तो वह ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। ऐसी स्थिति में ध्येय ध्याता और ज्ञेय ज्ञाता का भेद समाप्त हो जाता है।[2] फिर जीव और सीव में किसी प्रकार का अंतर नहीं रह जाता—जीवात्म तत्त्व परमात्म तत्त्व में ठीक उसी प्रकार मिल जाता है जैसे जल की बूद सरिता में मिलकर स्वय सरिता बन जाता है और उसे किसी भी प्रकार पृथक् नहीं किया जा सकता—

तत्त्व में लीन जब मौन भागी मवै,
फेर नहिं आय के काय धारै
जानिए बूंद दरियाव में मिल गई
होय दरियाव व्यापीक मारे।[3]

इस अद्वैतावस्था की प्राप्ति ही रामसनेही सन्तो की साधना का परम लक्ष्य है।

मुक्तावस्था

अद्वैत वेदान्त में मुक्ति की दो अवस्थाएं मानी जाती हैं—पहली जीवनमुक्ति और दूसरी विदेहमुक्ति। हमारे अध्ययन युग के सन्तो ने मुक्ति की इन दोनों अवस्थाओं का वर्णन किया है।

जीवनमुक्ति

इसी जीवन में दुःखो से मुक्ति पा जाने वाला मनुष्य जीवनमुक्त कहलाता है। ऐसा मुक्त पुरुष ससार के प्रपचो से विरत रहता है। न मोह उसे सताता है, न शोक उसे अभिभूत करता है। ससार उसके लिए अवश्य चलता है किन्तु वह उसके दुःखो से स्पृष्ट नहीं होता। रामसनेही सम्प्रदाय के सत जीवनमुक्ति में पूर्ण विश्वास रखते हैं।

---

१ अणभै वाणी पृ० ६८
२ ध्येय ध्याता नहिं ध्यान तहा धे ध्याता नहिं ध्यान।
परमातम परमाण नहिं कहिए कहा विधान॥
—दयालुदास की वाणी, प० स० २५
३ विश्वास बोध—तृतीय प्रकरण, छ० ७७

साम्प्रदायिक साहित्य में उसे जीवनमुक्त, मरजीवा या जीवन मृतक कहा गया है। महात्मा रामचरण जीवनमुक्त पुरुष का लक्षण बताते हुए कहते हैं कि वह अहंभाव से मुक्त होता है। उसमें किसी के प्रति ममता का भाव भी नहीं होता। वह शरीर सुख से सर्वथा उदासीन रहता है, उसे जो कुछ भोजन मिल जाता है, उसी पर सन्तोष करके जल में कमल की भाँति जगत् से निर्लिप्त रहता है। वह वासनाओं से पृथक रहकर निष्काम भाव से राम का भजन किया करता है।[१] जिस प्रकार कमल पानी में पैदा होता है, उसी में रहता है, फिर भी उससे ऊपर रहता है उसी प्रकार जीवन्मुक्त पुरुष संसार में रहते हुए उससे सर्वथा असम्पृक्त रहता है[२]। वस्तुतः वह सर्वतोभावेन निष्काम होता है[३]। हरिरामदास ने आत्मबोध और परम सन्तोष को जीवनमुक्त पुरुष का एकमात्र लक्षण बताया है।[४]

विदेहमुक्ति

जीवनमुक्त साधक के संचित कर्म का नाश हो जाता है। संचीयमान कर्म से भी वह छुटकारा पा जाता है किन्तु प्रारब्ध कर्म का नाश तो भोग से ही हो सकता है। जब भोग करते करते प्रारब्ध कर्म समाप्त हो जाता है तो साधक सब प्रकार के कर्मों से छुटकारा पा जाता है और इस दशा में जीव के स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रकार के शरीर का अन्त हो जाता है। मुक्ति की इसी अवस्था को विदेहमुक्ति कहते हैं। महात्मा रामचरण विरचित निम्नलिखित पंक्तियों में विदेहमुक्ति का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया गया है —

---

१ अहं ममत बांधे नहीं अरु तन सुख साधे नाहिं।
प्रसाद पाय अलिप्त रहै, ज्यूं कमला जल माहिं॥
ज्यूं कमला जल माहिं शोक सता से न्यारा
शत्रु मित्र सम गिणै ज्ञान लख लिया ज धारा।
राम कहै भ्रमना दहै यूं ग्रह भक्ति सधि पाहि
अहं ममत बांधे नहीं, अरु तन सुख साधे नाहिं
राम भजै तजि कामना, करि मैली चितवनि हाणि
रामचरण गत वासना, सो जीवनमुक्ता जाणि॥
—समता निवास—प्रथम प्रकरण, छं० २८-२६

२ अणभैवाणी पृ० ८६१

३ राम भजै तजि कामना करि मैली चितवन हाणि।
रामचरण गत वासना सो जीवनमुक्ता जाणि॥
—वही, पृष्ठ ८६१

४ आतम का सुख जाणिया, भया परम सन्तोष।
जन हरिया जब जाणिये, याही जीवन मोष॥
—श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश, पृ० ६२

आपा मेटि आप मैं मिलिया आप रूप ह्वै रहिया।
जनम मरे न जरा सतावै अदस अमर पद लहिया॥
वा पद की तारीफ न आवै कहि कहि बहा बखाना।
गुणातीत पचरंग न वातैं अग सग नहिं जाना॥
अग न मग भग नहिं भिनता सबग पूरण स्वामी।
निर्विकार निर्लेप निरजन, परिपूरण घणनामी॥
स्थेट न मोट न छाना परगट घट घट अघट समाया।
अन्दर बाहर एक समाना जहा न व्यापै माया॥
माया पार ब्रह्म अविनासी सत सुख रासी राया।
रमता राम धाम घर त्याग भजन करे कर पाया॥
सो अब लीन सदा ता पाही कबहूँ न घरहै काया।
रामचरण बलिहारी गुरु की जिन ये भेद बताया॥
म या भेद खेद सब भागी जामो अणभै असी।
मैं भ्रम गया रहिया था मोही कहिए सो गति कैसी॥
अकथ कहाणी सतगुरु जी की कीन्ही महर निधाना।
रामचरण नित चरणा सरणैं पाया आनम नाना[1]॥

माया

सामान्य रूप से 'माया' शब्द का प्रयोग धोखा कपट इन्द्रजाल जादू आदि के अर्थ मे किया जाता है किन्तु भारत की दार्शनिक विचारधारा में इसे परमेश्वर की प्रपच कारणभूता अव्यक्त बीजशक्ति, प्रकृति और अविद्या के रूप मे जाना जाता है। इस शब्द का प्रयोग वैदिक काल से लेकर अद्यावधि कई अर्थों मे होता आया है। 'ऋग्वेद' में यह शब्द वेश या रूप बदलने के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है[2]। उपनिषदों मे इसे प्रकृति[3] और नाम[4] रूप मे ग्रहण किया गया है। बौद्धयुग तक आते आते माया का वैदिक

---

१ राम रसायण बोध पाचवा प्रकरण, छ० ६४

२ इन्द्रो मायाभि पुरु रूप ईयते॥

—ऋग्वेद ६।४७।१८

३ मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।

—श्वेताश्वतरोपनिषद् ४।१०

४ यथानद्य स्यन्दमाना समुद्रे—

ऽस्तं गच्छन्ति नाम रूपे विहाय
तथा विद्वान्नाम रूपाद्विमुक्त
परात्परपुरुष मुपैतिदिव्यम्॥

—मुण्डकोपनिषद् ३।२।८

कालीन स्वरूप स्वप्नवाद के रूप में परिवर्तित हो गया, और यह मिथ्या प्रवृत्ति या मृग-मरीचिका का बाधक समझा जाने लगा। गौड़पादाचार्य का मायावाद स्वप्नवाद ही है[1]। मायावाद का इस प्रकार ह्रास देखकर स्वामी शंकराचार्य ने इसके पुनरुद्धार का बीड़ा उठाया। उन्होंने बौद्धों के स्वप्नवाद का खंडन करते हुए माया की शास्त्रीय ढंग से पुनः प्रतिष्ठा की। उनके अनुसार माया न सत् है न असत्। वह दोनों से भिन्न अनिर्वचनीय तत्व है। सत् उसे इसलिए नहीं कहा जा सकता कि वह ब्रह्म के समान त्रिकाल-बाधा से मुक्त नहीं है और प्रत्यक्ष प्रतीयमान होने के कारण उसे असत् भी नहीं कहा जा सकता। उन्होंने माया की दो शक्तियों 'आवरण' और 'विक्षेप'-की कल्पना की। आवरण शक्ति ब्रह्म के शुद्ध स्वरूप को आच्छादित कर लेती है और विक्षेप शक्ति इस प्रपंचात्मक जगत् की उत्पत्ति करती है। कुछ वेदान्ती आचार्य प्रकृति को दो प्रकार की मानते हैं —'विशुद्ध सत्त्वप्रधान और अविशुद्ध सत्त्व प्रधान'। पहली को माया कहते हैं, दूसरी को अविद्या। पहली ईश्वर की उपाधि है, दूसरी जीव की[2]। इसी को विद्या-माया और अविद्या माया भी कहा जाता है।

सांख्यवादी माया को प्रकृति कहते हैं। यह माया या प्रकृति त्रिगुणात्मिका और प्रसवधर्मिणी है। स्वयं अव्यक्त होते हुए भी यह व्यक्त महत् तत्व की जननी है। इस महत्तत्व से अहंकार का प्रादुर्भाव होता है। अहंकार से सात्विक, सेन्द्रिय और निरीन्द्रिय सृष्टियाँ होती हैं। निरिन्द्रिय सृष्टि से पंचतन्मात्रायें तथा पंच महाभूत होते हैं। संक्षेप में सांख्य का सृष्टि-विकास क्रम यही है[3]।

उत्तरी भारत में सन्त-मत के प्रवर्तक कबीर ने माया को निरंजन की शक्ति माना है। ब्रह्माण्ड में जो माया है पिंड में वही कुण्डलिनी। वस्तुतः कुंडलिनी का ही नाम माया है। कबीर ने इसके दो रूप बताये हैं एक वह जो राम से मिलाता है और दूसरा वह जो नरक ले जाता है। कबीर माया का वर्णन करते हुए जब 'एक मिलावै राम सो एक नरक ले जाय' जैसी बात कहते हैं तब उनका मन्तव्य वस्तुतः विद्या और अविद्या माया से जान पड़ता है। उन्होंने अविद्या माया का वर्णन अधिक किया है। उन्होंने इसे नागिन, रमैया की दुलहिनि, ठगिनिया आदि नामों से अभिहित किया है। माया नागिन की फुफकार ही प्रणव है। इसी तरह ब्रह्माण्ड में जो वस्तु निरंजन है, पिंड में वही मन है। इसी को नाग कहते हैं। इसी नाग और नागिन ने मिलकर विश्व का सारा प्रपंच खड़ा किया है। नागिन की जहरीली फुफकार प्रणव की ही उपासना

---

१ कबीर की विचारधारा, पृ० २३५

२ कबीर-द्विवेदी, पृ० १०७

३ कबीर की विचार धारा, पृ० २३९-४०

मे दुनिया भटक रही है। इस वशीभूत करने वाला ही जगत् विजयी होता है[1]। निरजन से कबीर का तात्पर्य परब्रह्म से था। अत निरजन या परब्रह्म की शक्ति के रूप मे कबीर ने माया का जो निरूपण किया है उससे प्रकट होता है कि वह बडी प्रबला है। कबीर ने माया के ध्वसात्मक रूप का बडा ही विशद चित्रण किया है। उनके अनुसार रघुनाथ की माया शिकार खेलने निकली है और मुनि पीर जैन जोगी जगम ब्राह्मण और सन्यासी सबको साम्प्रदायिकता के जाल मे फसा कर मार रही है। केवल राम की शरण मे जाने वाला ही इसके चगुल से बच सकता है।[2]

वह मोहिनी रूप मे नयनो के तीखे तीर चलाती रहती है जिनसे भाग कर भी कोई बच नही पाता[3]। एक स्थान पर उन्होने माया की रुई लपेटी आग से तुलना की है जो क्षण मात्र मे सर्वनाश कर देती है[4]। कबीर की भाति अन्य सन्तो ने भी माया के विध्वसात्मक रूप को मजारी मगर, मिसरी की छुरी, 'डाकिणी, सर्पिणी 'पापिनी कामिनी, भामिनी, 'नकटी आदि नामो से सम्बोधित किया है।

रामसनेही सम्प्रदाय के सन्तो की माया विषयक अवधारणा पर साख्य, वेदान्त, और उनके पूर्ववर्ती निगुणिया सन्तो का पूरा प्रभाव पडा है। रामचरण और दयालुराम

---

१ द्रष्टव्य कबीर, डा० द्विवेदी, पृ० १०८–१०६

२ तू माया रघुनाथ की खेलण चली अहेडै
चतुर चिकोरे चुणि चुणि मारे कोइ न छोडया नेडै
मुनिवर पीर दिगम्बर मारे जतन करता जोगी
जगल महि के जगम मारे तू र फिरै बलवन्ती
वेद पढता ब्राह्मण मारा सेवा करता स्वामी
अरथ करता मिसर पछाडया तू र फिरै मैमती
साषित कै तू हरता करता हरि भगतन की चेरी
दास कबीर राम कै सरनै ज्यू लागी त्यू तारी।
—क० ग्र०, पृ० १५१ पद १८७

३ कबिरा माया मोहिनी माहै जाण सुजाण।
भागा ही छूटै नही भरि भरि मारै बाण।।
—क० ग्र०, पृ० ३३

४ माया के झक जग डरै, कनक कामिनी लागि।
कहै कबीर कस बाचिहै रूई लपटी आग ॥
—स० बा० स०, भाग १, पृ० ५७

साहब ने भी माया के पाप और पुण्य दो रूपों का उल्लेख करके प्रकारान्तर से विद्या माया और अविद्या माया की ओर संकेत किया है[1]।

वेदान्तवादियों ने माया की स्वतन्त्र सत्ता न मानकर परमात्मा के आधीन माना है। रामचरण और दयालुदास भी माया को राम की दासी [2] और इच्छा [3] कहकर उसे परमात्मा की वशवर्तिनी मानते हैं।

रामसनेही सम्प्रदाय की माया का धर्म और स्वभाव साम्यवादियों की प्रकृति से बहुत मिलता-जुलता है। सांख्य की प्रकृति के समान वह त्रिगुणात्मिका[4] तथा सृष्टि की उत्पत्ति का कारण है।[5] त्रिगुणात्मिका प्रकृति की प्रमुख विशेषता उसकी परिवर्तनशीलता है। शंकराचार्य ने भी माया को परिवर्तनशीला माना है। दयालुदास छाया से तुलना करके माया के इसी गुण की ओर संकेत करते हैं—

ब्रह्म विरिछ ज्यूं जानिए छाया माया देख।
छाया घट वढ होत [illegible] रामा तरुवर एक[6]॥

संसार के सब जीवों को आवागमन के इन्द्रजाल में फंसाए रहने के कारण माया बन्धनरूपा भी है। रामसनेही सम्प्रदाय के सन्तों ने माया का वर्णन बन्धनरूप में किया है। हरिरामदास के अनुसार जीव माया के घेरे में निवास करता है।[7] दयालुदास ने माया को मकड़ी के जाले के सदृश माना है।[8] रामचरण ने माया और जीव का साम्य कमल

---

१ पाप पुण्य दोय रूप है उनही की माया।
—अनुभव गिरा पृ० १६६

२ माया दासी ब्रह्म की पासि मोहिनी फन्द।
ब्रह्म ज्ञान बिसराय के भरमावै दुख धंध॥
—विश्वास बोध-नवम प्रकरण, छ० १८

३ रामा इच्छा राम की माया परबल होय।
—दयालुदास की वाणी प० स० ११६

४ तीन गुणा की माया त्याग पावै पद निरवान।
—पदबत्तीसी, छ० ३

५ सब माया का पैदास है, एक ब्रह्म ना पैद।
ब्रह्मा विष्णु महेश लग सब माया कीया वैद॥
—अणभै वाणी, पृ० ५५

६ दयालुदास की वाणी, प० स० ११२

७ आस पास माया को घेरो बिच है जिव का वासा।
—श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश, पृ० १५०

८ माया मकड़ी जाल में काल रिता जिव होय।
—दयालुदास की वाणी, प० स० ११६

और रसलोलुप मधुप से स्थापित किया है मोहाध होकर फूल की पखड़ियों में आबद्ध हो जाता है उसी प्रकार विषय-वासना के लोभी प्राणी भी चौरासी लाख योनियों के चक्र में फँस जाते हैं—

माया कमल स्वरूप जीव मधुकर सब भूले।
विषिया रस मोहीन होय निज घर कूं भूले ॥
पहर च्यार गये बीति प्रीति सूं नही अघाने ।
उडि न सके मति हीण माहि भरि खरे खिसाने ॥
रामचरण गुरु ज्ञान बिन नर तन खावै हार।
चौरासी की जलणि में दुख पावै जग च्यार ॥[1]

साम्प्रदायिक साहित्य में माया के मोहिनी अथवा विश्वाकर्षक रूप का भी पर्याप्त उल्लेख मिलता है। उसका आकर्षण जीव के लिए ठीक वैसा ही है जैसा कमल का भ्रमर के लिए [2], कामिनी का कामी के लिए [3] और दीपक का पतंग के लिए [4]। मोहिनी माया भक्त को भगवान् की भक्ति नहीं करने देती[5]। उसी की प्रेरणा से जीव ब्रह्म-ज्ञान को विस्मृत कर दुखमूलक धंधों में प्रवृत्त होता है [6]। साधना में बाधा प्रस्तुत करने वाला माया का यह स्वरूप सूफियों के शैतान से बहुत कुछ मिलता जुलता है, किन्तु है वह शुद्ध भारतीय।

---

१ अणभैवाणी पृ० १२६

२ माया मुकुल स्वरूप जीव मधुकर सब भूल।
विषिया रस मोहीत होय निज घरकूं भूल ॥
—अणभै वाणी, पृ० १२६

३ माया कामण रूप घर बदन मोहिणी चन्द।
रामा जीव चकोर चष मोहे कामी अंध ॥
—दयालुदास की वाणी, प० सं० ११०

४ माया दीपक जलत है ईड कोस घर माय।
मोह रूप हुय पड गया जीव पतंगा जाय ॥
—वही, प० सं० ११६

५ माया मोहे जगत सब भक्त किया चकचूर।
—विश्वासबोध—नवम प्रकरण, छ० ४१

६ ब्रह्म ज्ञान बिसराय के पसरावे दुख धंध।
—वही, छं० १८

काल

रामसनेही सम्प्रदाय के सन्तों की काल विषयक मान्यता परवर्ती सन्त कवियों की एतद्विषयक अवधारणा से अभिन्न है।[1] साम्प्रदायिक साहित्य में काल के बड़े ही प्रचण्ड और बलशाली रूप का वर्णन किया गया है। रामचरण के अनुसार रसातल, भूतल, स्वर्ग और ब्रह्मलोक में काल के समान शक्तिशाली और कोई नहीं है। सुर असुर, नर, नाग कोई भी अपने को इसके कराल गाल मे जाने से बचा नहीं पाता। जब यह अचानक जीव को पकड़ लेता है, तो किसी का कोई वश नहीं चलता। बाहर भीतर, देश-विदेश, सर्दी-गर्मी, बरसात, खाते-पीते, सोते-जागते, बोलते चालते, जब-जहाँ और जैसी भी स्थिति में यह पाता है दबाकर मार डालता है। इसकी ठकुराई इतनी बड़ी है कि इसके यहाँ ऊँच-नीचादि का कोई विचार नहीं होता।[2]वह सम्पूर्ण सृष्टि पर ममता और मोह का जाल फैलाये हुये है। जीव राम को विस्मरण करके उसी मे उलझा हुआ है।[3] रामचरण के अनुसार काल सर्वव्यापी है। सम्पूर्ण सृष्टि में उसकी पहुँच है। कोई भी स्थान उससे मुक्त नहीं है।[4] काल के विनाशकारी रूप का वर्णन करते हुये वे कहते हैं —

---

१ कबीर पंथ के साम्प्रदायिक ग्रंथों में काल और निरंजन का स्वरूपतः एक बताया गया है। निरंजन को परम पुरुष के पाँच पुत्रों में से एक कहा गया है जिसने माया से प्रेम किया। दोनों के संयोग से ब्रह्मा, विष्णु और महेश—त्रिदेव उत्पन्न हुये। त्रिदेवों के माध्यम से निरंजन जगत् के ऊपर शासन करता है। इसी निरंजन को परवर्ती सन्तों ने काल पुरुष कहा है। साथ ही इसे बड़ा छलिया बताया है।

—द्रष्टव्य, शिवनारायणी सम्प्रदाय और उसका साहित्य, पृ० १६६

२ काल से जोर नहीं कोइ सम्रथ, जोर बचे नहिं तीन के माही।
ना कोई बीर रसातल भूतल स्वर्गस्थान ब्रह्मपुर माही।
आसुर रूप नरां और नरपति, सुरपति आदि, सुरा अवगाही॥
रामचरण मरणा सबी सिर, होय शरणागति राम कूं ज्याही।
काल अचानक आय गहै तब काहू को जोर लगै नहिं वाही।
बाहिर भीतर देश विदेश ही शीत उष्ण वर्षा ऋतु माही।
खावत पीवत रैन बिहान बोलत चालत आन दबाही॥

—अणभै विलास—१६ वां प्रकरण, छंद ३६

३ काल पसारी सृष्टि पर मोह ममत की जाल।
तामें उलझ्या जीव बुधि बिसर राम रिछपाल॥

—समता निवास-नवम प्रकरण, छं० ३६

४ रामचरण कहाँ जाइये कोइ निर्भय नाहीं ठौर।
वहाँ जाय जहाँ देखिये सबै काल की दौर॥

—वही, छं० ४६

काल कुदाल लिया कर मैं निसवासर ही गढ ढावत है ।
दोई स्वास उस्वास पडे दहवा, वसि ताहो मैं क्यूं सुख पावत है ।
छिन माहि गिराय करै चकचूरण मूसे मज री ज्यूं व्यावत है ।
कहै रामचरण मिथ्या मिट जीवण राम सगो बिसरावत है ।[1]

दयालुदास ने काल का नदी और जन्म-मरण को भवर बताते हुये ससार को उसकी धारा म बसा हुआ माना है ।[2] उनके अनुसार वह घट-घट व्यापी है ।[3] वह इतना बलवान है कि उसको देखत ही सब लोग निर्बल हो जाते हैं ।[4] वह जीव को उसी प्रकार मार ले जाता है, जिस प्रकार गरुण सर्प को और बाज तीतर का[5] । दरिया साहब के शिष्य पूरणदास ने आकाश, पाताल और मर्त्यलोकों को काल के फदे मे पडकर भटकता हुआ बताया है[6] ।

इस प्रकार हम देखते हैं, कि रामसनेही सम्प्रदाय के सन्तो ने काल का एक ससार व्यापी सत्ता के रूप म स्वीकार किया है, जिसका काय सम्पूर्ण सृष्टि का नाश करना है । इन सन्तो ने इसस बचने का कवल एक ही मार्ग बताया है, वह है राम-नाम । हरिराम दास कहते हैं, कि चौरासी लाख योनिया म विचरण करने वाल सभी जीव काल की खाद्य सामग्री हैं । इसस केवल वही बच सकता है, जो सत् शब्द अर्थात् राम नाम की शरण लेता है[7] । दरिया साहब भी कहते हैं—'राम नाम बिन जीव को काल निरन्तर

१ अणभैवाणी, पृ० ६१

२ काल नदी की धार मे बसियो सब ससार ।
जनम मरण की भवर है राव रक सिरकार ।।
—दयालुदास की वाणी, प० स० ३४३

३ काल घटो घट बसत है ।
—वही, प० स० २४४

४ काल महा बलवान देखत निरबल होय सब ।
धूजत मेरो प्रान, सायक सतगुरु राम जो ।।
—वही, प० स० २४०

५ ज्यूं खगपति लै सरप कू ज्यू तीतर कू बाज ।
रामा ऐसी काल तो भाज सके तो भाज ।।
—दयालुदास की वाणी, प० स० २८५

६ तीन लोक भटकत फिरे, बध्यो काल की फास ।
—रामस्नेही सन्तवाणी, पृ० ८६

७ सब चौरासी जीवणा सबै काल की चारि ।
जन हरिया जब ऊबरै, सत का शब्द सभारि ।।

खाय'[1] अर्थात् जो लोग राम का भजन करते हैं, वे काल के गाल मे जाने से बच जाते हैं। रामचरण जञ्जाली जीव को जगाकर उसके तन रूपी खेत को खाने वाले काल मृग को राम नाम रूपी बाण से भगाने का उपदेश देते हैं —

जाग रे जंजाली जीव भर्म निद्रा सोवै कहा।
है रह्यो अचेत खेत काल आय खायगो ॥
यात तन खेत खाय गाफिल भय होय जाय।
रामबाण साधि स्यांरा काल भगि जायगो[2] ॥

जगत्

विश्व के समस्त कार्य व्यापारों का रंगमञ्च नाना रूपात्मक जगत् है। इसीलिए अनादि काल से चिन्तनशील मानव मस्तिष्क मे इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में विविध जिज्ञासाएं उठती रही हैं, और विश्व की समस्त चिन्तनधाराओं में सृष्टि के स्वरूपादि की विवेचना होती आयी है। पाश्चात्य दर्शन का तो उदय ही जगत की विविध प्राकृतिक दृश्यावलियों को देखने और उसकी प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप उत्पन्न आश्चर्य से माना जाता है। भारतीय चिन्ताधारा में जगत की उत्पत्ति और मिथ्यात्व या सत्य स्वरूपत्व की सम्यक् विवेचना शुद्धाद्वैत, विज्ञानाद्वैत (बुद्ध), शब्दाद्वैत (भर्तृहरि) और विशेष रूप से सांख्य-दर्शन में हुई है।

भारतीय सृष्टि विज्ञान को दृष्टि में रखते हुए जब हम सन्तमत की ओर दृष्टिपात करते हैं तो इसमें सृष्ट्युत्पत्ति का कोई निश्चित क्रम नहीं दिखाई पड़ता। पहले कहा जा चुका है कि सन्तों का किसी विशिष्ट दार्शनिक पद्धति से कोई लगाव न था। ज्ञानार्जन में इन्होंने प्राय मधुपवृत्ति से काम लिया है। यही कारण है कि सन्तों की जगत सम्बन्धी धारणा में सांख्य वेदान्त, पौराणिक और तांत्रिक मतों का अद्भुत समन्वय दिखाई पड़ता है। कबीर कभी तीन गुण पञ्च भूत और पचीस तत्वों से सृष्टि की रचना बताते हैं, और कभी शब्द से[3]। कभी कहते हैं कि ज्योति, प्रकृति के संयोग से सृष्टि की उत्पत्ति करती

१ रामस्नेही सन्तवाणी, पृ० ३४

२ अणभवाणी पृ० ६१

३ साधो, शब्द साधना कीजै।
जेही शब्द ते प्रगट भये सब सोई शब्द गहि लीजै ॥
शब्द गुरू शब्द सुन सिख भये, शब्द सो बिरला बूझै।
सोई शिष्य सोई गुरू महातम जेहि अंतर-गति सूझै ॥
शब्दै वेद पुरान कहत है शब्दै सब ठहरात्र।
शब्दै सुर मुनि संत कहत हैं, शब्द भेद नहिं पावैं ॥
शब्दै सुन सुन भेष धरत हैं शब्दै कहैं अनुरागी।
षटदर्शन सब शब्द कहत हैं शब्द कहै वैरागी ॥

है[1]। कभी सृष्टि विकास के एक सर्वथा भिन्न क्रम को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि प्रारम्भ में केवल समर्थ सत्पुरुष था। उसने अपने घट में सुरति का सहज उच्चार किया, जिससे सात तत्वों, सप्तचक्रों-मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा और सहस्रार-का विस्तार हुआ। तत्पश्चात् इच्छा और चित्त की उत्पत्ति हुई। फिर सात मानस-लोकों की सृष्टि हुई। इसके अनन्तर उसी से पांच सूक्ष्म तत्वों का सृजन हुआ। जिससे क्रमशः पांच अंडों (पंच विषय) का जन्म हुआ। पंच तत्वानुसार पांच कर्मेन्द्रियाँ और पांच ज्ञानेन्द्रियाँ हुई। इसके अतिरिक्त दो ज्ञानेन्द्रियों (मन और बुद्धि) को सत्पुरुष ने अपनी योग माया के प्रभाव से गुप्त कर रखा। श्वास की प्रगति के साथ सोऽहं ध्वनि की उत्पत्ति हुई जो अमृत का प्रतीक है। पांच सूक्ष्म तत्वों से तीन गुण और पंच भूतों का विकास हुआ। इस प्रकार सत्पुरुष ने ब्रह्मांड का विस्तार करके उसकी चोटी पर बैठकर नीचे मृत्युलोक की ओर देखा। उसकी दृष्टि से 'सार' शब्द की उत्पत्ति हुई और उससे चार प्रकार की सृष्टि (अंडज, पिण्डज, उष्मज, स्वेदज) हुई। फिर वेद का विस्तार हुआ। यह तो हुआ सत्त्वगुण विशिष्ट सूक्ष्म प्रकृति का विकास। रजोगुण के समावेश से सत्यपुरुष निद्रा, मोह, आलस्य के वशीभूत हो गया। परिणाम यह हुआ कि उसकी शुद्ध निर्माण बुद्धि रुक गयी और एक श्याम रंग का अंडा जल में तैरने लगा। अंडे को देखकर सत्पुरुष का अंश रूप जीवात्मा व्याकुल हुआ। उसने जिज्ञासा की कि इस अंडे को किसने बनाया और इसका मूल क्या है? उस त्रिगुणात्मक अंडे के मुख पर जब सत्पुरुष ने शब्द का मुहर लगाया था वह फूट गया और उसके दस द्वारों से वायु निकला। जिसने रूप-राशि निरंजन की उत्पत्ति हुई। वह निरंजन अत्यन्त प्रबल काल पुरुष है। उससे ब्रह्मा विष्णु महेश त्रिदेवों की उत्पत्ति हुई जिन्होंने माया के निर्देश से चार प्रकार के जीवों की सृष्टि (अंडज पिण्डज आदि) का विस्तार किया। जीव चौरासी लाख योनियों के अनन्त प्रवाह में बहने लगे। चौदह भुवनों में चौदह यमों की रखवाली शुरू हो गयी। यही चारों वेदों का मत है। वस्तुतः सुखी वही है जो स्वयं को स्वयं में विलीन कर सकता है। जो उत्पत्ति और प्रलय, सुख और दुख के चक्र में पड़ा हुआ है वह आवागमन से मुक्त नहीं हो सकता। सात चक्र जो ध्यान के केन्द्र हैं समस्त सृष्टि के मूल हैं और उन्हीं में यह विलीन भी होती है।[2] सृष्टि विकास की यह प्रक्रिया कबीर के नाम से प्रसिद्ध 'आदिमंगल' में दी गयी है। इस सृष्टि-प्रक्रिया का अन्तिम भाग अत्यन्त पेचीदा है, फिर भी वह समग्र रूप से भारतीय है। इसमें किसी को

शब्दे काया जग उतपाती शब्दे करि पसारा।
कहै कबीर जहं शब्द होत है, भवन भेद है न्यारा॥

— कबीर, पृ० २६८

१ —कबीर ग्रंथावली, पृ० १०४

२ बीजक आदि मंगल—छं० ३-१६

मदद नहीं होना चाहिए। इसके अनेक अंशों को भारतीय सृष्टि विज्ञान की विभिन्न शाखाओं से सहज ही जोड़ा जा सकता है। अब प्रश्न यह है कि क्या इस विचार-पद्धति के प्रवर्तक कबीर ही थे ? इस पर विद्वानों ने सन्देह प्रकट किया है[1]। जो भी हो, इतना तो निश्चित है कि सिद्धों, नाथों, बङ्गाल के अनेक धार्मिक सम्प्रदायों तथा समस्त उत्तरार्ध की संतपरम्परा में प्रचलित सृष्टि-विकास की कथायें साधारण हेर-फेर के साथ प्रायः एक ही हैं। डा० शशिभूषण दास गुप्त ने बंगाल के नाथ सम्प्रदाय में कबीर के समान ही जटिल सृष्टि-विकास-प्रक्रिया के प्रचलित होने की चर्चा करते हुए अनादि पुराण, हाड़माला ग्रन्थ, अनादि चरित्र, योगितत्र कला, गोरक्षविजय, गोपीचंदेर सन्यास आदि बंगला ग्रन्थों से उद्धरण देकर अपने मत की पुष्टि की है[2]। मनुस्मृति में भी कुछ इसी प्रकार की सृष्टि-विकास प्रक्रिया वर्णित है।[3] अतः सन्तमत में प्रचलित यह सृष्टिविज्ञान सर्वथा आकस्मिक और अप्रत्याशित नहीं माना जा सकता।

रामसनेही सम्प्रदाय का सृष्टि-विकास सम्बन्धी मत

कबीर आदि सन्तों की भांति आलोच्य सम्प्रदाय के साहित्य में भी कहीं सृष्टि-रचना की व्यवस्थित चर्चा नहीं मिलती। साम्प्रदायिक स्रोतों से उपलब्ध सामग्री की परीक्षा करने पर ज्ञात होता है कि रामसनेही सन्तों ने इस विषय में सन्तों की परम्परागत समन्वयात्मक प्रवृत्ति का अनुसरण किया है। नारायणदास के अनुसार समस्त सृष्टि शब्द-ब्रह्म का प्रसार है[4]। यह मत भर्तृहरि के शब्दाद्वैत पर आधारित है। भर्तृहरि के अनुसार विश्व शब्द ब्रह्म का विवर्त है[5]। उनके अनुसार वेद के प्रणेता यह मानते हैं कि जगत् की सम्पूर्ण प्रक्रिया और परिणति शब्द के ही कारण अथवा उससे प्रसूत होकर होती है। इसीलिए बार बार यह कहा गया है कि शब्दों से ही विश्व की उत्पत्ति या गति प्रक्रिया सम्भव होती है।[6]

---

१ साहित्य संदेश (अक्टूबर, १९४६)—कबीरपंथी साहित्य का अध्ययन शीर्षक लेख - डा० द्विवेदी।

२ देखिए अब्सक्योर रिलिजस कल्ट्स, पृष्ठ ३६०-६५

३ मनुस्मृति, १/७-२०

४ सार शब्द का सकल पसारा

—श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश, पृ० १७३

अनादि निधनं ब्रह्म शब्द तत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थ भावेन प्रक्रिया जगतो यत॥

५ वाक्य पदीय, श्लोक १

शब्दस्य परिणामोऽयमित्याम्नाय विदो विदुः।
छन्दोभ्य एव प्रथमेतद्विश्व व्यवर्तत॥

६ वही, श्लोक १२०

सन्त परशुराम के मतानुसार पहले अविचल अखड और अनादि ब्रह्म था। उससे दिव्य कला-संयुक्त पुरुष का जन्म हुआ। पुरुष से प्रकृति उत्पन्न हुई। फिर पुरुष और प्रकृति के सयोग से महत्तत्त्व हुआ। महत्तत्त्व से अहकार का विकास हुआ। अहकार से सत् रज, तमतीन गुणो की उत्पत्ति हुई। यही तीन गुण जगत् रूपी वृक्ष की तीन शाखाये है। इन्ही से पचभूतादि की उत्पत्ति और सृष्टि का विस्तार हुआ[1]। कहना न न होगा, यह मत साख्य दर्शन से अत्यधिक प्रभावित है, क्योकि पुरुष और प्रकृति के सयोग मे सृष्टि की उत्पत्ति मे साख्य दर्शन भी विश्वास करता है।

सृष्टि-विकास के सम्बन्ध मे रामचरण के शिष्य रामजन का विचार विशेष ध्यान देने योग्य है। उनके मतानुसार पहले केवल ब्रह्म था। ब्रह्म से अक्षर रूप पुरुष की उत्पत्ति हुई। उससे एक अडा उत्पन्न हुआ। उस अडे के फूटने से अहकार का विकास हुआ, अहकार से सात्विक राजस और तामस तीन गुणो की उत्पत्ति हुई। फिर इन तीन गुणो को धारण करने वाले तीन देव क्रमश विष्णु ब्रह्मा और रुद्र हुए। तामस गुण से पच तत्त्वो और पच विषयों का विकास हुआ। राजस से दस इन्द्रियो और सात्विक से देवताओं की उत्पत्ति हुई। इन सब के सयोग से ब्रह्माण्ड की रचना हुई। सृष्टि विकास में चेतना की आवश्यकता पड़ी। वह ब्रह्म से प्राप्त हुई। फिर पिंड की सजना हुई। पिंड की सर्जना के बाद लिंग भेद हुआ। तब वासना का सचार हुआ। फिर तो तीन लोक, चौदह भुवन, घर, बाहर, सुर, असुर नर नाग, जीवादि का पसार हो गया। इस विशाल सृष्टि के मूल मे मायावी निरजन व्योमवत् व्याप्त था। सृष्टि के प्रसार के

---

१ अविचल अखड अनाद है जिणका ब्रह्म परवान।
नाही है है परसराम अनभव करत बखान॥
पुरष प्रगट तातै भयो दिव्य कला सयुक्त।
याको परकर वरण हू गुरगम ग्यान सयुक्त॥
प्रकत प्रगट भई पुरुष तैं दाय को भयो सयोग।
यू जग उतपत परसराम देह इही गुण भोग॥

पुरस प्रकत का भया सयोगा मैहतत मड उपाया।
अहकार मैहतत मधि प्रगट तातैं त्रिगुण रचाया॥
तम उपज्या रजो गुण उपज्या सतगुण फेर कहाया।
जगत व्रिछ के तीनू साधा मुनि जन भेद बनाया॥
तम गुण तै दस तत ऊपना जिन की विघ बताऊ।
महाभूत सो पच कहीजे पच विष सममाऊ॥ आदि

—अरथ सिद्धान्त (वाणी गुटका), पृ० स० २५१–५२

अनन्तर वह अपने लोक का चला गया[1]। इस मत की समीक्षा से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस पर अन्वाद्वत सांख्य दर्शन, और पौराणिक विचारों की छाया व साथ ही उपनिषदों का भी पर्याप्त प्रभाव है। स्पष्टीकरण के लिए हम इस विकास क्रम में 'अक्षर रूप पुरुष', 'अण्डा, अहंकार से सत रज, तम का विकास और उससे पंच तत्त्वों, दस इन्द्रियों की उत्पत्ति तथा तीन गुणों के धारक त्रिदेवों की कल्पना पर थोड़ा विचार कर लेना आवश्यक समझते हैं।

भारतीय सृष्टि विज्ञान में अक्षर रूप पुरुष की कल्पना नहीं हुई है। यह मत, सांख्य के पुरुष और भर्तृहरि के शब्द ब्रह्म का मिला जुला रूप जान पड़ता है। अंडे से सृष्टि की कल्पना मनुस्मृति में मिलती है। मनु ने कहा है—' जीवों को उत्पन्न करने की कामना से परमात्मा ने सर्वप्रथम अपने शरीर में जल उत्पन्न किया। जल में शक्ति रूप बीज डाल दिया। वह बीज सूर्य की भांति चमकने वाला सोने का एक अंडा बन गया। उस अंडे में सर्वलोकस्रष्टा ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई[2]। 'छान्दोग्योपनिषद्' में भी अंडे से सृष्टि की उत्पत्ति का उल्लेख है[3]। अहंकार, उससे तीन गुणों का विकास, फिर पंचतत्त्व, दस इन्द्रिय आदि की उत्पत्ति सांख्य दर्शन से प्राय उसी रूप में स्वीकार कर ली गयी है।

१ मुनि सिधए पुरुष जु हुवा अक्षर रूप ब्रह्म तैं जुवा ॥
तिनही अक्षर प्रगट कीन्ही दाऊ सभापन ऐ गति चीन्ही ॥
जाते भये अंड प्रकासा, अण्ड फूटि अहंकार विगासा ॥
अहंकार सूं गुन ऐह जानू सातिग राजस तामस मानू ॥
तनके धारक तीनू देवा विस्न ब्रह्मा अरु रुद्र देवा ॥
तम गुण तै पंच तत्त महो अंबर पवन तेज जल मही ॥
सबदसपरस रूप रस गधा पांचू विषे ए पच समधा ॥
इन्द्री दस रज गुण तै जानू सतगुण व मन दस बखानू ॥
जैसे मिलि ब्रह्मंड उपायो चेतन अंश ब्रह्म को आ[illegible] ॥
जातैं पिंड भय आकारा थूल शरीर लिंग आगारा ॥
लिंग शरीर वासना माही कारण रूप वासना आही ॥
जाग्रत प्रगट अवस्था थल लिंग सुपन है याकी मूल ॥
मो आधार सुषोपति कारण, मून अविकृत माया धारण ॥
आप निरंजण व्यापक आही ज्यूं तिम जानि सकल कै माही ॥
ताही तै यह चेतन हुवा आपो बाँधि भया अब जुवा ॥
चौदा तीन लोक विसतारा घर अंबर नाना विधि सारा ॥
सुरनर असुर और जगजीवा नाना भांति पसारा कीवा ॥

—ज्ञान प्रबोध, छं० ३४ ८७

२ मनुस्मृति (१/१)

३ छान्दोग्योपनिषद्, ३/१६

पुराणों में सांख्य दर्शन की धारणाओं का स्थूल रूप देखने में आता है। सांख्य की प्रकृति के सत, रज, तमोगुण ही पुराणों में ब्रह्मा, विष्णु और महेश के रूप में मूर्तिमान हो गये हैं। यहाँ रामजन ने तीन गुणों को धारण करने वाले तीन देवों—ब्रह्मा, विष्णु और महेश की जो कल्पना की है, उस पौराणिक मान्यताओं का प्रभाव मानना चाहिए।

सारांश यह कि रामसनेही सम्प्रदाय की सृष्टि सम्बन्धी धारणायें पूर्णतः भारतीय हैं। इसके विभिन्न तत्वों का सकलन भारतीय चिन्ताधारा के विविध स्रोतों से हुआ है। समग्र रूप में वे संतमत के सर्वथा अनुकूल हैं।

जगत् का स्वरूप

रामसनेही सम्प्रदाय की जगत् सम्बन्धी विचारधारा प्रधानतया शङ्कराचार्य के अद्वैतवाद से प्रभावित है। अद्वैतवाद के अनुसार जगत् माया या मिथ्या है, और इसे सत्य समझना विपरीत भावना है[१]। आचार्य शङ्कर के अनुसार सत्य की शास्त्रीय परिभाषा त्रिकालाबाध्य सत्य है। भूत, वर्तमान तथा भविष्य इन तीनों कालों में तथा जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों दशाओं में, जिसका स्वरूप बाधित न हो अर्थात् एक रूपेण अवस्थित रहे, वही सत्य है[२]। इस परिभाषा के अनुसार जगत् की कोई भी वस्तु सत्य नहीं है, क्योंकि जगत नित्य परिवर्तनशील है, प्रतिक्षण परिणामी है। एक क्षण के लिए भी यह प्रवृत्तिशून्य नहीं रहता। इसीलिए उन्होंने संसार को रज्जु में सर्प, और शुक्ति में रजत की भ्रांति के समान कहा है।

हिन्दी प्रदेश के सन्तों ने संसार के मिथ्यात्व का विशद वर्णन किया है। कबीर ने इस सर्वभ्रम सेमर के फूल के समान सारहीन,[३], जल के बुदबुद के सदृश नश्वर[४] और स्वप्नवत[५] कहा है। श्री गुरुग्रन्थ साहिब में स्थान-स्थान पर संसार को

१ पंचदशी—तृप्तिदीप प्रकरण, श्लोक ११२

२ भारतीय दर्शन (बलदेव उपाध्याय), पृ० ४६७

यौं ऐसा संसार है जैसा सेंबल फूल।
दिन दस के व्योहार को झूठे रंगि न भूल॥

३ क० ग्र०, पृ० २१
ज्यों जल बूँद तैसा संसार।
उपजत बिनसत लगै न बार॥

४ वही, पृ० १२१
समझ विचार जीव जब देखा।
यहु संसार सुपिन कर लेखा॥

५ वही, पृ० २३३

जल का बुदबुदा,[१] जल का फेन[२], धुए का धौरहर,[३] बालू की भीत[४] और विष के समुद्र[५] के सामने क्षणभगुर बताया है। दादूदयाल[६], धरणीदास[७], चरनदास[८] आदि ने भी जगत् को असत् ही कहा है।

१ जैसे जलते बुदबुदा, उपजे बिनसै नीत।
जगु रचना तैसे रचो, कहु नानक मीत॥
—श्री गुरु ग्रथ साहिब, पृ० १३६३

२ जिउ जल ऊपरि फेन बुदबुदा तैसा यहु ससार।
—वही, पृ० १२५८

३ जग धूए का धवलहल
वही, पृ० १३८

४ बारू भीति बनाई रचि पचि रहत नही दिन चारि
—वही, पृ० ६६३

५ मन पिआरिआ जीउ दिया बिखु सागर ससारे।
—वही, पृ० ७६

६ मन रे तू देखो सो नाही, है सो अगम अगोचर माही। टेक।
निस अधियारी कछू न सूझे सशै सरप दिखावा।
ऐसे अध जगत नहिं जाने जीव जेवडी खावा॥१॥
मृगजल देखि तहा मन धावै दिन दिन झूठी आसा।
जह-जह जाइ तहा जल नाही निहचै मरे पियासा॥२॥
भरम विलास बहुत विधि कीन्हा ज्यो सपने सुख पावै।
जागत झूठ तहा कुछ नाही फिरि पीछे पछितावै॥३॥
जब लग सूता तबलग देखे जागत भरम बिलाना।
'दादू' अति इहा कुछ नाही है सो सोधि सयाना॥४॥
—स० बा० स० दूसरा भाग, पृ० १००

७ धूवां के धौरेहरा, औ धूरी को धाम।
ऐसे जीवन जगत म बिनु गुरु बिन हरि नाम॥
—स० बा० स० प्रथम भाग, पृ० ११२

८ (क) साधो भाई यह जग यों सत नाही
मीन पहार समुद बिच मिरगा खेत अकासे माहीं।
(ख) बाँझ को पूत सीग ससा को मृग तृस्ना को नीर।
स्वप्न को भूप द्रव्य सपनै को अरु जग को द्वार।
(ग) ऐसोही झूठ जगत सच नाही भेद विचारो पायो।
—चरनदास की बानी, भाग दूसरा, पृ० १४१

रामसनेही सन्तों ने भी इसी प्रकार जगत् का मिथ्या प्रमाणित किया है। रामचरण ने जगत् को शीतकोट और मृगमरीचिका के तुल्य अस्थिर बताया है[1]। उनके शिष्य रामजन ने इसे सेमर के फूल के समान असार कहा है[2]। दयानुराम भी जगत् को मिथ्या[3] पानी के बुदबुद के समान नाशवान[4] और शीत कोट[5] के तुल्य असत् सिद्ध करते हैं। परशुराम ने ब्रह्म और जगत् के सम्बन्ध की तुलना जल तरंग से करके अद्वैत वादियों के प्रिय सिद्धान्त विवर्तवाद का समर्थन किया है[6]। इससे यह स्पष्ट है कि अन्य पूर्ववर्ती सन्तों और हमारे अध्ययन क्षेत्र के सन्तों का जगत्-विचार प्रायः एक सा है ये सभी शंकर वेदान्त से प्रभावित हैं।

---

१ शीत कोट संसार अथिर सब वीर रे।
माया छक सुख राज मरीचो नीर रे।
मन मृगा सत जान प्यास घर मारि है।
धरिहा देखत जाय बिलाय रहे सिर फोरि है।
—अणभै वाणी, पृ० २५०

२ उभरी सेमर फूल ज्यों
यू जगत अनथा वीर।
—सुमिरण सिद्धान्त, छ० १०१

३ सत इक ब्रह्म है, मिथ्या सब संसार
उपजे विणसै झूठ मिल रहे सांच निरधार ॥
—दयानुदास की वाणी, प० स० १५

४ नर पाणी का बुदबुदा विनसत छिनियक बार।
काहे करे गुमान मन चल्यो जाय संसार ॥
—वही, प० स० २४४

५ शीत कोट ज्यूं जगत है, सूर उदै मिटि जात।
रामा पाला पिंड गल शीत रात मिट जात ॥
—वही, प० सं० ७४

६ (क) जल-तरंग जल मैं उठे जल मैं रहे समाय।
तरंग सतक न सत जल बाकी भेद बताय ॥
(ख) निराकार दरियाव है, लहेर उठै आकार।
उलट समावे तास मैं द्वैत रहे न लिगार
द्वैत रहे न लिगार धारता को विसवासा
और अस्त सब जान उपज फिर होत विनासा
परसराम सतगुर मिल्या इनको सहे विचार
निराकार दरियाव है लहेर उठै आकार
—वाणी गुटका, प० स० ६६८ (सुरसागर-जोधपुर की प्रति)

पूर्वमध्ययुगीन सन्तों ने जगत् को स्वप्नवत् बताया है। असोध्य सम्प्रदाय के कवियों में दरिया साहब ने जगत् को स्वप्नवत् कहा है[1]। उनके अनुसार अण्डज, पिण्डज, उष्मज और स्वेदज सृष्टि तथा समस्त ब्रह्माण्ड स्वप्न-रूप है[2]। रामजन जगत को 'भव रचना सपना जिसी'[3] कहते हैं। कुछ अधिकारी विद्वानों ने ऐसे स्थलों से जगत् का मिथ्यात्व सिद्ध करके उसे अद्वैत वेदान्तानुकूल बताया है। किन्तु यह मत साधार प्रतीत नहीं होता। जगत् को स्वप्नवत् तो विज्ञानवादी बौद्धों ने कहा था, जिसकी आचार्य शंकर ने कटु आलोचना की थी। स्वप्न आदि प्रत्यय बाहरी वस्तु के बिना ही आकार वाले होते हैं, लेकिन जगत् में पदार्थों का अनुभव प्रतिक्षण होता है। इसलिए जगत् को असत्य मानकर विज्ञान मात्र का अस्तित्व मानना प्रतिदिन के लोकानुभव के नितान्त विरुद्ध है। अनुभव के विषय होने पर भी घट-पटादि की सत्ता का तिरस्कार करना उसी प्रकार उपहासास्पद है जिस प्रकार रस भरा मिठाइयों के स्वाद का अनुभव करते हुये उन्हें मिथ्या ठहराना।[4] तात्पर्य यह कि जगत् को स्वप्न और स्वप्न की सम्पत्ति की संज्ञा देते समय निर्गुणिया सन्त जाने-अनजाने बौद्ध विज्ञानवादियों के स्वर में अपना स्वर मिला जाते हैं।

साम्प्रदायिक साहित्य पर कहीं-कहीं वल्लभाचार्य के अविकृत परिणामवाद की भी छाया दिखाई पड़ती है। एक वस्तु से दूसरी वस्तु बनने की दो प्रक्रियाएँ देखने में आती हैं। कभी तो मूल वस्तु में विकृति आने से दूसरी वस्तु बन जाती है, जैसे— दूध से दही। कभी-कभी बिना विकृति के ही दूसरी वस्तु की उत्पत्ति हो जाती है, जैसे कनक से कुण्डल। कुण्डल कनक का अविकृत परिणाम है। वल्लभाचार्य जगत् को ब्रह्म का अविकृत परिणाम मानते हैं। रामचरण कार्य कारण के विषय में भूषण और कनक का उदाहरण देते समय वल्लभाचार्य से पूर्णतः प्रभावित जान पड़ते हैं। वे कहते हैं —

भूषण घड़े बनाय मूल सो स्वर्ण रे।
नहीं मूल का अंत घाट का मरण रे॥[5]

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो गया होगा कि रामसनेही सन्तों की विचारधारा मुख्य रूप से शंकराचार्य के अद्वैतवाद और गौण रूप से बौद्धों के विज्ञानवाद तथा वल्लभाचार्य के अविकृत परिणामवाद आदि विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों से प्रभावित होते हुये भी बहुत कुछ स्वतन्त्र रही है।

---

१ रामस्नेही सन्तवाणी, पृ० २७
२ अनुभव गिरा, पृ० १३२
३ सुमिरण सिद्धान्त, छं० १०७
४ भारतीय दर्शन पृ० ४६२-६३
५ अणभै वाणी, पृ० ८३

पाँचवाँ अध्याय

साधना और धर्म

साधना

भारतीय संस्कृति में आत्मोपलब्धि और ब्रह्म-साक्षात्कार को मानव-जीवन का चरम लक्ष्य एवं परम काम्य माना गया है। यही कारण है कि भारतीय अध्यात्म विद्या का उदय दुःख की व्यावहारिक सत्ता की व्याख्या तथा उसके निवारणार्थ साधन-मार्ग की विवेचना से होता है। भारतीय मनीषियों एवं तत्त्वान्वेषियों ने मनुष्य की मानसिक अवस्था, संस्कार, योग्यता, क्षमता आदि को दृष्टि में रखते हुये दुःख और बंधन से मुक्त होने के लिए तीन साधना-मार्गों का अन्वेषण किया है जिन्हें ज्ञानमार्ग, कर्ममार्ग और भक्तिमार्ग (उपासना) के नाम से अभिहित किया जाता है। योग विद्या को भी भारतीय अध्यात्म-साधना में विशिष्ट स्थान दिया गया है और इसका विकास युगों से एक पृथक् साधना के रूप से होता रहा है। निर्गुण सम्प्रदाय में यह साधना विशेष रूप से मान्य रही है। अतः प्रस्तुत अध्ययन में इसका विवेचन परम्परागत त्रिकांड साधना के साथ एक चौथी साधना-पद्धति के रूप में किया गया है। पवित्रता, संयम एवं चिन्तन की नाना तरु-बेलि लताओं की झुरमुट से होकर गुजरने वाले ये पथ यद्यपि हमें एक ही अभीष्ट स्थान तक ले जाते हैं, किन्तु दिशायें सबकी पृथक्-पृथक् हैं। आगे इन पर अलग-अलग विचार करते हुए रामसनेही सम्प्रदाय में इनकी स्थिति पर प्रकाश डाला जायगा।

ज्ञान-साधना और रामसनेही सम्प्रदाय

निर्गुणपंथी सन्तों की साधना ज्ञानमूलक है। इसीलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस 'ज्ञानाश्रयी' शाखा की संज्ञा दी है। कुछ विद्वानों ने इसका प्रत्याख्यान करते हुए कहा है कि ज्ञान के लिए जिस सूक्ष्म बुद्धि और गहन अध्ययन की आवश्यकता होती है उसका इन सन्तों में सर्वथा अभाव है। किन्तु विषय की गहराई में प्रवेश करने पर हम देखते हैं कि ज्ञान के सम्बन्ध में सन्तों की अपनी अलग धारणा है। वे वेदाध्ययन मात्र से किसी का ज्ञानी होना नहीं मानते। ज्ञान से उनका तात्पर्य वस्तुतः तत्त्वबोध अथवा आत्मानुभूत ज्ञान से है। कबीर का मत है कि आत्मानुभव होने पर मनुष्य हर्ष विषाद से मुक्त हो जाता है। उसके हृदय में ज्ञान का प्रकाश हो जाता है

और वह वाद-विवाद की सीमाओं से ऊपर उठ जाता है[1]। उनके अनुसार अनुभव गाने वाला ही सच्चा रागी है।[2] सन्त सुन्दरदास ने भी 'न्याय', 'मीमांसा' आदि षड्दर्शनों को वादग्रस्त बताते हुए अनुभव ज्ञान को ही सर्वोपरि माना है।

सन्तों ने गुरुद्वारा प्राप्त तत्त्वबोध को ज्ञान का पर्याय माना है। कबीर ज्ञान और बुद्धि की प्राप्ति सद्गुरु की हाट में बताते हैं।[4] उनके अनुसार ज्ञान, समागम, प्रेम सुख, दया, भक्ति और विश्वास सब कुछ गुरु सेवा से उपलब्ध होता है।[5] सुन्दरदास के ज्ञान का खजाना गुरु ने ही खोला था।[6] इसी प्रकार अन्य सन्तों ने भी गुरु को ज्ञान का मूल स्रोत स्वीकार किया है।

रामसनेही सम्प्रदाय के सन्तों की ज्ञान विषयक अवधारणा पूर्ववर्ती सन्तों के

---

१ आतम अनुभव जब भयो तब नहिं हर्ष विषाद।
चित्त दीप सम ह्वै रह्यो तज करि वाद-विवाद।।

स० बा० सं०, भाग १, पृ० ४४

२ जग भव का गावना क्या गावै अनुभव गावै सो रागी है।

कबीर वचनावली (ना० प्र० सभा)

३ न्याय शास्त्र कहत है प्रगट ईसुरवाद।
मीमांसहि शास्त्र माहि कर्मवाद कह्यो है।।
वैसेषिक शास्त्र पुनि कालवादी है प्रसिद्ध।
पातंजलि शास्त्र माहि योगवाद लह्यो है।।
सांख्य शास्त्र माहि पुनि प्रकृति पुरुषवाद।
वेदांत जु शास्त्र तिन ब्रह्मवाद गह्यो है।।
सुंदर कहत षट शास्त्र माहि भयो वाद।
जाके अनुभव ज्ञान वाद में न बह्यो है।

—स० बा० सं०, भाग २, पृ० ११६

४ चल सतगुरु की हाट ज्ञान बुधि लाइये।

—वही, भाग २ पृ० १

५ ज्ञान समागम प्रेम सुख दया भक्ति विश्वास।
गुरु सेवा ते पाइए सतगुरु चरन निवास।।

—स० बा० सं०, भाग १, पृ० २

६ सुंदर सतगुरु सारिखा कोउ नही उदार।
ज्ञान खजाना खोलिया सदा अटूट भंडार।।

—वही, पृ० १०६

समान ही है। इन्होंने ज्ञान की प्राप्ति गुरु[1] एवं आत्मचिंतन[2] से बताई है। इस सम्प्रदाय के सन्तों ने अपने पूर्ववर्ती मतों के आदर्श पर शास्त्रीय ज्ञान या कोरे पुस्तक-ज्ञान को असार माना है। दरिया साहब ने शास्त्राध्ययन के माध्यम से उपलब्ध ब्रह्म-ज्ञान की चर्चा करने वालों के हृदय में अन्धकारपूर्ण रात देखी थी[3]। रामचरण भी

१ (क) ज्ञान गुरु प्रकाशिया देखा निज दीदार।

—श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश, पृ० ५१

(ख) गुरु न सतगुरु भारिखा मुझ दीया गुझि ज्ञान।
हरिया मैं तें मेटि कै अधर धराया ध्यान।।

—वही, पृ० ५१

(ग) ज्ञान का युक्ति गुरुन्य सू पाय है।
गाय है वेद वेदान्त सारा।

—विश्राम बोध प्रथम विश्राम, छं० ३६

(घ) गुरु बिन ज्ञान कहो किन पाया।

—गुरु महिमा (रामचरण), छं० ५

(ङ) राम मिलावै राम निरंजन गुरु निरमोही होय।
देय ध्यान वैराग धन भिप को औगुण खोय।।

—श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० १६३

(च) राम मिलावै रामजन गुरु निरमोही होय।
देय ध्यान वैराग धन सिष को औगुण खोय।।

—श्री रामस्नेही सम्प्रदाय पृ० १६३

२ (क) प्रथम ध्यान अनुभी करै जासे उपजे ज्ञान।

—रामस्नेही सन्त वाणी, पृ० ५४

(ख) ज्ञान भएया नहि ऊपजै ज्ञान सुण्या नहिं होय।
रामचरण अंतर गुण्या लख ज्ञानी पावै सोय।।

—जिज्ञास बोध-प्रथम प्रकरण, छं० १

३ सीखत ज्ञानी ज्ञान गम करै ब्रह्म की बात।
दरिया बाहर चादनी भीतर काला रात।।

—रामस्नेही सन्त वाणी, पृ० ६३

(ग) आतम माहीं आप विचारै शब्द सुणै सुखरासी।

साँचा ज्ञान ध्यान धरि हरि हरि गगन मंडल मठ छावै।।

—रामस्नेहधर्मप्रकाश पृ० ४७

अनुभवहीन ज्ञानियों को 'ज्ञानदग्ध' की संज्ञा देते हुए कहते हैं कि उनका साथ छोड़ दो, क्योंकि वे बात करने में तो अत्यन्त प्रवीण होते हैं, किन्तु काम करने में बहुत ही कच्चे। ऐसे लोग 'फोकट' बात बना-बना कर दूसरे के धन का अपहरण करने में अपने कर्त्तव्यों की इतिश्री मानते हैं[1]। ऐसे 'ज्ञानदग्ध' या 'वाचक ज्ञानी' मनुष्यों को वे मूर्ख से भी बुरा बताते हैं क्योंकि मूर्ख तो अपनी नासमझी से कोई भूल करता है किन्तु ये जानबूझ कर भगवद्भजन नहीं करते। वे बुद्धिहीनता के कारण ठगे जाते हैं और ये बड़े बड़े बुद्धिमानों को अपने वाग्जाल में फंसा कर पथ-भ्रष्ट करते हैं[2]।

साम्प्रदायिक साहित्य के अनुशीलन से यह विदित होता है कि रामसनेही सन्तों ने ज्ञान की चर्चा केवल परम्परा-पालन के लिए नहीं की है। उनकी साधना में ज्ञान का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ज्ञान, भक्ति और वैराग्य के प्रसंग जहाँ भी आये हैं सन्तों ने ज्ञान का उल्लेख पहले किया है। वस्तुतः ज्ञान ही उनकी साधना का रीढ़ है। ज्ञान रूपी दीपक के प्रकाश में इन सन्तों ने अपने आत्मा के स्वरूप को पहचाना है[3]। ज्ञान से ही अज्ञान, दुर्बुद्धि, दुविधा, काम, क्रोध, अहंकारादि का नाश होता है[4]। इसी से मनुष्य कर्म-बन्धन से मुक्ति पाता है[5]। रामचरण ने 'प्रथम उपजै ज्ञान, तब

१ ज्ञान दगधा जीव की संगति करिये नांहि।
जे चर्चा में चतुर घणा काचा करतब मांहि॥
काचा करतब मांहि फूल आपा सूं फिरि है।
फोकट बात बणाय पात पर वित्त की करिहै॥
रामचरण ऐसेन की कदै दुराय न जांहि।
ज्ञान दगधी जीव की संगति करिये नांहि॥

—विश्वास बोध-१४ वां प्रकरण, छं० ७

२ मूरख सूं ही अति बुरो, ज्ञान दगधी जीव।
मूरख भूलै भूल सैं ऊ समझ न सुमरै सीव॥

—वही, छं० २

३ ज्ञान दीप जिस के हृदय बदन तल अपार।
भरम तिमिर खंडन भयो, आतमरूप दिदार॥

—दयालुदास की वाणी, प० सं० १२

४ ज्ञान पाय अज्ञान मिटाये, दुर्मति दुविधा दूरि गमाए।
काम क्रोध मारे अहंकारा राम राम रसना रट प्यारा॥

—श्री रामरत्नप्रकाश, पृ० २१२

५ तिमिर गया रवि तेज ते तेज गया निशि पास।
हरिया ज्ञान विचार ते होय कर्म का नास॥

—वही, पृ० ७१

पीछे ले वैराग[1]" कह कर ज्ञान की महत्ता को सादर स्वीकार किया है। वे कहते हैं कि जिस प्रकार सूर्य के उदय होने से अंधकार का नाश हो जाता है और सम्पूर्ण सृष्टि प्रकाशित हो जाती है उसी प्रकार ज्ञान के उदय से अज्ञान का नाश हो जाता है और साधक का अन्तर्दृष्टि प्राप्त हो जाती है। उसे असल और नकल की परख हो जाती है और उसका लक्ष्य उसे स्पष्ट दिखाई पड़ने लगता है[2]। भक्त रूपी शूर, ज्ञान के तुरग पर सवार होकर, मोह रूपी शत्रु को जिस प्रकार पराजित करता है, उसका वर्णन दयालुदास ने बड़े सुन्दर ढंग से किया है —

गुरु नेम सिर टोप प्रेम बगतार सुपदाई
रामनाम तरवार ओट गुरु ढाल सदाई
ज्ञान तुरग पर चढ़े मडे चौगान विचाले।
कजिया है रिण खेत नेत हर हुव संभाले ॥
जनम मोह जीत अवम तन मन सतगुरु वारणे।
सूर भगत आकुर घुर राम मिलण के कारणे[3] ॥

हरिरामदास कहते हैं कि जिस मनुष्य ने गुरु से ज्ञान नहीं लिया, और यदि लिया भी तो उसका चिंतन नहीं किया, वह उस अंधे के समान है जो हाथ में दीपक लिए रहता है, फिर भी उसे अंधकार ही दिखाई पड़ता है[4]।

इस प्रकार रामस्नेही सम्प्रदाय के संतों ने परम्परा की लकीर मात्र न पीट कर, ज्ञान के अनुभव पक्ष पर बल देते हुए उसके साधनागत महत्व को स्वीकार किया है।

---

१ जिज्ञास बोध-पचम प्रकरण, छ० १७

२ अदीत किरण से होत है ब्रह्मंड माहि उजास।
ज्ञान भांड परकाश तें हिरदे होय प्रकाश
हिरदे होय प्रकाश गोन चस्मा खुलि जाही
असलि नक्ल की परखि लक्ष्य प्रत्यग दर्शाहीं
तिमिर हटै ससो कटै मिटै भर्मना भास
अदीतकिरण से होत है ब्रह्मंड माहि उजास ॥
—विश्राम बोध-प्रथम विश्राम, छ० २१

१ दयालुदास की वाणी, प० स० ५६६

२ गुरु पै ज्ञान न बूझिया बूझ न किया विचार।
हरिया कर दीपक दिया अंधे को अधार ॥
—श्री रामस्नेहीधर्मप्रकाश, पृ० ७१

कर्म-साधना और रामसनेही सम्प्रदाय

वैदिक साधना में कर्म को मुक्ति का साधन माना गया है। कर्म मार्ग का विकास वैदिककालीन याज्ञिक क्रियाओं से हुआ था। इसका विस्तृत विवेचन गीता में देखने को मिलता है। यद्यपि गीताकार ने फलाकांक्षा की दृष्टि से किये गये कर्म को बंधन रूप माना है फिर भी गीता के साधन-मार्ग का आरम्भ निष्काम कर्म से ही होता है। ज्ञान, भक्ति और कर्म का समन्वय ही गीतोक्त मत का सार है। गीता में वस्तुतः पहले मीमांसा कर्म के महत्व को स्वीकार करती है। इसके मत में वेद का कर्मकाण्ड ही सार्थक है, ज्ञानकांड निरर्थक है। जैमिनि ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि आम्नाय (वेद) का मुख्य प्रयोजन कर्म का प्रतिपादन है। अतः उससे भिन्न ज्ञान-प्रतिपादक वाक्य निरर्थक है[1]। उपर्युक्त विवेचन के प्रकाश में जब हम हिन्दी के निर्गुण सन्तों पर दृष्टि डालते हैं तो विदित होता है कि संतमत में कर्मकांड का विरोध किया गया है। सन्तों ने कर्म को बन्धन का कारण माना है। कबीरदास कहते हैं कि जब तृष्णा तन रूपी तुरग पर सवार होकर, विषय वासना रूपी बाज को साथ ले जीव का शिकार करने चलती है तो मन और कर्म रूपी सिपाही मदद के लिए उसके साथ रहते हैं[2]। यहाँ सिपाही के रूप में कर्म जीव का घेर कर पकड़ने और मारने का काम करता है। अतः वह बन्धन रूप ही है। संत शिवनारायण भी कहते हैं कि इस संसार में आशा से प्रेरित होकर लोग निंदनीय कर्म करते हैं। यही उनके बन्धन का हेतु होता है। सारा संसार काल और कर्म के चक्र में जकड़ा हुआ है। जब तक यह कर्म बंधन है अपना निश्चित मार्ग नहीं प्राप्त हो सकता[3]। इसी प्रकार दरिया साहब (बिहार वाले)[4] तुलसी साहब[5], गुलाल साहब[6] आदि ने भी कर्म को बंधन तथा काल के सहयोगी रूप में वर्णित किया है।

---

१ भारतीय दर्शन, पृ० १०४

२ तन तुरंग असवार मन कर्म पियादा साथ।
त्रिस्ना चली सिकार को विषै बाज लिए हाथ॥
—स० बा० स०, भाग १, पृ० ५६

३ शिवनारायणी सम्प्रदाय और उसका साहित्य, पृ० २१६

४ कहै दरिया मन कैद कर, जो चाहो सत नाम।
करम काटि नर निजपुर, जाय बसै निज धाम॥
—स० बा० स०, भाग १, पृ० १२४

५ कर्म सारथी बुधि बसी, सुरत रही अधीन।
आसा के बस में पड़ी बासा विपति मलीन॥
—वही, पृ० २३४

६ कठी काठ कर्म जो डारै, अजपा जपै जोति तब बारै।
सुमिरन जोति वैस्नव होई, कहै गुलाल अतीथ है सोई॥
—महात्माओं की वाणी पृ० २७१

संत गोविन्द साहब भी कर्म को 'लैकार' करने की बात कहते हैं[1] जिससे कर्म का बंधन होना ही सिद्ध होता है। कर्म विरोधी यह भावना भारतीय चिन्ताधारा के लिए कोई नयी वस्तु नहीं है। बौद्धों, सिद्धों और नाथयोगियों ने भी कर्म को बंधन रूप बताकर उससे मुक्त होने का उपदेश दिया है। इससे पूर्व व्रात्यों ने वैदिक कर्मकांड का विरोध किया था। पाशुपतमत में भी कर्म को पाश या बंधन कहा गया है। 'नाथयोगियों के कुछ पूर्व यह मत काफी प्रबल था। हुएन्त्सांग ने अपने यात्रा-विवरण में इसका उल्लेख बारह बार किया है। वैशेषिक दर्शन के टीकाकार प्रशस्तपाद शायद पाशुपत ही थे[1]।' इस मत ने जन जीवन के माध्यम से सन्त मत को प्रभावित किया हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। किन्तु वास्तविकता यह है कि मुस्लिम विजय के अनन्तर इस देश में कर्मकांड के लिए अनुकूल वातावरण नहीं रह गया था। सन्तों ने स्थिति की गम्भीरता को भली प्रकार समझते हुए कर्मकांड एवं बाह्याचार का विरोध किया।

रामसनेही सन्तों ने सन्त मत की एतद्विषयक मान्यता को पूर्णरूपेण स्वीकार किया है। साम्प्रदायिक साहित्य में कर्म को कीचड़[2], जाल[3], काटा[4], कुआं[5] कुत्ता[6], भार[7] आदि कहकर संसार के लिए दुःखदायी कहा गया है। कहीं-कहीं कर्म की

---

१ छोरि अनेक भ्रम को कर्म कियो लैकार।

—गोविन्द साहब की हिन्दी रचनाएँ, पृ० २२

१ नाथ सम्प्रदाय, पृ० १४६

२ करम कलण में सबही कलीया
काढ पकड मेरी बाहीं

—रामदास कृत हरिजस, प० सं० १२

३ करम जाल मे रामदास बंधिया सब ही जीव।
आप आप मे पच मुवा विसर गया निज पीव॥

—रामदास की वाणी, प० सं० ५६

४ माया मेड, कांटा कर्म, तन कू कष्ट अपार।

—अणभैवाणी, पृ० ६०

५ करम कूप मैं जुग पड्यो हुवा सब ससार।
रामदास से नीसर्‌या सतगुरु सबद विचार॥

—रामदास की वाणी, प० सं० ५६

६ कूकर रूपी करम है सबै जगत के मांय।
रामदास पौंचे नहीं सूही भूक मर जाय॥

—वही, प० सं० ५०

७ करम तणा बहु भार तें गुरू उतारे पार।

—रामस्नेही सन्त वाणी, पृ० १५७

व्यापकता का भी विशद वर्णन मिलता है। रामचरण कहते हैं कि कर्म-पाश में बद्ध जीव स्वभावतः चैतन्य होते हुए भी मूर्ख बना हुआ है[१]। दयालुदास उसकी व्यापकता का वर्णन करते हुए नर नारी, राजा-प्रजा, वर्णाश्रम धर्म तथा संसार के समस्त जंजालों को कर्म की देन बताते हैं[२]।

कर्म के इस कठिन बन्धन से मुक्त होने का केवल एक ही मार्ग है, और वह है रामनाम। दरिया साहब कहते हैं कि राम का सुमिरण करने से कर्म रूपी भ्रम की समाप्ति हो जाती है[३]। रामचरण कहते हैं कि जिस प्रकार सूर्य के उदय होने से रात का अन्धकार समाप्त हो जाता है उसी प्रकार नाम के प्रकाश से कर्म और भ्रम समाप्त हो जाते हैं[४]। उनके अनुसार कर्म रूपी वन की सफाई नाम कुठार से ही हो सकती है[५]। रामदास के मत से जन्म-जन्म तक पुण्य करने से भी कोई मनुष्य कर्म-बन्धन से मुक्त नहीं होता, किन्तु रंचमात्र नाम लेने से उसके बन्धन सहज ही कट जाते हैं[६]। कर्म के दरबार में अज्ञान रूपी अंधकार का पर्दा लगा हुआ है जिसमें गंवार भ्रमित हो जाते हैं, किन्तु भजनानन्दी प्राणी बेखटके प्रविष्ट हो जाते हैं[७]। नाम या शब्द का दाता सद्गुरु है। अतः कर्म बन्धन से मुक्त होने का श्रेय उसी को दिया जा सकता है। इसीलिए दरिया साहब कहते हैं —

---

१ कर्मां के वस जीव है जासूं कछू न होय।
चेतन देही पाय के रह्यो ज मूरख सोय॥

—अणभैवाणी, पृ० १२०

२ पुरुष नार क्रम तै भये राव रंक क्रम काल।
च्यार वरण आश्रम क्रम, रामा जग जंजाल॥

—दयालुदास की वाणी प० सं० २३७

३ दरिया सुमिरे राम को कर्म भर्म सब चूर।

—रामस्नेही सन्त वाणी पृ० ३०

४ उदय भया आदित्य रैण तम होवै नाशा।
भर्म कर्म उठि जाय नाम तव करै प्रकाश॥

—अणभैवाणी, १०२

५ कर्म वन्न परिहार नाम रिपु बडो कुठारा।

—वही पृ० १०५

६ अनेक जन्म ताइ पुन करै तोई करम न जाय।
रामदास रंच नाम लै छिन मायें कटि जाय॥

—रामदास की वाणी, प० सं० ५६

७ करमा का दरवार आडा परदा तम का
तामें बन्ध्या गंवार रामा हर भज नीसरया॥

—रामदास की वाणी, प० सं० ५६

दरिया गुरु गरुवा मिला कर्म किया सब रद्द ।
झूठा भ्रम छुडाय कर पकडाया सत शब्द[1] ॥

कर्म साधना का इस विवेचना से हम इस निष्कष पर पहुँचते हैं कि इन सन्तो ने कर्म के विस्तार को मायाकृत माना है । दयालुदास कहते हैं कि माया रूपी मदारी जीव रूपी बन्दर को काम की रस्सी में बाधकर कम के द्वारा शासित करके नचाता है[2] । एसी स्थिति म कर्म से मुक्ति मिलन का तात्पय है, प्रकारान्तर से माया से मुक्ति । इस स्थिति मे पहुँचने पर साधक-साध्य मे पृथकत्व नहीं रह जाता । इसका अनुभव शरीर धारण करते हुए भी किया जा सकता है । यह जीवन्मुक्तावस्था साधना की परिणति में ही प्राप्त होती है ।

भक्ति-साधना और रामसनेही सम्प्रदाय

भक्ति का महत्व

मानव जीवन के परम लक्ष्य की प्राप्ति के सर्वाधिक सुगम एव सुनिश्चित साधन के रूप म भक्ति का महत्व निर्विवाद है । भारतीय अध्यात्म-साधना में इसीलिये इसे श्रेष्ठतम स्थान दिया गया है । गीता मे इसकी महत्ता की ओर सकेत करते हुए कहा गया है कि अनन्य भक्त को ही भगवान् के दर्शन होते हैं, जो न वेद मे, न तप से, न दान से और न यज्ञ से ही सम्भव है[3] । 'भागवत' मे भक्ति माग को विश्व कल्याण का साधक कहा गया है[4] । नारद-भक्ति-सूत्र' मे भी भक्ति को कर्म, ज्ञान और योग से श्रेष्ठ कहा गया है[5] । कबीर ने नारद की भांति भक्ति को कर्म, ज्ञान और योग से श्रेष्ठ मानते हुए उसे मुक्ति-प्राप्ति का एक मात्र साधन स्वीकार किया है[6] । उन्होंने

---

१ रामस्नेही सतवाणी पृ० २४

२ नाच नाचायो ज्यू नच्यो काम डोर कपि जीव ।
छिटया लाठी सासना करम सामना सीव ॥
—दयालुदास की वाणी, प० सं० ११५

३ नाह वेदैन तपसा न दानेन न चेज्यया ।
शक्य एव विधो द्रष्टु दृष्टवानसिमा यथा ॥
भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेव विधोऽर्जुन ।
ज्ञात द्रष्टु च तत्वेन प्रवेष्टु च परतप ॥
—गीता ११।५३-५४

४ श्री मद्भागवत, ७।६।६

५ सातु कर्म ज्ञान योगोभ्योऽप्यधिकतरा ।
—नारद भक्ति सूत्र-२५

६ भाव भगति विसवास बिन कटै न ससे सूल ।
कहै कबीर हरि भगति बिन मुकति नहीं रे मूल ॥
—क० ग्र०, पृ० २४५

योग-मार्ग को भक्ति के आश्रित कहा है। भक्ति के अभाव मे योग-मार्ग व्यर्थ है[1]। रामसनेही सम्प्रदाय के सन्तों ने भी भक्ति को परम्परागत भारतीय साधना मार्गों मे सर्वोच्च स्थान दिया है। रामचरण भक्ति को संसार सागर को पार कराने वाली नौका के रूप मे पुण्य, पाठ, जप, तप, यज्ञ, वेद, विद्या, योग, तीर्थ, दान, स्नान एवं आदि से उत्तम बताते हैं[2]। वे स्पष्ट शब्दों मे कहते हैं कि जो हरि-स्मरण करता है वही उत्तम है चाहे वह नीच हो चाहे उच्च और भक्तिहीन चाहे उच्च कुलोद्भव ही क्यों न हो स्वपच तुल्य है[3]। दयालुदास भक्ति-भाव को सद्गति का मूल मानते हैं[4]। दरिया साहब ने भी भ्रम और कर्म-बंधन का नाश तथा ज्ञान सूर्य का उदय भक्ति से माना है[5]।

भक्ति की परिभाषा

मनीषियों ने स्वानुभूति के आधार पर भक्ति की अनेक परिभाषाएँ की हैं।

---

१ हिरदै कपट हरि सू नहीं साचो,
कहा भयो जो अनहद नाच्यो।

—क० ग्रं० पृ० १८२

२ भक्ति भव नीर पर जान ये पोत है।
बहुत नरनारि चढ पार हुवा ।।
भक्ति सो धर्म तिहुँ लोक मे को नहीं।
भक्ति मधि धर्म सब नाहि जुवा ।।
अनत पुन पाठ जप तप जग्यादि सं।
वेद विद्या पढ़े जोग धारा ।।
तीरथा दान सनान पर्व्व सुणा।
तोलिए भक्ति सम नाहि सारा ।।

—जिज्ञास बोध तृतीय प्रकरण, छ० १

३ ऊँच नीच हरिको भजे सोही उत्तम जान।
रामचरण हरि भजन बिन ऊँचहि स्वपच समान ।।

—अणभै वाणी, पृ० १२६

४ रामा भक्ती भाव मिल यह सद्गति के मूल।

—श्री रामस्नेह धर्मप्रकाश, पृ० २३६

५ दरिया सुमिर राम को कर्म भ्रम सब चूर ।।
निशि तारा सहजे मिटे (जो) ऊगे निर्मल सूर।

—रामस्नेही सन्तवाणी, पृ० ३०

'शाण्डिल्य भक्ति-सूत्र' में ईश्वर के प्रति परमानुरक्ति को भक्ति कहा गया है[1]। व्यास जी के अनुसार पूजादि में प्रगाढ़ प्रेम होना ही भक्ति है[2]। गर्गाचार्य ने भगवान् की कथा आदि में अनुराग होने को भक्ति माना है[3]। श्री रूपगोस्वामी के मतानुसार ज्ञान और कर्म के प्रभाव से मुक्त होकर निष्काम भाव से निरन्तर कृष्ण का प्रेम पूर्वक ध्यान करना ही भक्ति है[4]। तथापि नारद के मत में अपने सब कर्मों को भगवान् में अर्पण करना और भगवान् का थोड़ा सा विस्मरण होने में परम व्याकुलता का अनुभव करना ही भक्ति है[5]। उपर्युक्त समस्त परिभाषाओं में भक्ति को प्रेममूलक बताया गया है। अतः स्पष्ट है कि ईश्वर के प्रति अहेतुक प्रेम ही भक्ति है, और यही मुक्ति का सरलतम मार्ग है। कहना न होगा, रामसनेही सम्प्रदाय की भक्ति भी प्रेमरूपा है। राम से स्नेह करने के कारण इस सम्प्रदाय का नाम रामसनेही पड़ा। साम्प्रदायिक साहित्य प्रेम भक्ति की चर्चा से भरा पड़ा है। हरिरामदास प्रेम भक्ति की प्राप्ति ही साधना का मुख्य फल मानते हैं।

प्रेम भक्ति मोहि आपो।
माग माग दाता हरि आगे जपू तुम्हारा जापो ॥ टेर ॥
आठ नव निधि रिधि भडारा क्या मागू थिर नाही।
द मोकू हरिनाम खजाना छूट कबहु नहि जाही ॥
इन्द्र अप्सरा सुख विलासा क्या मांगू छिन भगा।
दीजै मोहि परम सुखदाता सेवत ही रहु सगा ॥
तीन लोक राजतप तजू क्या मागू जम त्रासा।
दीजै राज अभै गुरु देवा अटल अमरपुर वासा ॥
आठ पहर औगण अणघड की ता मती निरताल।

---

१ सापरानुरक्तिरीश्वरे।
—शाण्डिल्य भक्ति-सूत्र'—२

२ पूजादि एवानुराग इति पाराशर्य ।
—नारद भक्तिसूत्र—१६

३ कथादिष्विति गर्ग ।
—नारद भक्ति सूत्र—१७

४ अन्याभिलाषिता शून्य ज्ञान कर्माद्यनावृत्तम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलन भक्तिरुत्तमा ॥
—भक्ति रसामृत सिन्धु, पूर्व विभाग, प्रथम लहरी, श्लोक ११

५ नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारिता तद्विस्मरणे परम् व्याकुलतेति।
—नारदभक्ति—सूत्र—१६

जन हरिराम स्वामि अरु सेवक एक भेव दीदार [1] ।।

भक्ति के कुछ प्रमुख-भेद—

नवधा भक्ति—उपासना प्रणाली को दृष्टि में रखते हुए 'भागवत' में भक्ति के नव भेद बताए गये है, जिसे नवधा भक्ति 'या' 'नव विधा-भक्ति' कहते हैं। नवधा-भक्ति के नव अंग ये हैं—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पदसेवा, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन[2]। भक्ति के इन नव अंगों में प्रथम तीन—श्रवण, कीर्तन और स्मरण का लगाव, श्रद्धा और विश्वास से है, पद सेवा, अर्चन और वंदन, रूप से सम्बद्ध हैं और अंतिम तीन दास्य, सख्य एवं आत्म निवेदन-रागात्मिका भक्ति से सम्बन्ध रखते हैं। उपर्युक्त नाना वर्गों में प्रथम और अंतिम से संतों का सैद्धान्तिक विरोध नहीं था। उन्हें आपत्ति थी पाद सेवन, अर्चन और वंदन से, क्योंकि वे रूप के साधक थे। हमारे अध्ययन क्षेत्र के संतों ने नवधा भक्ति के रूढ़ि रूप की निन्दा अनेक बार की है, किन्तु दयालुदास ने नवधा भक्ति' की नयी व्याख्या कर पद सेवा अर्चन और वंदन का सम्बन्ध सद्गुरु और संत से स्थापित करके उसको सर्वथा मतमतानुकूल बना लिया है।

आजवता संतापता कदे न मन अभिमान।
श्रवण कथा रुचि राम रति पूजा साधु विधान ।।
साधु बैण साषा हृदै कदे न पलटै मन्न।
करै कीर्तन एक रस राम भजन हरि जन्न ।।
चरण सेव पूजन जना, वंदन दासा नित्त।
सखा समर्पन भावना रामा सांचे चित्त [3] ।।

कहना न होगा, परवर्ती युग के संतों में इस प्रकार की नवीन व्याख्या करके सगुण भक्ति के तत्त्वों को स्वीकार करने की प्रवृत्ति सी चल पड़ी थी। दयालुदास से पहले निरंजनी संत तुलसीदास ने अपनी वाणी में नवधा भक्ति की नयी व्याख्या करते हुए इसे अपनाया था। उनके अनुसार पाद-सेवन का अर्थ हृदय-कमल स्थित ज्योतिस्वरूप ब्रह्म का ध्यान करना है। 'अर्चन' समस्त ब्रह्माण्ड में ओ३म् का प्रतिरूप देखना है। 'वंदन' साधु, गुरु और गोविन्द को एक मान कर उसकी वंदना करना है। 'दास्य भक्ति' हरि, गुरु और साधु की निष्काम सेवा करना है। 'सख्य भक्ति' भगवान्

---

१ श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश, पृ० १८६

२ श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ।।

—श्रीमद्भागवत ७।५।२३

३ श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश, पृ० २३९

से बराबरी का अभिमान करके, सब मार्गों से गोविन्द प्राप्ति हो सकने के विश्वास के साथ, भगवान् को मित्र समझने की भावना है। 'आत्म निवेदन' दैन्य का भाव है[1]। यही नहीं गुलाल पंथ के यशस्वी संत गोविन्द साहब ने बिना किसी प्रतिबंध के ही नवधा भक्ति करने की बात कही है।[2]

दशधा भक्ति

साधना के विकास के साथ-साथ उसके साधनों में भी विकास का होना सर्वथा स्वाभाविक है। भक्ति साधना के विकास में 'नवधा-भक्ति' से आगे 'दशधा' की अवधारणा इसी विकास क्रम की एक सीढ़ी माना जा सकती है। दशधा-भक्ति' निर्गुण और सगुण दोनों साधनाओं में समान रूप से प्रचलित है। नाभादास ने स्वामी रामानन्द के शिष्यों प्रशिष्यों को 'दशधा भक्ति' का आगर, बताया है[3]। 'भक्तमाल' में ही अन्यत्र उन्होंने चैतन्य महाप्रभु को 'दशधा रस आक्रान्त, कहा है[4]। इसी प्रकार अपनी दूसरी रचना 'अष्टयाम' में उन्होंने अग्रदास को दशधा संपत्ति का अधिकारी बताया है[5]। इन सगुण मार्गी भक्तों की भांति निरंजनी सन्त तुलसीदास ने भी अपनी वाणी में नवधा भक्ति की सिद्धि के बाद अभिनव दशधा भक्ति (प्रेमाभक्ति) की प्राप्ति का उल्लेख किया है[6]। हमारे अध्ययन क्षेत्र के सन्तों की भक्ति का यह स्वरूप

१ योग प्रवाह, पृ० ५०-५२'

२ नवधा भक्ति करैं मुनि नानो
जाहि लखत मिलै सारंग पानी
—गोविन्द साहब की हिन्दी रचनाएं भूमिका, पृ० १८ से उद्धृत

३ औरौ शिष्य प्रशिष्य एक ते एक उजागर।
विश्व मंगल आधार, सर्वानन्द दशधा के आगर॥
—भक्तमाल (रूपकला टी०), पृ० २८८

४ गौड़ देस पाखण्ड मेटि कियो भजन परायन।
करुणा सिंधु कृतज्ञ भये अगनित गति दायन॥
दशधा रस आक्रांत महत जन चरण उपासे।
नाम लेत निह पाप दुरित तिहि नर के नासे॥
—श्री भक्तमाल (वृन्दावन), पृ० ४८३

५ इन कृपा को रूप बरनौं श्री गुरु अग्रपद।
जिनको सुजस अनूप दशधा संपति धनद जिमि॥
—खोज रिपोर्ट (१९०९ १२) भाग २, पृ० १०६९

६ देखिये योग प्रवाह, पृ० ५२

सब प्रकार से मान्य था। रामचरण दशधा की प्राप्ति के बिना सब कुछ असार मानते है —

नव अग नवधा-भक्ति के आपर दशधा सार।
जे दशधा प्रापति नहीं तो सब ही जाण असार ॥
तो सबही जाण असार सार बिन क्तव फीको।
देखो हिये विचार नाम नवधा शिर टीको ॥
रामचरण भज राम कूं धाद्या दृढ इक्तार।
नव अग नवधा-भक्ति के आपर दशधा सार[१] ॥

एकादश आसक्तिया

'नारद भक्ति-सूत्र' म भक्ति को प्रेमरूपा मानते हुए उसे ग्यारह आसक्तियो के रूप म बाँटा गया है। ये ग्यारह आसक्तिया निम्नलिखित है—(१) गुणमाहात्म्यासक्ति, (२) रूपासक्ति (३) पूजासक्ति, (४) स्मरणासक्ति (५) दास्यासक्ति (६) सख्यासक्ति, (७) कातासक्ति, (८) वात्सल्यासक्ति, (९) आत्मनिवेदनासक्ति, (१०) त मयासक्ति (११) परम विरहासक्ति[२]। जिन भक्तों को प्रेमरूपा भक्ति की प्राप्ति हो जाती है उनम ये सभी आसक्तियाँ प्राप्त होती हैं। हम प्रारम्भ मे ही कह आये हैं कि रामसनेही सम्प्रदाय की भक्ति प्रेमरूपा है। साम्प्रदायिक साहित्य के अनुशीलन स विदित होता है कि रामसनेही सन्तो न अपनी वाणी मे सहज ढग से इन एकादश आसक्तियो का समावेश कर दिया है।

भक्ति के साधन

भक्ति विषयक सस्कृत ग्रथो म भक्ति के अनेक साधनों का वर्णन किया किया गया है, जिनमे सत्सग, अखड भजन, गुण कीर्तनादि तथा सत कृपा महत्वपूर्ण हैं।

सत्सग भक्ति का अ यतम साधन है। सत्सग की श्रेष्ठता पर प्रकाश डालते हुए भगवान् कृष्ण ने उद्धव से कहा था कि 'जगत् की विविध आसक्तियो का उन्मूलन सत्सग के द्वारा होता है। मुझे वश मे करने का जैसा साधन सत्सग है, वैसा न योग है, न साख्य न धर्म-पालन और न स्वाध्याय ही। तपस्या, त्याग, इष्टापूर्त और

---

१ समता निवास द्वितीय प्रकरण छ० ३६

२ गुणमाहात्म्यासक्ति रूपासक्ति, पूजासक्ति स्मरणासक्ति, दास्यासक्ति सख्यासक्ति, कान्तासक्ति, वात्सल्यासक्त्यात्मनिवेदनासक्ति, त मयतासक्ति, परमविरहासक्ति, रूपा एकधाप्येकादशधाभवति।

—नारद भक्ति, सूत्र, सूत्र ८२

दक्षिणा से भी मैं वैसा प्रसन्न नहीं होता। यहाँ तक कि व्रत यज्ञ, वेद तीर्थ और यम नियम भी सत्संग के समान मुझे वशीभूत करने मे समर्थ नही है[1]। रामसनेही सन्तो ने सत्संग की अनेक प्रकार से महिमा गाते हुए इसका विधान किया है।

भक्त के लिए अखंड भजन का अभ्यास अत्यन्त आवश्यक है। 'नारदभक्तिसूत्र' मे इस भक्ति के प्रमुख साधनो में स्थान दिया गया है[2]। गोस्वामी तुलसीदास तो यहा तक कहते है कि जल के मन्थन से चाहे घी निकल आवे, बालू से चाहे तेल निकले किन्तु भगवद्भजन बिना भवसागर को कदापि नही पार किया जा सकता[3]। स्वामी रामचरण भजन के माहात्म्य का वर्णन करते हुए कहते हैं, कि भजन से सब प्रकार के भ्रम दूर हो जाते हैं, भजन से कर्मबंधन छूट जाता [illegible] और भजन के ही प्रताप से हृदगत मलिनता विनष्ट हो जाती है तथा मन निर्मल हो जाता है[2]। इसीलिए हरिरामदास अन्य देवी देवताओ को छोडकर अहर्निश राम भजन करने का उपदेश देते है[4]। दरिया साहब ने भी राम के स्मरण से कर्म, भ्रम एव अज्ञानता की निशा के अवसान तथा ज्ञान सूर्य के प्रकाशित होने चर्चा की है[5]।

भगवान् के गुणो को सुनने एव उसके कीर्तन मे हमारे मन मे भगवान् के प्रति आस्था बढती है और हमारी भक्ति भावना का विकास होता है[6]। 'भागवत मे कहा गया है कि जिसने भगवान के नाम-गुण की चर्चा कभी नही सुनी, वह मनुष्या कुत्ते, सुअर ऊँट और गधे से भी अधिक निन्दनीय है। जिन कानो ने भगवल्लाल

---

१ भागवत, ११ १२ १-२

२ नारद भक्ति-सूत्र, सूत्र-३६

३ बारि मथे घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ, यह सिद्धांत अपेल॥
—मानस-उत्तरकाड, दोहा १२२ क (गीता प्रेस)

४ राम के भजन से भ्रम सब भाजिया राम के भजन से कर्म छूटा।
राम के भजन से मन्न निर्मल भया राम के भजन से मैल खूटा॥
अणभै वाणी, पृ० १६१

५ राम नाम निशिदिन भजो तजो बिडाणी आस।
जन हरिया नर देह सो औसर बीतो जात॥
—श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश, पृ० ५८

६ दरिया सुमिरै राम को कर्म भर्म सब चूर।
निस तारा सहजे मिटे जो ऊगे निर्मल सूर॥
—रामसनेही सत वाणी, पृ० ४४

७ नारद भक्ति-सूत्र, ३७

का गान नही सुना वे सर्पादि के बिल के सदृश हैं और जिस जीभने भगवान् की लीला का गान नही किया वह मेढक की जीभ के तुल्य है[१]। रामसनेही सत भगवान् के गुण, श्रवण और कीर्तन मे पूर्ण आवस्था रखते हैं। वे भगवान् के गुणों का अनेक प्रकार से गान करते और गद्गद् होकर सुनते हैं। महात्मा रामचरण जन्म-मरण के दुख को दूर करने वाले निरजन राम का गुणगान करते हुए कहते हैं—

भज रे मन राम निरजन कू जन्म मरण दुख भजन कू।टेक।
अधनाम शिल सायर पाट्यो राम चन्द दल तारण कू।।
जल बूडत गज के फन्द काटे अजामील अघ जारण कू।
राम कहत गणिका निसतारी युग युग अधम उधारण कू।।
ऊच-नीच की भ्राँत न राखे शरणा की प्रति पालण कू।
रामचरण हरि ऐसे दीरघ अवगुण गुहा निवारण कू[२]।

इसी प्रकार हरिरामदास ने भी गाया है—

ऐसे हैं राम गरीब निवाज।टेक।
भीर परी प्रहलाद उबार हिरण्यकशिपु हणताज।।
या उपदेश दियो ध्रुव सेती अटल बसायो राज।
टेर सुनत वेग हरि आये तार लियो गजराज।।
जन द्रौपा को चीर वधार्‍या भई पच भरताज।
देवल फेर कियो जन साम्हा भक्त नाम द काज।।
दास कबीर घरे लदि बालद आन उतारे नाज।
मीरा जहर कियो चरणोदक राखि भरोसो राज।।
सब सतन के कारज सारे भक्त बिरद की लाज।
जन हरिराम सदा सिषकामा राम सुमर महाराज।।[३]

दरिया साहब ने भी अलख निरजन की कथा सुनने के परिणामस्वरूप श्रवणो के जाग्रत होने की बात कही है।

महापुरुषो एव मन्त जनो की कृपा से भी भक्ति की प्राप्ति होती है। भागवत' मे कहा गया है कि भगवत्सगी पुरुषो के क्षणिक साहचर्य की तुलना, सांसारिक सुख की तो बात ही क्या, स्वर्गादि और उससे भी आगे मुक्ति से भी नही की जा सकती।[४]

---

१ श्रीमद्भागवत २।३।१९-२०
२ अणभै वाणी पृ० ९९२
३ श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश पृ० १४७
४ तुल्याम् लवेनापि न स्वर्ग नापुनर्भवम्।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः।।

—भागवत १।१८।१३

निर्गुण सन्तों ने सत-दर्शन के माहात्म्य का विशद वर्णन किया है। हमारा अध्ययन युग इस सम्बन्ध में अपवाद नहीं है। रामसनेही सम्प्रदाय के सन्तों ने साधु-दर्शन की महिमा का गान किया है। महात्मा रामचरण भक्त-दर्शन का फल बताते हुए लिखते हैं —

सदा सतोषी दास का दर्शण मै फल यह।
रामनाम सिखणाय दे, आपण कछू न लेह॥
आपण कछू न लेह, बहुरि दाबै नहिं बोलै।
जो जो परसन करे, बहुत विधि सासो खोलै॥
रामचरण उनसू सदा कीजे अधिक सनेह।
सदा सन्तोषी दास का दर्शण मै फल यह[1]॥

दयालुदास साधु दर्शन और मिलन का माहात्म्य अगम बताते हुए इसे सर्वसिद्धि और सब पदार्थों का देने वाला बताया है[2]। दरिया साहब के अनुसार साधुसंगति से सकल विषय वासनाओं का नाश हो जाता है[3] और साधक का हृदय पट भक्ति के मजीठी रंग में रंग उठता है[4]।

भक्ति के अन्तराय

जिस प्रकार सत्संग, ईश्वर और सन्तों की कृपा तथा अखंड हरि-भजन आदि से हमारा भक्ति-भावना अधिकाधिक पुष्ट होती है, उसी प्रकार दुष्टों की संगति तथा विषयासक्ति भक्ति में बाधा डालती है और हम संसार में लिप्त करती है। महर्षि नारद ने कुसंग को काम, क्रोध, मोह, स्मृतिभ्रंश बुद्धिनाश एवं सर्वनाश का कारण बताते हुए उसके त्याग पर विशेष बल दिया है[5]। रामसनेही सम्प्रदाय के संतों ने भी कुसंगति-त्याग का उपदेश किया है। दयालुदास ने कुसंगति के परिणामस्वरूप अनेक

---

१ अमृत उपदेश—चतुर्थ प्रकाश, छं० १६

२ सब पदारथ सब सिद्धि दर्शण प्यार मिलाप।
राम महातम अगम है परसें आपो आप॥
—श्री रामस्नेह धर्मप्रकाश, पृ० २३८

३ दरिया संगत साधु की कल विष नासे धोय।
—रामस्नेही सन्त वाणी, पृ० ८०

४ दरिया संगत साध की सहजे पलटै अंग।
जैसे संग मजीठ के कपड़ा होय सुरंग॥
—वही पृ० ८०

५ नारद भक्ति सूत्र—४३ ४४

दु ख बताते हुए इसे समस्त दोषो का द्वार और अपयश का मूल बताया है[1]। रामचरण ने भी कुसगति के दुर्विपाक की चर्चा की है और उससे विरत रहने की शिक्षा दी है। कुसगति मे पडे हुए मनुष्य की तुलना लोहार की 'हाट' म पडे हुए पतग से करते हुए वे कहते हैं —

> कुसगति मैं रामचरण तू मति बैठे जाय।
> जैमे हाट लोहार की कोइ पडे पतगो आय ॥
> कोइ पडे पतगो आय गाठ का कपडा जारै।
> यू कुसगी सग शोभ आगली माम बिगारै ॥
> तातै सगत कीजिए जो मधी मध सुभाय।
> कुसगत मै रामचरण तू मति बैठे जाय[2] ॥

विषय वासनाएँ भी भक्ति के बाधक तत्वो में से हैं। गीता म भगवान् कृष्ण ने मनुष्य को विषयो से मुक्त होने का उपदेश देते हुये कहा है कि विषयो के चिन्तन से मनुष्य की उसके प्रति आसक्ति होती है, आसक्ति से काम उत्पन्न होता है, काम से क्रोध की उत्पत्ति होती है, क्रोध से समोह होता है, समोह से स्मृतिभ्रश, स्मृति भ्रश से बुद्धिनाश और बुद्धिनाश मे मवनाश हो जाता है[3]। सन्तो ने विषय वासना की बडी निन्दा की है और उसे नरक का मार्ग बताया है। रामसनेही भक्त रामचरण कहते हैं कि जो मनुष्य विषय रूपी बेलि को उखाड कर उससे मुक्त हो जाता है उसे ज्ञान, भक्ति और वैराग्य की प्राप्ति होती है और जो विषय की वाछा करता है वह हर समय भोग और रोग स आक्रान्त रहता है। इन्द्रिय-स्वार्थ के कारण उसमे किसी प्रकार की अच्छाई-बुराई के निर्णय का विवेक नही रह जाता। अत मनुष्य को विषय मुक्त लोगो की सगति करनी चाहिए तथा विषयी जनो का त्याग कर देना चाहिए[4]।

---

१ कुसगति मे दुख अनत है सब दोषण को द्वार।
राम अवजस मूल है पथ कावो मिल ख्वार ॥
—दयानुराम की वाणी प० स० १६८

२ अमृत उपदेश—चतुर्थ प्रकाश छ० ४५

३ ध्यायतो विषयान्पुस सगस्तेषूपजायते।
सगात्सजायते काम कामात्क्रोधोऽभिजायते।
क्रोधाद्भवति समोह समोहात्स्मृतिविभ्रम।
स्मृतिभ्रशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति ॥ —गीता—२।६२-६३

४ विषिया बवर उखान भये निर्विष जन कोई।
ग्यान भक्ति वैराग जास कू प्रापति होई ॥
विषई बछे भोग रोग अधिको उपजावे।
इन्द्रिय स्वारथ ओट खोट कोइ निजर न आवे ॥
निर्विष सगति कीजिए विषई सग निवार।
त्याग कह्यो भागवत मे पुरुष मालि विचार ॥
—अमृत उपदेश चतुर्थ प्रकरण, छ० ६४

दयालुदास ने भी मोह वासना रूपी पंक से निकल कर भगवत्प्रेम के जल में प्रवेश करके भव दुःखों से छुटकारा पाने की शिक्षा दी है।[1] इसी प्रकार स्त्री, धन, अभिमान, दम्भ आदि की गणना भी भक्ति के अन्तरायों में करते हुए, रामसनेही संतों ने इनसे दूर रहने के लिए निरन्तर चेतावनी दी है।

रामसनेही सम्प्रदाय की भक्ति का स्वरूप

वैसे तो भक्ति के स्वरूप पर कई दृष्टियों से विचार किया जा सकता है, किन्तु रामसनेही सम्प्रदाय की भक्ति का केवल दो प्रमुख दृष्टियों से ही विवेचन किया जायगा (१) शास्त्रीय दृष्टि (२) भावनागत दृष्टि।

शास्त्रीय दृष्टि—शास्त्रीय दृष्टि से भक्ति के दो प्रकार बताये गये हैं—गौणी और परा। यह विभाजन भक्ति के साधन और साध्य पक्ष पर आधारित है। इसलिए गौणी भक्ति को साधन भक्ति तथा पराभक्ति को साध्य भक्ति भी कहते हैं। गौणी भक्ति के पुनः दो भेद किये गये हैं वैधी और रागानुगा[2]। वैधी भक्ति शास्त्रानुमोदित है। स्वाभाविक स्व-रानुराग न होने पर भी नैत्यिक सन्ध्योपासना के रूप में इसका विधान होता है[3]। इसे मर्यादामयी भक्ति या मर्यादा-मार्ग भी कहते हैं[4]। रागानुगा भक्ति वस्तुतः परा या साध्य भक्ति के दो भेदों—भावभक्ति और प्रेमभक्ति में से भावभक्ति का अनुगमन करने की इच्छा या तृष्णा से होती है। कहना चाहें तो हम कह सकते हैं कि वैधी और रागानुगा नामक साधन भक्ति के दोनों सोपानों से होकर भक्त परा या साध्य भक्ति के क्षेत्रान्तर्गत भाव-भक्ति को प्राप्त करता है। रागानुगा भक्ति के भी दो भेद बताये गये हैं—कामानुगा और सम्बन्धानुगा[5]। कामानुगा भक्ति में भक्त श्री कृष्ण के माधुर्य को देखकर या कृष्ण की मधुर लीलाओं को सुनकर कभी उनके साथ सम्भोग या रमण की इच्छा से और कभी अपने भीतर कृष्ण के पितृत्वादि के मनन या अनुराग से उनका प्रेम प्राप्त करने की इच्छा करता है। सम्बन्धानुगा भक्ति में वात्सल्य, सख्य आदि भावों के लोभी भक्त व्रजराज, सुबल आदि की भाँति भाव एवं चेष्टायें करते हैं।

---

१ मोह वासना नीर मंझि नर देह कदे नहिं गालिए।
जन रामा हरि प्रेम विच गल्या त भव दुःख टालिए।

—रामस्नेहधर्मप्रकाश, पृ० २८८

२ भक्ति 'रसामृत सिंधु पूर्व विभाग द्वितीयसाधन भक्ति, श्लोक ३

३ वही, श्लोक ३, ४

४ वही, श्लोक ७६

५ वही, श्लोक ९३ ९४

परामक्ति सिद्ध दशा की भक्ति है। इसे साध्य भक्ति भी कहते हैं। इसके भी दो भेद किये गये हैं-भाव भक्ति और प्रेम भक्ति। भाव और प्रेम मे कारण-कार्य सम्बन्ध है। भाव प्राथमिक अवस्था है, जिससे प्रेम की उत्पत्ति होती है। वैधी और रागानुगा साधन भक्तियो के अभ्यास से जब साधक के विशुद्ध सत्व प्रधान चित्त में विशेष प्रकार का द्रवी भाव उत्पन्न हो जाता है तब उसे भाव कहते हैं। यह अवस्था आगे प्रकाशित होने वाले प्रेम सूर्य का उष काल है। भावभक्ति को रागात्मिका भक्ति भी कहते हैं। इसके दो भेद किये गये हैं-काम रूपा और सम्बन्ध रूपा[1]। जो भक्ति सम्भोग-तृष्णा को अपना अंग बना लेती है, वह कामरूपा भाव भक्ति है। यह भक्ति गोपिकाओं में पाई जाती है। कृष्ण के पितृत्व आदि के अभिमान को सम्बन्ध रूपा भाव भक्ति कहते हैं। नन्दादि अहीर सम्बन्ध रूपा भक्ति के उदाहरण है।

भक्ति की विविध कोटियों मे प्रेम-भक्ति का सर्वोच्च स्थान है। इस भक्ति को पाकर मनुष्य सिद्ध हो जाता है अमर हो जाता है तृप्त हो जाता है और भगवान् के अतिरिक्त उसे किसी भी बात की चिन्ता नहीं रहती[2]। जिस सौभाग्यशाली के चित्त में यह अपूर्व प्रेम उत्पन्न होता है उसकी मुद्रा को विद्वान् लोग भी भली प्रकार समझने में असमर्थ रहते हैं[3]।

राम सनेही सम्प्रदाय में साधन और सिद्ध अथवा गौणी एवं परा भक्ति के दोनो प्रकार मान्य हैं। साध्य दशा की भक्ति को स्वीकार करने में साधक का लक्ष्य पूर्ण प्रेम की अवस्था प्राप्त करना होता है। इसके अन्तर्गत पूजा अर्चा, जप, ध्यान, आदि का विधान है। मूर्ति-पूजा का विरोधी तथा निर्गुणोपासक होने के नाते व्यावहारिक रूप से इनकी साधना मे इन तत्वो को स्थान नही दिया गया है। इतना ही नहीं वरन् इनके साम्प्रदायिक साहित्य में अनेक स्थलो पर नवधा-भक्ति को व्यर्थ भी कहा गया है[4]। फिर भी अनुशीलन से विदित होता है कि वैधी साधना का अन्तर्मुखी स्वरूप इन सन्तों को मान्य था। इस सम्बन्ध में दयालुदास की निम्नलिखित पंक्तियाँ ध्यान देने योग्य है —

---

१ भक्ति रसामृत सिंधु पूर्व, विभाग, द्वितीय साधन भक्ति लहरी, श्लोक ८२

२ नारद भक्ति सूत्र, ४

३ भक्ति रसामृत सिंधु, पूर्व विभाग, प्रेम भक्ति लहरी, श्लोक ८

४ (क) सांख्य योग औ नौधा भक्ती।
गुपता में इनकी इक विरती॥

—रामस्नेही मतवाणी, पृ० ६५

(ख) दरि ह्व ८ नवधा भक्ति भरम उरझात है।

—समतानिवास-द्वितीय प्रकरण, पृ० ३०

मन-माला गुरु तिलक तत, सत सजम इकतार ।
शील सुच्यता जानिये धोती ध्यान अपार ।।
रामा काया कलस में प्रेम-नीर भरपूर ।
मनसा-मंदिर में जाय के न्हावत नित हिजूर ।।
देव निरंजण पूजिये आतम-पाती आद ।
प्रीत पुसप चित चदन पूजा-भाव सुजाद ।।
नवधा अग सुनाम ले मन पातर इक सार ।
सहज समपन कीजिए घटा-सबद अपार ।।
रामा आनद आरती दया-परम परसाद ।
एक दमा आनद सदा सौरय सगत साद ।।
दास जना उपदेश नित सिमरण पतव्रत राम ।
पट गुण ध्यान उचारणा अजपाजाप प्रणाम ।।
अनुभव जन आचार है राम रिख्या मरजाद ।[1]
फल दरसण परसण भया मेटण भजमस ब्याद ।।

सिद्ध दशा अथवा पराभक्ति प्राप्त होने पर भक्त को किसी प्रकार की कामना नहीं रह जाती । वह निष्काम हो जाता है । उसकी लव निरन्तर अपने आराध्य मे लगी रहती है । भगवान के विरह मे वह रात दिन तड़पता रहता है और विरह की अग्नि मे उसके कर्म भोगों का नाश हो जाता है । लव' 'विरह' और 'परचा' के अगों मे रामसनेही सन्तो ने इसी पराभक्ति की विभिन्न स्थितियों का निरूपण किया है । स्वामी रामचरण निष्काम भाव से आराध्य के चरण कमल की सेवा की याचना करते हुए कहते है —

निशिवासर हरि आगे नाचू चरण कमल की सेव आचू ।
स्वग लोक का सुख नहि आचू जनम पाय हरिदास कहाऊ [2] ।।

गगाराम कृत 'हरिरामदास की परची' म स्पष्ट रूप से पराभक्ति का विधान किया गया है —

यह परा जु भक्ती धर्म सु रक्ती कहो सु उक्ती सजुक्ती ।
अति आतम लुक्ती पवि अनुरक्ती निकट निरक्ती यो मुक्ता ।।
मिल एकमेक स्वामि विसक सेवक लेक सुक्ख लहै ।
पय औ हविमेक सो दरमेक रसपीवेक भिन्न रहै[3] ।।

---

१ दयालुदास की वाणी प० स० ३१३–१४

२ श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० १८६

३ श्री रामस्नेह धमप्रकाश, पृ० ३३०

इस सम्बन्ध में इतना स्मरण रखना चाहिए कि इन सन्तों ने भक्ति के शास्त्रीय रूप का क्रमबद्ध निरूपण नहींकिया है, फिर भी उनके स्फुट छन्दों में इसके तत्व किसी न किसी रूप मे अवश्य मिल जाते है। ज्ञातव्य है कि शास्त्र और शास्त्रीयता का आग्रह भक्ति के क्षेत्र मे अत्यन्त प्रारम्भिक स्थिति का द्योतक है। श्रेष्ठ भक्त तो शास्त्र-बन्धन से सदैव ऊपर रहता है।

भावनागत दृष्टि—भावनागत दृष्टि से विचार करने पर हम देखते है कि रामसनेही सम्प्रदाय के साहित्य में दास्य, दाम्पत्य, तथा शांत भाव की प्रधानता है। आगे इन पर पृथक् पृथक् विचार किया जायगा।

दास्य भाव की भक्ति-भक्त अपने आराध्य की वंदना जब दास्य भाव से करता है तो वह उन्हे दीनबन्धु, दयालु,भक्त वत्सल,अघनाशक, पतितपावन आदि अनेक विशेषणों से युक्तकरते हुए अपने को दीन, हीन, अधम, पतित और सर्वथा असमर्थ बताकर प्रभु के चरणों में प्रस्तुत करता है। दास्य भाव की भक्ति से अहंकार का नाश हो जाता है। परिणामस्वरूप भक्त आत्मविस्मृति की अवस्था मे पहुंच जाता है और उसकी पार्थिव पदार्थों की एषणा समाप्त हो जाती है। यह भाव निर्गुणोपासक संतो और सगुणोपासक भक्तों मे समान रूप से प्रचलित है। संतमत के अग्रदूत कबीर की 'कबिर कुत्ता राम का मोतिया मेरो नाऊं'[1] और 'मैं गुलाम मोहि बेचि गुसाईं'[2] तेरी गति तूं ही जाने कबीरा तो सरना'[3] आदि पंक्तियों में जैसा दैन्य और समर्पण का भाव व्यक्त हुआ है वैसा अन्यत्र सहज ही सुलभ नहीं हो सकता।

अन्य पूर्ववर्ती निर्गुणिया संतो की भांति रामसनेही सम्प्रदाय में भी दास्य निष्ठा को महत्व दिया गया है। साम्प्रदायिक साहित्य मे प्राप्त विनय और दैन्य के पदो में यह भावना स्पष्ट झलकती है। हरिरामदास अपने को माधव का चाकर बताते हुए कहते हैं।—

माधव का चाकर मैं हूं हो।

आदि अंत मध्य नाम तुम्हारो पार उतारण तै हूं हो। टेक।

मैं दुखिया काहे दारिद्री तेरे कमी न काई।

दीन बन्धु दाता सब ही का माग परापति पाई॥

१ क० ग०, पृ० २०, साखी १४
२ वही, पृ० १२४ पद, ११३
३ वही, पृ० १६२ पद, २२६

लीन लोक का ठाकुर तुम हो और किसी को जाचू ।
तुमही हरता तुम ही करता नाच नचाओ नाचू ॥[1]

रामचरण ऋद्धि-सिद्धि, धन-धाम, यहा तक कि स्वर्ग सुख की कामना न करते हुए जन्मान्तर में भी हरि के कमलवत् चरणो की सेवा-प्राप्ति की आकाक्षा करते है[2] । रामदास और दरिया साहब ने भी अपने को क्रमश राम का मेहतर[3] और दासी[4] कहा है । यही नहीं इन सन्तो की वाणी म दास्य भाव की चरम परिणति हम तब देखते है जब ये अपने को राम का कुत्ता बताकर सर्वतोभावेन आत्म समर्पण कर देते है[5] ।

आत्म समर्पण के क्षण मे भक्त भगवान् की दया और करुणा का पात्र बनने के लिए अपने को दुनियाँ में सबसे बडा नीच पतित, दीन असहाय और अनाथ बताता है । यह आत्म समर्पण की भावना ही भक्तो का सर्वस्व है । यही वैष्णवो का प्रपत्ति मार्ग

---

१ श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश, पृ० १५४

२ निशिवासर हरि आगे नाचू चरम कमल की सेवा जाचू । टेर ।
स्वर्ग लोक का सुख नही जाचू जनम पाय हरिदास कहाऊ ॥
च्यार पदार्थ मनां विसारू भक्ति बिना दूजो नहि धारू ।
रिधिसिधि लक्ष्मी काम न मेरे सेऊ चरण शरण रहूँ तेरे ॥
शिव सनकादिक नारद गावै सो साहिब मेर मन भावै ।
राम राम इक अज हमारी रामचरण कू द्यो भक्ति तुम्हारी ॥

—अणभै वाणी, पृ० १००३

३ रामा मैतर राम का भाडूदार गुलाम ।
ऐंठा टूका डारिये साह करु सिलाम ॥

—रामदास की वाणी, प० स १८

४ साहब मेरे राम है मैं उनकी दासी ।

—अनुभव गिरा, पृ० १६५

५ (क) रामा कुत्ता अलेक का सदा धणी की लार ।
भावै टूका डारिये भावै गरदन मार ॥
गले तुमारी डोरडी रजा पडे ज्या राख ।
रामदास की बीनती सांई सुनिये साप ॥

—रामदास की वाणी (हस्तलिखित), प० स० १८

(ख) तुमरे घर को रामजी मैं हूँ मोत्यो स्वान ।
रच्छया करि मलि दुरि करो मैं नही तज्ञ निधान ॥

—श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश पृ० १६०

है। रामसनेही सम्प्रदाय के साहित्य मे आत्म समर्पण या आत्मनिवेदन सम्बन्धी पदों की सख्या पर्याप्त है। दयालुदास कहते हैं —

राखिये महाराज राज शरण राम तेरी।
कली काल जिव विहाल सार अबे मेरी ॥ टेर ॥
मन असाध पच व्याध करते हैं घणेरी।
भम जाल कम काल ठगा मे बसेरो ॥ १ ॥
काम क्रोध लह न बोध चुगल एक चेरी।
मोह द्वार अधकार जडता जभेरी ॥ २ ॥
वस्यो वास काल ग्राम सास लत्त बेरी।
द्याल फरियाद राम इच्छा आप केरी[1] ॥ ३ ॥

मोह-समूह मे मस्त जीव की रक्षा रामचरण राम कीशरण-प्राप्ति में ही बताते हैं —

मैं हूँ अनाथ नाथ साहि हाथ मेरो।
कीजिए सनाथ तात आप साथ तरो ॥ टेक ॥
जगत का अजाल जाल भम कम घेरो।
ज्ञान हरण मरण व्याधि जन्म मरण फेरो ॥
काम दाम कपट झपट नाहि साच मेरो।
हाय भाय करत जाय अवधि को निवेरो ॥
तात मात सुतन सजन सकल स्वाद केरो।
माम धाम अय भरत स्वारथी सनेरो ॥
मोह के समूह परत करत काल हेरो।
रामचरण राम शरण साथ सगति सेरो[2] ॥

अपने अपराधों की चर्चा करते हुए वे प्रभु से अपने बिरद की रक्षा के लिए प्रार्थना करते हैं —

राम तुम्हारे नाम की मैं बलि बलिहारी।
जीव तिरत कहा बेर सायर सिलतारी ॥ टेक ॥
मैं अपघाती मन मुखी नहि सोच विचारी।
कूडो कपटी कातरी पण हीण विकारी ॥
अजामील सू अधिक मैं अघ ऊमर सारी ॥
गणिका कैसी गिणति मैं ऐसी मति म्हारी ॥
अवगुण मर्‌या अपूर करि मेरी बोहिथ मारी।

१. श्री रामस्नेह धर्म प्रकाश, पृ० २५०
२ अणभै वाणी, पृ० ६६२

दशूं न्शा कोइ दूसरी नहिं ओट कंरारो......
खुद यह केवट राम जो शरणागत थारी ।
रामचरण जो वूडि है होइ हासि तुम्हारी[1] ॥

माधुर्य भक्ति माधुर्य भाव का भक्ति को शृ गारी अथवा मधुरा भक्ति भी कहते हैं। इस भाव की भक्ति मे भक्त प्रेम को लोक से हटा कर भगवान् से जोडता है। जिस प्रकार लौकिक प्रेम मे मिलन और वियोग की अनेक स्थितियाँ आती हैं उसी प्रकार माधुर्य भाव की भक्ति मे भी सयोग और वियोग की अनेक स्थितियो की कल्पना की जाती है। दोनों म अ तर आलम्बन मात्र का है। प्रथम का आलम्बन लौकिक होता है और दूसरे का अलौकिक प्रथम मे मानलता अधिक होती है और दूसर मे सूक्ष्मता। निगुण स तों की प्रवृत्ति दाम्पत्य भाव का भक्ति म सर्वाधिक रमी है। रामसनेही भक्तो को भी यह भाव अत्य त प्रिय रहा है। साम्प्रदायिक साहित्य म दाम्पत्य रति के सयोग और वियोग दोनों पक्षो का विशद वणन हुआ है।

दाम्पत्य भाव वैष्णव भक्ति का एक आवश्यक अग है। स तो की भक्ति म गृहीत दाम्पत्य भाव का मूल स्रोत वैष्णवो की प्रेमा भक्ति है किन्तु कालान्तर म सन्तो और वैष्णव भक्तो के दाम्पत्य भाव म सूक्ष्म अ तर परिलक्षित होन लगा। प्रथम तो यह कि वैष्णवों की भक्ति व्यक्त क प्रति है और निगुणोपासक होने क कारण स तो की भक्ति अव्यक्त के प्रति। अत प्रथम की अभिव्यक्ति मे स्थूलता और दूसर म तद्गत सूक्ष्मता के दशन होते हैं। दूसरे यह कि वैष्णव भक्तो ने अपने को प्रमिका रूप म नही देखा है। उनकी भक्ति के आलम्बन कृष्ण और राम हैं तो आश्रय राधा गोपिया, सीता और उनकी सखिया हैं। कि तु स न्तों ने अपने को ही निरजन राम की पत्नी मानकर आन्तरिक भावनाएँ व्यक्त की है जिसक कारण निगुर्णोपासक स तो की प्रणयानुभूति म अपेक्षाकृत आत्मपरकता अधिक मिलती है। इसक अतिरिक्त उक्त दोनो की प्रम पद्धति मे एक भेद और है वह यह कि वैष्णवो की शृ गारी भक्ति म परकीया प्रेम की प्रधानता है। सूर की गोपिया इसकी आदर्श मानी जाती हैं। उनकी भक्ति का चरमोत्कर्ष राधाभाव' मे होता है। कि तु निगुण सन्तों की भक्ति स्वकीया भाव की है। इस सम्बन्ध म यह उल्लेखनीय है कि निगुण भक्ति की ज्ञानाश्रयी तथा प्रमाश्रयी— दोनो शाखाओ में दाम्पत्य रति का यही स्वरूप अपनाया गया है। इसलिए इन सन्तो ने, अपने शरीर को पति क शव के साथ भस्म कर दूसरे लोक म उत्तम सयोग की आकाक्षा करने वाली सती' को अपना आदर्श माना है। स तो के दाम्पत्य भाव का उपयुक्त वैशिष्ट्य रामसनेही सम्प्रदाय क स तो की वाणी में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

१ अणभे वाणी, पृ० ६६३

शान्ता भक्ति भक्ति के सभी भावों में शान्त अथवा निर्वेद अतर्भुक्त रहता है। संसार से विरक्ति ही आध्यात्मिक अनुरक्ति का साधन बनती है, फिर भी आचार्यों ने इसे भक्त और भगवान् के बीच स्थापित होने वाले पचभाव-सम्बन्धों में स्थान दिया है। निर्वेद ज्ञान से उत्पन्न होता है। ज्ञान की उपलब्धि पर भक्त चित्तवृत्तियों को सासारिक विषयों से समेट कर भगवदर्पित कर देता है। निर्गुण भक्ति में इसे महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। अद्वैतवाद के प्रभाव से जगत् के मिथ्यात्व की जितनी विशद व्याख्या ज्ञानाश्रयी शाखा में मिलती है उतनी अन्यत्र नहीं। रामसनेही सम्प्रदाय के साहित्य म वैराग्य, पूर्ण पदों की सख्या अपरिमित है। दरिया साहब का एक प्रबोधन सम्बन्धी पद नीचे दिया जाता है जिसमे उन्होंने पाप-पुण्य, सुख-दुख की बेडियो से जकडे हुए, जन्म-मरण के पथ पर चलने वाले जीव को पच इन्द्रिय रूपी ठगो से बचकर राम की शरण मे जाने को कहा है —

जीव बटाऊ रे बहता मारग माई।

आठ पहर का चालना घडी इक ठहरै नाई ॥ टेक ॥
गरभ जनम बालक भयो रे तरुनाई गरवान।
वृद्ध मृतक फिर गर्भ बसरा सरा यह मारग परमान ॥
पाप-पुण्य सुख-दुख की करनी बेडी थारे लागी पाय।
पञ्च ठगों के बस मे पडो रे कब घर पहुँचे आय ॥
चौरासी वासो तू वस्यो रे अपना कर कर जान।
निश्चय-निश्चय होयगो रे तू पद पहुँचे निर्वान ॥
राम बिना तोको ठौर नही रे जह जावै तह काल।
जन दरिया मन उलट जगत सू अपना राम सभाल[1] ॥

काल के विश्वव्यापी जाल से मुक्ति का एकमात्र उपाय राम-भक्ति है। साधना एव अनुभूति के आधार पर रामसनेही भक्तों ने अपनी वाणी में इस तथ्य को विविध रूपों मे प्रस्तुत किया है।

योग-साधना और रामसनेही सम्प्रदाय

योग-साधना विश्व की सर्वाधिक प्राचीन आध्यात्मिक साधनाओ म से है। सिन्धु तटवर्तिनी मोहनजोदडो और हडप्पा की खुदाइयों स प्राप्त ध्यानावस्थित शिव की मूर्तिया आज भी इसकी प्राचीनता का साक्ष्य देती हैं। विक्रम सम्वत् से लगभग २,००० वष पूर्व रचे गये वैदिक साहित्य से भी इसकी ४,००० वष पुरानी परम्परा प्रमाणित होती है। 'ऋक् सहिता' में योग साधना का उल्लेख करते हुए इसे यज्ञ-कर्म की सिद्धि

का साधन बताया गया है[1]। अथर्ववेद[2], यजुर्वेद[3], और सामवेद[4] में भी योग की चर्चा की गई है।

श्वेताश्वतरोपनिषद्' में ध्यानयोग, प्राणायाम और योग-सिद्धि का विस्तृत वर्णन मिलता है[5]। 'कठोपनिषद्' में 'योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रिय धारणाम्' कह कर योग को परिभाषित किया गया है[6]। 'पातंजलियोगसूत्र' का तो प्रतिपाद्य विषय ही योग साधना है। वैष्णवधर्म में अष्टांगयोग को भक्तियोग का आवश्यक अंग माना गया है[7]। कहना न होगा कि जैनियों और बौद्धों ने भी अपनी साधना में योग को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। जैनाचार्य हेमचन्द्र कृत 'योगशास्त्र' में धर्म ध्यान के अन्तर्गत 'पदस्थ' नामक ध्यान में षट्चक्र-भेदन की विधि का उल्लेख है। आचार्य बुद्धघोष का 'विशुद्धिमग्ग' बौद्ध धर्म की हीनयान शाखा का योग सम्बन्धी सर्वाधिक प्रामाणिक तथा उपादेय ग्रंथ है, जिसमें ध्यान योग का विशद विवेचन मिलता है। महायान में भी योग का महत्त्वपूर्ण स्थान है। योग और आचार को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान करने के कारण ही विज्ञानवाद योगाचार के नाम से अभिहित किया जाता है। 'धम्मपद' में योगाभ्यास से ज्ञान की वृद्धि और अनभ्यास से ज्ञान का क्षय बताया गया है[8]। पद्मासन मुद्रा में प्राप्त भगवान बुद्ध की मूर्तियों से भी यह सिद्ध होता है कि उन्होंने ज्ञान प्राप्ति के लिए यौगिक क्रियाओं का आश्रय अवश्य लिया होगा। इस प्रकार हम कहीं उपनिषदों के ज्ञान-योग के रूप में, कहीं गीता के कर्मयोग के रूप में, कहीं पतंजलि के राजयोग के रूप में, कहीं नारद पुलस्त्य, गर्ग, वाल्मीकि, भृगु, बृहस्पति आदि आचार्यों के मंत्रयोग के रूप में, कहीं अंगिरा' याज्ञवल्क्य, कपिल, वशिष्ट, कश्यप और वेदव्यास आदि षट्चक्रभेदी आचार्यों के लययोग के रूप में, कहीं मार्कण्डेय, भरद्वाज, मरीचि, जैमिनि, पराशर, भृगु विश्वामित्र एवं सिद्धों और नाथयोगियों के हठयोग के रूप में, कहीं जैनियों के ध्यानयोग के रूप में और कहीं निर्गुण साधकों के सहज योग के रूप में योग-साधना की बिखरी हुई कड़ियों को खोजकर सहज ही शृंखलाबद्ध कर सकते हैं[9]।

---

१ ऋक् संहिता, १।१८।७
२ अथर्ववेद, ४।६७।४६
३ यजुर्वेद, ११।१।८२
४ सामवेद, १२।६८
५ श्वेताश्वतरोपनिषद्, २।८ १५
६ कठोपनिषद्, २।३।११
७ कल्याण उपासना अंक, वर्ष ४१ अंक १, पृ० २८
८ योगा वे जायते भूरि अयोगा भूरिसंखयो।
— धम्मपद मग्गवग्गो, छ० १०
९ निर्गुण धारा, पृ० ८१

यों तो सन्तों का निर्गुण सम्प्रदाय सहजयोग का अभ्यासी है, किन्तु सम्यक् रूप से विवेचन करने पर इस अष्टांग योग पर आधारित हठयोग, मन्त्रयोग, लययोग और राजयोग का प्रभाव भी देखा जा सकता है। आगे रामसनेही सम्प्रदाय की साधना पर उपर्युक्त विविध पद्धतियों के प्रभाव की विवेचना की जायगी।

हठयोग

सामान्य रूप से हठयोग का अर्थ है हठ द्वारा योग की सिद्धि—हठेन बलात्कारेण योग। किन्तु सम्प्रदाय में इसका एक शास्त्रीय अर्थ भी प्रचलित है जिसके अनुसार 'ह' का अर्थ सूर्य है, जो शरीरान्तर्गत स्थित 'इडा' नामक नाड़ी का बोधक है। और 'ठ' का अर्थ चन्द्र है जो कि पिंगला नाडी की ओर संकेत करता है। कभी कभी 'ह' और 'ठ' क्रमशः 'प्राण' और 'अपान' तथा 'बिन्दु' और 'रजस्' का भी बोध कराते हैं। हठयोग-साधना का लक्ष्य है 'इडा' और पिंगला नाड़ियों का सुषुम्ना से, जीवन-शक्ति के केन्द्र में 'प्राण' का 'अपान' से 'बिन्दु' का रजस् से और अन्ततोगत्वा चेतना के उच्चतम धरातल पर शक्ति का शिव से मिलन[1]।

हठयोग को कुण्डलिनी योग भी कहा जाता है। यह साधना कुण्डलिनी उत्थापन क्रिया के द्वारा होती है। अतः इसकी समुचित जानकारी प्राप्त करने के लिए शरीर की बनावट का परिज्ञान आवश्यक है। पीठ की रीढ़ या मेरुदण्ड के नीचे पायु से दो अंगुल ऊपर और उपस्थ से दो अंगुल नीचे, चार अंगुल विस्तृत पक्षी के अंडे के आकार की एक ग्रंथि है। यही सब नाड़ियों का मूल है। यहीं पर मूलाधार नामक एक चक्र है जिसमें चार दल हैं। उन दलों में 'व' 'श' 'ष' 'स' ये चार वर्ण स्वर्ण के समान

1 In general way 'Hathyoga' means the accomplishment of yoga by force (Hathena Valatkaren yogah), but it has technical meaning current in the sampradaya Ha means 'Surya' the Sun which figuratively refers to Ida' within the body. 'Tha' means 'Chandra' the moon which refers to 'Pingala'. Sometimes Ha' means Prana' and Tha' means 'Apana' Again Ha' means 'Bindu' and 'Tha' means Rajas' It aims at the union of Ida' and 'Pingala' with 'Shushmana', the union of 'Prana' and 'Apana' in the centre of vitality the union of Bindu' and Rajas in the centre of Psycho-Physical energies and ultimately the union of 'Siva' and 'Sakti in the Highest plane of consciousness

—Hathyoga—Akchhaya Kumar Banerjee, pp 26 27

देदीप्यमान है। इस चक्र में इच्छा ज्ञान और क्रिया स्वरूप एक त्रिकोण है, जिसे अग्नि चक्र कहते हैं। उसमें अनन्त सूर्य की आभा से आलोकित 'स्वयम्भू लिंग' है। इस 'स्वयम्भू-लिंग' को साढ़े तीन वलयों में घेर कर कुटिल आकृति से अपने मुख से पूंछ को दबाकर कुंडलिनी सुषुप्तावस्था में पड़ी रहती है।

शरीर में कुल ७२००० नाड़ियाँ हैं जिनमें से १० नाड़ियाँ प्रमुख मानी गयी हैं—इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, गांधारी हस्तिजिह्वा पूषा, यशस्विनी, अलम्बुषा, कुहू, शंखिनी। इनमें भी इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना सर्वाधिक प्रधान हैं। इन्हें क्रमशः गंगा यमुना और सरस्वती नाम से भी अभिहित किया जाता है। 'इड़ा नाड़ी मेरुदंड के वाम भाग में स्थित है, और पिंगला दक्षिण भाग में। सुषुम्ना रीढ़ या मेरु-दंड के भीतरी भाग में रहती है। इसके मध्य में वज्रा और वज्रा के मध्य में चित्रा होती है। चित्रा के अन्दर सूक्ष्मतम ब्रह्मरन्ध्र है। यही 'ब्रह्मरन्ध्र कुंडलिनी का मार्ग है।

योग-साधना में सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान सुषुम्ना का है। सुषुम्ना ही शक्ति और जीवन का कोष है। इसमें छः स्नायुविक ग्रंथियाँ या चक्र हैं जिन्हें मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर अनहद विशुद्ध, आज्ञा नाम से पुकारा जाता है। इसके अति-रिक्त एक सातवाँ चक्र भी है, जिसे सहस्रार कहते हैं'। अब थोड़ा सा चक्रों की स्थिति और साधना में उनके महत्व पर भी विचार कर लेना चाहिए।

पहला मूलाधार चक्र है। इसकी स्थिति रीढ़ की हड्डी के नीचे है। इसे गुदा का कमल भी कहा जाता है। योगी लोग इसे सूर्य का स्थान बताते हैं। यह सत्-रज-तम इन तीनों गुणों का भंडार कहा जाता है। योगी इसी को जीवनाधार मानते हैं। यह चक्र पृथ्वी के सदृश हरे रंग का है। इसमें चार दल होते हैं। उनमें व श ष, स ये चारवर्ण हैं। इस चक्र को ब्रह्मचक्र भी कहते हैं।

द्वितीय चक्र का नाम स्वाधिष्ठान कमल है। यह उपस्थ इंद्रिय के ऊपर दबाने से जो खाली स्थान ज्ञात होता है, उसके ठीक सामने रीढ़ की हड्डी में है। इसमें छः दल होते हैं। इसमें ब भ, म, य, र, ल ये छः व्यंजनाक्षर हैं। इसका रंग तपाये हुए स्वर्ण के समान है। इसको ब्रह्मा का स्थान कहा जाता है। कुछ लोग इसे शिव का स्थान भी बताते हैं।

तीसरा मणिपूर नामक चक्र है। यह नाभि के नीचे स्थित है। इसमें दस दल का चक्र है, जिनमें ड ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ ये दस अक्षर हैं। यह विष्णु का स्थान है और नील कमल के समान घनश्याम वर्ण का है। तान्त्रिक साधना में इसकी अधिष्ठात्री लाकिनी देवी मानी जाती है।

चौथा अनाहत चक्र है। यह हृदय में स्थित है। इसमें द्वादश दल का कमल है। द्वादश दलों में क्रमशः क, ख, ग घ, ङ, च, छ ज झ, ञ, ट ठ ये बारह वर्ण हैं। इसका रंग उदय होते हुए सूर्य के समान अरुण होता है। इसे महानन्द का स्थान कहा जाता है। कुछ लोग लाकिनी नाम की देवी को इसकी अधिष्ठात्री मानते हैं।

पाँचवाँ विशुद्धि नाम का चक्र है। यह कण्ठ में स्थित है। इसमें १६ दल हैं। इसके संकेताक्षर अनुस्वारयुक्त हैं (अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, ॡ, ए, ऐं, ओ, औं, अं, अः)। यह महत्प्रम धूम्र वर्ण का है। कुछ लोग इसे शुभ्र वर्ण का भी बताते हैं। इसको दुर्गा का स्थान कहा जाता है। दो अन्य मतों में इसके अधिष्ठाता क्रमशः शकिनी नाम की देवी और पार्वती पति शिव माने जाते हैं।

छठा आज्ञा नाम का चक्र है। यह दोनों भ्रुवों के मध्य (त्रिकुटी) में स्थित है। इसके दो दलों में 'ह' और 'क्ष' दो अक्षरों का निवास है। इसको राधा चक्र, मन का स्थान तथा शून्य स्थान अथवा सरोवर भी कहते हैं। इसका ध्यान करने से साधक कर्म के बंधन से मुक्त हो जाता है।

सातवाँ सहस्र दल कमल चक्र है। यह शरीर के सर्वोच्च स्थान मस्तिष्क में स्थित है। इसमें चन्द्रमा का स्थान है यही सुषुम्ना की जड़ है। इसी के ऊपर ब्रह्मरन्ध्र है। सहस्र दल कमल एक महासागर के समान है। इसमें परमात्म तत्व का प्रकाश हो रहा है, जो नित्य, ज्ञानमय, सत्य स्वरूप और कोटि सूर्य के समान प्रकाशमान् है। यही ब्रह्म स्थान है। इसी को परमपद कहते हैं। जो साधक इसमें पहुँच जाता है वह परमपद को प्राप्त हो जाता है। वह जन्म मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है।

पीछे हम कह आये हैं, कि कुडलिनी शक्ति 'स्वयंभू' लिंग को साढे तीन वलयों में लपेट कर सुषुम्ना मार्ग को अवरुद्ध करके सुषुप्तावस्था में पड़ी रहती है। हठयोगी का अंतिम लक्ष्य इसे जागृत करके सुषुम्ना मार्ग से षट्चक्रों का भेदन करते हुए सहस्रार तक ले जाना है। इसके लिए उसे आसन और प्राणायाम का अभ्यास करना पड़ता है। यही नहीं वरन् उसे 'महामुद्रा' महाबंध, महावेध खेचरी, उड्यान मूलबंध, जालंधरबंध विपरीतकरणी, वज्रोली, शक्तिचालन—इन दस मुद्राओं का भी अभ्यास करना पड़ता है।

रामसनेही सम्प्रदाय की सिंहथल-खेड़ापा शाखा के आचार्य हरिरामदास ने हठयोग की क्लिष्ट काया साधना को अपनाया था। उनके 'घघर निसाणी' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ में रेचक, पूरक कुम्भक, त्राटक[1], जालंधर बंध, २ षट्चक्र ३,

---

१ रेचक अरु पूरक कर बिन कुम्भक, आप उलटि पलटदा है।
त्राटक हुय ध्यानू वात विज्ञानू, आप पट खूलदा है।
घघर निसाणी, छं० ८

२ जालंधर बंध उरधे कथा मन अरु पवन मिलदा है।
उलट्या है आसण पलट्या वासण सुरत शब्द परसदा है।
वही, छं० १०

३ षटचक्कर बेध्या भव दुख छेद्या सासा शोक नसदा है।
गरजत है गणू बरजत वेणू सरवर शून्य वसदा है।।
वही, छं० १२

बकनाडी[1] अनहदनाद[2] आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है। किन्तु बाद के सन्तों ने हठयोग के जटिलतम स्वरूप का बहिष्कार कर दिया। उनका हठयोग प्रेम की डगर में चलते-चलते हठयोगियों का योग न रह कर सन्तों का सुरति शब्द-योग हो गया। हरिरामदास के प्रपौत्र शिष्य दयालुदास ने परा भक्ति को मुक्ति का एक मात्र साधन बताते हुए, सांख्य आदि अनेक मतों के साथ हठयोग को भी व्यर्थ बताया है[3]। शाहपुरा और रैण शाखा के रामसनेही तो आरम्भ से ही जटिल हठयौगिक साधना के विरोधी रहे। रामचरण भक्ति विहीन योग की व्यर्थता पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं —

रामचरण ब्रह्म कल्प रहे आपणी चोर॥
तोहि राम भजन बिन जागे हू नहीं ब्रह्म में ठोर॥
नही ब्रह्म मै ठोर और साधन जो साधै
करै जोग अष्टांग देह मन इन्द्री बाधै॥
प्राण वायु कू पकडि पचै निशिवासर अधा
करि है कूडी खेद भजन बिन सबही धधा[4]॥

इन सन्तों की वाणी में भी इडा पिंगला, सुषुम्ना, त्रिकुटी, अनहद[5] आदि की चर्चा हुई

---

१ बहती बक्नाडी खुली किवाडी भवर गुफा भणक दा है।

घघर निसाणी, छ० ११

२ अब घर आये ब्रह्म वधाय, अनहद नाद घुरदा है।
नौबत नीसाणा दिल दीवाणा बाजा रि वजदा है॥

वही, छ० १४

३ हठयोग, कहा सांख्य नित नवध्या पुन कर है।
नाना धरम अनेक एक बिन काज न सर है॥
अनंता मत मतंत्र, धरण पट पाषंड सारा।
परा भगति मिल मुगत एक निश्चय तत सारा
सुरत वचन भगवत कहैय, राम मंत्र जीवन सदा
भय प्रसाद तारण तरण एक बिना मुगतन कदा॥

दयालुदास की वाणी, प० स० ५६४

४ अणभै वाणी पृ० १२५ हठयोग को अंग, छ० २

५ (क) इडा पिंगला सुषमना त्रिकुटी संधि मझार।
दरिया पूरन ब्रह्म के यह भी उल्टी वार॥

रामस्नेही सतवाणी पृ० ५८

(ख) दरिया मन परसन भया बैठा त्रिकुटी छाजे।

है किंतु इसे हठयोग का प्रभाव मात्र माना जा सकता है, जो सर्वथा स्वाभाविक भी है। वैष्णवधारा से उद्भूत होने के कारण योग रामसनेही सम्प्रदाय को उत्तराधिकार के रूप मे मिला था जो भक्ति के साधन रूप म गृहीत है।

मंत्रयोग—योग साधना के विभिन्न भेदो मे सबस सरल मत्रयोग है। मत्रयोग की प्रमुख विशेषता जप, साधना या नामस्मरण है। इसके अनुसार परमात्मा से भाव और भाव से नाम-रूप की उत्पत्ति होती है। यह जगत् नामरूपात्मक है। इसलिए ब्रह्म तक पहुँचने के लिए सृष्टि विकास के विपरीत क्रम को अपनाना चाहिए। तात्पर्य यह कि पहले नाम रूप का आश्रय लेना अपेक्षित है। नाम रूप मे भाव में प्रवेश किया जाय। फिर भावग्राही परमात्मा म चित्तवृत्तियों का विलयन कर मुक्तिलाभ किया जा सकता है। इसी को 'मंत्रयोग संहिता' मे उदाहरण देकर स्पष्ट किया गया है कि जिस प्रकार भूमि पर गिरा हुआ मनुष्य उठने के लिए भूमि का ही सहारा लेता है उसी प्रकार नामरूपा के आलम्बन स वृत्तियो के चाचल्य एव विषय सयोग म फसा हुआ मनुष्य नामरूप के सहारे ही चित्त वृत्ति निरोध करके बंधनमुक्त होता है।[2] कहना

अम भरे विगसै क वल अनहद धुन गाजै।।

वही, पृ० ५५

(ग) रामचरण ससार मैं राग छतीस बखाण।
सत सुणत है गगन मे अनहद वे परमाण।।

अणभै वाणी, पृ० १४

(घ) इगला पिंगला चलत एक रस कण्ठ हिरदा बिचै ध्वनि लाया।

वही, पृ० १६२

(ङ) उलट पताल आकाश म चढ उलंघे मेरा।
इला पिंगला सुखमणा तिरवेणी में डेरा
त्रिवेणी सू आगे गया सुनके माहिं समाया।
सुख समाधि सहजा लगा निरभै पद पाया।।

श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश,पृ० २१०

२ नाम रूपात्मिकासृष्टिर्यस्मात् दव लम्बनात्।
बन्धना मुच्यमानो य मुक्ति मा प्रोतिसाधक।।
तावन्न भूमिमालम्ब य स्खलन यत्र जायते।
उत्तिष्ठतितत्र सर्वोऽप्येतेऽणे त समीप्यते।।
नाम रूपात्मकैभावैव य त निखिलात्मना।

घ होगा मन्त्रयोग या नाम साधना का प्रचार मध्ययुगीन सन्तों में ही नहीं, सगुणोपासक भक्तों मे भी मिलता है। तुलसीदास ने नाम को निर्गुण और सगुण दोनों से बड़ा बताया है[1]। नाम स्मरण की महत्ता बताते हुए वे कहते हैं कि जान अनजाने भाव-कुभाव किसी भी प्रकार नाम स्मरण करने से यमदंड से मुक्त होकर जीव परमपद का अधिकारी हो जाता है[2]। इसी प्रकार निर्गुण धारा के सन्तों ने भी नामस्मरण पर जोर दिया है। रामसनेही सम्प्रदाय के सभी वाणीकार सन्तों ने नामस्मरण का उपदेश दिया है। दरिया साहब ने नाम को निर्मल अगाध और पूर्ण ब्रह्म बताते हुए कहा है कि इसके कथन और श्रवण मात्र से कोई लाभ नहीं, वस्तुतः स्वाद की प्राप्ति तो नामस्मरण से होता है[3]। अन्यत्र उन्होंने कहा है कि 'राम का सुमिरण करने से अज्ञान तिमिर का नाश हो जाता है और घट के भीतर परम ज्योति की आभा विकीर्ण हो जाती है[4]। उनकी धारणा है कि जो नाम की जहाज पर नहीं बैठा और सिर पर पापों का भार बढ़ाता जा रहा है, वह निश्चय ही चौरासी लाख योनियों की धार में

अविद्याप्रसिताश्चैव साहवप्रकृतिवैभवात्।।
सात्मन सूक्ष्म प्रकृति चानुसत्मवै।
नाम रूपात्मनो शब्द भावयोस्त सम्बनात्।
यो योग साध्यतेसो द मन्त्रयोग प्रकीर्तित।।

—मन्त्रयोग संहिता भारत धर्म महामंडल काशी, पृ० ११, श्लोक २

१ अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा।
अकथ अगाध अनादि अनूपा।
मोरे मत बड़ नाम दुहूँ तें।

मानस बालकांड दोहा २३ (गीता प्रेस)

२ (क) जानि नाम अजानि ली हैं, नरक यमपुर मने।

—विनय पत्रिका, पद १६०

(ख) भाव कुभाव अनख आलसहूँ
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।

—मानस बालकांड दोहा २८ (गीताप्रेस)

३ दरिया नाम है निरमला, पूरन ब्रह्म अगाध।
कहे सुने सुख न लहै, सुमिरै पावै।

—रामस्नेही मन्तवाणी, पृ० ४३

दरिया सुमिरै राम को सहज तिमिर का नाश।
घट भीतर होय चादना परम जोति परकास।।

—वही, पृ० ५४

बहेगा[1]। हरिरामदास राम-नाम के अतिरिक्त मुक्ति-प्राप्ति का कोई दूसरा उपाय स्वीकार नहीं करते। इसीलिए वे अन्य साधनाओं की आशा छोड़कर अहर्निश राम-भजन का उपदेश देते हैं[2]। रामदास ने नाम-स्मरण को सारतत्व बताते हुए अन्य वस्तुओं असार कहा है[3]। रामचरण राम-नाम स्मरण को परम धर्म बताते हुए कहते हैं —

> रामहिराम सुनै गुन श्रवण रामहिराम की कीरति गावै।
> रामहिराम करै नित सुमरण रामहिराम सू ध्यान लगावै॥
> राम के हेत मनोतन अपण राम बिना नहिं आन सुहावै।
> रामचरण ये निमल धम है होय पुनीत परमपद पावै[4]॥

लययोग

लय योग पिंड और ब्रह्मांड की एकता का प्रतिपादक है। इसका सिद्धान्त है, कि ब्रह्मांड में व्याप्त ऋषि, देवता, पितृ, ग्रह, नक्षत्र, राशि, प्रकृति एवं पुरुष आदि सभी वस्तुएं पिंड में भी स्थित हैं। अतः पिंड के ज्ञान से ब्रह्मांड का भी ज्ञान प्राप्त हो सकता है। गुरु के आदेश से सम्पूर्ण शक्ति-सहित मानव शरीर का ज्ञान प्राप्त करके साधन-क्रिया द्वारा 'प्रकृति को पुरुष' में लय करने की क्रिया ही 'लययोग' है। पुरुष का निवास सहस्रार चक्र में है और कुंडलिनी नामक प्रकृति की महाशक्ति आधारपद्म में सुषुप्तावस्था में रहती है। जब तक यह सोई रहती है, तब तक बहिर्मुखी सृष्टि की क्रिया होती रहती है। योगी कुंडलिनी नामक प्रकृति को उद्बुद्ध करके पुरुष में लय कर देता है। यही उसका परम लक्ष्य है[5]।

लययोग को ध्यानयोग भी कहा जाता है। लययोग प्रदीपिका के अनुसार वासनाओं का ध्येय में विलय कर देना ही लय है[6]। इस दृष्टि से प्रतीत होता है। रामसनेही सम्प्रदाय के 'सुरति शब्द-योग' पर लययोग का पर्याप्त प्रभाव है जिस प्रकार

---

१ नाम जहाज बैठा नहीं, आन धरे सिर भार।
दरिया निश्चय बहैंगे चौरासी की धार॥
—वही, पृ० ४४

२ रामनाम बिन मुक्ति की जुक्ति न ऐसी और।
जन हरिया निशिदिन भजो तजो दूसरी ठौर॥
—श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश, पृ० ५७

३ मुख सेती सुमरण किया मन आयो इतबार।
दूजा सब ही झूठ है रामा सुमरण सार॥
—श्री रामस्नेह धर्मप्रकाश, पृ० १६०

४ अणभै वाणी, पृ० ८६

५ शिवनारायणी सम्प्रदाय और उसका साहित्य, पृ० २२७

६ लयो विषय विस्मृति —लययोग प्रदीपिका, ४।३४

'लययोग' मे प्रकृति और पुरुष का मिलन होता है, उसी प्रकार 'सुरति शब्द योग' म 'सुरति' और 'शब्द' का संगम होता है। ऐसा लगता है कि 'लययोग' की 'प्रकृति' और 'पुरुष ही 'सुरति-शब्द-योग' के क्रमश 'सुरति' और 'शब्द' के पर्याय हैं।

राजयोग

योग-चतुष्टय म राजयोग को सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया जाता है। राजयोग वस्तुत सब योगो का राजा है[1]। इसे समाधि, उन्मनी, अमरत्व, लय, तत्व, शून्याशून्य परपद, अमनस्क, अद्वैत निरालब, निरजन जीवन्मुक्ति, सहजा, तुरीया आदि अनेक सज्ञायें दी गई है[2]। इसकी साधना हठयौगिक क्रियाओ पर आधारित है। हठयोग और राजयोग का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। इनमे से किसी एक के बिना दूसरे की सिद्धि नही हो सकती[3]।

राजयोग के अनुसार सृष्टि की स्थिति और लय का कारण अन्त करण है। मन, बुद्धि, चित्त, अहकार-य चार भेद हैं। अन्त करण दृश्य और आत्मा द्रष्टा है। अन्त करण रूपी कारण दृश्य से जगत् रूपी काय दृश्य का कारण काय सम्बन्ध है। दृश्य से द्रष्टा का सम्बन्ध स्थापित होने पर सृष्टि होती है। चित्तवृत्ति का चाचल्य ही इसका कारण है। इसी चित्तवृत्ति को वशवर्तिनी कर स्व-स्वरूप की उपलब्धि राजयोग है। विचार की पूर्णता द्वारा राजयोग का साधन होता है। राजयोग का ध्यान ब्रह्म-ध्यान है और इसकी समाधि निर्विकल्प समाधि। इस यौगिक प्रक्रिया विशेष के द्वारा सिद्धिलाभ करने वाला महात्मा जीव मुक्त कहलाता है[4]।

---

१ राजयोगो मयाख्यात सवत त्रेषु गोपित ।
राजाधिराज योगो य कथमपि समासत ॥

—शिव सहिता, श्लोक २०१, पृ० १३४

२ राजयोग समाधिश्च उन्मनी च मनो मना ।
अमरत्व लयस्तत्वशून्याशून्यपर पदम् ॥
अमनस्क तथाद्वैत निरालम्बम् निरजनम् ।
जीवन्मुक्तिश्च सहजातुर्या चेत्येकवाचका ॥

हठयोग प्रदीपिका उपदेश ४२ श्लोक ३४

३ हठ विना राजयोगो राजयोगविना हठ ।
तस्मात् प्रवतते योगी हठे सद्गुरुमार्गत ॥

शिवसहिता, श्लोक २१७ पृ० १३८।

४ शैलिय कल्याण साधनाक, पृ० ४२७

रामसनेही सम्प्रदाय की सुरति-शब्द-योग साधना में 'सुरति' के 'शब्द' में लय होने की अवधारणा राजयोग प्रणाली से गृहीत जान पड़ती है।

सुरति-शब्द-योग

निर्गुण पंथी साधना को 'सुरति शब्द-योग' की संज्ञा दी गई है। यह सिद्धों की अश्लील एवं गुह्य महामुद्रा साधना तथा हठयोगियों की क्लिष्ट काया-साधना से पृथक् मानव स्वभाव सिद्ध अथवा सहज साधना के नाम से जानी जाती है। यही उनकी लयसिद्धियोग समाधि है। इस साधना में किसी प्रकार के बाह्य विधि-विधान की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसकी उपलब्धि सात्विक एवं सरल जीवन-यापन से हो जाती है। इसका लक्ष्य जीव को सांसारिक बन्धन सुत वित्त, वनिता आदि से अलग करके उसके आराध्य राम से मिलाना है। संतों ने 'परचा' के अंग में इस समाधि की अनुभूतियों का बड़ा ही मनोरम और जीवन्त वर्णन किया है।

इसका श्री गणेश नामस्मरण से होता है। रात दिन नाम जपते-जपते उसके प्रति हृदय में एक सहज आकर्षण उत्पन्न हो जाता है। फिर तो भक्त के हृदय में नाम के प्रति एक लय सी लग जाती है। परिणामस्वरूप साधक श्वास प्रश्वास के साथ नाम का जप करने लगता है। यही 'अजपाजाप' है। इस अवस्था में माला आदि साधना के बाह्य उपादान छूट जाते हैं। इसके अनन्तर अनाहत चक्र का द्वार खुल जाता है, फिर सुरति और शब्द का मिलन होता है। यही है संतों की सहज साधना, यही है उनका मन्त्रयोग, यही लययोग भी है और इसी को सुरति-शब्द योग भी कहा जाता है।

रामसनेही सम्प्रदाय के सुरति-शब्द योग का विवेचन करने से पूर्व थोड़ा 'सुरति' शब्द पर भी विचार कर लेना अपेक्षित है। 'सुरति' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वान् एक मत नहीं है। डा० बड़थ्वालने सुरति को संस्कृत के 'स्मृति' शब्द से निकला हुआ बताकर इसका प्रयोग 'वहाँ की स्मृति' के अर्थ में किया है[1]। डा० सम्पूर्णानन्द ने सुरति को 'स्रोत' से व्युत्पन्न मानकर इसका अर्थ चित्तवृत्ति का प्रवाह किया है[2]। आचार्य क्षितिमोहन सेन ने सुरति का अर्थ प्रेम और निरति का वैराग्य किया है[3]। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में साधारणतः 'रति' प्रवृत्ति का पर्याय है। निरति बाहरी प्रवृत्ति की निवृत्ति और सुरति अन्तर्मुखी वृत्ति को कहते हैं[4]। पं० परशुराम चतुर्वेदी सुरति को जीव का निर्मल रूप मानते हैं, जिसमें हमारे

१ योग प्रवाह, पृ० २३-३३
२, विद्यापीठ (त्रैमासिक), भाग २, पृ० १३५
३ कबीर, पृ० २४४
४ वही, पृ० २४३

सत्य का निर्मल रूप बराबर झलकता रहता है[१]। डा० रामकुमार वर्मा इसे 'सूरत इ-इलहामिया' का रूपान्तर बताते हैं[२]। श्री तारकनाथ सायाल ने इस शब्द की व्युत्पत्ति 'श्रुति' से मानी है[३]। कुछ विद्वान् सुरति का सम्बन्ध 'स्वरति' से बताते हैं, जिसका तात्पर्य है अपने में लीन हो जाना अर्थात् अपने मूल स्वरूप की ओर उन्मुख होना। 'सुरति का अर्थ (सु + रति) श्रेष्ठ रति भी किया गया है जिससे निकृष्ट लौकिक रति के विपरीत आध्यात्मिक रति का अर्थ लेते हैं[४]। डा० गोविन्द त्रिगुणायत ने बहुत से विद्वानों की मान्यताओं का खंडन करते हुए सुरति का अर्थ 'अन्तर्मुखी आत्मा' किया है। उनका विश्वास है कि उन्होंने वास्तविक अर्थ खोज लिया है। वस्तुतः उनकी भी यह अटकल बाजी ही है, क्योंकि आत्मा को अन्तर्मुखी अथवा बहिर्मुखी जैसे विशेषणों से विशिष्ट करना समीचीन नहीं प्रतीत होता। 'श्री रामस्नेही सम्प्रदाय' के सम्पादकों ने राजस्थानी भाषा के 'सुरता' शब्द के आधार पर सुरति का अर्थ ईश्वरोन्मुख ध्यान लगाया है[५]। लोक स्वर को पकड़कर सत्य तक पहुँचने का जो प्रयास विद्वान् सम्पादकों ने किया है, वह हर प्रकार से सराहनीय है किन्तु थोड़ी सी असावधानी के कारण वे भी सत्य से दूर रह गये हैं। वास्तव में सुरता' शब्द का अर्थ ध्यान ही होता है, किन्तु विद्वान् सम्पादकों ने साधक के ईश्वरोन्मुख ध्यान सम्बन्धी पदों के आधार पर इसका अर्थ ईश्वरोन्मुख ध्यान अथवा चित्त की ऊर्ध्वगामिनी वृत्ति कर दिया अन्यथा ईश्वरोन्मुख ध्यान लोकोन्मुख ध्यान आदि तो ध्यान के भेद मात्र हैं। हमारे यहाँ गाँवों में सुरति शब्द का प्रयोग केवल ध्यान अथवा याद या सुधि के अर्थ में होता है। वियोगिनी नारियों के अपने पति की सुरति कर-करके रोने की चर्चा से लोक-साहित्य भरा पड़ा है। अवधी प्रदेश में प्रचलित एक गीत में वन के लिए प्रस्थान करते हुए राम के सम्बन्ध में कहा गया है कि उन्होंने घर को त्याग दिया और उनकी सुरति वन को लग गयी अर्थात् उनका ध्यान वन की ओर चला गया—'तजि दीनो भवन सुरति लागी वन कै'। सूरदास ने भी 'सुरति' शब्द का प्रयोग सुधि या ध्यान के अर्थ में ही किया है —

> जबहिं सुरति आवत वा सुखकी
> जिय उमगत तनु नाहीं[६]।

निर्गुण सन्त नाम के साधक थे। नाम साधना वस्तुतः शब्द साधना है, और

---

१ उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० २०४
२ कबीर का रहस्यवाद परिशिष्ट पृ० ८२
३ सरस्वती भवन स्टडीज, भाग ८ (श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० १०१)
४ निर्गुण धारा, पृ० २३७
५ श्री रामस्नेही सम्प्रदाय, पृ० १०२
६ सूरसागर (ना० प्र० स०), पृ० १६४४

शब्द साधना में ध्यान को ही प्रधानता दी जाती है। अतः साधनागत दृष्टि से भी सुरति का अर्थ ध्यान ही अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

यों तो रामसनेही सम्प्रदाय के साहित्य में 'सुरति-शब्द-योग' का उल्लेख यत्र-तत्र सर्वत्र देखने को मिल जाता है किन्तु संतों ने इस साधना का विस्तृत वर्णन 'परचा' के अंग में किया है। उनका 'परचा' वस्तुतः 'सुरति और शब्द' का परिचय है।

साधना के चार सोपान.

संतों ने 'सुरति शब्द-योग' को चार सोपानों में विभक्त किया है जिसे वे साधना की चार चौकियों के नाम से पुकारते हैं[1]। इन सोपानों के स्थान हैं कंठ, हृदय, नाभि और ब्रह्मांड[2]। साधना के प्रथम सोपान में साधक संसार की अनित्यता और मायाकृत बंधन से व्याकुल होकर परमानन्द की खोज में निकलता है। उसका सद्गुरु से भेंट होती है। गुरु उसे नाम का महत्व बताते हुए 'रामनाम' की दीक्षा देता है। गुरु से नाम का परिचय पाकर वह उसे स्मरण करने लगता है। स्मरण करते करते उसके साथ साधक का रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। फिर तो वह प्रतिक्षण, प्रतिपल श्वास-प्रश्वास के साथ तन और मन की लगी में तल्लीन करके अविच्छिन्न रूप से नाम जाप करने लगता है[3]। नाम जप करते करते साधक के जिह्वाग्र पर अमृत रस का सा स्वाद आने लगता है[4]। इस स्थिति में साधक पानी पीने की इच्छा नहीं करता। उसे इस बात का डर रहता है कि कहीं जलपान करने से यह अमृत उससे दूर न हो जाय। इस रस को पीने से साधक की क्षुधा भी समाप्त हो जाती है। उसकी नसों में आनन्द का स्रोत प्रवाहित होने लगता है।

१ चौकी भजन प्रताप की सन्त कह गये च्यार।

अणभै वाणी, पृ० १३

२ रसना कंठ रस पीयके हिरदै सुख विलास।
नाभि कवल मैं उलटि के सुरति गई आकास।।

—वही पृ० १३

३ तन मन कर हेती रहना सेती रामहिं राम राम रटदा है।

—घघर निसाणी (हरिराम), छ० २

४ (क) प्रथम शब्द रसना से रटिये, स्वासों स्वास अमीरस गटिये।

—रामस्नेही सतवाणी, पृ० ८४

(ख) रस अग्र खुली इक सीरा प्रथम वाको पयसो नीरा।
रटता रटता भयो मिठास, हुय भयो आगे विश्वास।।

—शब्द प्रकाश (रामचरण), छ० ४

उसका मन मयूर आनन्द-विभोर होकर नाचने लगता है। आनन्दानुभूति के इन क्षणों में उसके नेत्र बन्द हो जाते हैं। जिह्वा वाग्व्यापार से विरत हो जाती हैं। श्रवण किसी प्रकार की वाह्य चर्चा सुनना ही नहीं चाहते। हृदय इतना गद्गद् हो जाता है कि श्वास लेना भी दुष्कर हो जाता है। आखों से आसू के निर्झर झरने लगने हैं[1]।

प्रथम सोपान को पार करके शब्द आगे बढ़ता है किन्तु कंठ प्रदेश में पहुँच उससे अटक जाता है। यहीं से वियोग दशा आरम्भ होती है, साधक विरह की आग में जलने लगता है उसका शरीर पीला पड़ जाता है, मन सूख जाता है। न तो उसे दिन म भूख लगती है और न रात में नींद[2]। रामचरण साधक की विरह दशा का वर्णन करते हुए कहते हैं —

> कंठ स्थान बहुत कठिणाई मुख स वचन न बोल्यो जाई।
> खान पान पै रुचि रहै थोरी मारग छर्यो जाय कहू थोरी॥
> क्षीण शरीर त्वचा सकुचानी नीली नस दीसै झलकानी।
> पीरो वदन नेतरा लालो मुकुर ज्योति ज्यू दिये कपालो॥
> चलै कंप कपी ह थररावे छाती रुधै श्वास न आवै।
> ऐसा विधि विरहिनि की होई विरहिन जाणे कि सतगुरु सोई[3]॥

कंठ से आगे चलकर शब्द-ब्रह्म साधना के द्वितीय सोपान अर्थात् हृदय प्रदेश में प्रवेश करता है। हृदय मे प्रवेश करते ही शब्द अनन्त प्रकाश से युक्त होकर

---

१ तब रसना सिर छूटे धारा, चले अखंड नहिं खंडे लगारा।
जल पीवन की श्रद्धा नाहीं मति यो अमृत दूरि होइ जाहीं॥
रस पीवत क्षुधा सब भागी कंठा शब्द टगटगी लागी।
नाडि नाडि में चले गिलगिली सुख धारा अति बहे लिसलिली॥
मुख सू कछू न उचरै बैना लगया कपाट खुले नहिं नैना।
श्रवणा चर्चा सुणै न कोई कंठ ध्यान यह लक्षण होई॥
कंठ के ध्यान कम कभी जागे रोम रोम सीतल सो लागै।
हियो गद्‌गदे श्वास न आवै, नैणा नीर प्रवाह चलावै॥
—नाम प्रताप (रामचरण), छं० ४५-४८

२ दरिया विरही साधु का तन पीला मन सूख।
रैन न आवे नींदड़ी दिवस न लागे भूख॥
—रामस्नेही सन्तवाणी, पृ० ४६

३ शब्द प्रकाश (रामचरण) छ० ४-७

अज्ञानाधकार को दूर कर देता है। भ्रम कम और संशय का नाश हो जाता है[1]। भवताप से उद्विग्न साधक मानसी गंगा की हिलोरो मे तृप्त हो जाता है[2]।

सुरति-शब्द योग का तीसरा सोपान नाभि प्रदेश में है। नाभि कमल के भीतर भ्रमर गुंजार किया करते हैं जिनका न कोई रूप है न वर्ण। वह अगम और अपार है[3]। यहां 'भवरो' की गुंजार से दरिया साहब का आशय सम्भवत शब्द की गुंजार से है। रामचरण के अनुसार शब्द की गुंजार से साधक की रग रग मे जागृति आ जाती है। उसके रोम रोम से अनेक प्रकार की राग रागिनियां निकलने लगती हैं। नौ सौ नाड़ियाँ एक साथ ही मंगल गाने लगती हैं। इसी स्थान पर मन भ्रमर को परमानंद की प्राप्ति होती है[4]।

नाभि के पश्चात् शब्द इड़ा पिंगला वा सुषुम्ना के त्रिवेणी संगम पर स्नान करके निर्मल हो तीनो लोको से पृथक् चौथे देश मे प्रवेश करता है[5]। वह मेरुदण्ड के नीचे उतरकर नाद की खिड़की खोलता है, और ब्रह्म में लीन हो जाता है[6]। संतों

---

१ शब्द ब्रह्म हिरदै किया वासा।
ज्यू रैण अधेरी चंद प्रकासा॥
भ्रम कम सांसो गयो भागी।
हिरदै ध्वनी अखंड लिव लागी॥
—नाम प्रताप (रामचरण), छं० ४०

२ जन दरिया हिरदा बिचे, हुआ ज्ञान परकाश।
हौद भरा जह प्रेम का, तह लेत हिलोरा दास॥
—रामस्नेही सन्तवाणी पृ० ५४

३ नाभि कंवल के भीतरे, भवर करत गुंजार।
रूप न रेख न बरन है, ऐसा अगम विचार॥
—रामस्नेही सन्तवाणी, पृ० ५४

४ शब्द गुंजार नाडि सब जागे, रोम रोम मे होई रही रागे।
नौसै नारीमंगल गावे तहां मन भंवरा अति सुख पावे।
—नाम प्रताप छं० ५२-५३

५ इड़ा पिंगला सुषुम्ना, मिले त्रिवेणी घाट।
जहां भाभे जल झूलिके, निर्मल होय निराट॥
अब त्रिवेणी न्हाइ के, किया गगन प्रवेश।
तीन लोक सू अलख सुख यो कोइ चौथा देश॥
—अणभै वाणी (नामप्रताप) पृ० २०७

६, नाभि कवलसे उतरा, मेरुदण्ड तल आय।
खिड़की खोली नाद की, मिला ब्रह्म स जाय॥
—रामस्नेही सन्तवाणी, पृ० ५४

ने सुरति और शब्द के अलौकिक संयोग का बड़ा ही विशद और हृदयग्राही वर्णन किया है। वहां अनन्त चन्द्रमा उदित हैं। करोड़ों सूर्य प्रकाशित हो रहे हैं[१]। वहां झाल, वीणा, मृदंग, शहनाई, बांसुरी, चंग, उपंग, भेरी, नरसिंह, मञ्जीर, ढोलक, गिड़गिड़ी, घुंघरू आदि अनेक प्रकार के वाद्यों की मधुर ध्वनि से वातावरण मुखरित रहता है[२]। इसी रम्य स्थलों पर सुरति और शब्द का मिलन होता है। दोनों एक दूसरे से एकमेक हो जाते हैं[३]। हरिरामदास ने सुरति और शब्द के इस मिलन की उपमा नीर-नीर के मिलन से दी है[४]। तात्पर्य यह कि दोनों इस प्रकार मिल जाते हैं कि किसी प्रकार का द्वैत नहीं रह जाता। रामचरण कहते हैं कि शब्द रूपी अमर पिय को पाकर सुरति सुहागिनी बन गयी[५]। अब वह ररंकार पति के साहचर्य में निवास करते हुए गगन मण्डल में केलि करती रहती है[६] दोनों सुख की सेज पर परस्पर

---

१ अनन्तहि चन्दा ऊगिया, सूर्य कोटि परकाश।
बिन बादल बरसा घनी, छह ऋतु बारह मास।।

रामस्नेही सन्तवाणी, पृ० ५५

२ घोर अनहद्द की गिगन गिरणाइया होत बहु सोर नहीं कहत आवै
झालरी वीण मिरदंग सहनाईया, बांसुरी ताल झुणकार लावै।।
भेरि रणसिंग करनाल बंबया बजे, चंग अरु उपंग गति करत न्यारी।।
एक इक नाद मैं राग नाना उठै, मधुर स्वर मधुर स्वर चलत भारी।।
मंजीरा मान धधकार ढोलक करै, गिडगिडी राग मोहोचंग बाजै।
रुणझुणं रुणझुणं नृत्य जूं घूघरूं, घण्टा टंकोर ध्वनि अधिक बाजै।।

अणभै वाणी, पृ० १६२

३ सुरति शब्द परचा भया, ब्रह्म निरन्तर वास।

श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश, पृ० ६२

४ हरिया हरिजन एक है जीव सीव नहिं दोय।
नीर मिलाना नीर में फिर न्यारा नहिं होय।।

वही, पृ० ६३

५ मिलवै शब्द अकल सूं भया जीव सूं सीव।
सुरति सुहागणि होय रही परसि अमर वर पीव।।

अणभै वाणी पृ० १५

६ ररंकार पति परसिया सुरति सुन्दरी नारि।
रामचरण केला करै मिलवै गिगन मझारि।।

वही, पृ० १४

हिलमिल कर विश्राम करते हैं और उन्हे जगत् के कार्य-व्यापार फीके दिखाई पड़ते हैं। प्रियतम को पा जाने के बाद उनको दृष्टि में दूसरा कोई नहीं आता । जो सुख उसे पिय की सेज पर मिलता है अन्यत्र दुर्लभ है[१]। रसिक राम के साथ सुरति सुन्दरी की वसन्त लीला निरन्तर चलती रहती है —

> राम रमीले से रंग रच्यो म्हारे आज वसन्त को खेल ।।टेर।।
> प्रेमनीर पिचकारी दिल से छूटत वहुँ उर भेन ।।
> अध ऊर्ध्व बिच खेल मच्यो है सुरत शब्द को मेल ।।
> धुन बिच ध्यान ज्ञान जहां अनुभव जनम मरण दु ख पेल ।
> थालवाल रस राम रमैयो रामदास गुरु खेल[२] ।।

सूफी प्रेम-साधना और रामसनेही सम्प्रदाय

मध्ययुगीन सन्तो की प्रेमानुभूतियों पर कदाचित् सूफी प्रेम साधना का भी प्रभाव है। निर्गुणोपासना के आधारभूत तत्वों की व्याख्या करते हुए आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि भारतीय भक्ति-मार्ग साकार और सगुण का लेकर चला है निर्गुण और निराकार ब्रह्म भक्ति और प्रेम का विषय नहीं हो सकता[३]। इस सम्बन्ध में उनका अभिमत है कि मुसलमानी अमलदारी मे रहस्यवाद को लेकर जो निर्गुण भक्ति की बानी चली वह बाहर से—अरब और फारस की ओर से आयी थी[४]। प० चन्द्रवली पाण्डेय भी इसी प्रभाव की ओर सकेत करते हुए कहते हैं कि अध्यात्म की दृष्टि से तसव्वुफ में भारत के लिए कोई नई बात भले ही न रही हो पर उसमें प्रेम का प्रतिपादन और मादन भाव का प्रदर्शन कुछ नवीन अवश्य था। निम्न भारतीय भक्ति-भावना को सूफियों ने जो योग दिया उससे एक सन्त धारा फूट निकली[५]। यह कथन सर्वांश में सत्य नही है। प्रेम-प्रतिपादन और मादन भाव का प्रदर्शन भारतीय अध्यात्म-साधना

---

१ पिव पवनी सुख सेझ पर हिलमिल करत निवास ।
रामचरण तब ही लगे फीको जगत विलास ।।
रामचरण पिव पाईया तब निजर न आवै और ।
जो सुख पिव की सेझ पर सो नहीं दूसरी ठोर ।।

अणभैवाणी, पृ० १४

२ निर्गुण भजन माला, पृ० ११

३ द्रष्टव्य, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ७८ (१९९७)

४ चिन्तामणि, द्वितीय भाग (काव्य में रहस्यवाद) पृ० १२५

५ तसव्वुफ अथवा सूफी मत, पृ० २२७

का सूफियों के आने से बहुत पहले ही मुख्य अंग बन चुका था था। उपनिषदों में आत्मा-परमात्मा की एकात्मता लौकिक दाम्पत्य सुख के दृष्टांतों से स्थापित की गई है। 'बृहदारण्यक उपनिषद' में कहा गया है कि जिस प्रकार कोई पुरुष अपनी प्रिया द्वारा आलिंगित होने पर बाहर-भीतर की सब बातों को भूल जाता है उसी प्रकार जीवात्मा परमात्मा से मिलकर सभी बाहरी व भीतर बातों के ज्ञान को विस्मृत कर देता है[२]।

स्मरण रखना चाहिए कि उपनिषदों का प्रतिपाद्य निर्गुण ब्रह्म है। 'श्वेताश्वतरोपनिषद' 'भागवत', 'गीता' और बौद्धों की सहजयान शाखा में भी प्रेमाभक्ति के उदाहरण मिल जाते हैं। ऐसी स्थिति में यह कदापि नहीं माना जा सकता कि भारतीय साधना में प्रेम-प्रतिपादन और मादन भाव सूफियों की देन है। हां, यह अवश्य है कि हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियों के मिलन और उनके आदान प्रदान के परिणामस्वरूप भारतीय निर्गुण भक्ति-मार्ग पर जान-अनजाने सूफियों की भावमूलक अद्वैत भावना का प्रभाव यत्र-तत्र परिलक्षित होता है। यारी साहब जैसे कतिपय संतों को अपवाद स्वरूप ही समझना चाहिए जिनकी वाणी में सूफी साधना का क्रमबद्ध विवेचन हुआ है।

सूफी प्रभाव के सम्भावित स्रोत

रामसनेही सम्प्रदाय की साधना पर सूफी प्रभाव दो स्रोतों से सम्भावित था। पहला संतमत में गृहीत सूफी तत्व के रिक्थ रूप में और दूसरा सूफियों के प्रभाव क्षेत्र में प्रादुर्भूत होने के कारण प्रत्यक्ष साहचर्य से। ध्यातव्य है कि सूफियों का प्रभाव पंजाब, राजस्थान और गुजरात पर अधिक रहा है। रावलपिंडी और लाहौर में कादिरिया सम्प्रदाय की 'बहलूलशाही' और 'मुकीमशाही' शाखा का प्रचार था। अलवर और गुजरात में सुहरावर्दिया सम्प्रदाय की रसूलशाही' और 'दौलतशाही' शाखाएँ चल रही थीं। 'चिश्तिया सम्प्रदाय' के संस्थापक ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती (सं० ११९९-१२९२) की साधना-भूमि अजमेर थी, जहाँ उनकी समाधि अब भी वर्तमान है। यह स्थान चिश्तियों के मक्का के नाम से प्रसिद्ध है और सूफी साधकों का बहुत बड़ा गढ़ रहा है। शेख मुहम्मद गौस ग्वालियरी (मृ० १५६२) और सूफी कवि जान की साधना-भूमि भी क्रमशः ग्वालियर और फतहपुर (जयपुर) थी। अतः राजस्थान में उद्भूत होने के कारण यदि रामसनेही सम्प्रदाय सूफियों से प्रत्यक्ष प्रभाव ग्रहण करता तो कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। प्रस्तुत प्रसंग में विचारणीय

---

२ तद्यथा प्रियया स्त्रिया सपरिष्वक्तो न बाह्यं किंचनवेद
ना तरभेद मेवायं पुरुष, प्राज्ञेनात्मनासम्परिष्वक्तो न
बाह्य किंचन वेदनान्तरम्। तद्वा अस्य एतदाप्तकाम आत्मकाम अकाम रूपम्।
बृहदारण्यक उपनिषद्-अध्याय ४, ब्राह्मण ३, मंत्र २१

यह है कि इस सम्प्रदाय पर सूफियों प्रभाव है या नहीं ? और है तो किस अंश मे? आगे की पंक्तिया में इनकी विवेचना साम्प्रदायिक साधना और-अनुभूति दोनो को दृष्टि में रखते हुये की जायगी ।

साधना पक्ष

सूफियों के साधना पक्ष पर हठयोग की नाथ साधना और तांत्रिकों का बहुत बड़ा प्रभाव है । भारत मे आने के बाद सूफी सन्तो ने अपनी प्रेम-साधना मे नाथ-योगियों की अनेक क्रियाओं का समावेश किया और अपनी प्रेम गाथाओं मे इनका वर्णन किया । उन्होंने प्रत्येक साधना के लिये क्रमश नीचे से ऊपर की ओर उठते समय की विभिन्न आध्यात्मिक स्थितियो (मुकामात) को भी निर्दिष्ट किया । इसी दृष्टि से उन्होंने चार ऐसे पदो की कल्पना की जिन्हें वे क्रमश 'आलमेअनासूत' (भौतिक जगत्) आलमेमलकूत (चित् जगत्), आलमे जबरूत (आनन्दमय जगत्) और आलमे लाहूत (सत्य जगत्) कहने लगे[1] । पंजाब के कतिपय मुस्लिम साधक तो योग-पद्धति से बहुत ही प्रभावित थे । उन्होंने एतद्विषयक हिन्दूग्रंथो के अनुकरण पर 'आसन षट्चक्र 'कमलवेध' और मानव शरीर की रचना के रहस्यों की विवेचना पर विस्तृत निबन्ध भी लिखे[2] । वे तांत्रिक मतावलम्बियों की भांति चक्र मे बैठकर 'वीराचार' का दर्शन करते हैं और इड़ा पिंगला और सुषुम्ना के माध्यम से सहस्रार मे प्रवेश करके अमृत-पान करने की बात भी कहते हैं[3] । कहने की आवश्यकता नहीं कि हठयौगिक क्रियाओं मे इस सीमा तक प्रभावित सूफियों की साधना-प्रणाली में भारतीय साधकों के लिए कोई आकर्षण नहीं था । अत रामसनेही सम्प्रदाय की साधना पर सूफियो की साधना का प्रभाव कदापि नहीं प्रमाणित किया जा सकता ।

---

१ उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० ७४-८०

2, Some musulmans Sadhakas in the Punjab and elsewhere had a great fascination for the yoga system In imitation of the Hindu works on the subjects they wrote illustrated treatises dealing with 'asanas, 'satchakra', 'Kamal Vedha' and the mysteries of the physical system

Medieval Mysticism of India p 36

3 Like the followers of the Tantrika they sit in a circle (Chakra) and observe 'virachara or other ways of the hero and they claim to be drinking in the Tantrika fashion, the nector of the Sahasrara', the thousand pettalled (Lotus) after peircing through the six circles(Sat chakra)via 'Ida 'Pingala, and Susumna

—Ibid, p 37

अनुभूति पक्ष

सूफी-साधना का केंद्रबिंदु प्रेम है। इस प्रेम का उदय प्राय पूर्वराग से होता है, जिसकी उत्पत्ति गुण-श्रवण चित्र दर्शन और स्वप्न दर्शन से होती है। प्रेम गाथाओ मे इसी पद्धति का अनुसरण किया गया है। जायसी कृत 'पद्मावत' मे रत्नसेन तोते के मुख से पद्मावती के अलौकिक रूप का वर्णन सुनकर उसके प्रेम मे उन्मत्त हो उठता है[१]। उसमान कृत 'चित्रावली' मे सुजान योगी के मुख से चित्रावली के रूप की प्रशंसा सुनकर मुग्ध होता है[२]। जान कवि कृत 'कामलता' मे रागोद्भव का कारण चित्रदर्शन है[३]। रामसनेही सम्प्रदाय की साधना म भी प्रेम का बडा ही महत्व पूर्ण स्थान है और यहाँ भी उसका उद्भव पूर्वराग से होता है। गुरु क मुह से रमइया राम का गुण वर्णन सुनकर भक्त रूपी नायिक के मानस में प्रणय की उर्मियाँ तरंगायित होने लगती हैं। वह रात दिन उसका स्मरण करने लगता है। स्मरण करत करत उनका पूर्वराग अनन्य प्रेम की अवस्था मे पहुँच जाता है।

आत्मा-परमात्मा के ऐक्य का लौकिक नायक नायिका के सयोग रूप म, प्रतीक-योजना के द्वारा सूफी कवियो न हृदयग्राही चित्र खींचा है, फिर भी सूफी-दर्शन मे सयोग की अपेक्षा प्रियतमा रूपी आराध्य की प्राप्ति मे वियोग को अधिक महत्व दिया गया है। जायसी के अनुसार जिस प्रकार मधुकोश म अमृत तुल्य मधु सचित रहता है उसी प्रकार प्रेम मे विरह का निवास रहता है[४]। उनके अनुसार प्रम पहल विरह के रूप मे ही उत्पन्न होता है और जाग्रत होते होत प्रेमी को सताना आरम्भ कर देना है[५]। सभी सूफी गाथाकारा ने इसी से प्रेमियो को कहानी के प्राय आरम्भ मे

---

१ हीरामन जो कवल बखाना।
सुनि राजा होइ भवर भुलाना॥
—जायसी ग्रथावली, पृ० ३८

२ जा तुम रूप बखाना देवा।
मइ मनसा होइ उडऊ परेवा॥
—सूफी काव्यसग्रह पृ० १४३

३ फिरि फिरि चित्रहिं चितवत नारी।
प्रेम आइ बियुरयो तन भारी॥
—वही, पृ० १६०

४ प्रेमहि माँह विरह रस रसा।
मैन के घर मधु अमृत बसा॥
—जा० ग्र० पृ० ७६

५ सूफी काव्य सग्रह पृ० १०३

हो विरहग्रस्त दिखाया है। सूफियों ने इस विरह को गुरु की देन माना है। इस सम्बन्ध में जायसी की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं —

गुरू विरह चिनगी जो मेला।
जो सुलगाइ लेइ सो चेला[1] ॥

रामसनेही सम्प्रदाय की प्रेम-साधना में भी प्रेम का निखार विरह से होता है। यही ब्रह्म-साक्षात्कार का भी कारण है। इस सम्प्रदाय के सन्तों ने भी विरह की प्राप्ति गुरु से मानी है[2]। इतना सब होते हुए भी सूफियों और रामसनेही सम्प्रदाय के प्रेमादर्श में कुछ मौलिक अन्तर है।

प्रथम यह कि सूफी साधना का आधार लौकिक प्रणय है। सूफियों की धारणा है कि अलौकिक प्रेम की मंजिल तक पहुँचने के लिए लौकिक प्रेम-पथ को अपनाना आवश्यक होता है। मीरहसन ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'मौजुल्आरफीन' में सूफी साधना के आधारभूत सिद्धान्तों को समझाते हुए कहा है —

जब मजाज़ी का न हो मारो बया।
फिर हकीकत किस तरह होवे बया॥
गोमसल यह है मजाज़ी से अज़ीज़।
पर हकीक़त को यही से कर तमीज़[3] ॥

अर्थात् जब तक लौकिक प्रेम का वर्णन न किया जाय तब तक अलौकिक प्रेम नहीं प्रकट हो सकता। लौकिक प्रेम उपलक्षण मात्र होते हुए भी अलौकिक प्रेम-प्राप्ति का सोपान है। इसको दृष्टि में रखते हुए जब हम रामसनेही सम्प्रदाय की प्रेम-साधना पर विचार करते हैं तो देखते हैं कि इस सम्प्रदाय के सन्तों का प्रेम प्रारम्भ से ही अलौकिक रहा है। इनकी प्रेम साधना में सांसारिक प्रेम मायिक होने से सर्वथा त्याज्य होता है। इनके प्रेम का आरम्भ ही वैराग्योदय से होता है जब माता पिता भाई बन्धु सुत-वनितादि सांसारिक प्रेम के समस्त आलम्बनों से सदैव के लिए नाता टूट जाता है।

दूसरी बात यह है कि सूफी साधना में साधक अपने को प्रेमी और परमात्मा को स्त्री रूप में मानकर साधनारत होता है, किन्तु रामसनेही सम्प्रदाय के सन्तों ने

---

१ जायसी ग्रंथावली, पृ० ७१
२ बिरह आप अंतर दसें सतगुरु के परताप।
रामदास सुख ऊपजें आप मिलोगे आप॥
विरह परगट सतगुरु करी।
हरी की लिगन हो हरी जावै॥

— दयालुदास की वाणी, प० सं० ३६८

३ हवायके हिन्दी परिचय, पृ० १७ १८

अन्य निगुण सन्तों की भाँति भारतीय प्रेम-पद्धति के आदश पर परमात्मा को पुरुष और अपने को स्त्री रूप में चित्रित किया है।

सूफी प्रेम-साधना और रामसनेही सम्प्रदाय के प्रेमादश मे लोक-दृष्टि से भी एक बहुत बड़ा अन्तर है। सूफी-साधना इतनी अन्तमुखी है कि लोक कल्याण से इसका कोई लगाव ही नहीं रह जाता। प० परशुराम चतुर्वेदी ने इस प्रश्न पर विचार करते हुए कहा है कि 'खुदा' के साथ 'वस्ल' की हालत म आ चुकने पर जब सालिक एक सच्चे सूफी का रूप ग्रहण कर लेता है और वह 'खुद क 'वजूद' मे अपने को फना कर उसके साथ 'बका' के स्तर पर भी पहुच जाता है उस समय उससे यह स्वभावत आशा की जाती है कि वह जगत् के लिए भी कल्याण द सिद्ध हगा। परन्तु सूफियो की प्रेम गाथाओं म इसके लिए न तो कोई आदश रखा हुआ दीख पडता है और न किसी प्रकार के कायक्रम की योजना ही प्रस्तुत की गई मिलती है[1]। लेकिन सन्त-साधना अन्तमुखी होने के बावजूद लोक सापेक्ष है। लोक मगल को दृष्टि मे रखने के कारण ही सन्तो का साधक और कवि क साथ ही साथ समाज सुधारक भी माना गया है। रामसनेही सन्तों ने प्रेमतत्त्व को महत्व देते हुए भी सयोग अथवा वियोग-वणनो मे कहीं अश्लीलता नही आने दी है। इस प्रकार उनकी लोक दृष्टि सवत्र सजग रही है।

रामसनेही सम्प्रदाय की धार्मिक मान्यताएँ

भारतीय धर्म-साधना का इतिहास उतना ही प्राचीन है जितनी यहा की सस्कृति। यहाँ अनादि काल से धर्म क स्वरूप पर नाना प्रकार स विचार होता आया है। स्मृतिकारो ने नैतिक नियमों के पालन और सामाजिक व्यवस्थाओं के अनुसरण को धर्म माना है।[2] व्यास जी ने महाभारत म 'धारणाद्धर्म मित्याहु धर्मो धारयते प्रजा[3]' कहकर समाज की व्यवस्था करने वाले समस्त तत्वो को धर्म के अन्तगत समाहित कर लिया है। कणाद के अनुसार जिससे लौकिक एव पारलौकिक समृद्धि तथा शाति का विधान हो वही धर्म है।[4] तात्पय यह कि धर्म शब्द इतना व्यापक और सारगर्भित है कि इसके अन्तगत दशन, साधना, समाज विज्ञान, नीति आदि सभी का समावेश हो जाता है। परन्तु सामान्य रूप से इसका प्रयोग ईश्वर या सद्गति की प्राप्ति के लिए किसी महापुरुष द्वारा प्रवर्तित मत विशेष या सम्प्रदाय के लिए किया जाता है। किसी सम्प्रदाय की धार्मिक स्थिति का अध्ययन करते समय हमें उन विश्वासों, आचारो तथा उपासना प्रणालियो पर विचार करना पड़ता है

१ सूफी काव्य संग्रह—भूमिका, पृ० १०८-१०६

२ मनुस्मृति ९।१०२

३ महाभारत-कणपर्व ६९।५६

४ यतोऽभ्युदय निश्रेयस सिद्धि सधम

वैशेषिक सूत्र १।१।३ (गुजराती प्रेम बम्बई)

जिनका प्रचलन सम्प्रदाय में सामान्य रूप से रहा है और जो हो सम्प्रदाय की रीढ़ होती है। अत रामसनेही सम्प्रदाय की धार्मिक स्थिति का अध्ययन धर्म के निम्नोक्त तीन पक्षों के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जायगा—

(१) विश्वास
(२) आचार
(३) उपासना प्रणाली

रामसनेही सम्प्रदाय के सामान्य विश्वास

अवतारवाद में आस्था सैद्धान्तिक रूप से सन्तों का निर्गुण सम्प्रदाय अवतारवाद का विरोधी रहा है और परब्रह्म के निरुपाधि स्वरूप को अपना परमकाम्य मानता रहा है किन्तु साम्प्रदायिक साहित्य के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि ये सन्त न तो परमात्मा के सोपाधि रूप को पूर्णतया बहिष्कृत कर सके और न उसके निरुपाधि स्वरूप को अपना अंतिम आश्रय ही बना पाये। यहाँ तक कि 'दशरथसुत तिहुँ लोक बखाना रामनाम का मरम है आना'[१] की चुनौती देने वाले कबीर भी नरसिंहावतार का गुणगान किये बिना नहीं रह सके।[२] जगजीवन साहब दाददयाल, पलटू साहब और तुलसी साहब ने भी कबीर के पद चिह्नों का अनुसरण किया। पूर्ववर्ती सन्तों में यह प्रवृत्ति अपेक्षाकृत बहुत कम दिखाई पड़ती है किन्तु पिछले खेवे के निर्गुणपन्थी साहित्य में यह अत्यधिक मात्रा में काम करने लगी थी इसका एक मात्र कारण यह मालूम पड़ता है कि कबीर ने मुस्लिम विजय के अन्तर ब्रह्म के निरुपाधि स्वरूप को अन्तर्यामित्व, सूक्ष्म पूर्णावतार, अंशावतार और तत्पश्चात् अर्चावतार में परिणत करने वाली सगुणोपासना की अधोगति को अपनी आँखों देखा था। इसलिए उनका हृदय अवतार पूजा के प्रति घृणात्मक और आक्रोश की भावना से भर गया था। अत उन्होंने सगुण साकार की उपासना की भर पेट निन्दा की और उसके उन्मूलन के लिए एक देशव्यापी आवाज उठायी। उनके साहित्य में यदि कहीं अवतारवाद का समर्थन दिखाई पड़ता है तो उसे सगुणोपासना के गगनचुम्बी प्रासाद का अवशेष ही मानना चाहिए। कालान्तर में जब परिस्थितियाँ बदली तब अवतारवाद में पुन आस्था बढ़ने लगी और परवर्ती निर्गुणिया सन्तों ने धड़ल्ले के साथ इसका समर्थन आरम्भ कर दिया। गुरु को ईश्वर रूप मानने की प्रवृत्ति ने भी इस दिशा में पर्याप्त प्रोत्साहन दिया। परम्परा-पालन के लिए यद्यपि कहीं कहीं अवतारवाद का विरोध भी होता रहा किन्तु युग की प्रवृत्तियाँ उसके सर्वथा अनुकूल ही रहीं।

---

१ बीजक शब्द १०९
२ कबीर ग्रंथावली पृ० २१४

रामसनेही सम्प्रदाय की स्थिति अपने समकालीन अन्य निर्गुण सम्प्रदायों से भिन्न नहीं थी। यहाँ भी उसी प्रकार भक्ति, ज्ञान, योग, सूफी प्रेम-पद्धति, अवतारसे वाद आदि के समन्वय की प्रवृत्ति काम करती रही। रामचरण ने एक ओर तो ब्रह्म को अलख, अलिप्त अजन्मा, अविनाशी, परात्पर और अवतार न लेने वाला कहा है और दूसरी ओर उसके सोपाधि रूप का गुणगान किया है[1]। उन्होंने यद्यपि 'राम पिता दशरथ कहै तो होय जनम की हाण'[2] कहकर वैष्णव सम्प्रदायानुगत स्वीकृत सगुणावतारों का स्पष्ट प्रत्याख्यान किया है तो भी उनका राम भक्तों पर भीड़ पड़ने पर उसी क्षण और उसी स्थान पर प्रगट हो जाता है[3]। हरिरामदास ने भी उसे निरंजन, निरालंब, निर्विकार, निर्गुण और निगमनिरूपनम्[4] अर्थात् 'नेति नेति' कहते हुए प्रह्लाद, ध्रुव, द्रौपदी आदि की पुकार सुनने वाले गरीबनिवाज का विरद प्रदान किया है[5]। दयालुदास ने तो कूटस्थ ब्रह्म[6] से यहा तक कहलवा दिया है—

---

१ (अ) परापरै पूरण ब्रह्म सो बरत रह्या सब ठांहि।
 महि लिपता छिपता नहीं जे उपजै विनसै नांहि॥
—समतानिवास-द्वितीय प्रकरण, छ० ७६

(ब) राम अखंडित अजन्मा धरै न को अवतार।
—अमृत उपदेश, छठा प्रकाश, छ० ४२

१ रामचरण नरहरि होय प्रगट जनको कारज सार्‌यो हो।
राम विमुख भक्त को द्रोही राक्षस मार विडार्‌यो हो॥
—अणभै वाणी, पृ० १०००

२ अणभै वाणी, पृ० ५०

३ भीड़ पडया प्रगटै अति नरो।
छिन भर विलम न लाहि॥
—अणभै वाणी, पृ० १०००

४ श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश पृ० ५१

५ ऐसे हैं गरीब निवाज।
भीर परी प्रह्लाद उबारे हिरण्यकशिपु हणताज।
भा उपदेश दियो ध्रुव सेवी अटल बसायो राज॥
टेर सुनत वेगि हरि आये तारि लिये गजराज।
जन द्रौपा को चीर बधारयो भई पच भरताज॥
—श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश, पृ० १४७

६ राम ब्रह्म अनाद है सरब आद का आद।
कूटस्थ अचला अखंड है अकरण करण अमंड॥
—दयालुदास की वाणी, प० स० ३२२

भक्त कहै सोई करूं, यह मम टेक निधान ।
भक्त नचावें तो नाचूं जाचक बलि के द्वार [१] ॥

स्यालुदास की इन पंक्तियों को पढ़ने से लीला-विहारी श्रीकृष्ण के विषय म रचित भक्त कवि रसखान की निम्नलिखित पंक्तियाँ स्मरण हो आती हैं —

सेस गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरंतर गावैं ।
जाहि अनादि अनंत अखंड अछेद अभेद सुवेद बतावैं ।।
नारद से सुक व्यास रटैं पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं ।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं ।।

इतने से ही सन्तुष्ट न रहकर उन्होंने विविध अवतारों की वंदना भी की है -

भगता हित अवतार धर जुग जुग स्यायक राम जी,
धारा मीन नृसिंघ कमठ जिगवहर बावन ।
कपल दत्त सिनकाद हंस कीरत विघ पावन ।।
बद्री छोवर रिषव परस रघुबर हय ग्रीवा ।
प्रिथु मनवतर व्यास धनतर ओपद सीवा ।।
कृष्ण बुध निकलंक नमो कीरत जुग विसराम जी ।
भगता हित अवतार धर जुग जुग स्यायक राम जी[३] ।।

दरिया साहब ने ब्रह्मा, विष्णु और दसावतारों को स्वप्नवत् मिथ्या बताया[४] किन्तु उनके शिष्य पूरणदास ने परब्रह्म के अनंत काल से भक्तों के लिए अवतरित होने की बात कही है[५] । परवर्ती निर्गुण भक्तिदर्शन में इस प्रकार के अन्तर्विरोध का कारण सम्भवतः सगुण भक्ति की सर्वप्रियता भी रही हो जिसे मिटाने के लिए यह धारा निरंतर प्रयत्नशील रही । इस संघर्ष में अन्ततोगत्वा उसे स्वयं अपने कतिपय मौलिक सिद्धान्तों को ढीला कर देना पड़ा । अवतारवाद की स्वीकृति इनमें से एक थी । रामसनेही सम्प्रदाय के साथ ही अन्यान्य निर्गुण सम्प्रदायों में यह प्रवृत्ति परम्परागत वैष्णव धर्म से आयी हुयी मानी जा सकती है ।

---

१ श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश, पृ० २३४–२३५
२ रसखान और उनका काव्य, सम्पा० चन्द्र शेखर पांडे, पृ० १०९, छं० १३
३ भक्तमाल, छं० ६, प० सं० ३
४ ब्रह्मा विष्णू दश औतारा ।
सुपना अंतर सब ब्योहारा ।।

—अनुभव गिरा, पृ० १३२

५ संत शिरोमनि अनंत जुगे जुग भक्त हेतु अवतारा ।
जन पूरण परताप राम के मिट गया विषय विकारा ।।

—रामस्नेही संतवाणी, पृ० ८८

सद्गुरु के व्यक्तित्व की अलौकिकता :

भारतीय संस्कृति में गुरु को सर्वोच्चासन देकर उसकी गौरवगरिमा को सादर स्वीकार किया गया है। यों तो गुरु-माहात्म्य के विकास सूत्रों को मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई से प्राप्त योग मुद्रा की मूर्तियों से जोड़ा जा सकता है, क्योंकि योग-साधना में गुरु का महत्वपूर्ण स्थान है, किंतु इसका प्रथम लिखित उल्लेख हम वैदिक साहित्य में मिलता है। 'श्वेताश्वतरोपनिषद्' में ज्ञान की प्राप्ति के लिए परमेश्वर और गुरु के प्रति समान भक्ति रखने का निर्देश है[1]। 'मनुस्मृति' में गुरु-सेवा से ब्रह्मलोक का सुख प्राप्त होना बताया गया है[2]। अपने यहाँ बहुत प्राचीन काल से गुरु के सम्बन्ध में निम्नलिखित श्लोक प्रचलित है जिसमें उसे ब्रह्मा, विष्णु महेश यहाँ तक कि साक्षात् परब्रह्म का प्रतिरूप स्वीकार कर लिया गया है —

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वर।
गुरु साक्षात्पर ब्रह्म तस्मै श्री गुरुवेनम ॥[3]

मध्यकालीन धार्मिक आस्था के क्रमश: विकसित स्वरूप का प्रतिनिधित्व करने वाले सहजमानी वज्रयानी, नाथ, सिद्ध तथा निर्गुणिया संतों की विविध साधना-पद्धतियों में गुरु का महत्व यहा तक बढ़ गया कि वह साधना का एक अनिवार्य अंग माना जाने लगा।

गोरक्षनाथ ने मानव जीवन के चरम लक्ष्य की सिद्धि सद्गुरु की प्राप्ति से बताई है[4]। संत कबीर को इससे संतोष नहीं हुआ। वे गुरु की महिमा वर्णनातीत बताते हैं—

सब धरती कागद करू लेखनि सब बनिराय।
सात समुद्र की मसि करू गुरु गुन लिखा न जाय[5]।

'गुरु गोविन्द दोनो खड़े काके लागू पाय[6] की समस्या पर बार बार विचार

---

१ यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिताह्यर्था प्रकाशन्ते महात्मन ॥

—श्वेत०, ६।२३

२ गुरु शुश्रूषया त्वेव ब्रह्म लोकं समश्नुते।

—मनुस्मृति, २।३३

३ पाण्डव गीता

४ गोरखवानी, पृ० १५५

५ स० बा० सं०, प्रथम भाग, पृ० २

६ स० बा० स०, प्रथम भाग, पृ० २

इस्च कबीर इस निश्चय पर पहुँचे कि गुरु, गोविन्द से भी बड़ा है[1] क्योंकि 'हरि रूठे गुरु ठौर है गुरु रूठे नहिं ठौर'[2]।

दादूदयाल ने भक्ति, मुक्ति और ब्रह्म-साक्षात्कार का कारण सद्गुरु को ही माना था[3]। सुंदरदास ने परमेश्वर और गुरु को समान पाया था[4]। धरनीदास को गुरु और नाम के बिना जगत् धुएँ के धौरहर सदृश लगा[5]। इसी प्रकार रामसनेही सम्प्रदाय के संतों ने भी गुरु महिमा का विशद् वर्णन किया है।

दरिया साहब का कहना है कि उनकी मानस भूमि में पड़ा हुआ आध्यात्म-बीज गुरु की उपदेश-वृष्टि से सुकाल में अंकुरित हुआ और वही यथासमय पुष्पित एवं फलित होने के योग्य बना[6]। गुरु रूपी तैराक ने ही दरिया साहब को भव सिंधु में डूबने से बचाकर उस पार पहुँचाया था[7]। उनके शिष्य किसनदास ने गुरु को अविगत, अगम, अनंत और अकल आदि विशेषणों से युक्त भगवान् के तुल्य माना है[8]।

रामचरण के अनुसार गुरु ब्रह्म रूप है[9]। वह समस्त कालों का काल और

---

१ म० बा० स० प्रथम भाग पृ० २

२ वही, पृ० २

३ सतगुरु मिलै तो पाइये भक्ति मुक्ति भंडार।
दादू सहजै देखिये साहिब का दीदार॥

—सं० बा० सं० पहला भाग, पृ० ८७

४ परमेसुर अरु परम गुरु दोनों एक समान।

—वही, पृ० १०६

५ सं० बा० सं०, पहला भाग, पृ० ११२

६ गुरु आये घन गरज करि सबद किया परकास।
बीज पड़ा था भूमि में भई फूल फल आस॥

—वही, पृ० १२६

७ डूब रहा भवसिंधु में लोभ मोह की धार।
दरिया गुरु तैरू मिला कर दिया पैल पार॥

—रामस्नेही संतवाणी, पृ० २३

८ वार पार गुरु गम अगम अवगत अकल अनंत।
किसनदास गुरु गम अगम गुरु जैसा भगवंत॥

—वही, पृ० ९९

९ गुरु को ब्रह्म रूप करि जानै।
याकी भक्ति पद्दै परमानै॥

—गुरु महिमा, छं० १७

शिष्य-वत्सल तथा दीनदयाल है[1]। एक स्थान पर कबीर की भाँति उन्होंने गुरु को गोविन्द से बड़ा भी कहा है[2]। इन सन्तों ने गुरु को इतना उच्च स्थान अकारण ही नहीं दिया है। वे इस तथ्य से भलीभाँति अवगत हैं कि गुरु रूपी धोबी ही लोभ, मोह और कर्म रूपी गाढ़ी मैल से मलिन मन रूपी वस्त्र को शब्द के साबुन और ज्ञान के जल से धोकर निर्मल कर सकता है, अन्य किसी की सामर्थ्य नहीं[3]। हरिरामदास ने लोहा को सोना बनाने वाले पारस रूपी गुरु[4] की सेवा हरि से पहले करके उसके माहात्म्य को स्वीकार किया है[5]। रामदास ने गुरु रूपी वृक्ष की शीतल छाया में विश्राम करते हुए मुक्ति फल का लाभ किया था[6]।

सन्तों ने इस प्रकार के तत्त्वज्ञानी गुरु की गरिमा को कलंकित करने वाले पाखण्डियों की चालों को भी देखा था। इसलिए उन्होंने सद्गुरु की शरण में जाने का उपदेश देने के साथ ही साथ ढोंगी गुरुओं से दूर रहने की भी शिक्षा दी है। उन्होंने सद्गुरु का लक्षण बताकर पाखण्डियों के फंदे में न पड़ने का उपदेश दिया। रामसनेही सम्प्रदाय के सन्तों ने भी गुरुपारख के अंग में परीक्षा लेकर गुरु बनाने के लिए कहा है। दयालुदास ने तीन प्रकार के—उत्तम, मध्यम, कनिष्ट गुरुओं का वर्णन करते हुए उत्तम गुरु को कल्याण-साधक बताया है —

---

१ सतगुरु सकल काल को काल।
शिक्षा मिवाजन दीन दयाल॥

—गुरु महिमा, छं० २०

२ गुरु गोविन्द सू अधिका होइ।
या सुनि रीस करो मति कोई॥

—वही, छं० ८

३ लोभ मोह भ्रम उपजै तब मन मैला होय।
रामचरण दोय दाग कद सकै न कोई खोय॥
गुरु धोबी उस्ताद, कसणी सूद चढ़ाय।
ज्ञान नीर साबण शब्द, तन मन उज्जल थाय॥

—अणभै वाणी, पृ० ४-५

४ लोह पलट कंचन भया पारस का परताप।
जन हरिया सतगुरु करै आप सरीषा आप॥

—श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश, पृ० ५१

५ प्रथम सेव गुरु देव की पीछे हरि की सेव।
जन हरिया गुरुदेव बिन भक्ति न उपजै भेव॥

—वही, पृ० ५१

६ सतगुरु ऐसा रामदास जैसी तरुवर छाहि।
शीतल छाया मुक्ति फल ता बिच केलि कराहि॥

—वही पृ० १८७

गुरु पारष कर कीजिए गुरु हैं तीन प्रकार।
रामा उत्तम गुरु बिना बूडा काली धार।।
माया बधत आसरे माया नाव उचार।
रामा मिधम गुरु घणा हिरदै सुधन सार।।
कनिष्ट पचू नाम के पचदेव को जाप।
रामा वैसी साप सुत पच पिता को पाप[1]।।

कनिष्ठ गुरु को लोहे की नौका के समान शिष्य का सर्वनाशक बताते हुए वे लिखते हैं —

'लोह नाव उपला भर, तिरे न कोइ प्रकार।
रामा कनिष्ट गुरु क्रिया ठिग मिजमानहु रार[2]।।

रामचरण जहाँ एक ओर सद्गुरु को गिरिवर जैसा अतुल, सागर जैसा अथाह, शशि के सदृश शीतल, वसुधा के समान धैर्यवान्[3] तथा निस्पृह[4] कहते हैं वहीं दूसरी ओर-उन्होंने लोभी गुरु को पाषाण की नौका की भाँति प्रवचक कहा है[5]। निर्लोभी गुरु की सगति करने वाले को सुजान और लोभी गुरु रूपी पाषाण की नौका का सहारा लेने वाले को मूर्ख बताते हुए वे कहते हैं —

समझया सोइ सुजाण निर्लोभी सगति करै।
जे चढ़ै नाव पाषाण सो मूरख मति जाणिये[6]।।

रामचरण जी का निश्चित मत है कि इस प्रकार के पथ भ्रष्ट गुरु अपने साथ भ्रान्त शिष्यों को भी ले डूबते हैं।

भर्मी शिक्ष भर्मी गुरू मिला मिली सब एक।
उन मिल कैसे पाइये भर्मा रहै विवेक।।

---

१ दयालुदास की वाणी, पृ० स० ६
२ वही, पृ० स० १०
३ गिरिवर जिसा अतोल है सायर जिसा अथाह।
शशि समान शीतल सदा धीरज ज्यूं वसुधाह।।

—अणभै वाणी, पृ० ८

४ निरप्रेही निवछना सो गुरु साहज व ६

—समता निवास-प्रथम प्रकरण, छ० ५४

५ निर्लोभी भवतारणा अरु लोभी वोवै सोय।
अरु लोभी वोवै सोय नाव पाहण की जानो।

—वही, छ० ५५

६ वही छ० ५६

मर्मा रद विवेक उसा तो अधिक भुलावै ।
सो गुरु अपरो होय मोही गुरु शिक्षा सिखावै ॥
मान दानि दुल्लभ गुरु मर्मी सुलभ अनेक ।
भर्मी शिख मर्मी गुरु मिलामिली लख एक[1] ॥

ऐसे अंधे गुरु शिष्य भवसागर में बराबर डूबते-उतारते रहते हैं । विषय-तृष्णा उन्हें कभी दम मारने तक की फुरसत नहीं लेने देती —

गुरु ही अधा रामदास, सिप ही अधा होय ।
अधे कू अधा मिल्या पार न पौता कोय[2] ॥

तात्पर्य यह कि जीवन के अन्य क्षेत्रों की भाँति इन सन्तों की आलोचना दृष्टि गुरु तत्व की व्याख्या में अत्यन्त सजग रही है ।

ग्रंथ-पूजा

रामसनेही सम्प्रदाय में वाणी-पूजा का भी विधान है[3] । सम्प्रदाय वाले गुरु वाणी को बड़े ही सम्मान के साथ सुरक्षित रखते हैं और पर्वों के शुभावसर पर उसका पाठ करते हैं । गुरु वाणी को गुरु का साक्षात् अवतार माना जाता है और गुरु की भाँति उसकी पूजा भी होती है । कहना न होगा कि कबीर पंथ, दादूपंथ शिवनारायणी सम्प्रदाय आदि प्रायः सभी निगुण सम्प्रदायों में ग्रंथ-पूजा का प्रचार है । इन सन्तों में ग्रंथ पूजा की यह प्रवृत्ति सिखों से आयी हुई मानी जाती है । सिखों को यह परम्परा सम्भवत मुसलमानों से मिली थी । ईसाईयों में भी ग्रंथ-पूजा का प्रचार है किन्तु सिखों के ईसाईयों से प्रभावित होने की बात उतनी स्वाभाविक नहीं प्रतीत होती जितनी मुसलमानों से । इस सम्बन्ध में एक बात और ध्यान देने योग्य है । वैष्णव सम्प्रदाय में भी ग्रंथों के प्रति पूज्य भावना का उदय बहुत पहले हो चुका था । मेरी सम्मति में रामसनेही सम्प्रदाय में यह प्रथा वैष्णव-परम्परा से चली आ रही है ।

अगम देश मे विश्वास

भारतीय अध्यात्म साधना की चरमोलब्धि कैवल्य, मुक्ति निर्वाण, परमपद, महासुख, मायपद निरजन पद, शून्य पद, सहजपद आदि की प्राप्ति है । साध्य के इन विविध रूपों का कालान्तर मे स्थूल विकास हुआ । साधकों ने सासारिक मायाजाल से मुक्त होकर साध्य की उपलब्धि के पश्चात् शाश्वत सुख-विलास के हेतु जगत् से पृथक्

---

१ ममता निदरस—प्रथम प्रकरण, छ० ६०
२ रामदास की वाणी, प० स० ३
३ चौकी पर पुस्तक पधरानी ।
निज वाणी के हेतु पुजायी ॥

—ब्रह्म समाधि लीन योग, छ० २३२

एक भिन्न प्रकार के लोक की कल्पना की, जिसके परिणामस्वरूप वैकुंठ, स्वर्ग, गोलोक, साकेतधाम, अमरपुर, सहजलोक, अगमदेश, अमरदेश जैसे साधना लोकों की अवधारणा हुई। ये साधना-लोक ही सन्तों के लीलाधाम हैं। यही उनकी सबसे ऊँची कल्पना है।

कबीर के काव्य में भी अमरदेश का वर्णन आया है। इस देश को कबीर ने देवताओं, मुनियों तथा पीर-औलियों के लिए दुर्लभ बताया है[१]। यह लोक बड़ा ही विचित्र है। यहां धरती-आसमान, पानी पवन, सूर्य-चन्द्र, रात दिन कुछ भी नहीं है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र जैसा जातिभेद भी इस देश में नहीं है। आदि ज्योति गौरि, गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, महेश और शेष भी यहां नहीं रहते। इस अलौकिक देश का आदि अन्त नहीं है। यह काल के बंधन से सर्वथा मुक्त है[२]। यही नहीं, इस देश की शोभा वर्णनातीत है। प्रियतम की इस नगरी में बारह महीने बसन्त रहता है। यहाँ प्रेम का निर्झर झरा करता है। अनन्त ज्योति पुंज से महाअमृत बरसता रहता है। इस देश में आकाश और धरती में कोई अन्तर नहीं। यहाँ जाति और वर्ण की व्यवस्था नहीं है। यहाँ अगम का दीपक बिना बाती तेल के ही जलता रहता है[३]। इस प्रकार कबीर का यह अमर देश जगत् से पृथक एक अलौकिक प्रेम लोक है जहाँ केवल भक्त को ही प्रवेश पाने का अधिकार है। कबीर की भाँति दादू, जगजीवन साहब, शिवनारायण आदि प्रायः सभी निर्गुण सन्तों के साहित्य में अमर देश का विशद वर्णन प्राप्त होता है।

---

१ सुर नर मुनि अरु औलिया ए सब बेले तीर।
अलह राम का गम नहीं तहँ घर किया कबीर ॥

सत्य कबीर की साखी, पृ० ४

२ जहवा आयो अमर वह देसवा।
पानी न पवन धरती अकसवा, चांद न सूर न रैन दिवसवा।
ब्राम्हन छत्री न सूद्र बैसवा, मुगल पठान न सैयद सेखवा।
आदि जोति नहिं गौर गनेसवा, ब्रह्मा विस्नु महेस न सेसवा।
जोगी न जंगम मुनि दुरवेसवा आदि न अन्त न काल कलेसवा।
दास कबीर ले आये सदेसवा, सार शब्द गहि चलो वहि देसवा।

कबीर, पृ० ५२

३ हम वासी उस देश के जहाँ बारह मास विलास।
प्रेम झरे विकसे कवल तेज पुंज परकास ॥
हम वासी उस देस के जहवां नहिं मास बसन्त ॥
नीझर झरै महा अमी, भीजत हैं सब सन्त ॥
हम वासी उस देश के जहाँ जाति बरन कुल नाहिं।
दीपक जरै अगम्य का बिन बाती बिन तेल ॥

सत्यकबीर की साखी पृ० ६४ ६५

अन्य निर्गुण संतो की तरह रामसनेही सम्प्रदाय के महात्मा भी अगम देश में विश्वास करते हैं। साम्प्रदायिक साहित्य मे 'परचा' के अंग मे अगमदेश का बड़ा ही चित्ताकर्षक वर्णन प्राप्त होता है। दयालुदास के शब्दो मे उस अनुपम देश की शोभा का वर्णन देखिए—

रामा देश अनूप है वहा राज महाराज।
बसिया सो अवचल भया अनत सुधारण काज ।।
नीच ऊँच ज्या वरण नहिं नारी पुरुष न भेद।
रामा जुरा न म्रित है नहिं औसत ता खेद ।।
बरस मास पख तिथ बिना रात दिवस कोउ नाहिं।
सुरज मिलाया चंद मैं रामा मिस भी नाहि ।।
बिना मेघ बिरखा बिना छै रुत छम छम आहिं।
रामा नित बरखा लहै पडत कोऊ नाहिं।
बिना बूंद झरणा झरै सुषमण चवै अपार।
मूल बिना तरु फूलिया ता फल अगम अपार ।।
बिना बाग जहाँ बाग है फूले अजब अनूर।
पुष्प बिना रामा सुगंद आसम तत सरूप[1] ।।

इसी प्रकार दरिया साहब भी लिखते हैं —

(क) अमी झरै बिगसत कवल, उपजत अनुभव ज्ञान।
जन दरिया उस देश का भिन भिन करत बखान[2] ।।
जहाँ जल बिन कमला बहु अनत।
(ख) जहँ वपु बिन भौरा गोह करत ।।
अनहद बानी अगम खेल।
जहाँ दीपक जलै बिन बाती-तेल ।।
जहँ जल बिन सरवर भरा पूर।
जह अनत जोत बिन चन्द सूर
बारह मास जहाँ ऋतु बसंत[3]।

रामसनेही सम्प्रदाय के सन्तो का चरम लक्ष्य मृत्योपरान्त इसी अगम देश अथवा परमधाम तक पहुँचना है। यही उनका अपना देश है, अपना घर है जहाँ पहुँचने पर इन्हें नित्यानन्द की प्राप्ति होती है[4]। इसी नगरी में 'जीव-सीव' का मिलन

१ दयालुदास की वाणी, प० स० ४३ ४४
२ अनुभव गिरा पृ० १४४
३ अनुभव गिरा, पृ० १७१
४ राम दास उड देसडै जुरा जम का डड।
परमानन्द गलतान नित्यानन्द अखड ।।
दयालुदास की वाणी, प० स० ४४

होता है। यहीं पर काम, क्रोधादि षड्रिपुओं के द्वारा पीड़ित और सन्त्रस्त जीव विश्राम लेते हैं।

मध्यम मार्ग का अनुसरण

निगुण सम्प्रदाय मध्यम मार्ग का पथिक है। प्रवृत्ति निवृत्ति, राम-रहीम, हिन्दू मुसलमान आदि परस्पर विरोधी तत्वों के बीच से सन्तों ने एक ऐसा रास्ता निकाला जिससे होकर ये सबको समझाते-बुझाते, डाँटते-फटकारते बेखटके चले गये।

मध्यम मार्ग की शिक्षा सन्तों से बहुत पहले भगवान् बुद्ध और गोरखनाथ भी दे चुके थे। बुद्ध ने सुख समृद्धि में जीवन यापन करने वाले विलासियों तथा घोर व्रताचरण से काया को सुखाकर काटा बना देने वाले तापसों के जीवन को निर्वाण के लिए सहायक न मानकर, इन उभय सुख दुख के छोरों को छोड़ कर 'मध्यम प्रतिपदा' को प्रतिष्ठा दी थी[१]। उनका पटिच्चसमुप्पाद या प्रतीत्यसमुत्पाद भी मध्यम मार्ग है जिसका अनुसरण तथागत ने शाश्वतवाद और उच्छेदवाद की एकांतिकता को छोड़कर किया था। गोरखनाथ ने भी मध्यम मार्ग का उपदेश दिया है। वे कहते हैं कि भोजन करने पर मृत्यु होती है और न करने पर भी होती है। अतः मध्य का अनुसरण करके अपने मन और श्वास को नियमित करो तथा संयम द्वारा मुक्ति लाभ करो[२]। कबीर के अनुसार न तो आवश्यकता से अधिक बोलना ठीक है और न आवश्यकता से अधिक चुप रहना ही। न तो वर्षा की अधिकता लाभ कर है और न धूप की[३]। उनकी ऐसी धारणा है कि मध्यम मार्ग पर चलने वाले को संसार-सागर पार करने में कोई कठिनाई नहीं पड़ती[४]। दादूदयाल

---

१ भारतीय दर्शन, पृ० १८२–८६

२ खाये भी मरिये अणखाये भी मरिये।
गोरष कहै पूता संजमिही तरिए॥
मधि निरंतर कीजै वास
दृढ ह्वै मनुवा थिर ह्वै सास॥

—गोरख बानी, पृ० ५१

३ अति का भला न बोलना अति की भली न चूप।
अति का भला न बरसना अति की भली न धूप॥

—सं० बा० सं० पहला भाग, पृ० ३२

४ कबीर मध्य अंग जे को रहै।
तौ तिरत न लागै बार।

—क० ग्र०, पृ० ५३

ने भी मध्यम मार्ग की शिक्षा दी है[1]। मध्य मार्ग की सबसे बड़ी विशेषता भावना की निष्पक्षता है। रामसनेही सम्प्रदाय के संतों ने इसी मार्ग का अनुसरण किया है। स्वामी रामचरण निष्पक्षता पर जोर देते हुए कहते हैं कि किसी मत विशेष का पक्ष लेने में अनेक उलझनें और कठिनाइयाँ आ जाती हैं। अत निष्पक्ष हुए बिना कोई जीवन में सुख लाभ नहीं कर सकता,[2] क्योंकि हरि मतवाद से बहुत ही दूर और निष्पक्षता के अत्यन्त निकट है। जो लोग निष्पक्ष होकर उसका भजन करते हैं वे ही ठीक ढंग से उसे पाते हैं[3]। रामदास[4] और दयालुदास[5] ने भी द्वारिका मक्का और राम रहीम की खींचातानी को छोड़कर निष्पक्षता का उपदेश दिया है। दरिया साहब भी पक्षापक्षी को दुःख का कारण बताते हैं[6]। मध्यम मार्ग के सम्बन्ध में राम चरण का कथन है कि कोई घर छोड़कर बन में निवास करता है तो कोई घर ही पर रहकर साधना करता है। सच्चा सन्त मध्यम मार्ग ग्रहण करते हुए घर की चिन्ताओं और बन में उत्पन्न होने वाले अभिमान से मुक्त होकर रामनाम के प्रति तल्लीन रहता है[7]। उनके अनुसार योग और

---

१ ना हम छाडें ना गहैं ऐसा ज्ञान विचार।
मद्धि भाइ सेवै सदा दादू मुकति दुवार ॥
—स० वा० स०, पहला भाग, पृ० ८६

२ पक्षा पखी उलझाड़ है खैंचाताणी होय।
रामचरण निरपख बिना सुखी न देख्या कोय ॥
—अणभै वाणी, पृ० ५१

३ मत की पख हरि दूरि है है निरपख राम नजीक।
रामचरण निरपख बिना सुखी न देख्या कोय ॥
—अणभै वाणी, पृ० ५१

४ हिन्दू खांचै किधर कू तुरुक किधर कू जाय।
रामदास दुमधा मुवा जीवा स निरपख जाय ॥
—रामदास की वाणी, प० स० ४७

५ कूण कहै द्वारा मती कूण मकै असथान।
रामा राम रहीम कु ण गज मन षाचाताण ॥
—दयालुदास की वाणी प० स० २०१

६ दरिया दुखिया जब लगी, पक्षापक्षी बेकाम
—श्री रामसनेही सतवाणी पृ० ८२

७ कोई गृह तजि वन गया कोइ रहै गृह माहि।
रामचरण वै संतजन मधि के मारग जाहि ॥
गृह मैं तो सासो दहै वन माही अभिमान।
रामचरण दोयू तजे संत भजन गलतान ॥
—अणभै वाणी, पृ० ५०

भोग,[1] लोक और परलोक,[2], निर्गुण और सगुण[3] तथा हद और बेहद[4] के झगड़े को छोड़कर मध्यम मार्ग का अनुसरण ही सन्त मत का परमादर्श है। सतगुरु के द्वारा इसी पथ पर चलने का उपदेश पाकर रामदास ने प्रियतम का दर्शन किया था[5]। दयालुदास ने भी निर्गुण-सगुण का पक्ष छोड़कर मध्य मार्ग से चलते हुए परब्रह्म को प्राप्त किया था[6]।

पिंड और ब्रह्मांड की एकता

पिंड में ब्रह्मांड के सन्निवेश की भावना का सम्बन्ध मूलतः तांत्रिक साधना से है। इस भावना का प्रचार उपनिषत्काल में ही हो गया था। 'बृहदारण्यक उपनिषद्' में अश्वमेध की व्याख्या करते हुए विश्व रूप को अश्व में आरोपित किया गया है। उषा को उसका सिर सूर्य को आँख, वायु को प्राण, अग्नि को मुख और संवत्सर को आत्मा कह कर सम्पूर्ण विश्व को उसके अंग-प्रत्यंग में समाविष्ट कर दिया गया है[7]। बौद्धों की सहजयान शाखा में इस भावना का पर्याप्त प्रचार रहा है। सहजयानी सिद्ध सरहपा पिंड के अन्दर ही तीर्थ आदि कर्मकांडों की व्याख्या करते हैं —

---

१ जोग भोग दोइ रोग है रामचरण तजि दूर।
मधि मारग साधू चल्या पाया सुख भरपूर ॥
—अणभै वाणी, पृ० ५०

२ कोई चाय परलोक की कोई लोक का सुक्ख।
रामचरण सत राम का देखे दोयूं दुख।
—वही, पृ० ५०

३ कोई भवे आकार कूं कोइ निराकार का भाव।
रामचरण वे सत जन मधि का करे उपाव ॥
—वही, पृ० ५०

४ कोई सुमरै हद में कोई बेहद जाय।
रामचरण जन राम का मधि में रहे समाय ॥
—वही, पृ० ५१

५ रामदास सतगुर मिल्या मध कूं दिया बताय।
नरक कुंड सूं काढ कर साइं दिया मिलाय ॥
—रामदास की वाणी प० सं० ४७

६ तुरगण तै सरगुण भया सिरगुण निरगुण माय।
रामदास पख छाड़िया मध परब्रह्म पाय ॥
—दयालुदास की वाणी, प० सं० २०४

७ बृहदारण्यक० १।१।२

एत्थु से सुरसरि जमुना एत्थु से गंगा सायरु।
एत्थु पआग बणारसि एत्थु से चन्द दिवायरु ॥
एत्थु पीठ-उपपीठ, एत्थु मइ भमइ परिट्ठओ।
देहा सरिसअ तित्थ, मइं सुहअण्ण ण दिट्ठआ[1] ॥

गोरखनाथ ने भी घट के भीतर ही अड़सठ तीर्थ होने की चर्चा की है[2]। नाथ सिद्ध अजैपाल 'पिंड ब्रह्माण्ड दोऊ एकवर पिंड ब्रह्माण्ड समाई[3] कह कर पिंड और ब्रह्मांड की एकता बताते हैं। यही नहीं, गोरखमत का मूल सिद्धांत ही यह है कि जो कुछ ब्रह्मांड में है सभी पिंड में है। गोरखनाथ का योग मार्ग साधनामूलक है, इसलिये उसमें केवल व्यावहारिक बातों को ही विस्तार दिया गया है। यहाँ मनुष्य शरीर को ही प्रधान पिंड मानकर इसकी व्याख्या की गई है और बताया गया है कि मनुष्य के किस किस अंग में ब्रह्मांड का कौन कौन सा अंश है। पाताल कहाँ है, स्वर्ग कहाँ है। साधना मार्ग के तीर्थ स्थान कहाँ हैं गंधर्व, यक्ष, उरग, किन्नर, भूत, पिशाच आदि के स्थान कहाँ हैं[4]। सूफी-साधना में भी यह भावना पूर्णत: स्वीकृत हो गयी थी। मलिक मुहम्मद जायसी ने घट ही में तीन लोक चौदह भुवन की कल्पना की है[5]। निर्गुणोपासक संतों में यह विश्वास प्रारम्भ से बद्धमूल रहा है। कबीर कहते हैं कि मन ही मथुरा है, दिल द्वारिका है, काया काशी है और दसवाँ द्वार मन्दिर है जिसमें ज्योति जल रही है[6]। दादूदयाल की वाणी में यह भावना और भी अधिक मुखरित जान पड़ती है। उनके अनुसार शरीर में ही आकाश है, इसी में पृथ्वी है, चारों वेद भी इसी में हैं, जीवन और मृत्यु का चक्र भी शरीर में ही है। आदि और अन्त की सीमान्त रेखायें भी इसी में हैं। परमात्मा का निवास यहीं है। सप्त समुद्र और नदियों का जल सब कुछ इसी में है। शाश्वत सत्य का संनिवेश इसी में है इसी में जीवन शक्ति है, इसी में निवास है। इसी में सेवा है, अमृतपूर्ण स्रोत का सतत् प्रवाह इसी के अन्तर्गत है। यही ब्रह्म का निवास स्थान है। इसी में प्रेम

---

१ हिन्दी काव्य धारा पृ० ८
२ गोरखबानी पृ० ५५
३ नाथ सिद्धों की बानी पृ० ८
४ नाथ सम्प्रदाय, पृ० ११०
५ चौदह भुवन जो तर उपराहीं।
ते सब मानुष के घट माहीं ॥

—जायसी ग्रन्थावली, आखरावट, पृ० ३०१

६ मन मथुरा दिल द्वारिका काया काशी जान।
दस द्वार का देहरा तामें जोति पिछान ॥

— गु० दा० म० ग्रन्थमाला पृ० ९५

की ज्योति है, इसी मे प्रभु का सहवास है, इसी मे कमल विकसित होता है और इसी मे भवरे गुजार करते हैं। अन्यत्र व कहते हैं कि काया मे ही गङ्गा, यमुना, सरस्वती तीनो नदियो का सगम है। काया मे ही काशी, द्वारिका तीर्थ हैं। इसी मे स्नान और पूजा होता है। इसी मे परब्रह्म का निवास है। अत वे इस काया में ही जप करने की सलाह देते हैं[1]। इसी प्रकार परवर्ती सन्तो मे भी इस मान्यता के प्रति आस्था दिखाई पड़ती है। रामसनेही सम्प्रदाय के साहित्य मे घट और ब्रह्माड की एकता पर प्रकाश डाला गया [redacted]। हरिरामदास कहते है कि घट मे सूर्य, चन्द्र और तारे भी हैं। इसी में ब्रह्माड है। इसी घट मे अखड ज्योति के पुज राम निवास करते हैं[2]। दयालुदास ने गङ्गा, जमुना, सरस्वती तथा सब तीर्थों को इसी मे बताया है[3]। रामदास मन को मथुरा, दिल को द्वारिका और काया को काशी कहकर आठो याम इसी में स्नान करने का उपदेश देते हैं[4]। दरिया साहब के शिष्य किशनदास घट को घर की सज्ञा देते हुए कहते हैं कि घट ही मे अविनाशी राम हैं, घट मे गुरु और शिष्य हैं। इसी घट म अनहद की गजना होती है। इसी म तत्वज्ञानी हैं। घट ही मे देवल, देव, सेवा और पूजा है। इसी मे अमर राग का स्वर उठता है। इसी मे कथा, भागवत और उसका अर्थ-विवेचन होता है। इसी मे भक्ति और मुक्ति है। इसी में हवन और यज्ञ होता है। अडसठ तीर्थ मथुरा, काशी, ब्रह्मा, विष्णु और महेश इसी घट मे है[5]। सम्प्रदाय मे आज भी यह भावना पूर्णतया मान्य है।

---

१ श्री दादूदयाल की वाणी सम्पा० मगलदास, (कायाबेली ग्रथ), पृ० ६३८ ६४८

२ घट मे तारा चन्द रवि, घट माही ब्रह्मण्ड।
हरिया घट मे राम है जाकी ज्योति अखड ॥
—श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश, पृ० ७५

३ गग सुरसती जमन सरब तीरथ या माहो।
—दयालुदास की वाणी, प० स० ६४०

४ मन माही मथुरा बसै दिलहि द्वारिका जान।
काया काशी न्हाय लै, आठो पहर सिनान ॥
—रामस्नेहधर्मप्रकाश, पृ० २१८

५ साधो घर ही में घर पाया
घर ही बीच मिल्या अविनाशी, मिल कर भरम मिटाया। टेर।
घर मे सतगुरु घर में चेला, घर में सुमिरण ध्यानी।
घर म नाद अनाहद गरजे, घर म है तत्व ग्यानी।
घर में देवल घर मे देवा घर म सेवा-पूजा।
घर में राग अमर घर मेरा, और न कोई दूजा॥

आचार

सामान्य रूप से किसी विचार अथवा सिद्धान्त को व्यावहारिक जीवन मे उतारने की क्रिया को आचरण और उसके भाव को आचार कहते हैं। आचार और विचार का समन्वय भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता है। तत्वचिंतन से पूर्ण उपनिषदो मे आचार-पक्ष का विधान किया गया है। 'छान्दोग्योपनिषद्' मे तपस्या दान, अहिंसा, सत्य वचन को आध्यात्मिक उन्नति का साधन माना गया है[1]। 'बृहदारण्यकोपनिषद्' मे शम दम, उपरति एव तितिक्षा की प्राप्ति आवश्यक कही गई है[2]। मनुस्मृति' मे आचार को समस्त उपासना का मूल तत्व बताया गया है[3]। मनु के अनुसार आचार के बिना कोई द्विज वेद फल नहीं प्राप्त कर सकता[4]। जैन एव बौद्ध धर्मों मे भी आचार पर विशेष ध्यान दिया गया है। कहने की आवश्यकता नही कि वैष्णव भक्ति भी आचार प्रवण है। कालांतर में कुछ तो तान्त्रिक प्रभाव के कारण और कुछ रूढ़ि रूप में गृहीत होने के कारण बौद्ध सिद्धो और वैष्णवो के आचार-पक्ष मे कुछ दोष आ गया था जिसकी प्रतिक्रियास्वरूप नाथपथ और सन्तमत का उदय हुआ। इन सम्प्रदायों मे आचार को साधना की रीढ के रूप मे स्वीकार किया गया है। निर्गुण सन्तो ने सामाजिक वातावरण को विषाक्त करने वाले रूढिग्रस्त आचारो को जड से उखाड फेंकने का प्रयत्न किया। इसके साथ ही उन्होंने रचनात्मक दृष्टि से आचारगत शुद्धता का भी उपदेश दिया। इस प्रकार सन्तो के आचार-पक्ष के दो रूप हमारे सामने आते हैं—ध्वंसात्मक एव सृजनात्मक।

निर्गुण पथ से सम्बद्ध होने के कारण रामसनेही सम्प्रदाय म आचार-प्रतिष्ठा के उपयुक्त दोनो रूपो के दर्शन होते हैं। यद्यपि इस सम्प्रदाय के सन्तों की वाणी मे सृजन का स्वर अपेक्षाकृत ऊँचा है, फिर भी दरिया साहब को छोडकर इस सम्प्रदाय के सन्तो मे कबीर जैसी लापरवाही, उन्ही जैसा फक्कड़पन और उनका सा ही विश्वास

घर म कथा भागवत घर में, घर मे अथ विचारा।
घर मे भक्ति मुक्ति पुनि घर म ऐसा गृह हमारा
घर मे हवन यज्ञ भी घर मे, घर मे है व्रत वासी
अडसट तीरथ सो भी घर मे घर मे मथुरा काशी
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर घर मे, निरगुण माया तेरी।

—अनुभव गिरा, पृ० २४०-४१

१ छान्दोग्योपनिषद्, ३।१८।४
२ बृहदा०, २।१।६
३ मनुस्मृति १।१०
४ वही, १।१०६

हमें सर्वत्र दिखाई पड़ता है। उनकी पैनी दृष्टि हिंदू मुसलमान दोनों की कुरीतियां और पाखंडों पर पड़ी और दोनों ही उनके व्यंग्य बाण के लक्ष्य बने।

ध्वंसात्मक रूप

पुस्तक ज्ञान की असारता—संत मत में पुस्तक-ज्ञान को असार माना गया है। 'कागद की लेखी' को वे इसलिए नहीं स्वीकार करते कि सब कुछ उन्होंने ज्ञान की आँखों से देखा था। मात्र दो अक्षर के अनन्त प्रकाश में इन संतों ने संसार के वास्तविक रूप को पहचाना था। फिर पोथी पढ़ने की उनके लिए आवश्यकता ही क्या थी? इसीलिए तो रामदास ने कहा है—

पंडित पढ़कर रामदास थोथा करै गुमान।
दोय अक्षर पढ़ीया बिना अंत डूबेगी ज्ञान[१] ॥

उनका दृढ़ विश्वास है कि चार वेद, छः शास्त्र और अठारह पुराणों को कितना ही क्यों न पढ़ा जाय किन्तु एक राम के बिना कोई काम नहीं बन सकता[२]। हरिरामदास के अनुसार ग्रंथादि का अनुशीलन संसार में लिप्त पंडितों का काम है। संतों के हृदय में तो रामनाम का निवास रहता है[३]। रामचरण ने पढ़ने लिखने को 'कागद काला करना'[४] अर्थात् व्यर्थ का काम माना है। दरिया साहब ने भी पढ़ सीखकर ज्ञान चर्चा करने वालों का हृदय अंधकाराच्छन्न माना है[५]।

इस शास्त्र विरोधी भावना के बावजूद जब हम देखते हैं कि इन संतों ने पदे पदे वेद पुराणादि की साक्षी भी दी है[६] तो हमारे मन में यह प्रश्न उठता है कि

---

१ रामदास की वाणी प० स० ९०

२ च्यार वेद षट सासतर पुराण अठारै जोय।
रामदास एक राम बिन कारज सरे न कोय ॥ —वही, प० स० ९०

३ पोथी पुस्तक टीपणो जग पंडित को काम।
हरिया हिरदै संत के रामनाम बिश्राम ॥
—श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश, पृ० ५७

४ क्य कागद काले करे इन बाता क्या होइ।
रामचरण भजि राम को जिस का ममता खोइ ॥ —अणभै वाणी, पृ० ७३

५ सीखत ग्यानी ज्ञान गम करै ब्रह्म की बात ॥
दरिया बाहर चांदना भीतर काली रात ॥ —रामस्नेही संतवाणी पृ० ६२

६ *(क) कहै वेद अरु पुराण संत सब कहै विख्याता।*
—अणभै विलास सप्तम प्रकरण, छ० २

(ख) नाम की समर्था अगम अगाध है।
वेद अरु साध सब कहत माई। —वही, [illegible]० ६

सत शिरोमणि शास्त्र मबही निदे खोट।
—जिग्यास बोध—१८ वा प्रकरण, छ० ६

सन्तों ने इस प्रकार की परस्पर विरोधी बातें एक साथ क्यों कही ? प्रतीत होता है कि इनका पुस्तक-ज्ञान से उतना विरोध नहीं था जितना पाखंडी ग्रंथ कीटों से, जो साधनाजन्य आत्मानुभूति प्राप्त किये बिना ही दर्शन-ग्रंथों को उलट कर ज्ञानी बनने का ढोंग रचते हैं। अतः पुस्तक ज्ञान से उनका तात्पर्य अनुभवशून्य ज्ञान से था ।

मूर्ति-पूजा का खण्डन—सन्तों की स्वानुभूतिमूलक साधना में मूर्ति-पूजा के लिए कोई स्थान नहीं है। यही कारण है कि सम्पूर्ण सन्त साहित्य मूर्ति-पूजा की भर्त्सना से भरा पड़ा है। कबीरदास ने पत्थर पूजने से अच्छी चक्की की पूजा बतायी है, जिसके द्वारा पीसे गये आँटे से संसार का भरण पोषण होता है[1]। महात्मा बनादास ने मूर्ति-पूजा को गुड़िया के खेल के सदृश माना है। उनके अनुसार जिस प्रकार पति मिल जाने पर गुड़िया खेल का महत्त्व नहीं रह जाता उसी प्रकार मूर्ति-पूजा का महत्त्व केवल उन्हीं के लिए है जिन्हें परमतत्त्व का बोध नहीं हुआ है[2]।

रामसनेही सम्प्रदाय के सन्तों ने मूर्ति-पूजा का डट कर खण्डन किया है। दरिया साहब इस विश्वव्यापी रोग से खीझ उठे थे। परिणामस्वरूप उनकी यह परेशानी उदासीनता में परिणत हो गई थी—

दरिया गैला जगत को क्या कीजे समझाय ।
रोग नीसरै देह से पत्थर पूजन जाय[3] ॥

रामदास ने भी कहा है कि यह दुनिया इतनी अंधी है कि अपने ही घट में निवास करने वाले ब्रह्म को नहीं देख पाती और जल, पाषाणादि का पूजन करती है[4]। रामचरण ने तो गोबर, पाषाण तथा मिट्टी निर्मित देवताओं की बड़ी खिल्ली उड़ाई है —

देवल गोबर गार का करि अपणे हाथ सवारि ।
जा सनमुख कर जोड़ के हूवत बैठी नारि ॥

---

१ पाहन पूजे हरि मिलें तो मैं पूजों पहार ।
ताते वे चाकी भली पीसि खाय ससार ॥
—स० बा० संग्रह—पहला भाग, पृ० ६२

२ साँचो पिय जबही मिले गुड़िया खेलत जाय ।
बनादास जेहि ना मिले मूर्ति पूजा ताहि ॥
—विस्मरण सम्हार—उपासना अंग, छ० ४६

३ अनुभव गिरा, पृ० १४०

४ के तो पूजे पथर कूँ के जल पूजण जाय ।
रामां साईं घट में ताकू लखे न काय ॥
—रामदास की वाणी प० सं० ३८

हर्षंत बैठी नारि मिठायाँ आगे धरि है।
कोई देखो हिये विचार आश कुण पूरी करिहै।।
सरजिव पाती पूस हत निर्जिव पुजणहारि।
पुनि राम कह्यां री खिज मरे ये बड़ा मोन संसार[1] ।।

जड़ के आगे चेतन को नाचते देखकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ था —

हार हारि अपणा पहरावा सकती करि करि पूजे।
जड़ के आगे चेतन नाचे देखो साचन क्रू[2] ।।

इसीलिए उन्होंने साफ-साफ कह दिया कि पाषाण की नौका पर चढ़कर भव-सागर पार करने का मनसूबा बाँधने वाले अवश्य डूब जायेंगे —

रामचरण पाषाण की प्रीति न पहुँचै पार।
ज्यूँ पाहण की नाव चढ़ि बूडै बहुती धार[3] ।।

वर्ण व्यवस्था का विरोध—निर्गुणिया सन्त जाति भेद के घोर विरोधी थे। वर्ण व्यवस्था का विरोध इन्हें परम्परा से प्राप्त हुआ था। इनके पूर्व सिद्ध और नाथ योगी जातिवाद की कटु आलोचना कर चुके थे। बौद्ध सिद्ध सरहपा ने जाति-व्यवस्था की भत्सना करते हुए कहा है कि ब्राह्मण ब्रह्म के मुख से उत्पन्न हुये थे, जब हुये थे तब हुये थे। इस समय तो वे भी दूसर लोग जिस प्रकार पैदा होते हैं वैसे ही पैदा होते हैं[4]। वैष्णव धर्म में भी वर्ण व्यवस्था का समय समय पर विरोध हुआ था। रामानुजाचार्य ने जाति बन्धन को ढीला किया था। रामानन्द ने 'जात-पांत पूछे नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि को होई' कहकर जाति प्रथा का विरोध किया था। इसी परम्परा में कबीरदास भी जाति-व्यवस्था के विरोधी रहे हैं। उनका कथन है —

नहीं को ऊँचा नहीं को नीचा।
जाका प्यंड ताही का सींचा।।
जे तूँ बामन बमनी जाया,
तो आँन बाट ह्वै काहे न आया।।
जे तूँ तुरक तुरकनी जाया,
तो भीतरि खतना क्यूँ न कराया[5] ।।

---

१ विश्वास बोध—१७वाँ प्रकरण, छ० १५
२ अणभै वाणी, पृ० ६५
३ वही, पृ० ६७
४ हिन्दी साहित्य की भूमिका पृ० ३२
५ कबीर ग्रंथावली, पृ० १०२

रामसनेही सम्प्रदाय के साहित्य से यह प्रकट होता है कि इस सम्प्रदाय के त भी जातिगत उच्चता एवं नीचता के विरोधी थे। उनके यहाँ श्रेष्ठता की कसौटी सना की वरिष्ठता है। रामचरण के अनुसार भक्तिहीन मनुष्य जातीय दृष्टि से हे कितना ही श्रेष्ठ क्यों न हो, भंगी के तुल्य है[1]। हरिरामदास पण्डित को ावनी देते हुए कहते हैं —

पाण्डे देख पाखि मति भूलि आयो औसर दूलो।टेक।
एक पिंड एक है पाणी एक जोति में आया॥
यामें ऊँच कौन है नीचा सब अविगत की माया।
कुल आचार करी कठिणाई ज्ञान विचार न पाया।
वेद पुराण पढ़ि पढ़ि पण्डित आपा जग भरमाया॥२॥
चारों वरण चार आसरमा यामें आतम एक।
जन हरिराम राम सुमरीजे या सन्तन की टेक[2]॥३॥

यह उल्लेखनीय है कि इन पूर्ववर्ती सन्तों की सामाजिक भेदभाव विरोधी प्रवृत्ति ायित्व नहीं पा सकी। हिन्दू धर्म की बद्धमूल वर्ण-व्यवस्था से संघर्ष करते-करते यह रयत क्षीण हो गई। अब अछूत जातियों के लिए इस सम्प्रदाय में कोई स्थान नहीं है। म्प्रदाय के पीठों में अब केवल सवर्ण हिन्दू ही शिष्य-रूप में स्वीकार किये जाते हैं।

बहुदेवोपासना की भर्त्सना—सन्तों ने केवल ब्रह्म की उपासना की है। वे ईश्वरवादी थे। उनकी साधना का आदर्श सती है। जिस प्रकार सती अपने पति के तिरिक्त किसी दूसरे पुरुष की ओर दृष्टि नहीं डालती उसी प्रकार निर्गुण पंथी सन्त ्रु के अतिरिक्त किसी दूसरे देवता की आराधना नहीं करता। बहुदेवोपासकों को सन्तो यभिचारिणी स्त्री के सदृश माना है जो अपने पति को छोड़ कर परपुरुष से प्रेम करती । रामसनेही सम्प्रदाय के सन्तों ने 'व्यभिचारिणी को अंग' में प्रकारान्तर से बहुदेवो-ासना की बड़ी निन्दा की है। रामचरण कहते हैं कि एक पति में निश्चल भाव से म करने वाली पतिव्रता नारी हर समय आनन्दपूर्वक रहती है, किन्तु व्यभिचारिणी, सके अनेक पुरुषों से आशा रहती है आठों याम विह्वल रहती है[3]। दयालुदास लिखते कि पर पुरुष के प्रेम में उन्मत्त रहने वाली व्यभिचारिणी का जीवन व्यर्थ है। जब

रामचरण हरि भजन बिन ऊँचहि स्वपच समान।

—अणभै वाणी, पृ० १२६

श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश, पृ० १४६

पतिवरता नहचल रहै पति को धर विश्वास।
रामचरण बिभचारिणी घण पुरुषा की आस॥

—अणभै वाणी, पृ० १६

तक जवानी है तभी तक उसे सुख है। अन्त में उसका साथी कोई नहीं रहेगा[1]। दरिया साहब के अनुसार अन्य देवों की उपासना करने वाला जीव अधोगति को प्राप्त होता है[2]। वेस्टन वेस्काट महोदय की व्यक्तिगत भेंट में बहुदेवोपासना की चर्चा करते हुए शाहपुरा पीठ के महन्त नारायणदास ने कहा था कि जिस प्रकार सागर में स्नान कर लेने के उपरान्त विश्व की समस्त सरिताओं में स्नान करने की आवश्यकता नहीं रह जाती, (क्योंकि सागर में सब का जल आकर मिलता है), जिस प्रकार वृक्ष को हरा-भरा रखने के लिए उसकी जड़ में पानी देना चाहिए, पत्तियों, फूलों और फलों को सींचना व्यर्थ है, उसी प्रकार सर्वव्यापी और सर्वशक्तिमान परमेश्वर की उपासना अन्यान्य देवी-देवताओं की पूजा के महत्त्व को समाप्त कर देती है[3]। नारायणदास जी का यह कथन गोस्वामी जी की इन पंक्तियों को हमारे स्मृति-पटल पर अंकित कर देता है —

पात पात को सींचिबो बरी-बरी के लोन।
तुलसी छोटे चतुरपन कलि डहरे कहु कोन[4] ॥

जीव हिंसा का विरोध—सन्त सदैव से हिंसा-वृत्ति के विरोधी रहे हैं। कबीर[5], दादूदयाल[6], मलूकदास[7], धरनीदास[8] आदि निर्गुणिया सन्तों ने भी मांसा-

१ रामो विरथा जीवणों आन पुरस मतवाल।
ग्यार दिनां सुख देखलो अन्त दुरा करे सभाल।
—अनुभव गिरा, पृ० २११

२ आन देव को फिर फिर ध्यावै।
तातें जीव अधोगति पावै॥ अनुभव गिरा, पृ० २१६

३ "As to have the body in the ocean is equivalent to bathing in all the rivers of earth, since they flow in to the great deep and to irrigate the roots of a tree is sufficient without further waste to nourish and bring forth its leaves, its flowers and its fruits, so to worship the omnipotent God does away the necessity of addressing all inferior dieties'
Journal of the Royal Asiatic Society (Feb 1835) p 67

४ दोहावली, छं० ५४६

५ मांस अहारी मानवा परतछ राछस अंग।
ताकी संगति मति करो परत भजन में भंग॥
—सं० बा० सं०—पहला भाग, पृ० ६१

६ काणा मुँह करि करद का दिल थें दूरि निवार।
सब सूरति सुबहान की मुल्ला मुग्ध न मार॥ —वही, पृ० ९२

७ पार सबन की एक सी मत कोई पतियाय।
कांटा चुभे पीर है गला काट कोउ खाय॥ —वही, पृ० १०३

८ धरनी जिव झिनि मारियो मांगहि नाहीं न्याउ।
नंगे पांव मयूर बन होइ नाहि निरवाउ॥ —वही, पृ० ११९

हार और हिंसावृत्ति की बड़ी निन्दा की है। रामसनेही सम्प्रदाय का हिंसावृत्ति से बड़ा विरोध है। इस सम्प्रदाय के सन्तों की अहिंसक वृत्ति का परिचय इसी से मिल जाता है कि वे जीवों पर दया करने के अभिप्राय से जल छान कर पीते हैं। यह नियम जैनियों को छोड़कर अन्य किसी मध्ययुगीन आध्यात्मिक मत में नहीं है। साम्प्रदायिक साहित्य हिंसा तथा मांस भक्षण के निन्दा सम्बन्धी छन्दों से भरा पड़ा है। रामचरण कहते हैं कि मनुष्य का भोजन अनाज है और पशुओं का भोजन घास। मनुष्य अपना भोजन न करके मांस-भक्षण करता है यह बहुत बड़ी अनीति है[1]। हरिरामदास ने भी हिन्दू-मुसलमान दोनों की हिंसावृत्ति की कटु आलोचना की है। निम्नलिखित पद में उनका एतद्विषयक उद्‌गार देखने योग्य है,—

संतो दोनूं राह हरामी खून करै बिन खामी ॥ टेक ॥
हिन्दू घात करै अजया का हरि सूं बेफरमाणी ।
मुख सूं स्वाद करै मन सेती जीव दया नहिं जाणी ॥
पहली तरपण करै गऊ को पुण्य दे पाप मथाई ।
पीछे घन थाटों करि खावै दुष्ट दया नहिं आई ॥
सहजे जीव जिंद कूं छाडे वाकूं कहत हरामा ।
काजी करद गऊ सिर धारै बिना दोस बिसरामा ॥
मुह हराम कहै हक मारी, पसुवो करत पुकारा ।
काजी ज्वाब कौनसा देसी साईं के दरबारा ॥
मुहम्मद पीर जन्ह गऊ कोही था फिर मारि जिवाईं ।
होनहार मिटे नहिं जिव की तूं सिर ले क्यों भाई ॥
मुई मटिया मुरदार कहत है मारै हक्क निवाला ।
देख देख दुनिया कर भूली काजी कौन हवाला ॥
हिन्दू के पण आणि गऊ को सो सूभर तुरकाणे ।
दोऊ मारि भखै मुख मांसा घट-वध कौन बखानै ॥
विषम धर्म कूं सब कोइ लागा हरि धर्म सेती पाछा ।
जन हरिराम राम रस पीजे छाडि सुकर गऊ वाछा[2] ॥

बाह्याचार खण्डन—धार्मिक संस्कारों और आचारों को निर्गुण सन्तों ने अन्धविश्वास पाखंड तथा वाह्याडंबर का प्रतीक माना है। इसीलिए संत-साहित्य में इनका कड़ा विरोध किया गया है। रामसनेही सम्प्रदाय के साहित्य में भी इन्हें स्थान

१ नर का जीवन नाज है अरु पशुवा जीवण घास ।
अब सुणियो बडी अनीति य कोइ मिनख आचरै मास ॥
—विश्वास बोध—१७ वां प्रकरण, छ० ३७

२ श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश, पृ० १४२

ठहराया गया है। रामचरण कहते हैं कि। तुम जप, तप, योग, व्रत, नियमसयम मे मत भूलो क्योंकि य सब ओस के पानी के तुल्य हैं। इनसे प्यास नही जा सकती। ये सब साधन 'नाम' के अभाव मे ठीक वैसे ही हैं जैसे नीर के बिना सरिता और बीज के बिना खेत[१]। पुन वे इन साधनो को नाम क अभाव में, अक विहीन शून्य जैसा बताते हैं[२]। हरिराम दास ने इन्हे व्यर्थ की 'आशाबधी' कहा है[३]। यही नहीं वरन् इन सन्तो ने तीर्थ-व्रत[४] और वेप-भूषा[५], के साथ साथ ही माला और

१ जप तप जोग नेम व्रत सजम मति भूलै इन माहि रे।
ये सब जाण ओस का पांणी, तिरखा भागे नांहि रे॥
जैसे सरिता नीर विहूणी बीज बिना यू खेत रे।
नाम बिना ऐसें सब साधन कहो कहा फल देत रे॥

—अणभै वाणी, पृ० ६६६

२ जोग जिग तीरथ वरत जप तप साधन पुनि।
रामचरण इक राम बिन ज्यू अक बिहूनी सुनि॥

—वही, पृ० ६७

३ जोग जज्ञ जप तप अस्नाना ये सब आशाबधी।
पूरण ब्रह्म सकल ते न्यारा दुनों न जानै अधी॥

—श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश, पृ० १३४

४ क्या देवल क्या द्वारिका क्या मक्का महजीद।
क्या रोजा एकादशी क्या कर्म ईद बकरीद॥
क्या कर्म ईद बकरीद भर्म में भूल्या लोई।
अलह हरम भरपूर राम सुमर्‌या सुख होई॥

—अणभै वाणी, पृ० १७८

५ (क) क्या जामा क्या पागडी क्या तूंबी लंगोट।
राम बिना उतरे नही सिर पापा की पोट।

—रामस्नेही संत वाणी पृ० १४७

(ख) भेप रता अपा सबै अधाई का राच।

—वही, पृ० १४६

(ग) जटा जूट गूदड भया पकर गुदडी सोम।
रामा भेप मगरूर मन तपै छाप की रोम॥

—दयालुदास की वाणी, प० स० १६३

(घ) केसा में दोसण नहीं मूडो केती बार।
मन मूड्या बिन रामदास, मिलै न सिरजणहार॥

—वही, प० स० १६३

तिलक की भी खबर ली है। उन्होंने मुसलमानों में प्रचलित बाह्याचार पर भी कठोर प्रहार किये हैं। रामचरण और रामदास ने नमाज[२] और सुन्नत[३] की बड़ी निन्दा की है। इनके अतिरिक्त अन्य समकालीन सम्प्रदायों में व्याप्त रूढ़िवादिता एवं अंध विश्वास को खुलकर निन्दा करने में इन्होंने कोई कसर बाकी नहीं रखी है। रामचरण कलियुग के तथाकथित योगियों की पोल खोलते हुए कहते हैं —

(ङ) सरिता सायर जल बिना यूं राम भजन बिन भेख।

—रामरसायन बोध—तृतीय प्रकरण, छ० ८७

१ (क) माला फेरे क्या भया मन फाटे कर भार।
दरिया मन को फेरिये जामें बसै विकार॥

—अनुभव गिरा, पृ० १४९

(ख) कंठी माला काठ की तिलक गार का होय।
जन दरिया निजनाम बिन पार न पहुँचे कोय॥

—वही, पृ० १४९

(ग) बिन कंठी माला बिना जल तार्यो गजराज।
किसनदास निज सत की अवगत सुणी अवाज॥

रामस्नेही संतवाणी, पृ० ११४

(घ) माला कंठ तिलक धर जे कोई मिल करतार।
भांड भवइया ऊपरे रीझावण संसार॥

—दयालुदास की वाणी, प० स० १६६

(ङ) शीशतिलक गलमाल दसा बणाई साध के।
कोड्या किया कंगाल, बिना भरोसे राम के॥

—अणभै वाणी, पृ० ७०

२ (क) सकल जहान मे रमि रहा मुला एक रहीम।
बांगि सुणावे कूण कूं बहरा नाहि करीम॥

—अणभै वाणी, पृ० ६४

(ख) घालि कान में आंगुली मुला करत पुकार।
बांग देह सो कूण है आकर करो विचार॥

—वही पृ० ६४

मुल्ला रोजा क्या करै चुप रै बांग पुकार।
रामा साईं साच बिन रीझै नहीं लिगार॥

—रामदास की वाणी, प० स० ३७

३ मीयां सुन्नत तै करी खलड़ी काटी नाय।
साइं रीझै साच सूं सांच बिना कुछ नाय॥

—वही, प० स० ३७

काना मुद्रा भगवा भेस, जगत कहै जोगी आदेस।
आदि पुरुष का लखे न भेद, भीख उथावे लिया लवेद ॥
अंग भभूति नाना भोग, सुरति शब्द का मिल्या न जोग।
गावे गीत भडाई करै, नाथ कहावे घर घर फिरै ॥
पाँचूं छूटो सके न साथ बहुरि निसरडी जोगणि साथ।
छल्ला मुंदडी गल रुद्राख फेरी देवै निपनी माख ॥
खेती भाडा बहुत कुमावै, सौदा करै भीख भी खावै ॥
भैरु पूजै चामंड सेवै जगत चहोडै, आपण लेवै ॥
आसण बांधे आशा धार लख बिन गया जमारो हार।
जीवता एता कर्म कुमावै, मूवा पीछै पीर कहावै ॥
जीवत जोगी करै विषाद, मुई घोर पै बाजै नाद।
करणी भ्रष्ट पचरस भोगी, रामचरण कलियुग का जोगी[1]।

इसी प्रकार नागा, खाकी, गूदडपंथी, निम्बार्क गौडीय, पुष्टिमार्गी, निरंजनी तथा दादूपंथी सन्तों की भी खबर ली गई है[2]। बैरागी[3],

---

१ शब्द (रामचरण), स० ४

२ नागां की फौज बखांणू, मैं भाँति भाँति परमाणू।
कटक काल को आवै नगरी दुनिया धडकावै ॥
निरालम्ब निर्वाणी, ये सन्तोषी अगिवाणी।
खाकी धूल्या थाया, निर्मोहा फुड बणाया ॥
बीच-बीच गूदडिया, ये कोई विरकत खडिया।
करि परभात मपाडा सब मिल मिल खडा उघाडा ॥
खाकी खाल चढावे वे धूल्या भस्म लगावे।
ये चोडा टीका साजे, गुरु रामानन्द का बाजे ॥
निम्बावत मध्वाचारी, ये विष्णु स्वामि जटधारी।
कोइ निरंजन मत का बिन टीका दादू पंथ का ॥
सब आप-आप की टोली ये ठट्ठा ठौंगा ठोली।
ये आम्हां साम्हां जूझै कोइ साध मतो नहीं सूझै ॥
कुस्ती करि पूचा मोडै, कर सूं कर मिल मिल जोडै।
गुरु भाई कह-कह बोलै ये बाहा पकड झकझोलै ॥
ये नहीं साध का कामा भज लीजे केवल रामा।

—लच्छअलच्छ जोग (अणभै वाणी, पृ० ९८६

३ भद्र भेष नारी सूं संग, बिना मूछ दोयूं इक रंग।
मूंछ बिना पुरुष नहिं दीसै जैसे रांड-रांड मिल पीसै ॥
वार बार वाकूं धिरकार विरक्त होइ मुगते भगद्वार ॥

— वे जुक्ति तिरस्कार, छ० २६

जैनमतावलंबी[1] और दिगम्बर[2] भी उनका चपेट से निकल न सके।

इन तथ्यों के प्रकाश में हम यह नहीं कह सक्त कि इनका विरोध केवल परम्परा पालन के लिये है। यद्यपि कबीर के बाद दादूदयाल, सुन्दरदास, धरनीदास आदि सन्तों में इस विरोध-भावना का स्वर क्रमश क्षीण होता गया है किन्तु इस सम्प्रदाय के सन्तो मे वही फक्कड़पन, वही मस्ती, वही लापरवाही और बाह्याचारों पर आघात करने की वही धुन है, जो कबीर मे थी।

सृजनात्मक रूप

निर्गुणिया सन्त यदि एक हाथ में असत् के सहार का खड्ग लेकर अवतरित हुए थे तो उनके दूसरे हाथ में सत् के निर्माण का वरदान भी था। उनकी वाणी में प्रेम, दया, अहिंसा, सत्य, सदाचार जैसे उदात्त भाव भी मुखरित हुये है जिनका अनुसरण कर आज की भ्रान्त मानवता अपने विस्मृत स्वरूप को पुन प्राप्त कर सकती है।

सत्सग—मानव जीवन में सगति का बड़ा महत्व है। मनुष्य का चरित्र-निर्माण उसकी सगति के अनुसार ही होता है। अच्छे लोगों के साहचर्य में रहने वाले मनुष्य में सद्वृत्तियों का विकास होता है और निम्नकोटि के लोगों की सगति मे निवास करने वाला नाना प्रकार की बुराइयों मे फँस जाता है। आलोच्य सम्प्रदाय के सन्तो ने सत्सग की प्रशसा करते हुए जहाँ एक ओर अच्छी सगति मे रहने की शिक्षा दी है, वहीं दूसरी ओर कुसग से सावधान रहने की चेतावनी भी दी है। सत रामदास सगति के प्रभाव पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि आकाश से पृथ्वी पर गिरती हुई पानी की एक ही बूद कदली, सीप, एव सर्प के मुख मे पडकर क्रमश कपूर, मोती और विष के रूप मे परिवर्तित हो जाती है[3]। एक दूसरा उदाहरण देते हुए वे फिर कहते है कि आकाश से गिरने वाला स्वच्छ जल कुसगति मे पड़कर अर्थात् गदे स्थान पर एकत्र होकर सड़ जाता है किन्तु जब वह गङ्गा मे मिल जाता है तब लोग उस

१ माथे ओढ सेवड़ा फिरैं, शीश बनी नारी नित धरै।
शील दया को वाच वखान मन मनसा विषया गलतान॥
बार-बार वाकू धिक्कार, अती जैन भुगतै भगद्वार।

—वही, छ० ६

२ काथ्या कपडा पहर मटरग कर कमडल ले सग मरावग॥
नगन होइ कर अजली खाय, काम विषय विषया विलसाय।
बार-बार वाकू धिरकार दिग अम्बर भेटैं भगद्वार॥

—वही, छ० ८

३ बूद एक ही रामदास फाट हुई तिहुँ भाग।
क्यु कदली, क्यु सीप मैं क्यु सरपै मुख लाग॥

—रामदास की वाणी, पृ० स० २६

गङ्गाजल के रूप मे शिरोधाय करते हैं[१]। रामचरण जी ने भी सत्संग को अनेक प्रकार से महिमा गाई है। सत्संग को समस्त कल्याण का कारण बताते हुए वे कहते हैं —

सत संगति की धारणा सब शुभ को कारण जोय।
शुभ संतोष उदै करै अशुभ कामना खोय॥
अशुभ कामना खोय नफो टोटो दर्शावे।
टोटो सो टलवाय नफा को धर्म दिढ़ावे॥
निज बोहिथ निज नाम दे जन भवजल धारण सोय।
सत संगति की धारणा सब शुभ को कारण जोय[२]।

इसी प्रकार दरिया साहब ने भी साधु-संगति का महत्व प्रतिपादित किया है —

दरिया संगत साध की सहजै पलटै अंग।
जैसे संग मजीठ के कपड़ा होय सु रंग[३]॥

सत्य —रामसनेही सम्प्रदाय के संतों ने सत्य की भूरि भूरि महिमा गाई है। इनकी धारणा है कि सत्य के मार्ग पर चलने से सत्य की प्राप्ति होती है। सत्य की प्राप्ति से सुख की उपलब्धि और धर्म का उदय होता है। मनुष्य झूठ और पाप से मुक्त होकर वाद विवाद से ऊपर उठ जाता है। उसे ज्ञान प्राप्त हो जाता और वह अहर्निश नाम-स्मरण करने लगता है[४]। स्वामी रामचरण ने उस मानव को जिसके घट में सत्य का निवास नहीं रहता, पशु से भी नीच बताते हुये बहुत धिक्कारा है —

ज्या घट साच न सचरे झूठ तणो विस्तार।
वार्ते तो पशुवा भला था नरतन कू धिरकार[५]॥

१ उजल पानी रामदास कुसंगत बिगडाय।
निकस मिल्यो जाय गंग में सबै अगोदिक थाय॥
—रामदास की वाणी, प० सं० ४०

२ विश्रामबोध—चतुर्थ विश्राम, छं० ३

३ रामस्नेही संतवाणी, पृ० ८०

४ साते समझि विचार के सांचो संगति जोय।
सांचा को साधन किया साच परापति होय॥
साच परापति होय सुख उदै धर्म मर्याद।
झूठ पाप छूटै जितो छूटै वाद विवाद॥
छूटै वाद विवाद रहे ग्याता सुख दानी।
सांच राम को नाम सदा सुमिरै सोइ ग्यानी॥
—जिग्यास बोध-एकोनविंशो प्रकरण, छं० ६२

५ जिग्यास-बोध—एकोनविंशो प्रकरण, छं० ५८

समता भाव—श्रेष्ठ मनुष्य वह है जो सुखदुख, हानि लाभ, जय पराजय सबको एक भाव से देखता है। क्षणिक सुख के आह्लाद में आत्मविभोर हो जाना या दुःख की एक धूमिल छाया पड़ते ही अत्यन्त उद्विग्न हो उठना अच्छे मनुष्यों का लक्षण नहीं है। इसलिए रामचरण जी ने समता-भाव धारण करने वालों को बड़ा ही सौभाग्यशाली बताया है। वे कहते हैं कि समता-भाव से चित्त भजन में एकाग्र रहता है, ज्ञान वैराग्य की प्राप्ति होती है और हृदय-कमल सुख-दुख के दिवा-रात्रि में समान रूप से प्रफुल्लित रहता है —

समता मांही सुख घणां ज्यां पाई सो बड भाग।
जे बधे भजन में भावना, सधे ज्ञान-वैराग ॥

सधे ज्ञान वैराग राम लिपतां दुख नांही।
उर आनन्द इक सार सदा परिफुल्लित मांही ॥

रामचरण भज राम कू तजि ममत आश की लाग।
समता माही सुख घणा ज्या पाई सो बड भाग[1] ॥

सन्तोष—सन्तोष परम सुख का मूल है। असन्तुष्ट मनुष्य को सुख की प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती। लोभियों की दशा शूकर-स्वान जैसी होती है जिनका जीवन उदर-पूर्ति के लिए यहाँ वहाँ दौड़ने में व्यतीत हो जाता है। रामचरण के अनुसार सन्तोष ही आनन्द का मूल है[२]। उनकी धारणा है कि परमुखापेक्षी बनकर पीछे पीछे घूमने वाले को कभी सुख नहीं प्राप्त हो सकता[३]। इसीलिए दयालुदास कहते हैं कि जो कुछ ईश्वर दे मनुष्य को इसी में सन्तोष करना चाहिए। अधिक की कामना करने वाले को निरन्तर दुःख ही मिलते हैं[४]।

सहनशीलता—सहनशीलता सन्तों का आभूषण है। रामसनेही भक्तों ने सहनशीलता को सन्त का एक प्रमुख लक्षण माना है। रामदास इस गुण को इतना

---

१ विश्राम बोध—द्वितीय विश्राम छ० ३८

२ सन्तोष पोष तिरपति करै

—समता निवास—छठाँ प्रकरण, छ० १८

३ कोई आश पराई करत है सो वे सुखिया नाहि।
बहुविधि नाच नचाय है, आश बसे उर माहि ॥

—वही, छ० ३२

४ आधी देवै राम जी, याही में सन्तोष।
रामा सारी चाहिया उपजे पत्रे दोष ॥

—दयालुदास की वाणी, प० स०

उच्च स्थान देते हैं कि उन्होंने स्वयं को सहनशील पुरुष का सेवक कहा है[1]। दयालुदास ने धैर्य और क्षमा को दुर्जनों के वचन बाण से संतों की रक्षा करने वाली ढाल कहा है —

राम दुरजन वचन सर लागे नाहीं एक।
धीरज छिम्या ढाल कर हरजन सुखी बसेक[2] ॥

सारग्राहिता—सच्चा साधु सारग्राही होता है। आलोच्य धारा के कवियों ने सारग्राहिता पर बहुत बल दिया है। रामचरण कहते हैं कि खेत में अन्न और भूसा दोनों होता है। किसान अन्न को ग्रहण कर लेता है और भूसे को पशुओं के लिए छोड़ देता है। ठीक इसी प्रकार सारग्राही मनुष्य गुणों को ग्रहण कर लेता है और दुर्गुणों को मूर्खों के लिए छोड़ देता है[3]। उन्होंने मधु की मक्खी[4] और हंस[5] की सारग्राहिणी प्रवृत्ति को आदर्श माना है। उनका मत है कि वेदों में 'कर्मकांड' और 'नाम' दोनों वर्तमान है। सारग्राही सन्त नाम का वरण करता है और शेष संसार कर्मकांड के जंजाल को अपनाता है[6]। दयालुदास ने भी सच्चे सन्त को सारग्राही बताया है —

सारगिराही संत है घट बिच अघटा पाय।
राम साटी भरम की दूर किया दरसाय[7] ॥

---

१ सार सबद म गरक ह्वै सिंवरै सास उसास।
रामदास कुवचन सहै ताहि तणी मैं दास ॥

—रामदास की वाणी, प० स० ५५

२ दयालुदास की वाणी, प० स० २१३

३ कण फूकस भेला नीपजै, रामचरण इक खेत।
कण अधिकारी मानवी फूकस पसवां हेत ॥

—अणभै वाणी, पृ० २६

४ यूं विष इमृत दोन्यू बसै, अठार भार के माहि।
सहत सोधि लै मक्षिका विषकूं छवै नाहि ॥

—वही, पृ० २६

५ मोती नामै एक है काच सीर का होय।
रामचरण हंसा चुगै वे मान सरोवर जोय ॥

—वही, पृ० २६

६ रामचरण यूं वेद मैं करम कांड अरु नाम।
करम कांड संसार लें, साधू सुमरै राम ॥

—अणभै वाणी, पृ० २६

७ दयालुदास की वाणी, प० स० २०६

अहिंसा और दया—भारतीय धर्म साधना में अहिंसा और दया को मानव का परम धर्म माना गया है। रामसनेही सम्प्रदाय के संतों ने जीवों पर दया करने और अहिंसा का व्रत लेने की शिक्षा दी है। हिंसा करने वाले की आलोचना करते हुये रामचरण ने कहा है कि दयाहीन मनुष्य यमदूत के तुल्य है। ऐसे मनुष्य का मुख नहीं देखना चाहिए[1]। उनकी धारणा है कि जो लोग जीव हत्या करते हैं उन्हें परमात्मा स्वनिर्मित वस्तु को बिगाड़ने के अपराध में दंडित करता है अतः वे शिक्षा देते हैं कि जिह्वा के स्वाद के लिए जीव हत्या नहीं करनी चाहिए[2]। इतना ही नहीं रामसनेही संत जीव-हिंसा के भय से जल छान कर पीते हैं, रात में दीपक नहीं जलाते, सूर्यास्त के पूर्व भोजन कर लेते हैं और वर्षा ऋतु के चार मास एक स्थान पर व्यतीत करते हैं।

कथनी और करनी की एकता—कथनी और करनी की एकता मानव-जीवन की सफलता की कुंजी है। उच्चादर्शों का राग अलापना व्यर्थ है जब तक कि उन्हें जीवन में उतार न लिया जाय। रामचरण जी का मत है कि जिस प्रकार पक्वान का गीत गाने से तृप्ति नहीं हो सकती, कागज में लिखी हुई अग्नि वन को नहीं जला सकती[3], उसी प्रकार किसी भी बात का कहना या सुनना तब तक थोथा और निःसार है जब तक कि उसे कार्यरूप में परिणत न कर दिया जाय[4]। इसीलिए उन्होंने कहणी-रहणी' की एकता को संतों का एकमात्र लक्षण माना है[5]।

---

१ दया विहूणा मानवी जाका मुखड़ा न देख।
दयाहीण जमदूत है कहा भगत कहा भेष॥
—अणभै वाणी पृ० ५

२ घात करै हरिकृत की आपण स्वादा काज।
दया न उपजै जीव में मूरख करै अकाज।
मूरख करै अकाज, पाप सागर में गलि है
बदलो देसी खरो नेक भी नाहीं टर है।
ताते जीव न मारिये भान दृष्टि करि जोय।
यूं ही मास न होय है प्राण हत्यातें होय॥
—जिज्ञास बोध—३६ वां प्रकरण, छं० ४६

३ गीता में पकवान्न गाय, कुधा तिरपत होई।
कागद लिखी ज आगि वृक्ष बन जलै न कोई॥
—अणभै वाणी, पृ० ११५

४ रामचरण करतब बिना सीखो सुणो निशक।
कुछ हासिल प्रापति नहीं जैसे लहरी शंख॥
—वही पृ० २२

५ कहणी रहणी एक है सोही संत सुजान।

दयालुदास कहनी और रहनी की समानता में ही सन्त-जीवन की सफलता बताते हैं[१]। दरिया साहब ने भी 'तन मन एकहि रंग' को भला बताते हुए इसकी पुष्टि की है[२]।

उपासना-प्रणाली

उपासना का शाब्दिक अर्थ आराधना, पूजा अथवा सेवा है। इस शब्द की निष्पत्ति 'उप' और 'आसना' शब्दों के संयोग से हुई है।[३] 'उप' का अर्थ होता है सन्निकट और 'आसना' का तात्पर्य बैठने से है। इस प्रकार उपासना शब्द से उपासक और उपास्य दो व्यक्तियों का द्योतन होता है। उपासक की अन्तिम इच्छा उपास्य की कृपा-प्राप्ति होती है। नाना प्रकार से व्रत, नियम, जप, तप, पूजा अर्चा आदि के द्वारा साधक अपने साध्य को प्रसन्न करने का प्रयास करता है। पूजा, अर्चा आदि अनेक विधि विधान के साथ की जाने वाली यह उपासना केवल उसी दशा में सम्भव है जब उपास्य व्यक्त अथवा साकार हो। निर्गुण मार्गी होने से रामसनेही सन्तो का उपास्य निराकार है। अतः इसकी उपासना पद्धति सगुणोपासकों से सर्वथा भिन्न है। यहाँ अष्टयाम सेवा का विधान नहीं है। इन सन्तों की उपासना का सार नामजप है। पिंड में ही ब्रह्माण्ड की स्थिति मानने से इन सन्तों की उपासना अन्तर्मुखी होती है। इनके यहाँ आरती तो होती है किन्तु उसका स्वरूप सामान्य रूप से होने वाली आरती से पृथक् होता है। यह आरती भी घटस्थ ब्रह्म की होती है। हरि-रामदास की आरती का एक नमूना देखिये —

ऐसी आरती घट ही में कीजे। राम रसायन निशि दिन पीजे।टेर।
घट ही मे देवल घट ही में देवा। घट ही मे सहज करै मन सेवा।
घट ही में पाँच पचीसौं मंडा। घट ही में जागे जोति अखण्डा।
घट ही में पाती फूल चढावे। घट ही में आतम देव मनावे।
घट ही में शंख शब्द धन तूरा। घट ही में प्रेम परस निज नूरा।
घट ही में गावे हरि का दासा घट ही मे पावै पद परकासा।
जन हरिराम राम घट माहीं। बिन खोज्या कोइ पावै नाहीं[४] ॥

१ दयालुदास की वाणी, प० स० १३२

२ बाहर से उज्जल दशा, भीतर मैला अंग।
ता से तो कौवा भला, तन मन एकहि रंग ॥

—अनुभव गिरा, पृ० १२७

३ 'उप' उपसर्गपूर्वक 'आस् उपवेशने' धातु से 'युच्' प्रत्यय करने पर 'टाप्' प्रत्ययान्त 'उपासना' शब्द बनता है।

४ श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश, पृ० ३२२

दरिया साहब की आरती का स्वरूप भी देखने योग्य है —

ऐसी आरती निश दिन करिये,
राम सुमिर भवसागर तरिये ।।टेक ।।
तन मन अरप चरण चित दीजे,
सदगुरु शब्द हृदय धर लीजे ।।१।।
तन देवल बिच आतम पूजा,
देव निरंजन और न दूजा ।
दीपक ज्ञान पाँच कर बाती,
धूप ध्यान खेवों दिन राती ।।२।।
अनहद झालर शब्द अखण्डा,
निश दिन सेव करै मन पण्डा ।
आनन्द आरती आतम देवा
जन दरियाव, करै जहँ सेवा[1] ।।३।।

रामचरण ने अविनाशी पुरुष की पाँच आरतियों का उल्लेख करते हुए क्रमशः मन-मन्दिर को स्वच्छ करने, हृदय में प्रेम का प्रकाश होने, शब्द के नाभि कमल से सहस्र दल कमल की ओर बढ़ने, अनहद की चौकी पर बैठने और अन्ततोगत्वा आराध्य से ऐक्य स्थापित कर अमरत्व लाभ की करने चर्चा की है ।

आरति अचलपुरुष अविनाशी, घट घट व्यापक सकल प्रकाशी ।टेक।
प्रथम आरति मंदिर बुहार्‌या राम-राम रटि कर्म निसार्‌या ।।१।।
दूसरी आरति दीपक जोया हिरदै प्रेम चाँदणा होया ।।२।।
तीसरी आरति कुम्भ भराया नील कमल सू गगन चढाया ।।३।।
चौथी आरति चौकी विराजै जहाँ अनहद का बाजा बाजै ।।४।।
पाँचई आरति पूरण कामा सुरति परसिया केवल रामा ।।५।।
सेवक स्वामी मया समाना रामहि राम और नहिं आना ।।६।।
रामचरण ऐसी आरति कीजै परसि अमर पद जुग-जुग जीजै[2] ।।७।।

आरती के ये पद सायंकाल की पूजा के समय सम्प्रदाय के रामद्वारों मे गाये जाते हैं और इसमें सन्त और गृहस्थ दोनों वर्गों के लोग सम्मिलित रूप से भाग लेते हैं। सगुणोपासना के प्रभाव से निर्गुण आरती के साथ ही इधर सगुण साकार की आरती की प्रथा प्रकारान्तर से चल पड़ी है । शाहपुरा में आचार्यों की समाधि की आरती इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है ।

---

१ रामस्नेही सन्तवाणी, पृ० १६३ ६४

२ रामस्नेही धर्मदर्पण, पृ० १०५

उपासना मे मन्त्रो का प्रयोग

वैदिक उपासना-पद्धति मन्त्रो पर आधारित है। अपने उद्भव-काल मे निर्गुण सम्प्रदायों मे मन्त्रो का प्रयोग नहीं होता था किन्तु कालान्तर मे अधिकाश निर्गुण सम्प्रदायों मे नित्य तथा नैमित्तिक कर्मों म मन्त्रो को अत्यधिक महत्व दिया जाने लगा। वैष्णव मत मे इसका प्रसार तान्त्रिक प्रभाव के कारण हुआ। यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि रामसनेही सम्प्रदाय की शाहपुरा और रेण शाखाओ मे मन्त्रों का प्रयोग अब भी नहीं होता, किन्तु सिंहथल-खेडापा शाखा के सन्त वैष्णव मन्त्रों मे विश्वास करते हैं। सन्तो के व्यावहारिक जीवन मे इन मन्त्रो का प्रयोग देखने मे नहीं आता किन्तु सम्प्रदाय द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ 'श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश' मे कुछ मन्त्र दिये गये है और पूछने पर इस शाखा के महात्मा इन मन्त्रो के प्रति बडी श्रद्धा प्रकट करते हैं। साम्प्रदायिक उपासना पद्धति में मान्यता प्राप्त कुछ मन्त्र नीचे दिये जाते हैं[१] —

यज्ञोपवीत धारण मन्त्र

ऊ यज्ञोपवीत परम पवित्र प्रजापतेर्यत् सहज पुरस्तात्
आयुष्यमग्र प्रतिमुञ्च शुभ्र, यज्ञोपवीत बलमस्तुतेज ।।

कठी माला धारण मन्त्र —

तुलसी काष्ठ सम्भूते माले विष्णु जनप्रिये।
रक्षा धारयाम्यह कण्ठे कुरुमा राम वल्लभम् ।।
यज्ञोपवीतवद्धार्या सदा तुलसि मालिका।
क्षण मात्र परित्यागाद्विष्णुद्रोही भवेन्नर ।। २ ।।

चरणामृत-मन्त्र

अकाल मृत्युहरण सर्वव्याधिविनाशनम्।
विष्णुपादोदक पीत्वा, शिरसा धारयाम्यहम् ।। १ ।।
एकादशी व्रत गीता गगाम्बु तुलसी दलम्।
विष्णो पदाम्बु नामानि मरणे मुक्तिदानि च ।। २ ।।
तीर्थे प्रसाद स्वीकारानन्तर वैष्णवो द्विज।
न हस्तक्षालन कुर्यात् न तत्राचमन क्रिया ।। ३ ।।

तु थिकाकमण्डलु शुद्धि-मन्त्र

ओ जल दहति पापानि कमण्डलुगत तु यत्।
गगातोय सम नित्य जल पात्र च शुद्धयति ।।

---

१ श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश, पृ० ३८६ ९०

कठारी-शुद्धि-मन्त्र

ओ जले चाग्नि स्थले चग्निरग्निश्च वायुमण्डले ।
त्रिसिरग्नि प्रकाशीश्च काष्ठ पात्र च शुद्धयति ॥१॥

दीक्षा-मन्त्र

रामसनेही सम्प्रदाय के उपास्य निर्गुण राम हैं। इसका दीक्षा-मन्त्र भी 'राम' है। यह सगुणोपासना के 'राम' मंत्र से सर्वथा भिन्न है। शाहपुरा शाखा में इस 'राम' मन्त्र का उपदेश दो साखियों के माध्यम से होता है और उन्हें ही दीक्षा-मन्त्र के नाम से अभिहित किया जाता है। यह मन्त्र इस प्रकार है —

राम नाम तारक मन्त्र सुमिरै शंकर शेष।
रामचरण साचा गुरु देव यो उपदेश ॥
सतगुरु बक्शी राम नाम शिव आरै विश्वास।
रामचरण निशि दिन रटै निश्चय होय प्रकास ॥

साम्प्रदायिक उपासना के ये तत्त्व निश्चय ही निर्गुण तथा सगुणमार्गी साधना को एक दूसरे के निकट लाते हैं। परवर्ती सतकाव्य की यह प्रवृत्ति अन्य पंथों के साहित्य में भी परिलक्षित होती है।

---

१ रामस्नेही धर्म-दर्पण, पृ० ५४-५५

छठाँ अध्याय

साहित्यिक मूल्यांकन

भाषा सौष्ठव और अलंकार विधान को काव्य का सर्वस्व समझने वाले समालोचकों ने सन्तों की रचनाओं के काव्यत्व पर प्रश्न-चिह्न लगा दिया है। वे सन्तों की वाणी को काव्य की कोटि में इसलिये नहीं रखना चाहते कि उसमें कहीं-कहीं पर सही भाषा का प्रयोग नहीं किया गया है, पग-पग पर छन्दशास्त्र के नियमों का उल्लंघन किया गया है, और कभी कभी भाषा से जबरदस्ती अपनी बात कहलवा ली गयी है। उपर्युक्त कारणों से ही किसी रचना के काव्यत्व को अस्वीकार करना समीचीन नहीं प्रतीत होता। यदि काव्य की कसौटी केवल भाषा, छन्द और अलंकार ही होते तो विश्व का सर्वश्रेष्ठ कवि कोई भाषाशास्त्री अथवा काव्यशास्त्री होता और केशव का काव्य हिन्दी जगत् में श्रेष्ठ काव्य का मानदण्ड माना जाता। तात्पर्य यह कि भाषा, छन्द, अलंकार आदि शरीरी तत्वों के अतिरिक्त काव्य में एक ऐसा तत्त्व भी है जो देह में चेतना और पुष्प में गन्ध की भाँति व्याप्त रहता है और जो ही काव्य का जीवन है। आनन्दवर्धन ने इसी अनिर्वचनीय तत्त्व की ओर संकेत करते हुये कहा है कि जिस प्रकार युवती के रूप में उसके अंग प्रत्यंग की शोभा के अतिरिक्त लावण्य नाम का एक अनिर्वचनीय तत्त्व होता है, उसी प्रकार महाकवियों के काव्य में भी एक प्रतीयमान् अनिर्वचनीय सौन्दर्य होता है।[1] अब प्रश्न यह है कि वह अनिर्वचनीय सौन्दर्य क्या है और कहाँ से आता है? काव्य आत्मा की अभिव्यक्ति है। महाकवि भवभूति ने भी काव्य को अमृतरूपा कहते हुए आत्मा की कला माना है।[2] आत्मा सच्चिदानन्दरूपिणी और अनिर्वचनीय है। अतः काव्य का सौन्दर्य उसमें निहित आत्म तत्त्व की अभिव्यक्ति पर निर्भर होता है। इस दृष्टि से विचार करने पर संतों की वाणी उत्कृष्ट काव्य की कोटि में आती है क्योंकि उसमें आत्मतत्त्व की जैसी अभिव्यंजना हुई है वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। आत्माभिव्यक्ति के नाते से संतों की

---

१ प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।
एतत् प्रसिद्धावयवातिरिक्तं आभाति लावण्यमिवांगनासु ॥
— ध्वन्यालोक, १।४

२ उत्तर रामचरित, १।१

तुलना में सूर और तुलसी तो यथार्थ नहीं ठहरते हाँ, मीरा का नाम अवश्य उभर कर सामने आता है किन्तु उनका आयाम अपेक्षाकृत बहुत ही सीमित है।

संतों की रचनाओं को यदि सहृदयतापूर्वक शास्त्रीय परिभाषा की कसौटी पर परखा जाय तो भी उन्हें काव्य के सिंहासन से च्युत नहीं किया जा सकता। काव्य को परिभाषित करते हुए भारतीय आचार्यों ने शब्द और अर्थ की सम्पृक्ति का व्याख्यान किया है।[1] प्रश्न यह है कि शब्द और अर्थ की किसी भी सम्पृक्ति कविता है? शब्द और अर्थ का व्यापार मनुष्य सुबह से शाम तक, साग-भाजी के सौदे से लेकर अध्यात्म, दर्शन और विज्ञान विषयक गोष्ठियों तक में करता है। क्या ये सब कविता के अन्तर्गत आयेंगे? प्रकट है कि शब्द और अर्थ का प्रत्येक व्यापार कविता नहीं है। वस्तुतः किसी प्रसंग में शब्द और अर्थ की सम्पृक्ति जब अर्थ-बोध से ऊपर उठकर सम्वेदना के धरातल पर किसी अनुभूति का सहृदय तक सम्प्रेषण करता है तब काव्य का सृजन होता है। इसी बिन्दु पर पहुँचकर इतिहास, दर्शन, नीतिशास्त्रादि निर्धारित मुख्य विषय तरलित होकर काव्योपयोगी बन जाते हैं।

आचार्य विश्वनाथ ने 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' और पंडितराज जगन्नाथ ने 'रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्' जैसे कथन के माध्यम से जिस रसात्मकता और रमणीयता की बात कही थी उससे उनका तात्पर्य हृदय को रससिक्त करने एवं रमाने वाली उक्ति से ही था। कहने की आवश्यकता नहीं कि हृदय का रससिक्त होना या रमना सम्वेदना के स्तर पर होना है। उदाहरणार्थ नारद, शुकदेव और व्यास जैसे ऋषि जिनका पार नहीं पाते और वेदादि जिसे अछेद एवं अभेद बताते हैं वही ब्रह्म जब रसखान की वाणी में 'अहीर की छोकरिया' के 'छछिया भर छाछ' के लिए नाचता हुआ दिखाई पड़ता है तब बात सुंदर (सु+उन्द=गीला करना)+अर=हृदय को गीला करने वाली) एवं रमणीय (मन के रमण करने योग्य) या रसपूर्ण बन जाती है और भावक उस कविता मानने के लिए विवश हो जाते हैं।

इसी प्रकार जब संत कबीर मन और वाणी की गति के परे अविगत अलख और अनिर्वचनीय परम तत्व की 'नैना बैन अगोचरी' मुद्रा के प्रति 'लव लगाकर, न केवल 'राम रसायन' का पान करता है वरन् कभी जनम-जनम का नाता मानकर

---

१ भामह ने 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' कहकर शब्दार्थ संयोग को काव्य बताया है। आचार्य कुंतक काव्य में शब्द और अर्थ के आह्लादकारी पाणिग्रहण पर बल देते हैं—शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनि। बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणी। राजशेखर के अनुसार शब्द और अर्थ के यथोचित सहभाव वाली विद्या साहित्य विद्या है। इसी प्रकार कालिदास के 'वागर्थ विवि सम्पृक्तौ' कथन में काव्य के लिये शब्दार्थ की सम्पृक्ति का स्पष्ट उल्लेख है।

राजाराम भरतार' के आगमन पर 'मंगलचार' गाता है और उसके साथ ब्याह रचाते हुए अपने को बड़ भागी समझता है, कभी प्रियतम के विरह में आठ-आठ आंसू बहाते हुए अहर्निश उसका 'पथ-निहारता' है, और कभी 'नाम की जेवड़ी' से बंधा 'सोनिया' श्वान बनकर अपने को स्वामी की इच्छा पर सर्वतोभावेन समर्पित कर देता है तब बात संवेदनशील व्यक्ति के मर्म को छू जाती है और रसानुभूति होने लगती है। यही वर्ड्सवर्थ के शब्दों में सशक्त अनुभूति का सहज उद्रेक (Spontaneous overflow of powerful feelings) है। इसी को एवरक्राम्बी शुद्ध अनुभूति (Pure experience) कहता है और इसी स्थिति को हृदयंगम कराने के लिये भोजपुरी का एक लोक कवि कहता है कि बिरहा की खेती नहीं होता, बिरहा डाल पर नहीं फलता, वह तो हृदय में उत्पन्न होता है और उमग आने पर गाया जाता है।[१]

अब प्रश्न यह है कि यह तो सन्तों की वाणी का एक पक्ष हुआ। उनकी रचनाओं के दूसरे पक्ष का क्या होगा, जिसमें वे समाज के कलुष से संघर्ष करने के लिए लड़खड़ाते दिखाई पड़ते हैं और जहाँ अनेक प्रसंगों को लेकर वे बहुत ही कटु हो गये हैं। कतिपय 'रसिक' पाठक कह सकते हैं कि सत काव्य का यह अंश असुन्दर और काव्य के लिए सर्वथा अनुपयोगी है। इस सम्बन्ध में प्रस्तुत लेखक की निश्चित धारणा है कि काव्य के लिए कोई भी विषय असुन्दर और अनुपयोगी नहीं है। कीड़े-मकोड़े से लेकर अतुल काम-विपासा तक और रोटी-दाल के भौतिक प्रश्नों से लेकर अध्यात्म-दर्शन तक कुछ भी काव्य के लिए अनुपयोगी नहीं होता। जिन्हें समग्र जीवन का बोध नहीं है वे सौन्दर्य और असौन्दर्य का भेद क्या समझेंगे? जिन्हें केवल पुष्प-स्तवक प्रिय है वे उस माली की मनोभूमि को कैसे समझ सकते हैं जो फूल चुनने में पहले कटकों को मेराता है। वस्तुतः स्वस्थ साहित्य-बोध के लिए भावुक और भावक दोनों में समग्र जीवन दृष्टि की महती आवश्यकता है। सुश्री महादेवी वर्मा ने काव्य में सौन्दर्य की चर्चा करते हुए ठीक ही लिखा है कि "जीवन का जो हर्ष विकास के लिए आवश्यक है वह पाने के उपरान्त धोग, बड़ा, लघु, गुरु सुन्दर विरूप, आरुप, भयानक, कुछ भी कला जगत् से बहिष्कृत नहीं किया जा सकता।"[२]

१—नाहीं बिरहा कै खेती होए भइया,
 नाहीं बिरहा फरै डारि
 बिरहा त उपजा मन हिरदइया में
 जब उमगै तब गाव।

२ साहित्यकार की आस्था और अन्य निबंध, पृ० ३२

काव्य मे सौंदर्य असौन्दर्य की मीमांसा करते हुए आचार्य द्विवेदी ने भी कहा है कि बाह्य असुन्दरता के ढूह पर खड़े होकर आंतरिक सौन्दर्य की उपासना नहीं हो सकती। हमें उस बाह्य असौंदर्य को देखना ही पड़ेगा। निरन्न, निर्वसन जनता के बीच खड़े होकर अप्सरियों के सौंदर्य लोक की कल्पना ही कर सकते। साहित्य सुन्दर का उपासक है इसलिए साहित्य को असामंजस्य को दूर करने का प्रयत्न पहले करना होगा अशिक्षा और कुशिक्षा से लड़ना होगा, भय और ग्लानि से लड़ना होगा।[१] सन्त कवि परम सौंदर्य के उपासक थे, जिसके सामने करोड़ों सूर्य का तेज और करोड़ों कामदेव का सौंदर्य कुछ भी नहीं था। उनके 'अगमदेश' में पटऋतु का शोभा सरसती रहती है, छत्तीस रागिनियाँ बजा करता है और साधक अनुभव के गीत गाया करता है। ऐसे सौंदर्य देश का वासी कभी भी भौतिक जीवन की विसंगतियों को देखकर मौन नहीं रह सकता था। अतः उन्होंने जीवन की कुरूपता से लड़कर सम्पूर्ण समाज को सौंदर्य मय बनाने का प्रयत्न करते हुए सत्य, अहिंसा, दया, करुणा आदि सात्विक वृत्तियों को प्रतिष्ठित किया। ऐसे शाश्वत सौंदर्य के उपासकों को रससिद्ध कवीश्वर मानना हमारा परम कर्तव्य है।

रहा भाषा और अभिव्यक्ति के अन्य साधनों की बात, जिसको लेकर सन्तों की वाणी के काव्यत्व पर अंगुलि निर्देश किया गया है। इस विषय में निवेदन यह है कि सन्तों की रचनाओं को वाणी-विलास की संज्ञा नहीं दी जा सकती। कवि-कर्म उनका साध्य नहीं साधन था।[२] उन्होंने स्वयं भी कहा कि उनकी वाणी को गीत अर्थात् काव्य न माना जाय क्योंकि वह ब्रह्म विचार है, आत्म-साधना का सार है। सन्तों की भाषा सहज साधना की भाषा है। अतः वह भी सहज है। सहज भाषा चमत्कार की भाषा नहीं है, वह व्याकरण और भाषाशास्त्र के बल पर बनाई हुई भाषा नहीं है, बोली में प्रयुक्त शब्दों के अनुपात पर गढ़ी हुई भाषा नहीं है। वह साधना की भाषा है। उसमें टेढ़ी से टेढ़ी बात भी सहज ही कहने की शक्ति है।[३] इसीलिए सहज भाषा के धनी कबीर को, प्रकारान्तर से सन्तों को, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने वाणी का डिक्टेटर बताते हुए लिखा है कि वाणी के ऐसे बादशाह को साहित्य-रसिक काव्यानन्द का आस्वाद कराने वाला समझें तो उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता।[४]

१ अशोक के फूल पृ० १८९

२ काव्य-रचना उनका साध्य नहीं था तो भी उन्होंने कवि-कर्म किया। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। उनकी वाणी में रस है, छन्द है, अलंकार है, कवि समय है, विविध राग-रागिनियाँ हैं और है एक विशेष काव्य-शैली जिसकी दीर्घ परम्परा उन्हें विरासत में प्राप्त हुई थी।

३ द्रष्टव्य, अशोक के फूल, पृ० १८३-८४

४ कबीर, पृ० २१६

अस्तु, सन्त-साहित्य के काव्यत्व का समग्र रूप में मूल्यांकन करते हुए आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के शब्दों में हम कह सकते हैं कि कबीर साहित्य (प्रकारान्तर से सन्त साहित्य) उन रंग-बिरंगे पुष्पों में नहीं जो सजे सजाये उद्यानों की क्यारियों में किसी क्रम-विशेष के अनुसार उगाये गये रहते हैं और जिनकी छाया एवम् सौन्दर्य का अधिकांश योग्य मालियों के कला कौशल पर आश्रित रहा करता है। यह एक वन्य कुसुम है जो अपने स्थल पर आप से आप उगा है और जिसका विकास केवल प्राकृतिक नियमों पर ही निर्भर रहा है। इसके आकार प्रकार अथवा रूप रंग पर कभी किसी कृत्रिम वातावरण का प्रभाव नहीं पड़ा और न इसका पौधा तक कभी किसी निश्चित क्रम व काट छाँट का अभ्यस्त रहा। इसका सौरभ निजी मधुर है और निजी सौन्दर्य है और इसकी विशेषताओं का सादृश्य केवल उन्हीं वन्य कुसुमों में मिल सकता है जिनका विकास भी ऐसे वातावरण में ही हुआ है।[1] सन्त काव्य की समस्त विशेषताओं से मण्डित होने के कारण रामसनेही सम्प्रदाय का साहित्य भी रमणीय और सब प्रकार से अभिनन्दनीय है।

भावानुभूति

प्रत्यय बोध, अनुभूति और वेगयुक्त प्रवृत्ति इन तीनों के गूढ़ संश्लेष का नाम भाव है।[2] भाव ही रस का प्रकृत मूल है। रामसनेही सम्प्रदाय के सन्त प्रमुख रूप से माधुर्य एवं शान्त भाव के कवि हैं, तथापि उनके वाणी-साहित्य में वीर, वीभत्स और अद्भुत रस के भी उदाहरण मिल जाते हैं। करुण, हास्य, रौद्र और भयानक रस का तो प्रायः अभाव ही दिखाई पड़ता है। वास्तविकता यह है कि सन्त कवि भक्ति रस-रसिक हैं। भक्ति रस में माधुर्य, दास्य, शान्त, वात्सल्य और सख्य भावों को मुख्य भक्ति रस माना गया है। वीर, वीभत्स, अद्भुत, करुण, हास्य, रौद्र और भयानक आदि रसों को भक्ति में रसत्व नहीं प्राप्त है। ये भक्ति रसान्तर्गत गौण भक्ति रस बताया गया है। कदाचित् इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास ने भी भक्तिरस के जल से पूर्ण मानस में अन्य रसों को जलचर के रूप में देखा है।[3]

माधुर्यभाव

माधुर्यभाव मूलतः शृंगार रस के अन्तर्गत आने वाला भाव है। शृंगार रस का स्थायी भाव रति है। रति या प्रीति जब लौकिक आलम्बन के प्रति होती है तो शृंगार की कोटि में आती है और जब आलम्बन अलौकिक

१ कबीर साहित्य की परख, प्रस्तावना पृ० ३

२ रस मीमांसा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १६८

३ नव रस जप तप जोग बिरागा ।
ते सब जलचर चारु तड़ागा ॥
—मानस, बालकाण्ड, दोहा ३६ चौपाई १०

होता है तो उसे माधुर्य भाव के नाम से अभिहित किया जाता है। आचार्यों ने इस दो भागों में विभाजित किया है—संयोग और वियोग। कवि परिपाटी के अनुसार शृंगार रस का निरूपण करते हुए संयोग के पश्चात् ही वियोग-वर्णन किया जाता है क्योंकि लौकिक जीवन में इन दोनों दशाओं की स्थिति इसी क्रम से होती है। किन्तु निर्गुण साधना में इनका क्रम सर्वथा विपरीत होता है। वहाँ प्रियतम के प्रति उद्दाम वियोग भावना ही संयोग का साधन बनती है। अत प्रस्तुत अध्ययन में पहले वियोग पक्ष का विवेचन किया जायगा।

वियोग

वियोग शृंगार की तीन स्थितियाँ होती हैं—पूर्वराग, मान और प्रवास। पूर्वराग में नायक और नायिका के मिलन से पूर्व चित्र-दर्शन, स्वप्नदर्शन तथा रूप-गुण श्रवण से उत्पन्न आकर्षण और प्रेम प्राप्ति की बेचैनी का वर्णन होता है। मान प्रेमी से प्रेमिका के रूठने की स्थिति है, और प्रवास में संयोगोपरान्त प्रेमी और प्रेमिका में से किसी के प्रवासी होने का वर्णन होता है। प्रेमास्पद निराकार होने से निर्गुण सन्तों की विरहानुभूति में प्रवास और मान के लिए स्थान ही नहीं है। उनके विरह का आरम्भ पूर्वराग से होता है। साधक रूपी प्रेमिका गुरु से प्रियतम राम का गुणश्रवण करके उन पर रीझ जाती है। उसके हृदय में प्रेमोन्माद हो जाता है। धीरे-धीरे मिलन की उत्कंठा बढ़ने लगती है। परिणामस्वरूप वियोगशृंगार का आरम्भ हो जाता है। साधक को धन, धाम तथा संसार के स्नेह सम्बन्ध झूठे लगने लगते हैं। प्रियतम के बिना उसे विश्व की समस्त भोग्य विभूतियाँ क्षार के सदृश प्रतीत होने लगती हैं —

> झूठ लगै धन धाम जग नाता नेह तिवार।
> पीव बिना परलोक मैं जायो सब सुख क्षार ॥[1]

शनै शनै प्रेमानुभूति प्रगाढ़ होती जाती है। प्रेमिका का हृदय पिय से मिलने के लिए तड़पने लगता है। पपीहे की भाँति उस प्राणाधार के नाम की धुन सी लग जाती है। प्रिय-दर्शन के लिए उसके नेत्र और स्वरस के लिए उसकी जिह्वा लालायित हो उठती है। दर्शन की आशा में उसके नेत्र अहर्निश प्रियतम की बाट जोहते रहते हैं। एक क्षण के लिए भी उसे नींद नहीं आती—

> रमइया म्हारी पलक न लागी हो।
> तुम दरशन कारण निशिवासर जागो हो ॥टेक॥
> दसों दिशा आतुर करो तेरा पंथ निहारूँ हो।
> राम नाम की टेर दे दिन रात पुकारूँ हो ॥

१ दयालुदास की वाणी, पृ० सं० २६८

नैण दुखी दीदार बिन रसना रस आसे हो।
हिवडो हुलस हेत सो हरि कद परकासे हो ॥[१]

सावन और भादो की सुहावनी रातो में जब सखियाँ प्रियतम के साथ संयोग सुख लूटती है, राम के विरह बाण से विद्ध विरहिणी सेज पर अकेली पड़ी छटपटाती हुई रात बिताती है—

सावन सखियाँ सबै हिंडोले झूल है।
पति प्रीतम छबि देख हिरदा में फूल है।
गावे मंगलचार पिया संग हैं सुखी।
परिहा, प्होकर विरहन नार राम वर बिन दुखी ॥
भादो बरसे मेह अँधेरी रात री
बीज चमक घन गरज मेह डरपात री
परी अकेली सेज पीर अति जीव को
परिहा प्होकर कोउ जाय कहै दुःख पीव को ॥[२]

दीर्घव्यापी विरह-ज्वर उसे पागल बना देता है। इस दशा में वह शरीर के समस्त वस्त्राभूषण तोड़ फेंकती है —

विरहिनि मारी विरह की सुधि बुधि बिसरी सार।
हरिया सिर मूं डारिया हीर चार सिंगार ॥

विरह-वर्णन में इस सम्प्रदाय के सन्तों ने कहीं कहीं रीतिकालीन कवियों की ऊहात्मक पद्धति का भी अनुसरण किया है। दयालुदास चन्दन और केसर जैसे शीतल पदार्थों के अग्नि के समान तप्त होने का वर्णन करते हुए लिखते हैं —

चन्दन लागे अगिन सम केसर अगिन समान।
जहू न आय राम जी केहि विध रैसी प्रान" ॥[४]

यह उल्लेखनीय है कि आलंबन अव्यक्त होने से इन सन्तों की विरहानुभूति में मानसिक पक्ष की प्रधानता होनी चाहिए थी किन्तु इनकी विरहाभिव्यक्ति प्रायः स्थूल प्रतीकों के द्वारा हुई है। इसका कारण है इस सम्प्रदाय के सन्तों पर पूर्ववर्ती सगुण भक्ति धारा का प्रभाव। इसे रीतिकालीन प्रभाव भी स्वीकार किया जा सकता है।

---

१ अणभै वाणी, पृ० १००६
२ पोहकर दास की वाणी, बारहमासा, पृ० १२८
३ श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश, पृ० २९
४ दयालुदास की वाणी, प० स० ३४

सयोग

रामसनेही सम्प्रदाय क सतो ने सयोग के भी बडे मधुर चित्र प्रस्तुत किये है। जन्म जन्म की बिछुडी हुइ सुरति-सुन्दरी और रस्कार प्रियतम के सयोग-वणन मे इनकी असाधारण काव्य प्रतिभा का परिचय मिलता है। ध्यानी के मानस म जिस प्रियतम की मोहिनी मूर्ति समाई हुई थी उसी से मिलने क लिए उनके तन मन सब व्यग्र थ। सौभाग्यवश सतगुरु की मध्यस्थता म दोना की सगाई हो गयी। अन्तत दोनों का प्रणय परिणय म परिवर्तित हो गया। दरिया साहब न स्म प्रेम सगाई का बड़ा ही सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है —

> कहा कहूँ मेर पिउ की बात, जोर कहूँ सो' अग सुहात ।।टेक।।
> जब मैं रहा थी कन्या क्वारी तब मेर करम हुता सिर भारी ।।
> जब मेरी पिउ से मनसा दौडा सतगुरु आन सगाई जोडी ।
> तब मैं पिउ का मगल गाया अब मेरा स्वामी ब्याहन आया ।।
> हथलवा द बैठा सगा तब मोहि लानी बायें अगा।
> जन दरिया कहै मिटि गई दूती आपो अरप पीव सग सूती ।।[१]

सम्बन्ध स्थापित हो जाने क उपरा त गगन मडल मे दोना का प्रथम मिलन होता है। सुरति सु दरी सुख की सज पर शयन करती है। अब उसे जगत् विलास फीका दिखाई पडने लगता ह। रामचरण न सुरति शब्द का केलि वणन बडे मर्यादित और सु दर ढग स किया है —

> पिव पलना सुख सेज पर हिल मिल करत निवास ।
> रामचरण तब ही लगै फीको जगत विलास ।।
> रामचरण पिव पाइया सब नजर न आवै और ।
> जो सुख पिव की सज पर सो नही दूसरी ठौर ।।
> आठ पहर चौसठ घडी सुख बिलसत दिन जाय ।
> पिव अविनासी सग सुरति नाम कदे नही थाय ।।[२]

'रामरसाले' क साथ फाग खेलने म ये स त सगुणोपासक भक्तो से पीछे नही रह हैं। दोना मे भद केवल इतना है कि इनकी वसन्त लीला स्थूल न होकर अत्यन्त रहस्यमयी तथा आन्तरिक अनुभव पर आधृत है —

> राम रसीले रग रच्यो म्हारे आज वसन्त को खेल ।।टेक।।
> प्रेम नीर पिचकारी दिल से छूटत चहुँ उर मेल ।।

---

१ अनुभव गिरा, पृ० १९२-१९३

२ अणभै वाणी, पृ० १४

अघ ऊर्ध्व बिच मेल मड्यो है सुरत शब्द को मल।
धुन बिच ध्यान नान जहाँ अनुभव जनम-मरण दुख पेल।
ध्याल ख्याल रस राम रमैयो रामदास गुरु सेल ॥[1]

इस दिव्य फाग-लीला में स्थापित प्रिया और प्रियतम के शारीरिक एवं मानसिक रोचय के अनिर्वचनीय सुख का वर्णन करते हुए संत प्रवर रामचरण लिखते हैं —

पिया संग प्यारी ऐसे निज हो खेलत फाग ।टेक।
रसना राम उचार सुहागिणि पिव सों प्रीति बधावै।
काम करट परन्या करि प्यारा अरस परस गुण गावै॥
चित चंदन समता मिल घिसके पिव के अंग चढ़ावै।
चवन मगन भई महासुन्दरि साखोराग लगावै॥
नाम गुलाल अबीर अर्थ करि झोरी भरि भरि ल्यावै।
हसि-हसि हरष-हरष पति सनमुख प्रेम सहित परसावै॥
कन कामना रसरि मारी ताको रंग चढ़ावै।
पाँचूँ ठांव रंगे रंग भीनी दूजो रंग न भावै॥
तन मन अपं मिला पिव पतनी प्यारी न्यारु न जावै।
रामचरण शरणे सुख पायो ताकी कहत न आवै॥[2]

रसानुभूति का प्रश्न

रसानुभूति की कसौटी साधारणीकरण है। दूसरे शब्दों में कवि की हृदगत भावनाओं के साथ श्रोता अथवा पाठक की अनुभूतियों का तादात्म्य रसानुभूति की अनिवार्य शर्त है। संत कवि जब आत्मा और परमात्मा की नायकता का वर्णन करते हुये राम से रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने की बात कहता है तब पाठक का हृदय प्रभावित हुये बिना नहीं रहता। जब वह विरहानुभूति की व्यंजना करता है और प्रियतम का एक-एक अणु का वियोग उसके लिए असह्य होता है या जब वह अपने प्रियतम के साथ हिलमिल कर केलि करता है तब श्रोता या पाठक अपने अपने स्तर से उसका आस्वादन करता है। हाँ, कुछ स्थल ऐसे अवश्य हैं जहाँ संत कवि अपनी गूढ़ आध्यात्मिक अनुभूतियों का वर्णन कतिपय गूढ़ प्रतीकों के माध्यम से करता है। इन स्थलों पर अभिव्यक्त भावों से श्रोता या पाठक पूर्णरूपेण बिम्ब ग्रहण नहीं कर पाता है। वस्तुतः जिस आध्यात्मिक धरातल पर पहुँचने के उपरान्त उक्त बातों की सृष्टि हुई है वहाँ तक पहुँचे बिना वास्तविक रसानुभूति नहीं हो सकता। संत कवि जब तक गुरुनिर्दिष्ट को होना का विवरण करता है तब तक तो कोई बात नहीं किन्तु जब वह

१ निर्गुण भजन माला, पृ० १४
२ अणभै वाणी, पृ० १००६

ज्ञान का गुलाल घोनकर प्रेम की पिचकारी चलाना है और क्षमा का अबीर तथा चित का चदन घिसने लगता है तब बात कुछ उलझ सी जाती है और साधारण पाठक की समझ से बाहर हो जाती है। इससे रसानुभूति म बाधा अवश्य पडती है। इस सम्बन्ध में ध्यान रन की बात यह है कि इस प्रकार की कठिनाई केवल रामस्नेही सम्प्रदाय के साहित्य या सन्त काव्य के साथ ही नही प्रत्युत् प्रत्येक युग के प्रत्येक कवि की कविता के साथ न्यूनाधिक मात्रा म आती है। फिर भी कबीर आदि सन्तों के प्रेममूलक पदो की तो बात ही क्या, उलटबांसीमूलक पदो का रसास्वादन गाँव की साधारण जनता अधिकाश साहित्यकारो के काव्य की अपेक्षा कही अधिक करती है।

शान्त रस

शात रस एक प्रकार से सत काव्य का प्रधान रस है। इसका स्थायी भाव निर्वेद है, जिसके मूल मे ससार से विरक्ति की भावना काम करती है। ससार की अनित्यता, आत्मदोष-ज्ञान, अपने कुकृत्यो पर पश्चात्ताप आदि अनुभाव तथा आत्मग्लानि, स्मरण, बोध आदि इसके सचारी भाव है। साम्प्रदायिक साहित्य से शात रस के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किय जाते हैं —

(क) जागि जागि-जागि जीव राम नाम लीजे।
सुपन मैं ससार सार साच नही कीजे ।।टेक।।
काम दाम सुत बाम धाम नेह न कीजे।
याके सगि लागि-लागि अनत जीव छीजे।।
बडे-बडे राव राजा सुख भोग रीजे।
जाग म जन्मो है राम माया रस भीजे।।
आलस निवारि दूरि, भरम छाडि दीजे।
राम जन राम याइ राम सरण लीजे।।[१]

(ख) समझि रे समझि मन मूढ़ मेरा कहा कुटुम्ब परिवार यह कौन केरा।
सकल ससार सराय का सोबती एक पल माँहि होइ कूच डेरा।।
एक मन चित्त निज नाम निरभै भजो तुझि चिरकाल नहिं करन फेरा।।
वद कतेव सब जाति काची कथा देखि भूल मतै मग मोरा।।
तप्प तीथ व्रत समझि एकादसी, सात ही द्वीप नव खण्ड डोलै।
जोग जिग जाप षटकम म्हाली रह्या आप कू उलटि आपा न खोलै।।
आदि अरु अत सत शब्द कू ध्यान ले पाय ले दसधाम द्वार सोई।
दास हरिराम तहाँ मुक्ति सभा नही जीव अरु सीव मिल एक होई।।[२]

---

१ राम जन का सबद, पद ३ (ज्ञान समुद्र-हस्तलिखित)

२ श्री रामस्नेह धर्म प्रकाश, पृ० १३८

(ग) जीव बटाऊ रे बहता मारग माइ।
आठ पहर का चालना घडी इक ठहरे नाइ ।।टेक।।
गरभ जनम बालक भयो रे तरुनाई गरबान।
वृद्ध मृतक फिर गभ बसेरा तेरा यह मारग परमान ।।१।।
पाप-पुन्य सुख दुख को करनी बगी थारे लागी पाय।
पञ्च ठगो के बस म पड़ो र कब घर पहुँचे जाय ।।२।।
चौरासी बासो तू बस्या रे अपना कर-कर जान।
निश्चय-निश्चय होयगो र तू पद पहुँचे निर्बान ।।३।।
राम बिना तोको ठौर नही र, जहँ जावै तहँ काल।
जन दरिया मन उलट जगत सू अपना राम सँभाल ।।४।।[1]

वीर रस

रामसनेही सम्प्रदाय का उद्भव और विकास वीरभूमि राजस्थान में हुआ। इन सतो की साधना का आदश सती और सूर हैं। अत वीतराग होने हुये भी इस शाखा के सन्तो की वाणी मे प्रकारा तर से वीर रस-व्यजक चित्र यत्र-तत्र मिल जाते हैं। सामान्य रूप से वीर काव्य लेखकों से इनकी विशेषता यह है कि इन्होंने स्थूल वीरत्व की अपेक्षा आन्तरिक शूरता को प्रधानता दी है। इनकी उत्साह व्यञ्जक उक्तिया मानसिक द्वन्द्व से सम्बन्ध रखती है—

(क) गर्भ नेम सिर टोप प्रेम बगतर सुखदाई
राम नाम तरवार ओट गुर ढाल सदाई
ज्ञान तुरग पर चढे मडे चौगान बिचाल
गर्जिया है रिण खेत नत हर हत सँभाले
जनम मोह जाते अवस तन मन सतगुर वारसी
सूर भगत आकूर धुर राम मिलण के कारणे[2]।

(ख) मम अरु कम कू ज्ञान सिंह मारिया
लोभ कूँ दौडि सन्तोष मरया
काम कू कतल करि शील बैठा भया
याण वैराग्य ने मोह हारया
गर्व गुम्मान विचार दाई ढाइया
क्रोध कू खोदि क्षम्मा उडाया

१ रामस्नेही सन्तवाणी, पृ० २१५ १६
२ दयालुदास की वाणी, प० स० ५६६

मूरिवा जोध परबोध मान न्गो
अमल करि आसलो अरि उठाया
ज्ञान धवत्रावता राम कू गानता
श्याम मन मावता चरण लागा
राम ही चरण अब नगर नौका बस्या
धम्या शिर काल का चोर भागा।[१]

(ग) सूर चढ़े संग्राम को मन में शक न कोय।
आगा अरपे राम को होनी होय सो होय॥[२]

प्रथम छन्द में सूर रूपी भक्त द्वारा मोह रूपी शत्रु पर विजय प्राप्त करने के हेतु की जाने वाली तैयारी का वर्णन किया गया है, दूसरे में काया के भीतर सद्गुणों और दुर्गुणों के घमासान युद्ध का वर्णन है और अन्तिम छन्द में शूर के साहस और आत्मोत्सर्ग की प्रवृत्ति का परिचय मिलता है। इन छन्दों में विभाव, अनुभाव और संचारी से पुष्ट वीर रस की निष्पत्ति भले न होती हो किन्तु वीर रस-व्यंजक शब्दावली का सफल प्रयोग हुआ है। निर्गुणिया भक्तों से इससे अधिक की आशा भी नहीं की जा सकती।

वीभत्स रस

सांसारिक जीवन से घृणा उत्पन्न कर जीव को ईश्वरोन्मुख करने के लिए इन संतों ने रोग-शोक-जर्जर मनुष्य-जीवन के नाना जुगुप्सा-व्यंजक चित्र प्रस्तुत किये हैं —

(क) काया जाण्यू जो जरी रोग व्याधि भरपूर।
नाना भांति कलेप हुप तिर्पा भूप हजूर॥
तिर्पा भूप हजूर रहे निद्रा अलसानी।
भरे द्वार नव नरक सदा दुर्गंधि की खानी॥
रामचरण हरि भजन बिन पाई शिर पर धूर।
काया जाण्यू जो जरी रोग व्याधि भरपूर॥[३]

(ख) हाड़ चाम अरु रक्त मांस की पोट रे।
आंत ओझ मल मूत्र भर्या मन खोट रे॥
ऊपर किया स्नान धुपै नहिं कर्म रे।
परिहां रामचरण भज राम और तज भर्म रे॥[४]

---

१ अणभै वाणी, पृ० १९३
२ रामस्नेही संतवाणी, पृ० ४३
३ अणभौ विलास, उन्नीसवां प्रकरण छन्द ४५
४ अणभैवाणी, पृ० ८४

(ग) जीव वटाऊ रे बहता मारग माइ।
आठ पहर का चालना घडी इक ठहरै नाइ ॥टेक॥
गरभ जनम बालक भयो र तरुनाई गरबान।
वृद्ध मृतक फिर गर्भ बसेरा तेरा यह मारग परमान ॥१॥
पाप-पुण्य सुख दुःख की करनी बेडी थारै लागी पाय।
पञ्च ठगा ने बस मे पडो र कब घर पहुँचे जाय ॥२॥
चौरासी वासो तू बस्यो रे अपना कर-कर जान।
निश्चय निश्चय होयगो र तू पद पहुँचे निर्वान ॥३॥
राम बिना तोको ठौर नही रे, जहँ जावै तहँ काल।
जन दरिया मन उलट जगत सू अपना राम सँभाल ॥४॥[1]

वीर रस

रामसनेही सम्प्रदाय का उद्भव और विकास वीरभूमि राजस्थान म हुआ। इन सतो की साधना का आदर्श सती और सूर हैं। अत वीतराग होते हुय भी इस शाखा के सन्तो की वाणी मे प्रकारान्तर से वीर रस-व्यजक चित्र यत्र-तत्र मिल जाते हैं। सामान्य रूप स वीर काव्य लखको से इनकी विशेषता यह है कि इन्होंने स्थूल वीरत्व की अपेक्षा आन्तरिक शूरता का प्रधानता दी है। इनकी उत्साह व्यञ्जक उक्तिया मानसिक द्वन्द्वों से सम्बन्ध रखती है—

(क) गरू नम सिर टोप प्रेम बगतर सुखदाई
राम नाम तरवार ओट गुर ढाल बडाई
ग्यान तुरग पर चढे मडे चौगान विवाल
कजिया है रिण खेत नत हर हेत सँभाले
जनम मोह जीत अवस तन मन सत्गुर वारणै
सूर भगत आकूर धुर राम सिमरण कै कारणै[2]।

(ख) भ्रम अरु कर्म कू ज्ञान सिंहू मारिया
लोभ कू दौडि सतोष मार्या
काम कू कतल करि शील सैंठा भया
वाण वैराग्य ने मोह हार्या
गर्व गुम्मान विचार दोई ढाहया
क्रोध कू खोदि क्षम्मा उडाया

१ रामस्नेही ग्रन्थवाणी, पृ० २१५ १६
२ दयालुराम की वाणी, प० स० ५६६

सूरिवा जोत परवोध मानें म्हो
अमल करि आपणे अरि उडाया
आन धककावता राम कूं मानना
श्याम मन भावता चरण लागा
राम ही चरण अब नगर नीका बस्या
धस्या शिर काल का चोर भागा।[१]

(ग) सूर चढ़े श्याम को मन में शक न काय।
आशा त्यागे राम की होनी होन सो होय।।[२]

प्रथम छन्द में नूर रूपी भक्त द्वारा मोह रूपी शत्रु पर विजय प्राप्त करने के हेतु की जाने वाली तैयारी का वर्णन किया गया है, दूसरे में काया के भीतर सद्गुणों और दुर्गुणों के घमासान युद्ध का वर्णन है और अन्तिम छन्द में नूर के साहस और आत्मोत्सर्ग की प्रवृत्ति का परिचय मिलता है। इन छन्दों में विभाव, अनुभाव और सचारी से पुष्ट वीर रस की निष्पत्ति भले न होती हो किन्तु वीर रस-व्यंजक शब्दावली का सफल प्रयोग हुआ है। निर्गुणिया भक्तों से इसमें अधिक की आशा भी नहीं की जा सकती।

वीभत्स रस

सांसारिक जीवन से घृणा उत्पन्न कर जीव को ईश्वरोन्मुख करने के लिए इन संतो ने रोग-शोक-जर्जर मनुष्य-जीवन के नाना जुगुप्सा-व्यंजक चित्र प्रस्तुत किये हैं —

(क) काया जाण्यू जो जरी रोग व्याधि भरपूर।
नाना भांति कलेष दुष तिर्षा भूष हजूर।।
तिषा भूष हजूर रहे निद्रा अलसानी।
भरे द्वार नव नरक सदा दुर्गंध की खानी।।
रामचरण हरि भजन बिन पाइ शिर पर धूर।
काया जाण्यू जो जरी रोग व्याधि भरपूर।।[३]

(ख) हाड चाम अरु रक्त मास की पोट रे।
आंत ओझ मल मूत भर्‌या मन खोट रे।।
ऊपर किया स्नान धुपे नहिं कर्म रे।
परिहा रामचरण भज राम और तज भर्म रे।।[४]

१ अणभै वाणी, पृ० १९३
२ रामस्नेही संतवाणी, पृ० ४३
३ अणभै विलास, उन्नीसवां प्रकरण छन्द ४५
४ अणभैवाणी, पृ० ८४

(ग) देह भरी दुर्गंध बहै नव द्वार रे।
चौको चूंहो पोत कहै आवार र।
नर नारी का मास मदन मद पीवणा।
परिहा, राम विसार वृथा जग जीवणा ॥[1]

अद्भुत रस

अद्भुत रस की अभिव्यक्ति साम्प्रदायिक साहित्य में वर्णित 'अगमदेश' तथा 'अगम पुरुष' के परिचय सम्बंधी प्रसगों म हुई है। दरिया साहब और रामचरण जी के निम्नांकित छ द उदाहरण रूप मे प्रस्तुत किये जा सकत हैं —

(क) बिन रसना गुण गाइये बिन कर बाजै तूर।
बिन श्रवणा अनहद सुणै जहाँ ब्रह्म सभा भरि पूरि ॥
जहाँ ब्रह्म सभा भरि पूरि और कोई नजरि न आवै।
सुरत रही मठ छाड़ दह तहाँ जाण न पावै ॥
रामचरण वा देस में बहुत प्रकासे सूर।
बिन रसना गुण गाइय बिन कर बाजै तूर ॥[2]

(ख) बिन पावक-पावर जले बिन सूरज परकास।
चाँद बिना जहँ चाँदना जन दरिया का वास ॥
नौबत बाजे गगन म बिन बादल घन गाज।
महल बिराजै परम गुरु दरिया के महाराज ॥[3]

(ग) गगन ही महल म एक अचरज भया।
वपु बिना पुरुष इक रमत देखा ॥
पाँच ही तत्त्व सू रहित वो पुरुष है।
नाहिं कोइ ताहि कै रूप रेखा ॥
अगम अगाध अतोल अम्मार है।
वार नहि पार नहि गम्म लेखा।
राम ही चरण वा देश म रम रह।
उलटि नहि बहुर कोइ धरत भेखा ॥[4]

इन छन्दा म अगम देश और परम पुरुष क अद्भुत रसरूप का जो वणन किया गया है वह रस के सभी उपादानो म सयुत न होने पर भी वस्तुत सन्तों की साधना

---

१ वही, पृ० ८४
२ अणभैवाणी, पृ० १४१
३ अनुभवगिरा, पृ० ११४
४ अणभैवाणी, पृ० १९३

साध्य और की अनुभूति समग्र रूप में अद्भुत है। अतः इसका कहीं से कोई वर्णन किया जायगा तो वह अद्भुत होगा ही।

प्रकृति-वर्णन

निर्गुणिया सन्तों की साधना पूर्णतः अन्तर्मुखी थी। उनकी वाणी में साधना-गत अनुभूतियों का ही विशद वर्णन प्राप्त होता है। प्राकृतिक सौन्दर्य को देखकर उस पर रीझना और उसे आलम्बन मान कर उसके सम्बन्ध में कुछ लिखना सन्तों की प्रवृत्ति के सर्वथा प्रतिकूल था। उनकी वाणी में प्राकृतिक दृश्यों के प्रसंग केवल ब्रह्म-निरूपण, उपदेश और विरह वर्णन के अवसर पर ही आये हैं। कहीं-कहीं प्रकृति के स्वतन्त्र चित्र भी मिल जाते हैं। रामसनेही सन्तों के प्रकृति वर्णन का अध्ययन निम्नांकित चार शीर्षकों में किया जा सकता है—आलम्बन रूप, उद्दीपन रूप, उपदेश रूप तथा अप्रस्तुत-विधान रूप।

आलम्बन रूप में—अभी हम कह चुके हैं कि साम्प्रदायिक साहित्य में प्रकृति के आलम्बन रूप का वर्णन प्रायः नहीं के बराबर है। किन्तु इतने बड़े सम्प्रदाय और उसकी इतनी विशाल साहित्य परम्परा में दो चार छटा का मिल जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। दरिया साहब द्वारा वर्णित मरुभूमि का एक चित्र प्रस्तुत किया जाता है —

जहां निजल धरता बहुत धूर।
जहां साकित बस्ती दूर दूर॥
ग्रीष्म ऋतु में तपै भोम।
जहां आतम दुखिया रोम रोम॥[१]

धसमान समय के कवि प्रकृति के स्वतन्त्र रूप का वर्णन उन्मुक्त रूप से करने लगे हैं। प० उत्साहराम 'वसहम' ने निम्नांकित पंक्तियों में बसन्त का बड़ा ही सजीव वर्णन किया है —

तरु तरु लगी बेल नवेली वधू ज्यों सोहै,
फूल हैं पुहुप भृंग भौंर भननाटो है।
अम्बरु कदम्ब फूल केवड़ा अशोक कन्द,
शीतल सुगन्ध मन्द वायु सननाटो है॥
सर सरितान तीर चातक चकोर मोर,
शोर को मचावै मार चाप तननाटो है।

---

१ अनुभवगिरा, पृ० १७४

(ग) देह भरा दुर्गन्ध बहै नव द्वार रे।
चोको चूंहो पोत कहै आचार रे।
नर नारी का माम मदन मद पीवणा।
परिहा, राम बिसार वृथा जग जीवणा ॥[1]

अद्भुत रस

अद्भुत रस की अभिव्यक्ति साम्प्रदायिक साहित्य में वर्णित 'अगमदेश' तथा अगम पुरुष' के परिचय सम्बन्धी प्रसंगों में हुई है। दरिया साहब और रामचरण जी के निम्नांकित छन्द उदाहरण रूप में प्रस्तुत किये जा सकते हैं —

(क) बिन रसना गुण गाईए बिन करि बाजे तूर।
बिन श्रवणा अनहद सुणे जहाँ ब्रह्म सभा भरि पूरि ॥
जहाँ ब्रह्म सभा भरि पूरि और कोई नजरि न आवै।
सुरत रही मठ छाइ देह तहाँ जाण न पावै ॥
रामचरण वा देस में बहुत प्रकासे सूर।
बिन रसना गुण गाइये बिन कर बाजै तूर ॥[2]

(ख) बिन पावक-पावक जलै बिन सूरज परकास।
चाँद बिना जहँ चाँदना जन दरिया का वास ॥
नौबत बाजै गगन में बिन बादल घन गाज।
महल बिराजै परम गुरु दरिया के महाराज ॥[3]

(ग) गगन हो मंडल में एक अचरज भया।
वपु बिना पुरुष इक रमत देखा ॥
पाँच हो तत्त्व सूं रहित वो पुरुष है।
नाहि कोइ ताहि कै रूप रेखा ॥
अगम अगाध अतोल अभमान है।
वार नहि पार नहि गम्म लेखा ॥
राम हो चरण वा दश में रम रह्या।
उलटि नहि बहुर कोइ धरत भेखा ॥[4]

इन छन्दों में अगम देश और परम पुरुष के अद्भुत स्वरूप का जो वर्णन किया गया है वह रस के सभी उपादानों से युक्त न होने पर भी वस्तुतः सन्तों की साधना

१ वही, पृ० ८४
२ अणभैवाणी, पृ० १८१
३ अनुभवगिरा, पृ० ११४
४ अणभैवाणी, पृ० १०३

साध्य और की अनुभूति, समग्र रूप में अद्भुत है। अतः इसका कहीं से कोई वर्णन किया जायगा तो वह अद्भुत होगा ही।

प्रकृति-वर्णन

निर्गुणिया सन्तों की साधना पूर्णतः अन्तर्मुखी थी। उनकी वाणी में साधनागत अनुभूतियों का ही विशद वर्णन प्राप्त होता है। प्राकृतिक सौंदर्य को देखकर उस पर रीझना और उसे आलम्बन मान कर उसके सम्बन्ध में कुछ लिखना सन्तों की प्रकृति के सर्वथा प्रतिकूल था। उनकी वाणी में प्राकृतिक दृश्यों के प्रसंग केवल ब्रह्म-निरूपण, उपदेश और विरह-वर्णन के अवसर पर ही आये हैं। कहीं-कहीं प्रकृति के स्वतन्त्र चित्र भी मिल जाते हैं। रामसनेही सन्तों के प्रकृति वर्णन का अध्ययन निम्नांकित चार शीर्षकों में किया जा सकता है—आलम्बन रूप, उद्दीपन रूप, उपदेश रूप तथा अप्रस्तुत-विधान रूप।

आवलम्बन रूप में अभी हम कह चुके हैं कि साम्प्रदायिक साहित्य में प्रकृति के आलम्बन रूप का वर्णन प्रायः नहीं के बराबर है। किन्तु इतने बड़े सम्प्रदाय और उसकी इतनी विशाल साहित्य-परम्परा में दो चार छंदों का मिल जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। दरिया साहब द्वारा वर्णित मरुभूमि का एक चित्र प्रस्तुत किया जाता है —

जहां निर्जल धरती बहुत धूर।
जहां साकिन बस्ती दूर दूर।।
ग्रीष्म ऋतु में तपै भोम।
जहां आतम दुखिया रोम रोम।।[1]

वर्तमान समय के कवि प्रकृति के स्वतन्त्र रूप का वर्णन उन्मुक्त रूप से करने लगे हैं। पं० उत्साहराम 'वसहस' ने निम्नांकित पंक्तियों में बसन्त का वर्णन ही सजीव वर्णित किया है —

तरु तरु लगी बेल नवेली वधू ज्यों सोहे,
फूल हैं पुहुप भृंग भोर भननाते हैं।
अम्बर कदम्ब फूले केवड़े अशोक कन्द,
शीतल सुगन्ध मन्द वायु सननाते हैं।।
सर सरितान तार चातक चकोर मोर,
शोर को मचावें मार चाप तननाते हैं।

---

१ अनुभववाणी, पृ० १७४

देख्यो चहुँ ओर द्याल ओर यो वसंत जू को,
गायक छतीस राग छायो धननाटो है ॥[१]

उद्दीपन रूप मे श्रृंगार की सयोग और वियोग दोनो दशाओ मे मानव-मन पर प्रकृति का बहुत प्रभाव पडता है। सयोग के क्षण प्रकृति के साहचर्य से मधुर हो जाते है। मलय समीर, शीतल चन्द्रिका, वर्षा ऋतु, वसन्तागम के समय प्राकृतिक सौन्दर्य से मंडित वनस्थली आदि प्रकृति के विविध उपादान नायक और नायिका के आकर्षण को द्विगुणित कर देते है किन्तु वियोग की घड़ियों मे सारा प्राकृतिक वातावरण विरही जन के वियोग जन्य दुःख को और भी उद्दीप्त करता है और वह उन्मत्त हो जाता है। रामसनेही सम्प्रदाय के साहित्य मे प्रकृति के भावोद्दीपक वर्णन कहीं-कहीं मिल जाते हैं। भक्त रूपी विरहिणी की विरह-भावना को वर्षा ऋतु की प्रकृति किस प्रकार उद्दीप्त कर देती है, पोहकरदास कृत 'बारहमासे' की निम्नलिखित पंक्तियो में देखिये—

आया मास असाढ़ अगम घन घोर को
उपज्यो हरख हुलास पपइया मोर को
कोयल मगनानन्द बाग मे कुप करे
परिहा, पोकर नार राम वर बिन झुरे।
भादो वरसै मेह अंधेरी रात री
बीज चमक घन गरज मोह कर घात री
परो अकलो सेज पीर अति आवको
परिहा, पोकर को जाय कहे दुप पीव को ॥[२]

उपदेश रूप मे हमारे अध्ययन युग के सन्तो को प्रकृति के माध्यम से उपदेश देने में पूर्ण सफलता मिली है। इन सन्तो को जब कोई उपदेश देना होता है तो वे परिस्थितियो के अनुकूल प्राकृतिक व्यापारो का उदाहरण कहकर बात को इस ढग से प्रस्तुत करते हैं कि वह सीधे हृदय तक पहुँच जाय। महात्मा रामदास सत्सग का उपदेश देने के लिए जल का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार निर्मल जल गन्दे स्थान पर रहने से खराब हो जाता है और वहा से निकल कर गगा मे मिल जाने पर वह गगाजल कहलाने लगता है, उसी प्रकार मनुष्य बुरे लोगो की सगति में बुरा और अच्छे लोगो के साथ रहकर अच्छा बन जाता है—

---

१ श्री दयालु दिव्य चरित, पृ० ४६-४७
२ पोहकरदास की वाणी, पत्र, १२८

उजल पानी रामदास कुसगत बिगडाय।
निकस मिल्यो जाय गंगा मे सबै गंगोदिक थाय ॥[१]

अलकार रूप मे रामसनेही सन्तो ने अप्रस्तुत अथवा अलकार-विधान के माध्यम से भी प्रकृति-चित्रण का प्रयास किया है। विशेष रूप से साग रूपक के उदाहरणों में इन सन्तों की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का परिचय मिलता है। स्वामी रामचरण का एक दोहा देखिये—

काया तरुवर मन पछी लिया बसेरा आय।
रामचरण बधे नही निसि बीता उडि जाय[२] ॥

इसी शैली मे लिखा गया दयालुदास का एक छद है—

माया नदी अथाह है आसा तिसन तरग।
भरम भवर वेला विघन कामरण गोह अनग[३] ॥

रामसनेही सन्तो ने अपनी कृतियो मे अनेक स्थलों पर उपमा[४] उदाहरण[५], विभावना[६] आदि अर्थालकारो की योजना में भी प्रकृति को माध्यम बनाया है।

समाज-वर्णन

सन्त साहित्य अन्तर्मुखी साधनागत अनुभूतियो का अक्षय कोष है। इस धारा के कवियो ने प्रबन्ध रचना के माध्यम से समकालीन जीवन की झाकी प्रस्तुत करने की चेष्टा कभी नही की। इसलिए उनकी कृतियो मे तत्कालीन समाज के आचार-विचार, रीति रिवाज, रहन सहन और वेष-भूषा का क्रमबद्ध वर्णन नही प्राप्त होता, फिर भी लेखक जिस समाज में पैदा होता है, जिसकी मिट्टी मे मिल-जुल कर बडा होता है, जिसके अन्न जल से उसका पालन-पोषण होता है और उठने-बैठने, सोते जागते जिसकी बहुरगी झाकी उसकी आँखों के सामने अहर्निश उपस्थित रहती है, उसके हृदय पटल पर, उसकी एक अमिट छाप पडे बिना नही रह सकती। ऐसी स्थिति मे साहित्यकार समाज से कितना ही उदासीन क्यो न हो किन्तु

१ रामदास की वाणी, पृ० स० ३९
२ अणभैवाणी, पृ० २५
३ दयालुदास की वाणी, प० स ११२
४ जीव ब्रह्म का अश है ज्या रवि का प्रतिबिम्ब। —अणभैवाणी, पृ० ८
५ जैसे जन्तु तजि कीचमें मोटक बैठे जाय।
यूं हरि सुख सागर छाडि के मन माया मूं जाय ॥ —अणभैवाणी, पृ० ३०
६ बिना पेड तरवर बिना पात छाया, बिना चन्चु मूवे अनभ फल्ल खाया।
बिना पानि सरवर बिना नीर भरिया बिना मेघ वर्षा अखट उदझरिया ॥
बिना बाग बाडी फुल्या बन सारा, बिना घाट नदियाँ बहै धारमारा ॥
— श्री रामसनेही धर्मप्रकाश, पृ० २११

उसकी रचनाओं पर उस युग की छाप अवश्य पड़ जाती है। रामसनेही सम्प्रदाय का साहित्य अन्य निर्गुण सम्प्रदायों की भांति समकालीन स्थिति के चित्रण से प्रायः विरत ही रहा है फिर भी कहीं-कहीं, विशेष करके 'परिचयी' साहित्य में, तत्कालीन लोक-जीवन की एक धुंधली छाया अंकित हो गई है।

पौराणिक कथाएँ भारतीय संस्कृति के निर्माण में पौराणिक कथाओं का बहुत बड़ा योग रहा है। रामसनेही सन्तों ने गणिका, अजामिल, गज द्रौपदी, ध्रुव, प्रह्लाद आदि की पौराणिक कथाओं का वर्णन करते हुए भगवान की भक्तवत्सलता का गुणगान किया है।[1] कथाएँ ईश्वर के अवतार अथवा सगुण लीला से सम्बन्ध रखती हैं। इससे प्रगट होता है कि तत्कालीन लोक-मानस में सगुण भक्ति के लिए अपेक्षाकृत अधिक स्थान था और शायद इसीलिए निर्गुण भक्ति के भीतर भी उसकी मान्यता जड़ जमाये हुई थी। दयालुदास विरचित 'करुणा सागर' नामक ग्रंथ में कदाचित् ही कोई ऐसा प्रचलित पौराणिक कथा हो जिसका उल्लेख न हुआ हो।

पर्वोत्सव रामसनेही सम्प्रदाय के साहित्य में पर्वोत्सवों का वर्णन अत्यन्त न्यून मात्रा में हुआ है। इन सन्तों का एकमात्र साम्प्रदायिक पर्व 'फूलडोल' है। साधना में निर्गुण होली का भी विधान किया गया है। अतः साम्प्रदायिक साहित्य में जहां-तहां फूलडोल और होली की चर्चा हुई है।

फूलडोल की विस्तृत चर्चा साम्प्रदायिक इतिहास के अध्याय में की जा चुकी है। यह रामसनेही सम्प्रदाय का एकमात्र त्योहार है। इस अवसर पर सम्प्रदाय के

---

१ (अ) विरद निधान कहिया निज विरदा आप करा। टेक।
अजामेल से अघ मारे अंत पुत्र हेत पुकार।
सद गुण सुण ध्याय जमदूता मारि छुडाये॥
गजराज की सुणी वाणी सो ध्याये सारंगपाणी।
निज आगे चक्र चलाय गज ग्रह के दुख मिटाये॥
आगे अधम अपारे सो अघ टर मुणि तारे।

—श्री रामसनेह धर्मप्रकाश, पृ० १८४

(ब) राम कहत गणिका निसतारी युग युग अधम उधारण कू।
ऊंच नीच की भ्रांति न राखै शरणा की प्रति पालण कू॥

—अणभैवाणी, पृ० ९९२

(स) भीर परी प्रह्लाद उबारे हिरण्यकशिपु हणताज।
मा उपदेश दिया ध्रुव सेती अटल बसायो राज।
टेर सुनत वेग हरि आये तार लियो गजराज।
जन द्रोपा का चीर वधारयो भई पचभरताज॥

—रामस्नेहधर्मप्रकाश, पृ० १४२

प्रधान पीठों पर सन्तों और श्रद्धालुओं की अपार भीड़ होती है और कई दिनों तक वहाँ आमोद-प्रमोद रहता है। भजन, कीर्तन और प्रवचन से सम्पूर्ण वातावरण मुखरित रहता है। सन्तदयालुदास इसके साम्प्रदायिक महत्त्व पर प्रकाश डालते हुये लिखते हैं—

फूलडोल भल समो जु आयो रामदास मन अति हर्षायो।
नंती उत्तमदास जिताई चार दरण भर भीर भराई।
श्री गुरु दर्शन अति अधिकाई भोजन सद पकवान मिठाई।[१]

होली रामसनेही सन्तों ने निर्गुण होली का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। यद्यपि यह होली घट के भीतर होती है और इसमें भाव के रंग, सुमति की पिचकारी, सुबुद्धि के गुलाल, युक्ति की केशर तथा ध्यान के चंग, मनसा के मृदंग आदि वाद्यों का प्रयोग होता है फिर भी इसमें यह विदित होता है कि तत्कालीन समाज में स्त्री पुरुष दोनों बड़ी स्वच्छन्दतापूर्वक होली खेलते थे। दोनों एक-दूसरे के ऊपर रंग, अबीर, गुलाल, केशर आदि डालते थे। मृदंग, चंग आदि वाद्यों पर सामूहिक गान भी होता था।[२]

---

१ गुरु प्रकरण परची, पृ० ४४

२ (क) मन भावन आयो जामे रसियो राम रिझायो।टेर।
या तन की मटका बणाऊँ भाव सो रंग भरायो।
सुमता की कर ल पिचकारी ज्ञान अबीर उड़ायो।
प्रेम को रंग बरसायो ॥१॥
सुरत निरत की ताल दजत है ध्यान को चंग मढायो
मनसा की मृदंग मनजी बजावे गुरु के बचन सोई गायो
मनुष्य तन मौसर पायो ॥२॥
सुबुधि गुलाल जुगत की केसर शील वदन छिटकायो।
मृगमद घोरि सन्तोष कटोरी पियाजी सू खेल मचायो।
क्षमा को चवर ढुलायो ॥३॥
भक्ति मुक्ति का फगवा बटत है बिरले हरिजन पायो।
जाके चरण की रज धर मस्तक सेवा दास जस गायो।
रामजी को शरण सुहायो ॥४॥
—निर्गुण भजनमाला, पृ० १३, छंद २१

(ख) मैं तो राम पिया संग खेलूंगी होरी
साधु संगत मिल फागण आयो ज्ञान गुलाल उडोरी ॥टेर॥
पांच सखी मिल खेलन निकसी आज बसन्त उदोरी।
प्रेमनीर पिचकारी दिल सू छूटत अमिट सजोरी।
सूंघो प्रीति चित्त को चंदन केसर महिमा घोरी।
तन वृन्दावन गोप ग्वाल मिल दशमो द्वार खुल्योरी॥
—निर्गुण भजनमाला, पृ० १०, छंद १२

विविध संस्कार रामस्नेही संतों ने किसी लौकिक आलम्बन का आधार मान कर काव्य सृजना नहीं की थी और यदि सद्गुरु-संत की परिचयी लिखने के माध्यम से उन्होंने व्यक्ति को महत्त्व भी दिया तो उनके जीवन की स्थूल परिस्थितियों की प्राय उपेक्षा की। इसलिए पर्वोत्सवों की भाँति इस सम्प्रदाय के साहित्य में संस्कारों का भी बहुत ही कम वर्णन हुआ है। जन्म नामकरण, विवाह और अंत्येष्टि जैसे कुछ प्रमुख संस्कारों के सम्बन्ध में कुछ बातें स्वाभाविक ढंग से यत्र तत्र आ गयी हैं।

जन्म संस्कार तत्कालीन समाज में जन्मोत्सव बड़ी धूम धाम और उल्लास से मनाया जाता था। पुत्रजन्मोत्सव के अवसर पर बाजे बजते थे। स्त्रियाँ मंगल गान करती थीं और नेगियों को अनेक प्रकार की वस्तुएँ पुरस्कार रूप में बाँटी जाती थीं।[1] किन्तु कन्या का जन्म तत्कालीन समाज में अभिशाप माना जाता था। लोग पैदा होते ही उसे मार डालते थे।[2]

नामकरण संस्कार आज की भाँति आलोच्य युग में भी ग्रह-नक्षत्र देखकर शिशु का नामकरण किया जाता था। यह कार्य परम्परा से चला आता हुआ परिवार का ज्योतिषी, गुरु अथवा पंडित की सम्मति से सम्पन्न होता था।[3]

विवाह संस्कार विवाह संस्कार की केवल कुछ मोटी मोटी बातों का उल्लेख मिलता है। इनमें सगाई, विवाह के अवसर पर होने वाले मंगल गान, पाणिग्रहण और दूल्हन को अर्धांगिनी रूप में वाम भाग में बैठाने की क्रिया का नाम लिया जा सकता है।[4]

---

१ तहाँ आय लीन्हा अवतारा, प्रिया इकोतर किया उधारा।
मात पिता कूं आनन्द पूरन, उनके कर्म किये सब चूरन।
गाजा बाजा द्वारे बाजे, घर मंगल बहु उत्सव साजे॥
नेगी नेग लेहिं अधिकाई सब परिवार भई हर्षाई।
—ब्रह्म समाधि लीन योग, छन्द ९-११

२ जन्मत कन्या मार दे चाहत सुत कुसलात।
—दयालुदास की वाणी, उपदेश चेतावनी को अंग (कुंडलिया), छन्द १२

३ वंश गुरु ने पंडित आकर जन्म पत्र बना दिया।
ग्रह योग विधि से दयानिधि शुभ नाम निश्चय कर दिया॥
—दुल्हेंचरितामृतम, पृ० १२

४ जब मैं रही थी कन्या क्वारी तब मेरे करम हता सिर भारी।
जब मेरी पिउ से मनसा दौडी सतगुरु आन सगाई जोडी॥
तब मैं पिव का मंगल गाया, जब मेरा स्वामी व्याहन आया।
हथलेवा दे बैठी संगा तब मोहिं लीनी बायें अंगा॥
—अनुभव गिरा, पृ० १९२-९३

अन्त्येष्टि संस्कार साम्प्रदायिक साहित्य में अन्त्येष्टि संस्कार का भी वर्णन है। चिता तैयार करने में ईंधन, चन्दन, नारियल, मेवा, घी, खोपरा, पिस्ता आदि पदार्थों का प्रयोग किया जाता था।[1] श्मशान पर डोम को कर स्वरूप शव का कफन देने की प्रथा इस काल में भी प्रचलित थी।[2]

खान-पान रामसनेही संतों ने अपनी वाणी में राजस्थान में प्रचलित नाना प्रकार के खाद्य पदार्थों का उल्लेख किया है। साम्प्रदायिक साहित्य में दूध, मिठाई, लड्डू, सीरा, पकवान, पूरी, रोटी, दाल, चावल, मूंग, घृत, आम, दही, मावा, चूंदा, लपसी आदि का नाम अनेक बार आया है।[3]

---

१ इंधन चंदन अरु नारेला, चिता रचाणी भारी।
मेवा घिरत खोपरा पिस्ता उत्तम जुगत्या सारा॥
ऐसी विधि सू सिधि तन किरिया आप सदा धन पारी।
सहत विमान अचभी बाता अग्नि धारणा धारी॥
—राम पद्धति, छंद ३२

२ तब वहाँ के नेगी महतर बोले आशा धारी मनसा डोले।
ये मुर्जाँ हमारी खारो सो पोसाख तुम क्यू न उतारो॥
—ब्रह्म समाधि लीनयोग, छन्द १८७

३ (अ) क्षीर [redacted] मिठाई लाडू सीरो पकवान पूरी,
चावर शकर मूंग घृत करि चाव से।
जैसा विधि बहुत रसाल गुरु देव जूकू,
सुन्दर परोसै प्रीति भाव के प्रभाव से॥
—श्री रामस्नेह धर्मप्रकाश, पृ० ३६०

(ब) दही दूधपीवै आप लाडू चूर माहीं खाय।
—वही पृ० १६५

(स) अमल कटोरा गालते मावा भरि-भरि लेह।
—वही पृ० ६५

(द) खावे [redacted] दा लापसी करे आन दू भोत।
—रामदास की वाणी, पृ० ६५

(य) दही घिरत रोटी खाय, सोवै नीद ही अघाय।
चावल खाय चणा माल साई बिना भूंडो हाल॥
—श्री रामस्नेह धर्मप्रकाश पृ० १६६

(र) गाहूँ दाल घिरत सब लाये।
—गुरु प्रकारण परची, पृ० २८

तत्कालीन समाज में मास, मदिरा, अफीम, भाग और तमाखू का भी प्रयोग किया जाता था।[1]

धर्म रामसनेही सम्प्रदाय के साहित्य म वर्णित समाज की धार्मिक स्थिति बड़ी ही शोचनीय थी। समाज नाथों, कनफटा, शाक्तो, शैवा, सरावगिया, वैरागियों, कापालिकों, अवधूतो, जगमो तथा दिगम्बरों द्वारा प्रचारित बाह्याचारो मे बुरी तरह फँसा हुआ था।[2] कहने के लिए रामानन्द, निंबार्क, मध्वाचार्य, विष्णुस्वामी और दादूदयाल के अनुयायी पृथक्-पृथक् थे किन्तु मूलत सब पथ भ्रष्ट होकर एक ही मार्ग पर चल रहे थे।[3] अपने दैनिक जीवन म वे गाने बजाने, नाचने-कूदने, कुश्ती लड़ने, हुक्का और गाजा पीने, अफीम खाने, चिमटा, छुरा, कुल्हाड़ी लकर नगरो में भीख माँगने तथा वेश्या गमन मे आकण्ठ मग्न थे।[4]

देवी देवता और धार्मिक विश्वास साम्प्रदायिक साहित्य म वर्णित समाज म बहुदेवोपासना अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी। निर्गुण राम के अतिरिक्त दाशरथि राम[5], कृष्ण[6], गोरी[7], खेतपाल[8],

---

१ मास हू खाय पीवै मद्य ह्वैगो मरद ही गरद।
पीवै पोस्त ही को साय, पोस्त फिर ही को खाय॥
पीवै तमाखू अरु भग जाने नाच जूआ सग।
—श्री रामस्नेह धर्मप्रकाश पृ० १६६

२ द्रष्टव्य, अणभैवाणी, पृ० ६८६-८७ (लच्छ अलच्छ योग)

३ चोड़ा टीका साजे गुरु रामानन्द का बाजे।
निम्बावत मधवाचारा ये विष्णु स्वामि जटधारी।
कोई निरजन मत का तिन टीका दादूपथ का।
सब आर आर की टोली ये ठठग ठीगा ठोली।
ये आम्हा साम्हा झूझे कोइ साच मतो नहिं सूझे॥
—लच्छ अलच्छ योग, छन्द ४-६

४ द्रष्टव्य अणभैवाणी, पृ० ९८६-८७ (लच्छ अलच्छ योग)

५ रामपिता दशरथ कहे तो होय जनम का हाणि।
—अणभेवाणी, पृ० ५०

६ राधा देवै नाचनी कृष्ण देखे काहू।
रामचरण ताहि दान दे ऐसा इसू अनान॥
—अणभैवाणी, पृ० ६५

७ गौरि पूजि अरु तीज मनावै।
—वही, पृ० ६६

८ सपने ई शिव ना मिले पूजै खेतरपाल।
—दयालुदास की वाणी, पृ० ४० ६६

शक्ति[1], ब्रह्मा, विष्णु, महेश[2] आदि अनेक देवी-देवताओं में लोग सामान्य रूप से विश्वास करते थे। 'दुइज' पूर्णिमा के व्रत तथा माघ और कार्तिक स्नान में भी लोग पूर्ण आस्था रखते थे।[3] भूत-प्रेत, यन्त्र-मन्त्र, डाकिनी शाकिनी की पूजा बड़ी श्रद्धा से की जाती थी।[4]

हस्तरेखा में विश्वास सामुद्रिक शास्त्र में लोगों की अगाध आस्था था। आज की भांति उस समय भी हस्तरेखा विचार करने वाले जहाँ-तहाँ घूमते रहते थे[5] और लोगों को भाग्य फल बताकर अपनी जीविका चलाते थे।

वेष-भूषा और शृंगार-प्रसाधन इस सम्प्रदाय के संतों ने तत्कालीन समाज में प्रचलित वेष भूषा, आभूषण और नाना प्रकार के शृंगार प्रसाधनों की भी चर्चा की है। दयालुदास ने स्त्रियों के द्वारा अंग-प्रत्यंग में धारण किये जाने वाले रत्न जटित आभूषणों तथा बहुमूल्य वस्त्रों का उल्लेख करते हुए षोडश शृङ्गार का उल्लेख किया है।[6] उस समय राजस्थानी स्त्रियाँ उंगलियों में मुद्रिका, हाथ में कंगन, कान में कुंडल और कर्णफूल, नाक में रत्न जटित बेसर और नथुनी तथा गले में हीरों की माला पहना करती थी।[7] वे बालों को सँवार कर आकर्षक बनाती थी—

१ मैरी मू मैरी मिली माता पूजण हार। —वही, पृ० ६७

२ विष्णु ब्रह्मा शिव आदि पारषद षोडस बर्न्न। —भक्तमाल (दयालुदास), पृ० २

३ पुन्य बरत तीरथ देव पूजा पुन्य स दुज यू पूजई।
अरु माघ कार्ती मास न्हावत सभै पुन्य गत सू अई॥
—गुरु प्रकरण (दयालुदास), छंद २०१

४ भूत प्रेत को जाचन हारा जन्तर मन्तर भ्रष्ट बुहारा।
डाकिनि शाकिनि बीर जगावै एसो सिद्ध जगत पूजावै॥
—गुरु प्रकरण परची, पृ० ७७

५ ऊर्ध्व रेख जो चक्र दखाई मे कूण है ग्रह म क्यु भाई।
इनके ग्रहनिर्वेद बरारो राम भजन करि होइहै पारो॥
—ब्रह्म समाधि लीन योग, छंद १५-१६

६ भूषन बन अंग-अंग हीर चीर राजही।
षोडस सिंगार सकल मू रस पाजही॥ —गुरु प्रकरण, छन्द ४२१

७ (क) नक बेसर शोभा नासिका अर कुण्डल शोभा कान।
—रामरसायण बोध पाचवा प्रकरण, छं० ८८

(ख) पल्लव पच मुद्रिका सदक लाल सोवरो
वकन वधचूर सा मनोज पासा देपरा
करनफूल वृत ग्राह जोप ताम दपरो
नासक नथ छवि गत जयँनी दिखावही
कठहार माल जर तरणी तरसहीक

—गुरु प्रकरण परची, छ ४२६ २७

और माग को मोतिया से सजाती थी।[१] ललाट पर (लाल और काले) रंग की बेंदी देने की प्रथा थी।[२] इसके अतिरिक्त सौन्दर्य प्रसाधन के रूप में कुंकुम, कपूर, चोवा चन्दन जैसे सुगंधित पदार्थों का भी प्रयोग किया जाता था।[३]

पुरुषों की वेष-भूषा का विस्तृत वर्णन तो इस सम्प्रदाय के साहित्य में नहीं मिलता किन्तु कहीं कहीं उनके द्वारा पहने जाने वाले कुछ वस्त्रों का नाम अवश्य आ गया है। इनमे जामा, पगडी और लगोट प्रमुख है।[४]

वाद्य एवं नृत्य राजस्थानी समाज में विवाह, जन्म, पर्व, त्योहार आदि मांगलिक अवसरों पर विविध प्रकार के बाजों का प्रयोग किया जाता था जिनमें झालर, बीणा, मृदंग, सहनाई, बासुरी, भेरी रणसिंगा करनाल, चंग, उपंग, मजीर, ढोल, मोरचंग, घु घरू, दमामा और नौबत विशेष उल्लेखनीय है।[५]

गुरु का आतिथ्य मध्ययुगीन समाज गुरु में अपार श्रद्धा रखता था। गुरु को ईश्वर रूप माना जाता था। गुरु के आतिथ्य की तैयारियां बडे धूमधाम से की जाती थी। घर की सफाई, पग-पग पर चौक पूरना घर में रंग बिरंगी चित्रकारी

---

१ पाटी असित शीश श्याम नागणी पयोनद।
माग स्वार भुगताज वेस रस यो छद।।
ता बिचे कुंकुम राज त्रिवेणी सगम ए।
—वही, छद ४२३ २८

२ सोभियत बिंद का बुदन रग ईस एक।
—वही, छद ४२४

३ (अ) करे सिनान मजन सुगंद अग न्च एक।
—वही छद ४२२

(ब) आनी सुगंधि वरतु अनूप मृग मद हरि च दन पोस रूप।
कुंकुम कपूर मुकाशमीर चोवा च दन कमीर।।
—श्री रामस्नेहधर्मप्रकाश, पृ० ३५९

४ रामस्नेही मतवाणी, पृ० १४७

५ घोर अनहद की गगन गिरणाइया होत बहु सोर नहि कहत आवै।
झालरी बीण मरदग सहनाईया बासुरी तान झणकार लावै।।
भेरि रणसिंग करनाल बजवा बजे चग अरु उपग गति करत न्यारी।
एक इक नाद में राग नाना उठे मधुर स्वर मधुर स्वर चलत भारी।।
मजीरा मान धधकार धोलक करै गिडगिडी राग माद्द चग बाज।
रुण झुणू रुणझुणू नृत्य ज्यू घुघरू घटा टकोर ध्वनि अधिक गाजै।।
—अणभैवाणी, पृ० १६२

तथा कलश सजाना आदि तैयारी के आवश्यक अंग थे। आने पर उन्हें परिक्रमा देकर प्रणाम किया जाता था।[1] आरती की जाती थी, पद पखार कर चरणोदक भी लेने की प्रथा थी।[1] गुरु को सोने के लिए रेशमी गद्दा, तकिया, चद्दर आदि से सजे हुए सुन्दर पलंग दिये जाते थे।[2]

कला पक्ष

सन्त कवि 'कला कला के लिए' के सिद्धान्त में विश्वास करने वाले नहीं थे। काव्य रचना उनका साध्य नहीं, साधन मात्र था। अपना सर्वस्व गँवाकर जिस सत्य का अन्वेषण उन्होंने किया था, जिस सत्य की अनुभूति उन्हें हुई थी, उसी को चिरंतनता प्रदान करने के अभिप्राय से उन्होंने काव्य का सहारा लिया, किन्तु उसे सुन्दर और सुरुचिपूर्ण बनाकर अपने कला-नैपुण्य का परिचय देने की चेष्टा उन्होंने स्वप्न में भी नहीं की। वस्तुतः शाब्दिक चमत्कार प्रदर्शन उनकी प्रकृति के प्रतिकूल था। रामसनेही सम्प्रदाय में भी अनेकानेक 'विद्वान् और सशक्त वाणीकार सन्त हो चुके हैं किन्तु प्रकृत्या वे वाणी के शृङ्गार और अलङ्करण के प्रति सर्वथा उदासीन थे। फिर भी यत्र-तत्र अनुभूतियों की सघनता की स्थिति में इनकी वाणी अलंकारों की नैसर्गिक छटा से स्वतः विभूषित हो गई है मुहावरों और लोकोक्तियों के सहज प्रयोग से भाषा में एक चमक आ गयी है और प्रतीकों, दृष्टिकूटों एवं उलटवासियों के कारण पाठक का मन इसकी ओर आकृष्ट हो जाता है।

अप्रस्तुत-विधान

अप्रस्तुत विधान अभिव्यक्ति का बड़ा ही सशक्त माध्यम है। यह कविता की कोई आवश्यक शर्त नहीं वरन् सम्प्रेषणीयता के लिए उपयोगी है। अपनी धारणा है कि समर्थ कवि भावों का बिम्ब ग्रहण कराने के लिए प्रथमतः अभिधात्मक भाषा का प्रयोग करता है किन्तु जब उससे काम नहीं बनता तब उसे लक्षणा, व्यञ्जना शब्द-शक्तियों के साथ ही अप्रस्तुत विधान की आवश्यकता पड़ती है। यह स्थिति काव्य-

१ पुन दे प्रकमा चरन सिर धर बीनती मुख उचर।
घिन भूर मावन सरव पावन आसन विध अनुसरे।
पधराय धूप सदीप बहुविध आरती विधविध करे।
मब चरचि चदन अंग लपन तिलक सिर मस्तक घरे।
कर अष्ट पुष्पक सकल श्रीमन कज रज परसन भये।
—गुरु प्रकरण, छन्द १७१-७२

२ द्रष्टव्य, गुरुप्रकरण परची, पृ० ४१ ४२।

रचना और व्यावहारिक जीवन दोनों में एक जैसी है। हम बातचीत में भी अप्रस्तुत विधान करते हैं और अनेक बार वह किसी महाकवि से कम प्रभावशाली नहीं होती है।

रामसनेही सम्प्रदाय के साहित्य में भी अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में अप्रस्तुत विधान हुआ है। साम्प्रदायिक साहित्य से नीचे कुछ नमूने उद्धृत किये जाते हैं।

उपमा

(क) सब घट व्यापक राम है ज्यूं अवनी में नार[1]।

(ख) जन हरिया सतगुरु इसा जैसा होय लोहार।
तन लोहा ज्यूं ताव दे काट न रावण हार[2]॥

(ग) सतगुरु एसा रामदास जैसा सूर प्रकास।
रात अज्ञान मिटाइ कर अंतर करे उजास[3]॥

(घ) [illegible] किया [illegible] ज्यूं [illegible] प्रकास[4]।

उपर्युक्त साम्प्रदायिक साहित्य से उपमा अलंकार के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। इनके स्वरूप पर विचार करने से यह प्रतीत होता है कि इनका प्रयोग चमत्कार प्रदर्शन के उद्देश्य से नहीं वरन् अभिव्यक्ति को अधिकाधिक स्पष्ट और बोधगम्य बनाने के लिए किया गया है। मालोपमा की एक छटा देखिये —

[illegible] पूरण ब्रह्म रह्यो भरपूरा।
ज्यूं घट मांह, [illegible] पावक पूरा॥
[illegible] मन पूरा।
रामचरण [illegible] प्रकास [illegible][5]॥

रूपक [illegible] का सर्वप्रिय अलंकार [illegible] है। उनके अधिकांश [illegible] में [illegible] [illegible] में प्रस्तुत किये गये हैं। दूसरे [illegible]

---

१ [illegible], पृ० ७
२ श्री [illegible], पृ० ५८
३ वही, पृ० १८२
४ [illegible] (रामचरण), पृ० ५०
५ [illegible], पृ० ८७

में हम कह सकते हैं कि सन्तो के रूपक प्राय सावयव है। इनके द्वारा आयोजित रूपको की दूसरी विशेषता यह है कि कवि प्रसिद्धियो का सहारा न लेकर इन्होंने बहुधा उपमानों का चुनाव लोक-जीवन से किया है। नीचे कुछ उदाहरण दिये जाते हैं —

(क) दिल सागर दरियाव है हसा मेरा जोव।
मोती निरमल नाव है चुग बैठा निज थीव[१] ॥

(ख) तन दीपक मन तेल भरि जीव पतगा जेम।
पावक रूपी राम है हरिय सामा प्रेम[२] ॥

(ग) काया तरुवर मन पछी लिया बसेरा आय।
रामचरण बधे नहीं निशि बीता उडि जाय[३] ॥

(घ) नारि नदी अरु रूप जल जो बहे अपरबल धार।
सो निरखि-निरखि पडि-पडि बहै जे विषई ससार।
जे विषई ससार मोह की भवर दबावे।
दरया उकसी नाहि दुखित नर देह गुमावे॥
कोई राम भजन बल उबरै शूरा पकड करार।
नारि नदी अरु रूप जल बहै अपरबल धार[४]

च—ज्ञान का बकतर बैराग की ढाल कर टोप गुरुदेव शिर दस्त मेल्है।
उसी सी रीति सूं जीति जग शूरवा राम ही चरण सुख माहि खेलै[५] ॥

सन्तों ने कभी-कभी अध्यवसित रूपक की भी योजना की है। इस प्रकार के रूपकों में रूपकातिशयोक्ति की भांति केवल उपमानो का ही कथन किया जाता है। दरिया साहब का इसी प्रकार का एक योग परक रूपक नीचे दिया जाता है।

मुरली कौन बजावे हो गगन मडल के बीच।टेक।
त्रिकुटी सगम होयकर गग जमुन के घाट।
या मुरली के शब्द से सहज रचा बैराट॥
गग-जमुन बिच मुरली बाजे उत्तरदिसि धुन होहि।
वा मुरली की टेरहि सुन-सुन रही गोपिका मोहि॥

---

१ रामदास की वाणी, पृ० १६
२ श्री रामस्नेह धर्मप्रकाश, पृ० ५८
३ अणभै वाणी, पृ० २५
४ समता निवास षष्ठ प्रकरण, छन्द ८२
५ रामरसायण बोध, पचम प्रकरण, छन्द ६२

जहा अधर डालो हसा चुगत मुक्ता हीर।
मान द चकवा केल करत है मान सरोवर तीर[१] ॥

विभावना जब कारण के बिना ही कार्य हो जाता है तो विभावना अलकार होता है। रामसनेही-साहित्य मे गगम-देश वरणन प्रसग मे प्रयुक्त विभावना अलकार के मुख्य उदाहरण लीजिये—

(क) बिना पत्र तरुवर बिना पात छाया।
बिना चचु सूवे अगम फल्ल खाया
बिना पात सरवर बिना नीर भरिया
बिना मघ बया अपड इन्द्र झरिया[२]

(ख) जह जल बिन कवला बहु अन त जह बपु बिनु भौरा गु ज करत।
अनहद बानी जह अगम खेल, जह दीपक जरे बिन बाती तेल[३] ॥

विरोधाभास जब दो विरोधी पदार्थो का सयोग एक साथ दिखाया जाता है अथवा जाति, द्रव्य, गुण और क्रिया के द्वारा उनमें सयोग से परस्पर विरोधी काय होता है तो विरोधाभास अलकार होता है। साम्प्रदायिक साहित्य से एक उदाहरण नीचे दिया जाता है —

माया जिसकू मारिया से माया क मित[४]।

उदाहरण

दरिया सगत साध की सहजे पाले भृङ्ग।
जैसे सग मजीठ के कपडा होय सुरङ्ग[५] ॥

तद्गुण

लोह काना भीतर कठिन पारस परसी सोय।
उर नरमी अति निरमला बाहर पीला होय[६] ॥

अन्योक्ति

दरिया छुरी कसाब की पारस परसे आय।
लोह पलट कचन भया आमिष भखा न जाय[७] ॥

---

१ रामस्नेही स तवाणी एव भजन सग्रह, पृ० २१७
२ श्री रामसनेह धर्म प्रकाश, पृ० २११
३ रामस्नेही स त वाणी, पृ० २०७
४ रामदासकी वाणी, पृ० स० २८
५ श्री रामस्नेही सतवाणी, पृ०
६ वही, पृ०
७ वही, पृ०

स्वभावोक्ति

सूर न जाने कामरी सूरातन स हत।
पुरजा पुरजा ह्वे पड़े तहू न छाड़े खेत[१] ॥

यत्र-तत्र उदाहरण, दृष्टात, काव्यलिङ्ग, अप्रस्तुत प्रशसा आदि अलकारो के उदाहरण भी मिल जाते हैं।

शब्दालकार शब्दालकारो म केवल अनुप्रास ही एसा है जो सन्त साहित्य में सर्वाधिक प्रयुक्त हुआ है। काव्य म शब्दालकार वस्तुत शब्द चमत्कार के उद्देश्य से प्रेरित समझा जाता है किन्तु रामसनेही सन्तो ने इसका प्रयोग चमत्कार की दृष्टि स नही वरन् सगीत और लय का विधान करने के लिए किया है। इसीलिए उन्होने केवल अनुप्रास की योजना की। कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

छेकानुप्रास—

(क) सुरराज जहा अज आसन जो।
जन जानत ताहि विनाशन जो॥
निधि आठ निराटन चाहि कबू।
नव निद्धि सुनिद्धि हु त्याग सबू[२] ॥

(ख) धरिया नहिं धारू अधर अधारू।
महूआ रोव करता है[३] ॥

(ग) दृष्ट न मुष्ट न अगम है अनि ही करडा काम[४]।

(घ) मुरत निरत परचा भया अरस परस मिल एक।
जन दरिया बानक बना, मिट गया जन्म अनेक[५] ॥

वृत्यनुप्रास

(क) धीर धीर गम्भीर भीर हर राम है।
निराकार निरधार सार नहकाम है[६] ॥

---

१ वही, पृ०
२ अणभो विला, नवम् प्रकरण, छद २७
३ धधर निसाणी, छ० १६
४ अनुभव गिरा, पृ० १६३
५ वहीं, पृ० १२०
६ अणभोविलास, चतुर्थ प्रकरण, छ० २८

(ख) मात न तात न भ्रात सुत सगा न सुन्दरि साथ ।
हरिया जासी एकलो करि बोनाऊ हाथ[1] ॥

(ग) दयाल कृपाल समार करे, जिव भाल कराल बिचाल रमे ।
जठराल उघाल पुणाल मरे नभ नामि न भाल रसाल भखे[2] ॥

रामसनेही सम्प्रदाय के वाणिकार सन्तों की अप्रस्तुत योजना की समीक्षा करते हुये हम यह निवेदन करना है कि उनके उपमान प्रायः लोक जीवन से गृहीत है। अपनी अपरोक्षानुभूति को जन जन तक पहुँचाने के लिये लोक भाषा और लोकानुभूति पर आधारित अप्रस्तुत योजना से अधिक कारगर साधन दूसरा हो ही नहीं सकता था। सन्तों की वाणी लोक-काव्य के निकट है इसलिये इसका मूल्यांकन करते समय इस बात को दृष्टि में रखना आवश्यक है। सन्त भगवानदास और प० उत्साहराम की वाणी में काव्य शास्त्रीयता का निर्वाह और कवि परिपाटी का पालन हुआ है किन्तु इन्हें अपवाद स्वरूप मानना चाहिये।

प्रतीक योजना

किसी गुह्य अथवा दार्शनिक विषय का विवेचना करते समय जब मनुष्य की भाषा अपने सहज रूप में विषय को पूर्णतः नहीं समेट पाती और उसे अभिव्यक्त करने में असमर्थ हो जाती है तब उसे विवश होकर विषय से प्रकृतिगत साम्य रखने वाले लोक प्रचलित रूपों का सहारा लेना पड़ता है। अभिव्यक्ति के इन्हीं प्रयोगों को साहित्यिक भाषा में प्रतीक कहते हैं। प्रतीकों के माध्यम से विषय को सर्वग्राह्य बनाने की प्रणाली का प्रचलन भारत में बहुत प्राचीन काल से रहा है। 'बृहदारण्यकोपनिषद्' में ब्रह्म का निरूपण सूर्य, चन्द्र आदि प्रतीकों से किया गया है।[3] एक स्थान पर उसमें परमात्मा की रहस्यमयी अनुभूति को प्रियतमा के गाढालिंगन के प्रतीक से समझाया गया है। उसमें कहा गया है कि जिस प्रकार गार्हस्थ्य जीवन में अपनी प्रिया द्वारा गाढ़ालिंगित पुरुष को बाहर भीतर का कुछ ज्ञान नहीं रह जाता, उसी प्रकार परमात्मा द्वारा आलिंगित साधक को भी बाहर भीतर का कुछ ज्ञान नहीं रह जाता।[4] हमारे अध्ययन युग के सन्तों ने इसी पद्धति पर आत्मा परमात्मा के सम्बन्ध को दास्य, वात्सल्य और दाम्पत्य भाव के प्रतीकों में समझाने का प्रयत्न किया है।

वात्सल्य भाव के प्रतीक में भक्त भगवान् के सम्मुख उसके पुत्र के रूप में उपस्थित होता है। वह अपने को हर प्रकार से असमर्थ जताते हुए आत्मसमर्पण कर

१ श्री रामस्नेही धर्मप्रकाश, पृ० ६६
२ करुणासागर (श्री रामस्नेह धर्मप्रकाश, पृ० ३०५)
३ बृहदारण्यकोपनिषद्, २।१
४ वही ४।३।२१

देता है। इस समर्पण के मूल में भक्त का उपास्य की शरणागत-वत्सलता में दृढ विश्वास निहित रहता है। महात्मा हरिदेवदास जगत्पिता राम के चरणों में अपने को अर्पित करते हुये कहते हैं —

राम राय मैं हूँ बालक तेरा पिता ज तुम हो मोरा।टेक।
मैं बालक मनि मोर रहे उर यह नहीं जानूं काई।
दीन दन्धु देव हम शिशु मति आप विरद निरवाई।
सेवा साज म जानू साहिब है मति हीन हमारी।
करिहो अबै मुझे माहि करता सो हूँ रजा तुमारी।
मैं तो बाल बेलि सम राता का तो मन गृह मोहा।
कातो असन वार वस्त्रादिक य उर सदा ममोहा।।
तुम ही पिता मुझे हरिनीका मैं मति भोर अजाना।
जानू नही कछू हम काई तुम हो स्याम सुजाना।।
मैं मति हीन किया अति औगुण तुम ना गिनो दयाला।
कह हरिदेव पिता हरि सुनियो बाल करो प्रतिपाला।।[१]

इसी प्रकार एक पद में हरिरामदास ने 'चाकर' और 'ठाकुर' के प्रतीक से दास्य भाव की व्यंजना की है और अपने को सर्वतोभावेन भगवान की इच्छा पर छोड़ दिया है। उन्हें पूर्ण विश्वास है कि 'हरिसरवर की छाई' प्राप्त कर लेने पर वे भवातप से बच जायेंगे —

माधव का चाकर मैं हूँ हो।
आदि अंत मधि नाम तुम्हारो, पार उतारण तै हूँ हो।।टेक।।
मैं दुखिया काहे दारिद्री तेरे कमी न काई।
दीन बन्धु दाता सब ही का भाग पारपति पाई।।
तीन लोक का ठाकुर तुम हो और किसी को जाचूँ।
तुम हरता तुम ही करता नाच नचावो नाचूँ।।
का तो देश दिशांतर डोलूँ का बैठूँ घर माही।
डिगमिग मिटै नहीं जब जिव की कारज सरै न काही।।
जो मैं बाउ करूँ बन-बन म मनवो रहण न पावै।
घर मे धका धूम बहुतेरी कहूँ कैसे बनि आवै।।
मुझि औगुण का छेह न काई तुझि गुणवन्ता साई।
जन हरिराम कहै जहा राखो, हरिसरवर की छाई।।[२]

---

१ श्री रामस्नेह धर्मप्रकाश, पृ० १८३
२ वही, पृ० १५५

[illegible] के साहित्य में सबसे अधिक संख्या [illegible] भाव के प्रसंगों की है। [illegible] दाम्पत्य प्रेम की संयोग और वियोग दोनों स्थितियों पर प्रचुर मात्रा में पदों की रचना की है। कहीं-कहीं पर तो संयोग सुख के बड़े ही [illegible] वर्णन मिलते हैं। [illegible] राम के साथ होली [illegible] भक्त [illegible] किस प्रकार [illegible] की प्राप्ति हो गई इसका अनुभव [illegible] वातावरण [illegible] सुनिए —

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] राम [illegible]।
[illegible] हाथ [illegible] का अंबर [illegible] [illegible]।
[illegible] राम [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] ॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] ॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥[1]

इस प्रसंग में [illegible], [illegible], अर्थ [illegible] और [illegible] का [illegible] [illegible] और [illegible] का भी [illegible] [illegible] किया गया है —

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥[2]

---

१ [illegible], पृ० [illegible]
२ [illegible] पृ० [illegible]
३ [illegible]
४ [illegible] पृ० [illegible]

इन सयोग चित्रों की ही भांति वियोग की अनेक स्थितियों के अकन मे भी प्रतीकों की सहायता ली गई है। दयालुदास का विरह-निवेदन इसी पद्धति पर हुआ है।

विरहिनि कू दरशन दीजे साहिब अपनी कर लीजे ।।टेर।।
मैं राम पिया बलिहारी प्रभु मेटो तपन हमारी।
टुक दया दृष्टि भर देखो जीवा ने तारन लेखो।।
जिय जन्म-जन्म को झूरे, आशावत आशा पूरे।
हरि आइ विरद विचारो, अब पलका पलक पधारो।
मोहि श्वास कल्प सम जावे कब प्रीतम दरश दिखावे।
जन दयाल बाल बलि जावे, कब राम पिया घर आवे[1] ।।

सम्बन्ध मूलक प्रतीकों के अतिरिक्त रामसनेही साहित्य में इडा, पिंगला, सुषम्ना, मूलाधार, सहस्रार, ब्रह्म रन्ध्र आदि के लिए प्रयुक्त गगा, यमुना, सरस्वती, सूर्य, चन्द्र, गगनमडल आदि पारिभाषिक तथा गुण, तत्व और प्रकृति के लिए 'तीन', 'पांच' और 'पचीस जैसे सख्यावाचक प्रतीकों का प्रयोग भी हुआ है। काव्यशास्त्र से पूर्णतया अभिन्न न होने के कारण इन सन्तों की प्रतीक-योजना कहीं-कहीं त्रुटिपूर्ण हो गयी है, किन्तु ऐसे स्थल बहुत कम हैं। प्रतीक अधिकतर लोक जीवन से सचित किये गये हैं इसलिए शास्त्रीय दृष्टि से दोषपूर्ण दिखाई पड़ने पर भी जहाँ तक साधारणीकरण अथवा रस निष्पत्ति का सम्बन्ध है उनकी योजना असंगत नहीं कही जा सकती।

उलटवासी

उलटवासियों की परम्परा कितनी प्राचीन है निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। ग्रन्थ-साक्ष्य के आधार पर हम इस परम्परा को ऋग्वेद से जोड़ सकते हैं। ऋग्वेद में उलटवासी की पद्धति पर आधारित एक रहस्यात्मक कथन इस प्रकार है —

चत्वारि शृगा त्रयोऽस्यपादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य
त्रिधा बद्धो वृषभोरोरवीति महादेवो मर्त्य आविवेश[2]।

(अर्थात् इस बैल के चार सीग तीन पैर, दो सिर और सात हाथ हैं। यह तीन प्रकार से बधा हुआ अत्यन्त शब्द करता है। इस महान् देव ने मर्त्यों के बीच प्रवेश किया।)

लोक जीवन में भी इस प्रकार की रहस्यमूलक उलटवाँसियां प्रचलित हैं। गाँव के लोग आज भी सायकाल में दिन भर की थकान से विश्राम लेते समय बच्चों के

१ श्री रामस्नेह धर्मप्रकाश, पृ० २५२
२ ऋग्वेद, ४।५८।३

साथ अनेक उलटवासियां जिन्हें वे 'बुझौवल या बुझनी' कहते हैं, बूझते और बुझाते हैं। इस प्रकार की एक बुझनी है —

हम हम हमहीं जुवाठी बाय घरही।
बाप पूत पटे में नानी गयल गवहीं ॥

उलटवांसियों के ऐतिहासिक विकास क्रम के अनुशीलन से विदित होता है कि बौद्ध सिद्धो, नाथ योगियों और तान्त्रिकों द्वारा विरचित साहित्य में यह शैली व्यापक रूप से अपनाई गई थी और इन्हीं से यह निर्गुण सन्तों को रिक्थ रूप में प्राप्त हुई है। अब प्रश्न यह है कि यह परम्परा वेदों से अनुस्यूत होकर आगे बढ़ी अथवा लोक-जीवन से ? कुछ विद्वानों ने इसका सम्बन्ध वेदों से बताया है। इस मत की समीचीनता पर सहसा विश्वास नहीं किया जा सकता क्योंकि सिद्धों, योगियों और सन्तों पर लोक-जीवन का जितना प्रभाव है, वे लोक परम्पराओं के जितने निकट पड़ते हैं, उतने वेद उपनिषदादि के नहीं। संस्कृत भाषा और साहित्य के प्रबल विरोधी सिद्धों के सम्बन्ध में, जिन्होंने अपने सिद्धान्तों की विवेचना के लिए भी संस्कृत को नहीं अपनाया, इस प्रकार की बात निराधार जान पड़ती है। मेरी समझ में वेदों और सिद्धादिकों द्वारा गृहीत उलटवासियों का मूल स्रोत एक ही है और वह है लोक जीवन में प्रचलित पहेलियों अथवा बुझौवल की अनादिकाल से चली आती हुई परम्परा।

कबीर आदि पूर्ववर्ती निर्गुण सन्तों के नाम से अनेक उलटवासियां प्रचलित हैं। परवर्ती सन्तों में यह प्रवृत्ति बहुत कुछ दब सी गई थी। परम्परा पालन के लिए जहाँ-तहाँ इस प्रकार के एकाध पदों की रचना कभी कभी होती रही। रामसनेही सम्प्रदाय के साहित्य में भी इस प्रकार के पद यत्र-तत्र मिल जाते हैं।

कुछ विद्वानों की धारणा है कि योग-साधनान्तगत प्रत्याहार की स्थिति में साधक संसार से परावर्तित हो जाता है। अतः उसे संसार के सारे कार्य व्यापार उलटे दिखायी पड़ने लगते हैं। आध्यात्मिक चेतना के इस धरातल पर पहुँचने के बाद साधक के कार्य-व्यापार लोकदृष्टि से उलटे हो जाते हैं। इसीलिये जब वह अपनी साधनानुभूति को शब्दों में बाँधता है तब लोग उसे उलटबाँसी कहने लगते हैं। उनकी धारणा है कि उलटवासी के प्रतीकों को समझ लेने के बाद पाठक को ब्रह्मानन्द सहोदर की प्राप्ति होती है। किन्तु अधिकांश विद्वानों ने उलटवासियों को काव्य सौन्दर्य के नाते से कला का निकृष्टतम विलास माना है, क्योंकि इनकी सर्जना अभिव्यक्ति को रहस्यमयी बनाने के बौद्धिक प्रयास से हुई है और बौद्धिक प्रयास जन्य कला उच्च कोटि की नहीं हो सकती। दूसरी बात यह है कि यदि हम उलटवासियों के प्रतीकों पर विचार करें तो यह स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि वे अधिकतर परम्पराभुक्त और प्रायः एक से हैं। अतः उनमें सौन्दर्य ढूँढ़ना व्यर्थ ही। हमारे अध्ययन क्षेत्र

के साहित्य में इस प्रकार के पद अधिक नहीं है। दरिया साहब की एक उलटवाँसी लीजिये—

साधो एक अचभा दीठा ।
कड़ुवा नाम कहै सब कोइ, पीवै जाको मीठा ।। टेक ।।
बूँद के माही समुन्द समाना राई में परवत डोले ।
चीटी के माही हस्ती बैठा घट में अघटा बोले ।।
कूंडा माही सूर समाना चन्द उलट गया राहू ।
राम उलट कर तार समाना भोम मे गगन समाऊ ।।
तिन के भीतर अगिन समाना राव रक बम बोले ।
उलट कपाल तिल माँहि समाना माज तराजू तोले ।।
सतगुरु मिले तो अथ बतावे जीव ब्रह्म का मेना ।
जन दरियाव जो पद को परसे सो है गुरु मैं चेला[1] ।।

दृष्टिकूट

उलटवाँसियों से कुछ मिलती-जुलती एक शैली और है जिसे दृष्टिकूट कहते हैं। कुछ विद्वानों ने दृष्टिकूट और उलटवाँसियों को एक ही माना है। यों तो उलटवाँसी और दृष्टिकूट दोनो का सम्बन्ध भाषा-चमत्कार से है किन्तु दोनों में कुछ मौलिक अन्तर है। उलटवाँसियों में अर्थ-विपर्यय आवश्यक रूप से होता है जबकि दृष्टिकूट में अर्थ सम्बन्धी विपरीतता कहीं नहीं देखी जाती। कबीरदास की उलटवाँसी और सूरदास के दृष्टिकूट विषयक दो पद नीचे दिये जाते हैं जिनकी तुलना से उलटवाँसी और दृष्टिकूट का अन्तर स्वत स्पष्ट हो जायगा।

उलटवाँसी—एक अचभा देखा रे भाई, ठाढ़ा सिंह चरावै गाई ।। टेक ।।
पहले पूत पीछे भई माइ चेला के गुर लागै पाई।।
जल की मछली तरवर ब्याई पकडि बिलाई मुरगै खाई ।।
बैलहि डारि गूनि घरि आई कुत्ता कूँ लै गई बिलाई ।
तलि करि साषा ऊपरि करि मूल बहुत भाँति जड़ लागे फूल ।
कहै कबीर या पद को बूझै ताकूँ तीयूँ त्रिभुवन सूझै[2] ।।

दृष्टिकूट—कहत कत परदेसी की बात
मन्दिर अरध अवधि बदि हमसौं हरि अहार चलि जात ।
ससि रिपु बरष सूर रिपु जुग बर हर रिपु कीन्हो घात ।
मघ पचक लै गयो साँवरो तातें अति अकुलात ।।

---

१ अनुभवगिरा पृ० १८९-९०
२ कबीर ग्रंथावली, पृ० ९१-९२

नसत वेद ग्रह जोरि अर्ध करि सोई बनत अब खान।
सूरदास बस भई विरह के कर मीजे पछिताव[1] ॥

रामसनेही सम्प्रदाय के सन्तों मे स्वामी रामचरण ने अपने 'दृष्टान्त सागर' नामक ग्रंथ म महात्मा सूरदास की भांति दृष्टिकूट शैली का अनुसरण किया है। इससे यह प्रकट होता है कि इस ग्रन्थ का प्रणयन करते समय स्वामी जी के मस्तिष्क मे पाण्डित्य प्रदर्शन की भावना कार्य कर रही थी, क्योकि कूट शैली कवि के भाषाधिकार और वाग्विदग्धता का परिचायक है। कथन की पुष्टि के लिए कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं —

भूमि डसन रिपु तास रिपु ता सिर पर असवार।
ता सुत वाहन ज्यूं फिरै कामु लपट ससार[2] ॥

(भूमि डसन = छदेई। रिपु = मुर्गा। तासु रिपु = बिल्ली। सिर = सिंह। असवार = भवानी। तासुत = भैरव। वाहन = कुत्ता। अर्थात् कामी ससार कुत्ते की भांति भटकता है।)

मान सुता सुत तास रिपु ता पतिसुत आधार।
हेम सुता पति भावतो सो तजिये नहीं लगार[3] ॥

(मान सुता = मानसरोवर की सुता अर्थात् सीप। सुत = मोती। रिपु = हस। पति = ब्रह्मा। सुत = नारद। आधार = राम। हम सुता = पार्वती। पति = शकर। भावन = राम। अर्थात् नारद और शिव के आराध्य राम को एक क्षण के लिए भी मत भूलो।)

भाषा

सन्त कवियों की भाषा को विद्वानो ने सधुक्कड़ी हिन्दी के नाम से अभिहित किया है। पूर्ववर्ती सन्तों के लिये यह बात कुछ हद तक सत्य है क्योकि कबीर आदि अभ्युदय कालीन सन्तो की भाषा हिन्दी, उर्दू, फारसी आदि भाषाओं के साथ ही खडी बोली, अवधी, भोजपुरी, पजाबी, मारवाडी आदि अनेक बोलियो का मिश्रित रूप है। रामसनेही सन्तो की भाषा के सम्बन्ध में हम ऐसा नही कह सकते। साम्प्रदायिक साहित्य राजस्थान, मध्य प्रदेश, गुजरात और दिल्ली के विभिन्न भागो तथा व्रजभूमि के आस-पास निर्मित हुआ। अत हिन्दी प्रदेश के इन विभिन्न क्षेत्रो क भाषाओं का उस पर प्रभाव पडना स्वाभाविक ही था। इस सम्प्रदाय के वाणी साहित्य मे प्रयुक्त भाषाओं की विवेचना आगे की पक्तियो मे की जायगी।

१ सूरसागर—दूसरा खड, (ना० प्र० सभा), पृ० १५८५
२ दृष्टान्त सागर, छद १५
३ वही, छद ८०

संस्कृत अपनी व्याकरणगत दुरूहता और लोक-जीवन से दूर होने के कारण ईसवी सन् के बाद का संस्कृत साहित्य केवल पण्डितों के शास्त्राथ का विषय रह गया था। उसका पढ़ना-पढ़ाना द्विजातियों में भी इने-गिने लोगों तक सीमित रह गया। उच्च वर्ग की भाषा होने के कारण इसमें शनै-शनै निम्न जातियों के प्रति अनुदार भावनाओं का सन्निवेश हो गया। इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप सन्तों ने जिनमें अधिकांश निम्न जाति के थे संस्कृत का घोर विरोध किया। किन्तु सन्त साहित्य के अनुशीलन से विदित होता है कि बाद में इन सन्तों में भी एक विशेष प्रकार की संस्कृत भाषा का प्रचार हुआ जिसे न तो शुद्ध संस्कृत कह सकते हैं और न हिन्दी ही। यह अनुस्वारान्त होती है। विद्वानों ने इसे सधुक्कड़ी संस्कृत कहा है। इसका प्रयोग केवल मन्त्र और स्तुति की रचना में किया गया है। कहना न होगा कि इस प्रकार की सधुक्कड़ी संस्कृत का प्रयोग 'रासो' और 'गोरखबानी' में भी हुआ है। अतः निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इसकी परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। हमारे अध्ययन युग के साहित्य में इस सधुक्कड़ी संस्कृत का बहुत प्रयोग हुआ है। रामसनेही सम्प्रदाय में मन्त्रों का प्रचार तो नहीं है किन्तु यहाँ स्तुति, गुरु महिमा तथा गुरु वन्दना के प्रसङ्ग में प्रायः इसी भाषा का प्रयोग किया गया है। हरिरामदास की 'परचर निसाणी' इसी भाषा में लिखी गई है। नीचे सन्त दयालुदास विरचित 'हरिरामदास के महिमाष्टक' से इस भाषा के दो छन्द उदाहरणार्थ दिये जाते हैं—

सतन सब गाय एक बताय बिन सो ध्याय पद पाय।
उलट न आय जुरा न खाय गभ न जाय मिट काय॥
साहिब तुम साय मिले बधाय धिन-धिन थाय विस्तार।
गुरु हमार रत ररकार निरकार जिय निरकार।
एक तज अष्ट मिटे दुखष्ट सोई स्पष्ट सब सष्ट।
अष्ट पुनि इष्ट गावत नष्ट कहे घट तष्ट एकष्टम्॥
वेद पति रष्ट मुरता नष्ट अत एकष्ट सिधकार॥
गरु हमार रत ररकार निरकार जिय निरकारम्[1]॥

साधना और धर्म के अध्याय में हम कह चुके हैं कि इस सम्प्रदाय में अब उच्च वर्ग वालों का बोल-बाला हो गया है। निम्न जाति के लोगों को अब इसमें शिष्य रूप में स्वीकार नहीं किया जाता। द्विजातियों की प्रधानता होने से सम्प्रदाय में अब संस्कृत के भी अच्छे जानकार और उच्च कोटि के विद्वान् होने लगे हैं। अतः जहाँ तहाँ गुरु वन्दना आदि के कुछ श्लोक विशुद्ध संस्कृत में भी मिल जाते हैं। नमूने के लिए एक श्लोक नीचे दिया जाता है —

१ श्री रामस्नेह धर्मप्रकाश, पृ० २२०

गता [illegible] शिष्या विमल मनसो बोध पदवीम् ।
विनाशाय सर्वे मति [illegible] ।
[illegible] सुर [illegible] ।
दयालु श्री [illegible] जन पूज्य प्रतिमम[1] ॥

राजस्थानी रामस्नेही सम्प्रदाय के संतों की भावाभिव्यक्ति का प्रमुख साधन हिन्दी भाषा रहा है। उसमें भी साम्प्रदायिक साहित्य की रचना में जितना योगदान राजस्थानी का रहा है उतना अन्य किसी भाषा का नहीं। इसका एकमात्र कारण यह है कि इस सम्प्रदाय का उद्भव और विकास राजस्थान में हुआ है और इसके अधिकांश संतों की साधना तथा जन्मभूमि भी यही रही है। राजस्थान से बाहर निवास करने वाले महात्माओं की वाणी पर भी राजस्थानी की अमिट छाप देखी जाती है। मेरी सम्मति में इसका कारण यह है कि साम्प्रदायिक केन्द्रों (शाहपुरा, सिंहथल-खेड़ापा, रेण) पर समय-समय पर महात्माओं का जमघट होता रहता है और सत्संग तथा पीठाचार्य के उपदेशों के माध्यम से भाषा का आदान-प्रदान भी हो जाता है। यों तो रामस्नेही सम्प्रदाय के साहित्य पर सर्वत्र राजस्थानी की मुहर देखी जा सकती है फिर भी उदाहरण के लिए दरिया साहब के शिष्य सुखरामदास का एक पद नीचे दिया जाता है—

[illegible] दरद हमारा, म्हारा दिलदार राम पियारा ।टेक।
[illegible] दरिया के गुन सागर सू भरिया ।
हम [illegible] रैणा, मोहे राम भजन को चैणा ॥
हम [illegible] घर घर [illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] दीया म्हारे हिवडे [illegible] ।
म्हारो [illegible], म्हारे शीश की [illegible] ॥
गुरु दरिया [illegible] ।
[illegible] ॥
म्हारा [illegible] दूणी ।
कह सुखराम [illegible] गुरु [illegible] ॥[2]

ब्रजभाषा [illegible] हिन्दी की एक प्रमुख उपभाषा है। [illegible] ब्रजभाषा का [illegible] है। [illegible] राजस्थानी और ब्रजभाषा की [illegible] है। कुछ [illegible]

१ दरियाव [illegible], [illegible]
२ [illegible] पृ० ३१८

अभिव्यक्ति में तो इसका निखरा हुआ साहित्यिक रूप भी मिल जाता है। भावनादास विरचित निम्नलिखित कवित्त में ब्रजभाषा की छटा देखने योग्य है —

काशी सुखरासी ढिग देव तटिनी के तीर,
बसत निरासी माया पासी न परूंगो मैं,
बसन कोपीन और विभव विहीन सब,
जोरि कर दोनो सीस धरनी धरूंगो मैं,
आये त्रिपुरारि गौरानाथ ह त्रिनैन हर,
दीजिए प्रसन्न ऐसी बानी उचरूंगो मैं,
काहू से न लेन देन आनन्द के ऐन ऐसे,
कबै दिन रैन को निमेष से करूंगो मैं ॥१

गुजराती गुजरात भी रामसनेही सम्प्रदाय के प्रभाव-क्षेत्र में पड़ता है। इसके फलस्वरूप साम्प्रदायिक साहित्य पर गुजराती का पर्याप्त प्रभाव परिलक्षित होता है। माधवदास नामक शाहपुरा शाखा के एक सन्त ने तो रामचरण का जीवन वृत्त विशुद्ध गुजराती भाषा में लिख डाला है। इस ग्रंथ से कुछ पंक्तियाँ नीचे दी जाती हैं —

आज कलियुग मा परचा दीधा स्वामी जी शाहपुरा वैकुंठ धाम छे।
रामस्नेही नु पवित्र धाम स्वामी शाहपुरा वैकुंठ धाम छे।टेर।
सत्तर स ने छोहत्तर नी साले महासुदि चौदस ने शनिवार।
सोडा नगर देश ढूंढार स्वामी जी ये लीधो अवतार ॥२

अवधी यों तो हमारे अध्ययन युग के सन्तों का अवधी से कोई लगाव न था किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि 'मानस' और 'पद्मावत' के देशव्यापी प्रचार ने राजस्थान में विकसित इस निर्गुण मत के अनुयायियों को भी आकृष्ट किया। महात्मा भावनाराम अवधी को भावाभिव्यंजना का साधन बनाने का लोभ संवरण न कर सके। उन्होंने भागवत एकादश स्कंध की छंदबद्ध टीका इसी (अवधी) भाषा में 'रामचरित मानस' की भाँति दोहा-चौपाई आदि छन्दों में लिखी है। नीचे उनके कुछ छंद दिये जाते हैं। इनमें ठेठ अवधी का रूप दर्शनीय है —

करहु बहुरि आनन्द जुत बदन साधु समाज।
जेहि प्रसाद अति अगम सोउ सुगम होत सब काज॥
मैं मलीन कलि मल ग्रसित प्रकृति मूढ़ मति हीन।
एकादश भाषा भनित विवरन चाहत कीन॥

१ भर्तृहरि शतक (अनुवादित), पृ० ९९
२ श्री फूलडोल उत्सव, पृ० ४० ४१

सुर बानी नर बानि मैं जदपि करत नहि जोग।
तदपि सबन सुख बोध हित प्राकृत रचहि प्रयोग॥
ग्यान सिंधु यह गहन गति अति दुस्तर अवगाह।
करहु किमपि एहि अर्थ तोउ निज मति सब निर्वाह॥[1]

खडी बोली रामसनेही सम्प्रदाय के साहित्य मे खडी बोली के स्फुट प्रयोग भी यत्र-तत्र देखने को मिल जाते हैं। उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियाँ नीचे उद्धृत की जाती हैं —

सतगुरु होय दयाल दया मोहि कीजिये।
जीव पलट होइ हंस सोही बुधि दीजिये॥टेक॥
काम क्रोध मद लोभ मोह ममता तजो।
परिहर विषे विकार राम रमता भजो॥
राग दोष अहंकार कि दुबध्या त्यागिये।
साच शील संतोष दया दिढि जागिये॥[2]

कहना न होगा कि उपर्युक्त पद मे 'कीजिये' 'दीजिए' 'तजो' 'भजो' 'त्यागिये' और 'जागिये' क्रिया पद खडी बोली के हैं। हमारे अध्ययन-युग मे खडी बोली धीरे-धीरे सांस लेने लगी थी। उर्दू साहित्य के विकास के साथ साथ इसकी स्थिति भी प्रौढ हो चली थी। अतएव रामचरण ऐसे सिद्धहस्त सन्त कवियो की वाणी मे खडी बोली के प्रचलित शब्द रूपो का पाया जाना सर्वथा स्वाभाविक है।

रेखता

यह खडी बोली के साथ फारसी शब्दो के मेल से निर्मित एक भाषा है। इसके साहित्य की नींव मुहम्मदशाह रंगीले (१७१९-१७४८) के दरबार में पडी थी। वली की लोकप्रिय गजलो की भाषा दकनी को लचर बताकर दिल्ली के फारसी कवियो ने एक नवीन शैली क रूप मे इसका प्रवर्तन किया था। हमारे अध्ययन युग का प्रारम्भ मुहम्मदशाह और वली के समय मे ही होता है। दिल्ली इस सम्प्रदाय के प्रचार-क्षेत्र मे पडता है, यह भी सर्वविदित है। इसीलिए रामसनेही सम्प्रदाय के साहित्य पर इस भाषा का बहुत प्रभाव है। रामचरण के शिष्य पोहकरदास तो रेखता के पूर्ण ज्ञाता थे। नीचे उनके द्वारा लिखी गई कुछ पंक्तियाँ दी जाती हैं —

रहम रख दिल रहम रख दिल रहम रख दिल यार रे।
कहर मत कर कहर मत कर कहर है बदकार रे॥टेक॥

---

१ श्री मद्भागवत एकादश स्कंध भाषा टीका, पृ० १

२ अणभेवाणी, पृ० १००४-५

होवैगा इनसाफ तेरा साईं के दरबार रे।
रहम सें रब दाद देवे कहर पै काहार रे ॥[1]

महात्मा रामचरण ने रेखता भाषा का व्यवहार उर्दू के रखता छंद में कितनी सफलतापूर्वक किया है यह इन पंक्तियों मे देखा जा सकता है —

वैराग की चाल का ख्याल बारीक है एक फारक फकीर काहूँ।
मकर की जिकर सब फिकर फैसन करै कहर तज महर दिल मोम सा हूँ ॥
रैण दिन आपणे हाल मस्तक रहै खलक सें पलक नहिं प्रीति धारै।
अकल इकतार विस्तार करि बदगी होय निस्तार ससार पारै ॥
छाडि घरबार ये धार सो फकर है और कटि फटक फजीत होई।
राम ही चरण इक उदर के वास्ते आगली पाछली दोय खोई ॥[2]

मुहावरे

मुहावरा किसी बोली या भाषा में प्रयुक्त होने वाला वह महत्त्वपूर्ण वाक्य-खंड है जो अपनी उपस्थिति से समस्त वाक्य को सबल सतेज, रोचक और चुस्त बना देता है। ससार मे मनुष्य ने अपने लोक व्यवहार मे जिन-जिन वस्तुओं और विचारों को बड़े कौतूहल से देखा, समझा और बराबर उसका अनुभव किया उन्हीं को उसने शब्दों में बाँध दिया है। ये ही मुहावरे कहलाते हैं।[3] वस्तुत भावों को थोड़े शब्दों में प्रकट करना मुहावरों का काम है।

इस प्रकार भाषा को सजीवनी शक्ति प्रदान करना और अभिव्यक्ति को मर्म-स्पर्शी बनाना मुहावरे का एकमात्र धर्म है। रामसनेही सम्प्रदाय का साहित्य मुहावरों की नैसर्गिक सुषमा से मंडित है। उदाहरण के लिए कुछ मुहावरे नीचे दिये जाते हैं —

(१) सरपा दूध पिलाइयो पीया हूवा जैर।[4]
(२) किरपा कीजै बाप जी पकड हमारी बाय।[5]
(३) रानी रही मुसकाय ख्याल छछु दर गहैण गत।[6]
(४) रेत की भीत से ह्वै दिन दोयक।[7]

१ पोहकरदास की वाणी (गुटका), प० स० १२०
२ अणभैवाणी, पृ० २००
३ त्रिपथगा, अंक ६ (मार्च १९५६) पृ० ३०-रामनरेश त्रिपाठी का निबंध
४ रामदास की वाणी प० स० ७२
५ वही, प० स० ७२
६ गुरु प्रकरण (दयानुदास), छद ८१५
७ अणभै वाणी, पृ० ९४

(५) मुख मल सूँ भर जाय।[१]
(६) मन कूँ पूठा फेरिये।[२]
(७) रामदास धोबी कुत्ता भटक भटक दुख पाय।
(८) कागद केरी नाव चढ़ कैसे समद तिराय।[३]

लोकोक्ति

लोकोक्तियाँ अनुभव सिद्ध ज्ञान की निधि हैं। मानव ने युग-युग से जिन तथ्यों का साक्षात्कार किया है उनका प्रकाशन इनके माध्यम से होता है। ये चिरकालीन अनुभूत ज्ञान के सूत्र हैं। समाज रूप में चिरसंचित अनुभूत ज्ञान राशि का प्रकाशन इनका प्रधान उद्देश्य है।[४] आलोच्य सम्प्रदाय के साहित्य में कहीं कहीं पर लोकोक्ति की छटा भी दर्शनीय हो गयी है। उदाहरणार्थ कुछ लोकोक्तियाँ नीचे दी जाती हैं —

(१) जाके उर उपजी नहिं भाई सो का जाने पीर पराई।[५]
(२) मल सेती जो मल को धोवै सो मल कैसे छूटै।[६]
(३) आवा खाम बबूल लगावै सो नर आँब कहो क्यूँ खावै।[७]
(४) ऊँची है दुकान जामें फीके पकवान भरे।[८]

संगीत-योजना

भारतीय संस्कृति में नाद को ब्रह्म रूप माना गया है इसीलिए समस्त भक्ति-साहित्य में संगीत को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। जयदेव कृत 'गीत गोविन्द' के पद विभिन्न राग रागिनियों में विभक्त हैं। बौद्ध सिद्धों की चर्यागीतिकाओं में भी अनेक रागों का समावेश हुआ है। नामदेव, कबीर, सूर, तुलसी, मीरा आदि सभी भक्त कवियों की रचनाएं राग एवं ताल के आधार पर वर्गीकृत दिखाई पड़ती हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि संगीत में मन को रमाने की अभूतपूर्व शक्ति है। मनुष्य तो चेतन प्राणी है जड़ पदार्थ भी संगीत के प्रभाव से द्रवीभूत हो जाते हैं। कहा जाता है कि भैरव राग के प्रभाव से कोल्हू स्वयं चलने लगता है, श्री राग के प्रभाव से सूखा

१ मुक्तविलास, तृतीय प्रकरण, छंद ७०
२ रामदास की वाणी, पत्र २५
३ रामदास की वाणी, प० सं० ४१
४ लोक साहित्य की भूमिका डा० उपाध्याय, पृ० १८५
५ अनुभव गिरा, पृ० १६७
६ रामस्नेही संतवाणी, पृ० २१३
७ समता निवास, अष्टम प्रकरण छंद ८२
८ अणभै वाणी, पृ० १००

वृक्ष हरा हो जाता है, हिंडोल राग के कारण झूला स्वयमेव झूलने लगता है, मेघराग से अचानक वृष्टि होने लगती है और मालकोष राग पत्थर को भी मोम की भांति पिघला देता है।[1]

रामसनेही सम्प्रदाय के वाणी-साहित्य में पदों का विभाजन राग आशा, राग पीलू, राग कालिंगडा, राग बिहाग, राग देस, राग दरबारी, राग काफी, राग विभास राग सावनी कल्याण, राग रामकली राग भूपाली, राग भैरवी, राग त्रिवेनी, राग केदारा, राग नट बिलावल, राग गौड सारंग, राग ललित, राग काफी, राग बधावा, राग सोरठ, राग गरबी, राग प्रभाती, राग मंगल, राग कान्हडा, राग हेली, राग गवडी, राग मल्हार, राग गौडी, राग धनाश्री, राग बसन्त, राग जैतश्री आदि न जाने कितने रागों में किया गया है। इन रागों में विभिन्न प्रकार के ताल भी निर्दिष्ट हैं जैसे ताल तीन ताल, ताल दीपचन्दी, ताल कहरवा, ताल तिताला गुड, ताल चचरी गुड, ताल चचरी बिलावल, ताल तिनाल सोरठ, ताल तिताल पंचम, ताल तिनाल भैरव आदि।

उपर्युक्त विवेचन से यह प्रकट होता है कि इन संतों को संगीत के शास्त्रीय पक्ष की विधिवत् जानकारी थी। इस कथन की पुष्टि उस समय स्वयमेव हो जाती है जब हम देखते हैं कि अनेक संतों ने अपने पदों में जिस राग का प्रयोग किया है, उस राग की प्रकृति और उसके गाये जाने के समय को दृष्टि में रखते हुए विषय का प्रतिपादन किया है। उदाहरणार्थ भैरवी, ललित, विभास, रामकली जैसे रागों में सरगम का आरोह-अवरोह उन्हें गंभीरता प्रदान करता है। ये राग दिन के प्रथम प्रहार में गाये जाते हैं अतः भजन के लिए बहुत ही उपयुक्त प्रमाणित होते हैं। इसी प्रकार केदारा और सोरठ की प्रकृति हल्की सी करुणा और दर्द से युक्त है। मलार और गौरी की प्रकृति शृङ्गार के लिए उपयुक्त है। मारू ओज प्रधान राग है। कल्याण राग आत्म निवेदनात्मक प्रसंगों के लिए ठीक है। प्रभाती जागरण बेला का राग है।

ध्यातव्य है कि बहुत से संतों की वाणी में उपर्युक्त बातों का ध्यान रखा गया है। उदाहरणार्थ दो पद नीचे दिये जाते हैं जिनमें क्रमशः माधुर्य भाव के वियोग पक्ष और निद्रा त्याग कर जागने का वर्णन किया गया है—

सोरठ

विरहिनि कूं दरसन दीजे साहिब अपनी कर लीजे।टेक।
मैं राम पिया बलिहारी प्रभु मेटो तपन हमारी।
दुक दया दृष्टि भर देखो जीवाने तारन लेखो।।

1 संगीत (पत्रिका), अगस्त सन् १९२६, पृ० ५१

(५) मुख मल सूं भर जाय।[१]
(६) मन कू पूठा फेरिये।[२]
(७) रामदास घोबी कुत्ता भटक भटक दुख पाय।
(८) कागद केरी नाव चढ़ कैसे समद तिराय।[३]

लोकोक्ति

लोकोक्तियाँ अनुभव सिद्ध ज्ञान की निधि हैं। मानव ने युग युग से जिन तथ्यों का साक्षात्कार किया है उनका प्रकाशन इनके माध्यम से होता है। ये चिरकालीन अनुभूत ज्ञान के सूत्र हैं। समास रूप में चिरसंचित अनुभूत ज्ञान राशि का प्रकाशन इनका प्रधान उद्देश्य है।[४] आलोच्य सम्प्रदाय के साहित्य में कहीं कहीं पर लोकोक्ति की छटा भी दर्शनीय हो गयी है। उदाहरणार्थ कुछ लोकोक्तियाँ नीचे दी जाती हैं —

(१) जाके उर उपजी नहिं माई सो का जाने पीर पराई।[५]
(२) मल सेती जो मल को धोवे सो मल कैसे छूटे।[६]
(३) आवा नाम बबूल लगावे सो नर आँब कहाँ क्यूँ खावे।[७]
(४) ऊँची है दुकान जामे फीके पकवान भरे।[८]

संगीत-योजना

भारतीय संस्कृति में नाद को ब्रह्म रूप माना गया है इसीलिए समस्त भक्ति-साहित्य में संगीत को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। जयदेव कृत 'गीत गोविन्द' के पद विभिन्न राग-रागिनियों में विभक्त हैं। बौद्ध सिद्धों की चर्यागीतिकाओं में भी अनेक रागों का समावेश हुआ है। नामदेव, कबीर, सूर, तुलसी, मीरा आदि सभी भक्त कवियों की रचनाएं राग एवं ताल के आधार पर वर्गीकृत दिखाई पड़ती हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि संगीत में मन को रमाने की अभूतपूर्व शक्ति है। मनुष्य तो चेतन प्राणी है जड़ पदार्थ भी संगीत के प्रभाव से द्रवीभूत हो जाते हैं। कहा जाता है कि भैरव राग के प्रभाव से कोल्हू स्वयं चलने लगता है, श्री राग के प्रभाव से सूखा

१ मुक्तविलास, तृतीय प्रकरण, छन्द ७०
२ रामदास की वाणी, पत्र २५
३ रामदास की वाणी, प० सं० ८१
४ लोक साहित्य की भूमिका डा० उपाध्याय, पृ० १८५
५ अनुभव गिरा, पृ० १६७
६ रामस्नेही संतवाणी, पृ० २१३
७ समता निवास, अष्टम प्रकरण छन्द ८२
८ अणभै वाणी पृ० १००

वृक्ष हरा हो जाता है, हिंडोल राग के कारण झूला स्वयमेव झूलने लगता है, मेघराग से अचानक वृष्टि होने लगती है और मालकोष राग पत्थर को भी मोम की भाँति पिघला देता है।[1]

रामसनेही सम्प्रदाय के वाणी-साहित्य में पदों का विभाजन राग आशा, राग पीलू, राग कालिंगड़ा, राग विहाग, राग देस, राग दरबारा, राग काफी, राग विभास, राग सावनी कल्याण, राग रामकली राग भूपाली, राग भैरवो, राग त्रिवेनी, राग केदारा, राग नट बिलावल, राग गौड़ सारंग, राग ललित, राग काफी, राग बधावा, राग सोरठ, राग गरबी, राग प्रभाती, राग मंगल, राग कान्हड़ा, राग हली, राग गवडी, राग मल्हार, राग गौडी राग धनाश्री, राग अडहुम, राग जैतश्री आदि न जाने कितने रागों में किया गया है। इन रागों में विभिन्न प्रकार के ताल भी निर्दिष्ट हैं जैसे ताल तीन ताल, ताल दीपचन्दी, ताल कहरवा, ताल तिताला गुढ, ताल चचरी गूढ, ताल चचरी बिलावल, ताल तिताल सोरठ, ताल तिताल पचम, ताल तिताल भैरव आदि।

उपर्युक्त विवेचन से यह प्रकट होता है कि इन सन्तों को संगीत के शास्त्रीय पक्ष की विधिवत जानकारी थी। इस कथन की पुष्टि उस समय स्वयमेव हो जाती है जब हम देखते हैं कि अनेक सन्तों ने अपने पदों में जिस राग का प्रयोग किया है, उस राग की प्रकृति और उसके गाये जाने के समय को दृष्टि में रखते हुए विषय का प्रतिपादन किया है। उदाहरणार्थ भैरवी, ललित, विभास, रामकली जैसे रागों में सरगम का आरोह-अवरोह उन्हें गंभीरता प्रदान करता है। ये राग दिन के प्रथम प्रहार में गाये जाते हैं अतः भजन के लिए बहुत ही उपयुक्त प्रमाणित होते हैं। इसी प्रकार केदारा और सोरठ की प्रकृति हल्की सी करुणा और दर्द से युक्त है। मलार और गौरी की प्रकृति शृङ्गार के लिए उपयुक्त है। मारू ओज प्रधान राग है। कल्याण राग आत्म निवेदनात्मक प्रसंगों के लिए ठीक है। प्रभाती जागरण बेला का राग है।

ध्यातव्य है कि बहुत से सन्तों की वाणी में उपयुक्त बातों का ध्यान रखा गया है। उदाहरणार्थ दो पद नीचे दिये जाते हैं जिनमें क्रमशः मानुष भाव के वियोग पक्ष और निद्रा त्याग कर जागने का वर्णन किया गया है—

सोरठ

विरहिनि कूं दरसन दीजै साहिब अपनी कर लीजै।टेक।
मैं गम पिया बलिहारी प्रभु मेटो तपन हमारी।
टुक दया दृष्टि भर देखो जीवाने तारन लेखो॥

१ संगीत (पत्रिका), अगस्त सन् १९५६, पृ० ५१

जिय जनम जनम को झूरै आशायत आशा पूरै।
हरि आदू विरद विचारो अब पलरा पलक पधारो ॥
मोहि स्याम सन्त सम जाने अब प्रीतम दरस दिखाने।
जन ध्यान बाल बलि जाने कब राम पिया घर आने ॥[1]

प्रभाती

जाग-जाग नर जीव अभागी राम सुमिर क्यों सूतो रे।
विषय मोह ममता र कारण केतो बार विगूतो र ॥टेक॥
आवत बया से जानी साथे आवत कुछ नहिं लेतो रे।
कर्म करे कर बोघ उठायो हाथ चल्यो अब केतो रे ॥
भक्ति न भावै कर्म कमावे जीवन ही क्यों भूतो रे।
जननी जनम र नूर गमायो रहियो क्यो न अऊतो रे ॥
जे तन पर ही सो अब मरही कोई न रहत अछूतो रे।
तीन लोक म फिर फिर लूटै जोरावर जम दूतो रे ॥
सार सभार सत शब्द सुमिरले तन मन सेती ल्यो रे।
जन सहजराम सतगुरु समझाने राम सुमिर ले सूतो र ॥[2]

छन्द-विधान

कविता और छन्द का बड़ा ही घनिष्ट सम्बन्ध है। 'कविता का स्वभाव ही छन्द म लयमान होना है। जिस प्रकार नदी के तट अपने बन्धन से धारा की गति को सुरक्षित रखते हैं जिनके नियन्त्रण के अभाव मे वह अपना प्रवाह खो बैठती है उसी प्रकार छन्द भी अपने नियन्त्रण स राग को स्पन्दन कपन तथा वेग प्रदान कर निर्जीव शब्दों के रोड़ों म एक कोमल सजल कलरव भर उन्हें सजीव बना देता है[3]। यद्यपि आज का प्रगतिशील साहित्यकार कविता मे छन्दो की उपयोगिता पर विश्वास नही करता किन्तु काव्य प्रवाह की गतिमयता के लिए उसे भी काव्य म छन्द विधान की महत्ता किसी न किसी रूप म स्वीकार करनी ही पड़ती है।

'ऋग्वेद' क 'पुरुषसूक्त' क नवम मन्त्र के अनुसार छन्दो की उत्पत्ति आदि पुरुष ब्रह्मा से हुई है। 'सामवेद' म अनेक छन्दो का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। वेद के छः अगो मे प्रथम स्थान छन्द का है। छन्द वेद रूपी पुरुष का पैर है—छन्द पादौ तु वेदस्य। यह तो हुई छन्द की अलौकिक उत्पत्ति की बात। लौकिक दृष्टि से इसके विकास का इतिहास इतना लम्बा है कि उसकी विवेचना करते हुए

---

१ श्री रामस्नेह धर्मप्रकाश, पृ० २५२ ५३
२ रामस्नेह सन्त वाणी, पृ० २४०-४१
३ पल्लव (भूमिका भाग), पृ० ३

मात्र इतना कहना पर्याप्त है कि आदि कवि की वाणी का प्रथम स्वर छन्द के माध्यम से ही फूटा था।

भारतीय काव्यशास्त्रियों ने क्रमश मात्राओं एवं ध्वनि समूह से सम्बद्ध होने के कारण स्वर और व्यंजन के आधार पर छन्द के दो भेद—वर्णिक और मात्रिक किये हैं। संस्कृत जैसी संयोगात्मक या संश्लेषणात्मक भाषाओं मे समास बहुलता के कारण वर्णिक छन्द अनुकूल पडते हैं जबकि वियोगात्मक या विश्लेषणात्मक होने के कारण हिन्दी मे मात्रिक छन्दो की अधिकता है।

सन्तो के प्रिय छन्द और रामसनेही साहित्य

पूर्व मध्यकालीन संत साहित्य का अनुशीलन करने से विदित होता है कि पहले सब के संत कवियों के प्रिय छन्द 'साखी' और 'शब्द' है। संत परम्परा मे प्रयुक्त ये छन्द छन्दशास्त्रीय कसौटी पर खरे नही उतरते। कभी-कभी तो एक ही 'शब्द' मे एक से अधिक छन्दों का समावेश भी देखा जाता है। रीतियुगीन काव्य के प्रभाव से परवर्ती संत कवियो का ध्यान अन्य छन्दो के प्रयोग की ओर गया। परिणाम-स्वरूप सन्त काव्य मे भी साखियों एवं रमैनियो के साथ-साथ अन्य बहुत से छन्दो का समावेश हुआ। रामसनेही सम्प्रदाय के साहित्य में छन्दो का बहुविध प्रयोग हुआ है। इस सम्प्रदाय के वाणीकार संतों ने दोहा, सोरठा चौपाई, झूलना, छप्पय, अरिल, चन्द्रायण, कुण्डलिया, सवैया, कवित्त, भुजंग प्रयात, इन्दव चम्पक चामर, नाराच तोमर, त्रोटक, पद्धरा, गीतिका, मुक्तादाम, रेखता और गजल आदि अनेक छन्दो का विधान किया है।

रामसनेही सम्प्रदाय के संतो के छन्द-विधान पर विचार करने के उपरान्त कोई यह नहीं कह सकता कि ये सन्त छन्दशास्त्र से अनभिज्ञ थे। यह बात ठीक है कि इनके छन्दों मे यत्र-तत्र मात्रा सम्बन्धी घट-बढ और कहीं-कहीं नामों का हेर-फेर है किन्तु जितने छन्दो का उल्लेख अभी हम कर आये हैं उनके सम्बन्ध मे यह कहकर कदापि नही टाला जा सकता कि इनके सफल प्रयोग का कारण शास्त्रीय ज्ञान नहीं वरन् इनका लोक प्रचलन था। सच बात यह है कि अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक आते-आते सन्त कवि रीतिकालीन काव्य-धारा से प्रभावित हो चले थे। उन्होंने लक्षण ग्रन्थो की रचना नही की यह बात दूसरी है किन्तु इतना निश्चित है कि छन्द बहुल वाणी की रचना करने से पूर्व वे छन्दो के शास्त्रीय रूप से पूर्णतया परिचित थे।

---

१ पोहकरदास की वाणी (गुटका), प० ११६ (पहाड़पुर रामद्वारा दिल्ली)

सातवाँ अध्याय

उपसंहार

इस विवेचन से यह प्रकट हो गया होगा कि पन्द्रहवी शताब्दी की जिस सक्रमणशील स्थिति ने सतमत के अग्रदूत कबीर को परम्परागत सगुणमार्गी वैष्णव धर्म से पृथक् निगुणमत का प्रवतन करने के लिए प्रेरित किया था, राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक सभी दृष्टियो मे ठीक उसी इतिहास की पुनरावृति के परिणामस्वरूप अठारहवी शताब्दी में रामसनेही सम्प्रदाय का आविर्भाव हुआ। यह सम्प्रदाय समय की मांग का प्रतिफल था, अत ब्राह्मणों एव सगुणोपासक वैष्णवो के साथ विरोध करने पर भी द्रुतगति से विकसित होता रहा और थोडे ही समय मे राजस्थान के विभिन्न भागो मे ही नही, मध्यप्रदेश, गुजरात, दिल्ली तथा देश के अन्य बहुत से स्थानों पर इसकी शाखायें स्थापित हो गईं। सम्प्रदाय के यशस्वी महात्माओ के सात्विक जीवन एव चरित्र से प्रभावित होकर सामान्य जनता के साथ ही अनेक राजे-महाराजे भी इस सम्प्रदाय मे दीक्षित हो गये। जयपुर, जोधपुर बीकानेर, शाहपुरा, कोटा, रतलाम नागोर आदि प्रदेशों के नरेश सपरिवार इनके शरणागत हुए। उनके वशज आज तक इस सम्प्रदाय के महात्माओं को अपनी श्रद्धा के पुष्प चढ़ाते चले आ रहे हैं।

रामसनेही सन्तों की अध्यात्म-साधना विरक्तिपूर्ण एव निस्पृह जीवन-दर्शन पर आधारित है। लोकैषणा से दूर रहत हुए भी इन सन्तो ने समसामयिक समाज की दुष्प्रवृत्तियो को दूर कर लोकजीवन में शाति और सुव्यवस्था स्थापित करने का भरपूर प्रयत्न किया। अपना सन्देश जन सामान्य तक पहुँचाने के लिए इन उदाराशय महात्माओ ने परम्परा से स तमत द्वारा गृहीत वाणी रचना का माध्यम अपनाया। आध्यात्मिक अनुभूतियो को सम्प्रेष्य बनाने के लिए काव्य से अधिक मर्मस्पर्शी साधन हो ही क्या सकता था? इस प्रकार साधना, समाज-सुधार तथा काव्य-सजना इन तीनों दृष्टियो से रामसनेही स तो का व्यक्तित्व अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आगे इन्हा दृष्टि बिन्दुओ से सम्प्रदाय की विशिष्ट उपलब्धियो की विवेचना की जायगी जिससे न केवल उत्तर मध्यकालीन राजस्थानी समाज लाभान्वित हुआ वरन् युग-युग तक मानवता का मार्ग दर्शन होता रहेगा।

मध्यकालीन भारत के इतिहास में अठारहवीं शताब्दी धार्मिक अपकर्ष का युग था। इस काल में एक ओर तो सगुण भक्ति नाना प्रकार के पाखण्डों और अंध-विश्वासों से जर्जर हो रही थी और दूसरी ओर कबीर द्वारा प्रवर्तित निर्गुणमार्गी साधना संकुचित व्यक्तिवाद पर आधारित नये-नये पंथों के दलदल में फंस कर सत्वहीन हो चुकी थी। ऐसी स्थिति में रामसनेही सन्तों ने भक्ति-आन्दोलन को एक नयी दिशा दी। इन सम्प्रदाय के अनुयायियों ने सगुणोपासना के क्षेत्र में पनपे हुए अंधविश्वासों का प्रबल उक्तियों से खण्डन करने के साथ ही निर्गुण सन्तमत के मूल सिद्धान्तों का पुनरुद्धार किया और उन्हें अपने साधनामय जीवन में व्यवहृत कर सन्तमत की प्रतिष्ठा बढ़ाई। साम्प्रदायिक पूर्वाग्रह से मुक्त होने के कारण इन सन्तों ने सगुणोपासना के लोकोपयोगी तत्वों को ग्रहण कर अपनी असाधारण उदारता का परिचय दिया।

रामसनेही सन्त व्यक्तिगत साधना के प्रचारक थे। इनका आध्यात्मिक दृष्टिकोण पूर्णतः व्यक्तिवादी था किन्तु उनका व्यक्तिवाद अन्तस्साधना के क्षेत्र तक ही सीमित था। व्यावहारिक जीवन में वे सार्वजनिक उत्थान के समर्थक थे। जातिगत, कुलगत तथा वैयक्तिक आधारगत श्रेष्ठता की निन्दा, मांस, मदिरा, जुआ झूठ आदि की भर्त्सना तथा दया, शील, प्रेम आदि सद्गुणों की प्रतिष्ठा से सामाजिक कुरीतियों को दूर करके जन-जीवन में सुख-शान्ति की स्थापना करने में ये निरन्तर प्रयत्नशील रहे। सती और पतिव्रता नारी को बार-बार सराहना तथा व्यभिचारिणी की निन्दा में भी उनका उद्देश्य सामाजिक मर्यादा और नैतिकता की रक्षा करना ही था। इन सन्तों ने समकालीन लोक-जीवन की कुछ ऐसी समस्याओं पर भी दृष्टिपात किया है जो विचार-शील व्यक्तियों के लिए उस समय चिन्ता का कारण बनी हुई थीं। हिन्दू समाज में विधवाओं की स्थिति एक ऐसी ही समस्या थी। परमहंस सेवकराम ने इस पर 'विधवा-विचार' नामक एक पृथक ग्रंथ की रचना कर डाली थी। इसी प्रकार कन्या-वध भी मध्यकालीन राजस्थानी समाज के लिए एक कलंक था। दयालुदास ने अपनी 'वाणी' में इसका विस्तार से वर्णन किया है। इन कुरीतियों के उल्लेख मात्र से सन्तुष्ट न होकर रामसनेहियों ने उन्हें दूर करने के लिए सुधारवादी आन्दोलन के रूप में कुछ प्रयोग भी किये थे। होली के अवसर पर गाये जाने वाले कुत्सित गीतों और कीचड़ फेंकने की कुप्रथा के स्थान पर लोकरंजक 'फूलडोल' उत्सव के आयोजन की परम्परा इसी विचार से स्थापित की गई है।

रामसनेही सन्तों की साहित्य सेवा भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। इस विषय पर कार्य करते हुए प्रस्तुत लेखक को अब तक लगभग साढ़े तीन सौ हस्तलिखित ग्रंथों का पता चला है और उसका यह विश्वास है कि छानबीन करने पर अभी सैकड़ों ग्रंथ

उपसहार

इस विवेचन से यह प्रकट हो गया होगा कि पन्द्रहवी शताब्दी की जिस सक्रमणशील स्थिति ने सतमत के अग्रदूत कबीर को परम्परागत सगुणमार्गी वैष्णव धर्म से पृथक् निर्गुणमत का प्रवतन करने के लिए प्रेरित किया था, राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक सभी दृष्टियो से ठीक उसी इतिहास की पुनरावृत्ति के परिणामस्वरूप अठारहवी शताब्दी मे राममनेही सम्प्रदाय का आविर्भाव हुआ। यह सम्प्रदाय समय की माँग का प्रतिफल था, अत ब्राह्मणो एव सगुणोपासक वैष्णवो के लाख विरोध करने पर भी द्रुतगति से विकसित होता रहा और थोडे ही समय मे राजस्थान के विभिन्न भागो मे ही नहीं, मध्यप्रदेश, गुजरात, दिल्ली तथा देश के अन्य बहुत से स्थानों पर इसकी शाखायें स्थापित हो गइ। सम्प्रदाय के यशस्वी महात्माओ के सात्विक जीवन एव चरित्र से प्रभावित होकर सामान्य जनता के साथ ही अनेक राजे-महाराजे भी इस सम्प्रदाय मे दीक्षित हो गये। जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, शाहपुरा, कोटा, रतलाम नागोर आदि प्रदेशो के नरेश सपरिवार इनके शरणागत हुए। उनके वशज आज तक इस सम्प्रदाय के महात्माओ को अपनी श्रद्धा के पुष्प चढाते चले आ रहे हैं।

रामसनेही सन्तो की अध्यात्म साधना विरक्तिपूर्ण एव निस्पृह जीवन दशन पर आधारित है। लोकैषणा से दूर रहते हुए भी इन सन्तो ने समसामयिक समाज की दुष्प्रवृत्तिया को दूर कर लोकजीवन मे शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित करने का भरपूर प्रयत्न किया। अपना सन्देश जन सामान्य तक पहुँचाने के लिए इन उदाराशय महात्माओ ने परम्परा से सतमत द्वारा गृहीत वाणी-रचना का माध्यम अपनाया। आध्यात्मिक अनुभूतियों को सम्प्रेष्य बनाने के लिए काव्य से अधिक मर्मस्पर्शी साधन हो ही क्या सकता था? इस प्रकार साधना, समाज-सुधार तथा काव्य-सृजना इन तीनो दृष्टियो से रामसनेही सन्तो का व्यक्तित्व अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। आगे इन्ही दृष्टि बिन्दुओ से सम्प्रदाय की विशिष्ट उपलब्धियो की विवेचना की जायगी जिससे न केवल उत्तर मध्यकालीन राजस्थानी समाज लाभान्वित हुआ वरन् युग-युग तक मानवता का माग दशन होता रहेगा।

मध्यकालीन भारत के इतिहास में अठारहवीं शताब्दी धार्मिक अपकर्ष का युग था। इस काल में एक ओर तो सगुण-भक्ति नाना प्रकार के पाखण्डों और अंध-विश्वासों से जर्जर हो रही थी और दूसरी ओर कबीर द्वारा प्रवर्तित निर्गुणमार्गी साधना सकुचित व्यक्तिवाद पर आधारित नये-नये पंथों के दलदल में फंस कर महत्वहीन हो चुकी थी। ऐसी स्थिति में रामसनेही सन्तों ने भक्ति-आन्दोलन को एक नयी दिशा दी। इस सम्प्रदाय के अनुयायियों ने सगुणोपासना के क्षेत्र में बढ़ते हुए अंधविश्वास का प्रबल उक्तियों से खण्डन करने के साथ ही निर्गुण सन्तमत के मूल सिद्धान्तों का पुनरुद्धार किया और उन्हें अपने साधनामय जीवन में व्यवहृत कर सन्तमत की प्रतिष्ठा बढ़ाई। साम्प्रदायिक पूर्वाग्रह से मुक्त होने के कारण इन सन्तों ने सगुणोपासना के लोकोपयोगी तत्वों को ग्रहण कर अपनी असाधारण उदारता का परिचय दिया।

रामसनेही सन्त व्यक्तिगत साधना के प्रचारक थे। इनका आध्यात्मिक दृष्टिकोण पूर्णतः व्यक्तिवादी था, किन्तु उनका व्यक्तिवाद अन्तस्साधना के क्षेत्र तक ही सीमित था। व्यावहारिक जीवन में वे सार्वजनिक उत्थान के समर्थक थे। जातिगत, कुलगत तथा वैयक्तिक आचारगत श्रेष्ठता की निन्दा, मांस, मदिरा, जुआ, झूठ आदि की भर्त्सना तथा दया, शील, प्रेम आदि सद्गुणों की प्रतिष्ठा से सामाजिक कुरीतियों को दूर करके जन-जीवन में सुख-शान्ति की स्थापना करने में ये निरन्तर प्रयत्नशील रहे। सती और पतिव्रता नारी की बार-बार सराहना तथा व्यभिचारिणी की निन्दा में भी उनका उद्देश्य सामाजिक मर्यादा और नैतिकता की रक्षा करना ही था। इन सन्तों ने समकालीन लोक-जीवन की कुछ ऐसी समस्याओं पर भी दृष्टिपात किया है जो विचार-शील व्यक्तियों के लिए उस समय सिर-दर्द का कारण बनी हुई थीं। हिन्दू समाज में विधवाओं की स्थिति एक ऐसी ही समस्या थी। परमहंस सेवकराम ने इस पर 'विधवा-विचार' नामक एक पृथक् ग्रंथ की रचना कर डाली थी। इसी प्रकार कन्या-वध भी मध्यकालीन राजस्थानी समाज के लिए एक कलंक था। दयालुदास ने अपनी 'वाणी' में इसका विस्तार से वर्णन किया है। इन कुरीतियों के उल्लेख मात्र से सन्तुष्ट न होकर रामसनेहियों ने उन्हें दूर करने के लिए सुधारवादी आन्दोलन के रूप में कुछ प्रयोग भी किये थे। होली के अवसर पर गाये जाने वाले कुत्सित गीतों और कीचड़ फेंकने की कुप्रथा के स्थान पर लोकरंजक 'फूलडोल' उत्सव के आयोजन की परम्परा इसी विचार से स्थापित की गई है।

रामसनेही सन्तों की साहित्य सेवा भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। इस दिशा पर कार्य करते हुए प्रस्तुत लेखक को अब तक लगभग साढ़े तीन सौ हस्तलिखित ग्रंथों का पता चला है और उसका यह विश्वास है कि छानबीन करने पर अभी सैकड़ों ग्रंथ

और मिल सकते हैं। इन ग्रथा के अनुशीलन से अठारहवी शताब्दी मे निर्मित निर्गुण पथी साहित्य की ऐसी अनेक लुप्तप्राय अन्तधाराओ का पता लग सकता है जिनके बिना हिन्दी-साहित्य का इतिहास अधूरा ही रहेगा।

किसी महात्मा अथवा धर्माचार्य के विचार जब तक सिद्धान्त रूप मे रहते हैं तब तक वे शुद्ध वैचारिक जगत् की वस्तु रहते हैं किन्तु जब उन्हे एक स्थिर मतवाद का रूप देना होता है तब सामान्य लोगो के सहज आस्थामय हृदय की तुष्टि के लिए मूल विचारो की दार्शनिक और सात्विक व्याख्या के साथ ही उनके प्रवर्तक के व्यक्तित्व के चतुर्दिक अलौकिक तत्वो का घना आवरण डाल दिया जाता है। इसी को सम्प्रदायवाद की नीव समझना चाहिये। इस दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि रामसनेही सम्प्रदाय के भी अधिकाश परवर्ती सन्त साम्प्रदायिकता के सकुचित घेरे मे आ गये थे और आज भी कुछ ऐसे लोग मिल सकते हैं जो उससे ऊपर नही उठ सके हैं। यह सन्तोष का विषय है कि इस वैज्ञानिक युग मे आलोच्य सम्प्रदाय के अधिकाश अनुयायी शनै शनै रूढ़िवादी प्रवृत्तियो का त्याग कर प्रगतिशील विचारों को अपनाते जा रहे हैं। विद्यालयों एव औषधालयो की स्थापना, रामद्वारो म साधको के जीवन यापन का प्रबन्ध, साम्प्रदायिक साहित्य के प्रकाशन एव अनुशीलन की व्यवस्था आदि कार्यों मे उनकी उत्कट लोक हितैषणा लक्षित होती है।



सहायक ग्रन्थ

अप्रकाशित हिन्दी ग्रन्थ

१ अवतार चरित्र—मुलराम
२ अचल बोध—किसनदास
३ अथ सिद्धाउ—परसुराम
४ अर्जुनदास की वाणी
५ आदिबोध—रामदास
६ किसनदास की वाणी
७ खागटे का वडा वाणी संग्रह
८ गुरुलीला विलास—जगन्नाथ
९ गुरु परीक्षा—हरिराम दास
१० गुरु महिमा—आभा बाई
११ गुरु प्रकरण—दयालु दास
१२ गुरु प्रणालिका—मोतीराम
१३ ग्यान प्रबोध—रामजन
१४ चिन्तावणी बोध—सूरत राम
१५ चौरासी बोल—जगन्नाथ
१६ जन्म लीला—अर्जुन दास
१७ जन्म लीला—हरलाल दास
१८ जन्म लीला—पदुमदास
१९ जथारथ बोध—जगन्नाथ
२० ज्ञान समुद्र—(डा० भगवतीप्रसाद सिंह के संग्रहालय की प्रति)
२१ ज्ञान समाधि—मनोरथ राम
२२ दरिया साहब की परची—मदाराम
२३ दयालु दास की वाणी—(सूरसागर, जोधपुर की प्रति)

२४ देवादास की महिमा के शब्द—हरीराम
२५ देवादास की वाणी
२६ नवल सागर—नवल राम
२७ नाम परचा—हरिराम दास
२८ निरालम्ब—रामदास
२९ निर्गुण साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि—डा० मोतीसिंह (शोध प्रबन्ध)
३० पोहकरदास की वाणी
३१ परची—बालक दास
३२ परसुराम की वाणी
३३ परसुराम की परची—सेवकराम
३४ पूरणदास की वाणी
३५ फूल डोल समाधि—जगन्नाथ
३६ बारह मासा—पोहकर दास
३७ भक्त माल—दयालु दास
३८ भक्तमाल—रामदास
३९ भक्तमाल—किसन दास
४० भक्तमाल—मदाराम
४१ भक्तमाल—प्रेमदास
४२ भक्त प्रभाव—सेवक राम
४३ भगवानदास की वाणी
४४ मनोरथराम की वाणी
४५ मनीराम की वाणी
४६ मुरलीराम की वाणी
४७ राजयोग—श्री कृष्णादास पयहारी
४८ रामचरण की परची—लालदास
४९ रामजन की महिमा के शब्द—जगन्नाथ
५० रामदास की वाणी
५१ राम पद्धति—रामजन
५२ राम प्रताप की महिमा के शब्द—गिरधर दास
५३ राम बल्लभ की वाणी
५४ रामबल्लभ की महिमा के शब्द—तुलाराम
५५ रेखता—रामदास
५६ शब्द—रामजन

५७ शिक्षा बत्तीसी—पूरण दास
५८ श्रवणसार—नवलराम
५९ सब्द—मनोरथराम
६० सेवकराम की वाणी
६१ सूरतराम की वाणी
६२ सुमिरण सिद्धान्त—रामजन
६३ हरजन—रामदास
६४ हरजस—पूरणदास
६५ हरलालदास की वाणी
६६ हरवाराम की वाणी
६७ हरिरामदास का परचा—गंगाराम

प्रकाशित हिन्दी ग्रंथ

१ अनुभवगिरा—सन्तदास
२ अणभैवाणी—रामचरण
३ अणभै विलास—रामचरण
४ अमृत उपदेश—रामचरण
५ अमरकोश टीका—भावनादास
६ अशोक के फूल—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
७ आचार चरितामृत—हरिदास शास्त्री
८ आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका—डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
९ आधुनिक हिन्दी साहित्य—डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
१० इस्त्वार द ला लितरात्यूर इन्दुई एँ ऐन्दुस्तानी-अनु० डा० वार्ष्णेय
११ उत्तर मध्यकालीन भारत—अवध बिहारी पाण्डेय
१२ उत्तरी भारत की सन्त परम्परा—प० परशुराम चतुर्वेदी
१३ उमर दास
१४ उर्दू साहित्य का इतिहास—डा० रामबाबू सक्सेना
१५ औरंगजेब—सर यदुनाथ सरकार
१६ कबीर—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
१७ कबीर ग्रंथावली—सम्पादक बाबू श्याम सुन्दर दास
१८ कबीर की विचार-धारा—डा० गोविन्द त्रिगुणायत
१९ कबीर साहित्य की परख—प० परशुराम चतुर्वेदी
२० कबीर का रहस्यवाद—डा० रामकुमार वर्मा

२४ देवादास की महिमा के शब्द—हरीराम
२५ देवादास की वाणी
२६ नवल सागर—नवल राम
२७ नाम परचा—हरिराम दास
२८ निरालम्ब—रामदास
२९ निर्गुण साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि—डा० मोतीसिंह (शोध प्रबन्ध)
३० पोहकरदास की वाणी
३१ परची—बालक दास
३२ परशुराम की वाणी
३३ परशुराम की परची—सेवकराम
३४ पूरणदास की वाणी
३५ फूल डोल समाधि—जगन्नाथ
३६ बारह मासा—पोहकर दास
३७ भक्तमाल—दयालु दास
३८ भक्तमाल—रामदास
३९ भक्तमाल—किसन दास
४० भक्तमाल—मदाराम
४१ भक्तमाल—प्रेमदास
४२ भक्त प्रभाव—सेवक राम
४३ भगवानदास की वाणी
४४ मनोरथराम की वाणी
४५ मनोराम की वाणी
४६ मुरलीराम की वाणी
४७ राजयोग—श्री कृष्णदास पयहारी
४८ रामचरण की परची—लालदास
४९ रामजन की महिमा के शब्द—जगन्नाथ
५० रामदास की वाणी
५१ राम पद्धति—रामजन
५२ राम प्रताप की महिमा के शब्द—गिरधर दास
५३ राम वल्लभ की वाणी
५४ रामवल्लभ की महिमा के शब्द—तुलाराम
५५ रेखता—रामदास
५६ शब्द—रामजन

५४ नाथ सम्प्रदाय—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
५५ नाम परचा—हरिराम दास
५६ नाथ सिद्धों की बानी—स० रुद्रकार्तिकेय
५७ निबन्ध स्वाध्याय—रामस्नेही धर्ममण्डल, दिल्ली
५८ पञ्चरत्न स्तोत्र—स० जैतुराम रामनिवास शास्त्री
५९ पदगत्तीसी—हरिराम दास
६० परचीयार—अर्जुन दास
६१ पल्लव—सुमित्रानन्दन पंत
६२ पलडोल उ सव—रामनिवास
६३ ब्रह्म समाधि तीन योग—जगन्नाथ
६४ बीजक—कबीर (नवल किशोर प्रेस)
६५ बेमुक्ति तिरस्कार—रामचरण
६६ भर्तृहरि शतकत्रय—भावनादास
६७ भ्रमताड—सुखराम दास
६८ भक्तमाल (नाभादास) भक्ति-सुधा बिन्दु तिलक—रूपकलाजी
६९ भक्तमाल (नाभादास) भक्ति रस बोधिनी टीका, व्याख्याकार, रामकृष्णदेव गर्ग
७० भक्तमाल (नाभादास) रसिक प्रकाश टीका, प्रियादास
७१ भागवत एकादश स्कन्ध भाषा टीका—भावनादास
७२ भारतीय दर्शन—प० बलदेव उपाध्याय
७३ भारतीय दर्शन—डा० उमेश मिश्र
७४ भावन भजन रत्नावली—भावनादास
७५ मध्यकालीन धर्म साधना—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
७६ मध्यकालीन भारत—डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव
७७ महात्माओं की वाणी—स० रामवरन दास
७८ माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान—अनु० डा० किशोरीलाल गुप्त
७९ मिथिला महात्म्य—सूर किशोर
८० मीरा पदावली—प० परशुराम चतुर्वेदी
८१ मीरा स्मृति ग्रंथ—बंगीय हिन्दी परिषद्, कलकत्ता
८२ मुगल कालीन भारत—डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव
८३ मुरलीराम का जीवन चरित्र
८४ योग प्रवाह—डा० बडथ्वाल
८५ रसखान और उनका काव्य—चन्द्रशेखर पाण्डेय
८६ रसमीमांसा—प० रामचन्द्र शुक्ल

२१ करुणा सागर—दयालुदास
२२ कापर बोध—रामचरण
२३ गीता रहस्य—बाल गंगाधर तिलक
२४ गुरु प्रकरण परची—दयालुदास
२५ गुरु महिमा—रामचरण
२६ गोरखबानी—सम्पा० डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल
२७ गोविन्द साहब की हिन्दी रचनाएँ—सम्पा० डा० राधिकाप्रसाद त्रिपाठी
२८ घघर निसाणी—हरिराम दास
२९ चरनदास की बानी—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
३० चिन्तामणि—द्वितीय भाग—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
३१ चिन्तावणी—रामचरण
३२ छन्द प्रभाकर—जगन्नाथ प्रसाद 'भानु'
३३ छत्र प्रकाश—लालकवि
३४ जगनामा—श्रीधर
३५ जगद्विनोद—पद्माकर
३६ जिज्ञास बोध—रामचरण
३७ जन्म लीला—पूरण दास
३८ जायसी ग्रंथावली—सं० रामचन्द्र शुक्ल
३९ जाति भास्कर—सं० पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र
४० ज्ञान बत्तीसी—हिम्मत राम
४१ तसव्वुफ अथवा सूफीमत—पं० चन्द्रबली पाण्डेय
४२ तुलसी ग्रंथावली—सं० रामचन्द्र शुक्ल
४३ दादू की बाणी—सं० मंगलदास
४४ दूल्हेचरितामृतम्
४५ दोहावली (तुलसीदास) गीता प्रेस
४६ दयालुदिव्य चरित्र—पं० उत्साहराम 'कलहंस'
४७ दरिया साहब (मारवाड वाले) की बानी—बेलवेडियर प्रेस
४८ दृष्टान्त सागर—रामचरण
४९ ध्यान मंजरी—अग्रदास
५० निर्गुण भजनमाला—प्रका० चौवसराम, बीकानेर
५१ नृपबोध—सुगराम
५२ निर्गुणधारा—बैजनाथ, विश्वनाथ
५३ नाम प्रताप—रामचरण

५४ नाथ सम्प्रदाय—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
५५ नाम परचा—हरिराम दास
५६ नाथ सिद्धों की बानी—सं० रुद्रकार्तिकेय
५७ नित्य स्वाध्याय—रामस्नेही धर्ममण्डल, दिल्ली
५८ पञ्चरत्न स्तोत्र—सं० नेतूराम रामनिवास शास्त्री
५९ पदपत्तीसी—हरिराम दास
६० परचोसार—अर्जुन दास
६१ पल्लव—सुमित्रानन्दन पन्त
६२ फूलडोल उत्सव—रामनिवास
६ ब्रह्म समाधि लीन योग—जगन्नाथ
६४ बीजक—कबीर (नवल किशोर प्रेस)
६५ बेयुक्ति तिरस्कार—रामचरण
६६ भर्तृहरि शतकत्रय—भावनादास
६७ भ्रमतोड़—सुखराम दास
६८ भक्तमाल (नाभादास) भक्ति-सुधा बिन्दु तिलक—रूपकलाजी
६९ भक्तमाल (नाभादास) भक्ति रस बोधिनी टीका, व्याख्याकार, रामकृष्णदेव गर्ग
७० भक्तमाल (नाभादास) रसिक प्रकाश टीका, प्रियादास
७१ भागवत एकादश स्कन्ध भाषा टीका—भावनादास
७२ भारतीय दर्शन—प० बलदेव उपाध्याय
७३ भारतीय दर्शन—डा० उमेश मिश्र
७४ भावन भजन रत्नावली—भावनादास
७५ मध्यकालीन धर्म साधना—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
७६ मध्यकालीन भारत—डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव
७७ महात्माओं की वाणी—म० रामवल्लभ दास
७८ मार्डर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान—अनु० डा० किशोरीलाल गुप्त
७९ मिथिला महात्म्य —सूर किशोर
८० मीरा पदावली—प० परशुराम चतुर्वेदी
८१ मीरा स्मृति ग्रंथ—बंगीय हिन्दी परिषद्, कलकत्ता
८२ मुगल कालीन भारत—डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव
८३ मुरलीराम का जीवन चरित्र
८४ योग प्रवाह—डा० बड़थ्वाल
८५ रसखान और उनका काव्य—चन्द्रशेखर पाण्डेय
८६ रसमीमांसा—प० रामचन्द्र शुक्ल

८७ रामानन्द की हिन्दी रचनाएं—सं० डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
८८ रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय—डा० भगवती प्रसाद सिंह
८९ रामस्नेही सन्तवाणी—सं० आनन्दराम रामस्नेही
९० रामस्नेही सन्तवाणी और भजन संग्रह—सं० आनन्दराम रामस्नेही
९१ राजपूताने का इतिहास भाग ३ पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा
९२ राजपूताने का इतिहास—प्रथम भाग—जगदीश सिंह गहलोत
९३ रामरसाम्बुधि—भाग २—वेंकटेश्वर प्रेस
९४ राजस्थानी भाषा और साहित्य—पं० मोतीलाल मेनारिया
९५ राजस्थान का पिंगल साहित्य—पं० मोतीलाल मेनारिया
९६ राजस्थानी जातियों की खोज—रमेशचन्द्र गुणार्थी
९७ राम रसायण बोध—रामचरण
९८ राजस्थान की जातियां—बजरंगलाल लोहिया
९९ राजस्थान में हस्तलिखित ग्रंथों की खोज—भाग ३, ४
१०० रामचरित मानस (गीता प्रेस)
१०१ रामजन के शब्द
१०२ रामस्नेही धर्मदर्पण—मनोहरदास
१०३ लच्छ अलच्छ योग—रामचरण
१०४ लोक साहित्य की भूमिका—डा० कृष्णदेव उपाध्याय
१०५ विनय पत्रिका—तुलसीदास (गीता प्रेस)
१०६ विश्वास बोध—रामचरण
१०७ विश्राम बोध—रामचरण
१०८ विस्मरण सम्हार—बनादास
१०९ वीर बावनी—पं० उत्माहराम 'कलहंस'
११० शब्द प्रकाश—रामचरण
१११ शब्द—रामचरण
११२ शिवनारायणी सम्प्रदाय और उसका साहित्य—डा० रामचन्द्र तिवारी
११३ शिष्य सम्प्रदाय—आमाबाई
११४ श्री रामस्नेह धर्मप्रकाश—सं० चोकसराम जी
११५ श्री रामस्नेही सम्प्रदाय—सं० वैद्य केवलराम स्वामी
११६ श्री गुरु ग्रंथ साहिब
११७ श्री पाठ पुस्तक—सं० स्वामी धनाराम
११८ श्री हरिदेवदासजी महाराज की वाणी—सम्पा० भगवानदास शास्त्री
११९ षोडश चाणक्य नीति—अनु० भावनादास

१२० सतकाव्य—स०-प० परशुराम चतुर्वेदी
१२१ सत्यार्थ प्रकाश—दयानन्द सरस्वती
१२२ सदासन्दास की कुण्डलिया
१२३ समता निवास—रामचरण
१२४ सतबानी सग्रह—भाग १ (वेलवेडियर प्रेस)
१२५ सतबानी सग्रह—भाग २ (वेलवेडियर प्रेस)
१२६ साहित्यकार की आस्था और अन्य निबन्ध—महादेवी वर्मा
१२७ सूफी काव्य-सग्रह—स०-प० परशुराम चतुर्वेदी
१२८ सत्यकबीर की साखी (वेंकटेश्वर प्रेस)
१२९ सूरसागर—स०-नन्द दुलारे वाजपेयी (ना० प्र० सभा, काशी)
१३० सुख विलास—रामचरण
१३१ हकायके हिन्दी—स०-रुद्र काशिकेय
१३२ हरिभक्ति मजूषा—प्रकाशक लक्ष्यराम, च्यवन राम (बीकानेर)
१३३ हरिभक्ति मणि मजूषा—प्रकाशक वैद्य रामनारायण जी
१३४ हिन्दी साहित्य का इतिहास—प० रामचन्द्र शुक्ल
१३५ हिन्दी साहित्य की भूमिका—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
१३६ हिन्दी काव्यधारा—स०-राहुल साकृत्यायन
१३७ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा
१३८ हिन्दी काव्य मे निर्गुण सम्प्रदाय—डा० पीताम्बर दत्त बडथ्वाल
१३९ हिन्दुत्व—रामदास गौड
१४० हिन्दी को मराठी सन्तो की देन—डा० विनय मोहन शर्मा
१४१ हिन्दी हस्तलिखित पुस्तको का खोज का वार्षिक विवरण (सन् १९०१)
१४२ हिन्दी हस्तलिखित पुस्तको की खोज का सातवा विवरण
१४३ हिन्दी हस्तलिखित पुस्तको की खोज का बारहवा विवरण
१४४ हिन्दी हस्तलिखित पुस्तकों की खोज का तेरहवा विवरण
१४५ हिन्दी हस्तलिखित पुस्तको की खोज का चौदहवाँ विवरण
१४६ हिन्दी हस्तलिखित पुस्तको की खोज का पन्द्रहवा विवरण
१४७ हिन्दी हस्तलिखित पुस्तको की खोज का सोलहवाँ विवरण
१४८ हिन्दी हस्तलिखित पुस्तकों की खोज का सत्रहवा विवरण

हिन्दी पत्रिकाएँ

१ कल्याण-उपासना अक
२ कल्याण—सन्त-अक

३ कल्याण—साधनांक
४ भारतीय साहित्य, वर्ष ५, अंक २ ३
५ मधुकर (जून-जुलाई १९५६)
६ विद्यापीठ—त्रैमासिक, भाग २
७ हिंदुस्तानी अंक १, भाग ४ (१९३१)
८ त्रिपथगा, अंक ६ (मार्च १९५६)
९ संगीत, अगस्त १९५६

संस्कृत ग्रन्थ

१ अथर्ववेद
२ अध्यात्म रामायण
३ उत्तर रामचरित—भवभूति
४ ऋग्वेद
५ ऋक संहिता
६ कठोपनिषद्
७ गरुड पुराण
८ गोरक्ष संहिता
९ घेरण्ड संहिता
१० छांदोग्योपनिषद्
११ तैत्तरीयोपनिषद्
१२ दयालु पंचकम्—विशम्बरानंद
१३ ध्वन्यालोक—आनंदवर्धन
१४ नारद पांचरात्र
१५ नारद भक्ति सूत्र
१६ पंचदशी
१७ पद्म पुराण
१८ पातंजलि योग सूत्र
१९ पाण्डव गीता
२० भविष्य पुराण
२१ भक्ति रसामृत सिंधु—रूप गोस्वामी
२२ महाभारत
२३ मनुस्मृति
२४ मंत्रयोग संहिता

२५ मुण्डकोपनिषद्
२६ यजुर्वेद
२७ रामार्चन पद्धति—स्वामी रामानन्द
२८ रुद्रयामल तन्त्र
२९ लययोग प्रदीपिका
३० वाक्यपदीयम्
३१ विक्रमोर्वशीय—कालिदास
३२ बृहदारण्यकोपनिषद्
३३ वैशेषिक सूत्र—कणाद
३४ शाण्डिल्य भक्ति सूत्र
३५ शिव संहिता
३६ श्वेताश्वतरोपनिषद्
३७ श्रीमद्भागवत पुराण
३८ श्री मद्भगवद्गीता
३९ सामवेद
४० हठयोग प्रदीपिका
४१ हठयोग संहिता

पालि ग्रन्थ

१ धम्मपद

उर्दू ग्रन्थ

१ सम्प्रदाय—पी० वी० राय (मिशन प्रेस लुधियाना, १९०६)

अंग्रेजी ग्रन्थ

1 An Advanced History of India—Dr R C Mazumdar
2 Ain i Akbari—Abul Fazal
3 An Outline of Religious literature of India J N Farquhar
4 Annals & Antiquities of Rajasthan Vol II Col J Tod
5 Fall of the Mughal Empire Vol I Sir J N Sarkar
6 Hymns of the Alwars – J S M Hooper
7 Hath Yoga—Akchhaya Kumar Banerjee
8 Hindu castes and Sects—Jogendra Nath Bhattacharya
9 Introduction to the Panchratra—F O Shrader

10 Influence of Islam on Indian Culture—Dr Tarachand
11 Kabir and his Followers—F E Keay
12 Later Mughals—W Irwine
13 Life and Teachings of Ramanuja—Rangacharya
14 Medieaval Mysticism of India—K M Sen
15 Obscure Religious Cults—Dr S B Das Gupta
16 Ramanuja—K S Aiyangar
17 Ramanuja—Rajagopalachariar
18 Rajputana Gazeteer (The W R S Residency & Bikaner Agency 1909)
19 Religious Sects of Hindus—Dr H H Wilson
20 The Religious Policy of the Mughal Emperors—S R Sharma
21 *The Chamars—W Briggs*
22 The Sikh Religion—M A Macauliffe
23 The Word's Living Religions—R E Hume Ph D
24 The Mystcs Ascetics and Saints of India—J C Oman
25 Vaisanavism Saivism and other minor Religious systems Dr R G Bandarkar

अँग्रजी पत्रिकाएँ

1 Journal of the Royal Asiatic Society of Bengal (Feb 1835)
2 Journal of the Royal Asiatic Society (1920)
3 Sarswati Bhawan Studies Vol 8

परिशिष्ट-२

नामानुक्रमणिका

उ

ए

औ

क

च

ज

ट

ड

त

य

र

ह